तूँ ही बाती तूँ ही जोत

साध्वी ललिता

प्रकाशक
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, बीकानेर

- तूँ ही बाती तूँ ही जोत
- विदुषी महासतीश्री ललिताश्रीजी म सा
- मार्च ~~[illegible], 2100~~ प्रतिया
- अर्थ सहयोगी :
  श्रीमान भवरलालजी सचेती, देशनोक, कडूर
- मूल्य 40/-
- प्रकाशक
  श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ
  समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर-334 005
- मुद्रक :
  राजस्थान कम्प्यूटर एण्ड प्रिण्टर्स
  रामपुरिया मोहल्ला, बीकानेर-334 005

समता विभूति
आचार्यश्री नानेश
की
स्मृति को उभारते हुये
प्रशान्तमना
आचार्यश्री रामेश
के
निर्देशानुसार
आलेखित
उन्हीं के
कर कमलों में
समर्पित

-साध्वी ललिता

अर्थ सहयोगी श्रीमान् भंवरलालजी संचेती

आप देशनोक के प्रतिष्ठित सुश्रावक है। आपका व्यापार कडूर—कर्नाटक मे वर्षो से है। आपके पिता स्व श्रीमान् ईश्वरचन्दजी सचेती साधुमार्गी जैन सघ देशनोक के अध्यक्ष पद पर रहे है। उन्ही के अध्यक्षीय कार्यकाल मे शा प्र वि महासतीश्री ललिताश्रीजी म सा का ऐतिहासिक चातुर्मास सम्पन्न हुआ था। स्व श्रीमान् ईश्वरचन्दजी सचेती अनेक सस्थाओ से भी जुडे हुए थे। इसी प्रकार श्रीमान् भवरलालजी सचेती की धर्मपत्नी स्व श्रीमती कमलाबाई सचेती एक व्यावहारिक कुशल महिला थी। परिवार के प्रत्येक सदस्य की चहेती थीं। आपका पीहर देशनोक के श्री चन्दनमलजी मानमलजी डोसी के यहाँ है।

स्व श्रीमान् ईश्वरचन्दजी सचेती के दो भ्राता—श्रीकिस्तूरचन्दजी व सोहनलालजी सचेती विद्यमान है। श्री किस्तूरचन्दजी नोखा नगरपालिका पूर्व चेयरमैन रहे हुए है और वर्तमान मे नोखा सघ के उपाध्यक्ष पद पर आसीन है। बहिन म सा वयोवृद्धा महासेवा भाविनी श्री मगनकॅवरजी म सा ज्ञानगच्छ सम्प्रदाय मे सबसे अधिक दीर्घ सयम पर्याय वाली है। इसी प्रकार श्रीमान भवरलालजी सचेती की सन्सारपक्षीय सुपुत्री तरुण तपस्विनी वि महासतीश्री शुभाश्रीजी म सा है जो कि नानेश— रामेश शासन मे अपने विनय, विवेक, सेवा व आध्यात्मिक अध्ययन—अध्यापन आदि गुणो से अपने जीवन को सजाते हुए सयमी नदन वन मे आत्मिक आनन्द की अनुभूति करते हुए शासन प्रभावना के कार्य मे सलग्न है।

श्रीमान् भवरलालजी सचेती के 6 सतान, चार पुत्रिया—कचन आचलिया, किरण फलोदिया, प्रीति मरोठी, सरला पारख व एक पुत्र श्री शिखर सचेती एव पुत्रवधु श्रीमती प्रमिलादेवी एव दो पौत्रिया हैं। सभी का जीवन सुसस्कारो से सुसज्जित है। सचेती परिवार के कडूर मे दो प्रतिष्ठान हैं—पवन मोटर्स, बी एच रोड, कडूर - 577548 (कर्नाटक), श्री बालाजी हार्डवेयर्स इलैक्ट्रिकल्स के एम रोड, कडूर (कर्नाटक), फोन - 21910 (निवास)।

ऐसे सुसस्कारी परिवार के अर्थ सहयोग से महासतीश्री ललिताश्रीजी म सा की यह पुस्तक प्रकाशित करते हुए हमे हर्ष हो रहा है।

—जयचन्दलाल सुखानी

प्रकाशकीय

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी आचार्यश्री नानेश ने साधुमार्गी धर्मसघ के उपवन मे शिक्षा का जो पौधा रोपा वह आज सुखद छाया के साथ शीतल समीर एव सुमधुर फल भी प्रदान करने लगा है। प्रशातमना परमागम रहस्य ज्ञाता आचार्यश्री रामलालजी म सा के कुशल प्रबधन में सघ उपवन मे नित नये सुमन खिल रहे है। विदुषी महासतीश्री ललिताश्रीजी म सा के विचार–पराग को अपने मे समेटे "तूॅ ही बाती तूॅ ही जोत" पुष्प उसी की निष्पत्ति है।

महासतीश्री ललिताश्रीजी म सा विदुषी, ओजस्वी प्रवचनकर्त्री एव गभीर चिन्तिका साध्वी है। विद्वार्य, ओजस्वी वक्ता श्री ज्ञानमुनिजी म सा की आप ससारपक्षीय अग्रजा है। आपके विचारो की इस प्रथम पुस्तक को प्रकाशित कर सघ गौरव का अनुभव करता है।

संघ के राष्ट्रीय महामत्री श्री धनराजजी बेताला ने पुस्तक का आद्योपान्त निरीक्षण किया।

पुस्तक प्रकाशन मे श्री भवरलालजी सचेती, देशनोक का अर्थ सोजन्य प्राप्त हुआ। तदर्थ सघ श्री भवरलालजी सचेती का आभारी है। आशा है, भविष्य मे भी आपका इसी प्रकार सहयोग मिलता रहेगा।

परमात्म प्राप्ति की यात्रा मे अग्रसर मुमुक्षुओ के लिए यह पुस्तक पाथेय का काम करेगी, ऐसा विश्वास है।

शान्तिलाल सांड
सयोजक
साहित्य प्रकाशन समति
श्री अ भा साधुमार्गी जन राघ
समता भवन, बीकानेर (राज)

सूक्ति-क्रम

तूँ ही बाती - तूँ ही जोत

अप्पा सो परमप्पा

अर्थात् आत्मा ही परमात्मा है।

सर्वसाधारण लोगो की धारणा है कि परमात्मा बहुत दूर रहते है। किन्तु ऐसी बात नहीं है। परमात्मा आपके बिल्कुल पास ही है। आपके अन्तर मे ही है। पर यह समझ नही पा रहे है। इसलिए भगवान महावीर ने कहा "अप्पा सो परमप्पा"। जिस प्रकार बीज ही वृक्ष है, दूध ही घी है उसी प्रकार आत्मा ही परमात्मा है। गुरु नानक ने कहा है—

काहे रे वन खोजन जाई,
पुष्प मध्य ज्यो बास बसत है, मुकुर मॉह जश छाई,
तेसे ही हर बसे निरन्तर, घट ही खोजो भाई।।
बाहर भीतर एकै जानो, यह गुरु ज्ञान बतायी,
जन नानक बिन आपा चिन्हे, मिटे न भ्रम की काई।।

अर्थात् हे मानव ! तू परमात्मा को मन्दिर, मस्जिद कहॉ—कहॉ खोज रहा है ? किन्तु वह शुद्ध निर्लेप परमात्मा तो तेरे ही अन्दर विराजमान है। शुद्ध स्वरूप वाली आत्मा तेरे सग रहकर ससार मे ही घूम रही है। जिस प्रकार पुष्प मे सुगध रहती है वैसे ही आत्मा मे परमात्मा विराजमान है। उसे पाने के लिए कही बाहर घूमने की आवश्यकता नहीं है। भीतर ही उसे खोजना है। जब तक अप्पा सो परमप्पा का ज्ञान नही होगा, तब तक भ्रम की स्थिति नहीं मिट सकती है।

बीज मे से वृक्ष को प्राप्त करने के लिए बीज को पहले पृथ्वी मे रहकर तपना होता है तथा अनुकूल सयोग प्राप्त होने पर पृथ्वी मे से अकुर के रूप मे बाहर निकलता है, निरन्तर गति करता हुआ पौधे का रूप धारण करता है। गरमी—सर्दी, बरसात आदि अनुकूल—प्रतिकूल हर तरह के सयोगो को सहन करता हुआ निरन्तर आगे बढता है और एक दिन वटवृक्ष का रूप धारण कर लेता है। जिसकी छॉव मे अनेको राहगीर विश्राम प्राप्त करते हैं, अपनी थकान व घबराहट का निवारण करते है। उसी प्रकार आत्मा रूपी छोटे—से बीज मे परमात्मा रूपी वटवृक्ष बनने की अनत शक्ति विद्यमान है। आवश्यकता है—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप की आराधनापूर्वक आत्मा को गति देने की। मान

लीजिए सडक के किनारे किसी ने वटवृक्ष का बीज वपन कर दिया है किन्तु सयोगवश रात्रि मे तूफान आया और पास मे एक जर्जर हुआ मकान खडा था। वह मकान तूफान के कारण उस बीज के ऊपर ही गिरा। इधर वर्षा भी हो रही है। अत खाद्य पदार्थ, पानी का सिचन, अनुकूल वायु आदि सारे सयोग बीज को विकसित होने के लिये मिल रहे है पर वह बीज विकसित नही हो सकता है। क्योकि उस पर अति मात्रा मे मलबा पडा है। वह वटवृक्ष का बीज यद्यपि छोटा होता है किन्तु आत्मारूपी बीज और भी छोटा होता है। वटवृक्ष का बीज तो इन चर्म–चक्षुओ से दिखाई भी देता है। पर चैतन्यरूपी बीज तो वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श से रहित होता है। अत दिखता ही नही है। वटवृक्ष के बीज का सदुपयोग यानी उसका वपन उस बीज का विज्ञाता किसान ही कर सकता है। उसी प्रकार चैतन्य आत्मा का विकास "अप्पा सो परमप्पा" को सही अर्थो मे जानने वाला ही कर सकता है और वही उस बीज पर अनादिकाल से पडे हुए कार्मण पुद्‌गलो के मलबे को दूर करने हेतु गति कर सकता है। अगर आध्यात्मिक साधना के साथ गति निरन्तर होती रही तो आत्मा परमात्मा के रूप मे अवश्य प्रकट हो सकती है। कहा भी है–

सिद्धा जैसो जीव है, जीव सोही सिद्ध होय,
कर्म-मैल का आतरा, बूझे विरला कोय।।

एक बार एक महात्मा आत्मा–परमात्मा पर प्रवचन कर रहे थे। उस प्रवचन सभा मे से एक युवक खडा हुआ और बोलने लगा कि महात्मन् आप आत्मा–परमात्मा की बाते कर रहे है किन्तु किसने देखा परमात्मा? अगर आप प्रत्यक्ष मे मुझे दर्शन करवादे तो मैं मानने के लिए तैयार हूँ। महात्मा– हॉ भाई, अभी थोडा थका हुआ हूँ। पहले एक गिलास दूध लादो, फिर मै उत्तर बताता हूँ। युवक तुरन्त एक गिलास दूध ले आया। महात्मा हाथ मे दूध का गिलास लेकर उसमे गहराई से देखने लगा। युवक महात्मा की उस प्रक्रिया को देखकर परेशान होने लगा और कहा–महात्मन् ! आप क्या देख रहे हैं ? मेरे पास ज्यादा समय नही है। आप शीघ्र उत्तर दीजिए। महात्मा–मे तुम्हारे प्रश्न का ही उत्तर दे रहा हूँ। युवक–वह कैसे ? मै दूध को बराबर छानकर लाया हूँ। आप शका मत कीजिए। महात्मा–मै दूध मे कीडी, कचरा आदि कुछ भी नही देख रहा हूँ। मै तो यह देख रहा हूँ कि इस दूध मे घी कहाँ है ? क्योकि सभी जने कहते हैं कि दूध मे घी होता है पर वह मुझे दिखाई नहीं दे रहा है। युवक कुछ हॅसते हुये–महात्मन् दूध मे घी होता अवश्य है पर ऐसे थोडे ही दिखता है। महात्मा–दूध मे घी होता भी है और दिखता भी नहीं तो फिर प्राप्त कैसे होगा ? युवक– महात्मन् आप इतनी–सी बात भी नहीं जानते हो! पहले दूध को गर्म करना होता है, फिर उसको जमाना होता हे। उसके बाद बिलौना करना होता है। फिर मक्खन निकालना होता हे। फिर मक्खन को

तपाना होता है तभी वह मक्खन घी–रूप मे परिवर्तित होता है। महात्मा–यही तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है। युवक–महात्मन् ! वह उत्तर कैसे हुआ ? मै नही समझा। महात्मा–दूध, दही, छाछ, मक्खन, घी आदि की प्रक्रियावत् आत्मसाधना व सहनशीलता आदि के माध्यम से पहले मन को तपाना होता है। उसके बाद सही सोच के माध्यम से उस मन की चचलता को समाप्त कर प्रभु–ध्यान मे जमाना होता है। उसके बाद उसे चारित्र की अनुपालना से बिलोकर मक्खन निकालना होता है। फिर तप के माध्यम से मक्खन को तपाना होता है तभी घी–रूप परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है।

जिस प्रकार दूध मे से घी प्राप्त करने के लिए एक प्रक्रिया से गुजरना होता है। उसी प्रकार आत्मा को परमात्म रूप प्राप्त करवाने आत्मसाधना की प्रक्रिया से गुजरना पडता है। वह प्रक्रिया है– पहले आत्मिक ज्ञान प्राप्त करना, फिर श्रद्धा करना। फिर चारित्र का अनुपालन करना। वास्तव मे आत्मा ही परमात्मा है, पुरुष ही परमेश्वर है, जीव ही शिव है, जन ही जिन है, भक्त ही भगवान है, नर ही नारायण है। बस, उस प्रक्रिया द्वारा प्रकट करने की आवश्यकता है। शिल्पकार साधारण आडे–टेढे–तिरछे पत्थर को काटकर देवमूर्ति का निर्माण कर देता है, जो सर्वसाधारण के लिए पूजनीय बन जाती है। उसी प्रकार आत्मा को परमात्मा बनाने हेतु मोह, राग–द्वेष, कषाय आदि अनावश्यक दुर्गुणो को काटना, छॉटना होता है। तब आत्मा मे से परमात्मस्वरूप प्रकट हो जाता है। श्री ठाणाग सूत्र के पहले ठाणे मे कहा है– एगे आया। अर्थात् आत्मा एक है। अगर आत्मा–परमात्मा अलग–अलग होते तो "एगे आया" सूत्र सार्थक नहीं होता। दुनिया मे अनेक आत्मा होते हुए भी सभी आत्माओ के मौलिक स्वरूप मे कोई अन्तर नही है। वह आत्मा शरीर, इन्द्रियो व मन से पृथक् है। कुछ लोग आत्मा को परमात्मा या ईश्वर का अश कहते है। परन्तु वह किसी का अश नहीं है। किसी परमात्मा का स्फुलिग नही है। वह तो स्वयपूर्ण विशुद्ध परमात्मा रूप है। आज वह विवश है, लाचार है, मोह–माया के कारण बेभान बनी हुई है। अगर उन्हे छिन्न–भिन्न कर अलग कर देगा तो वह आत्मा अपने पूर्ण परमात्मस्वरूप मे चमक उठेगा। अनत प्रकाश आत्मा मे प्रकट हो उठेगा।

आज व्यक्ति परमात्मा के दर्शन करना चाहता है पर स्वय परमात्मा नहीं बनना चाहता। किन्तु मै आपसे पूछूँ कि राजा के दर्शन करने मे ज्यादा आनन्द है या स्वय राजा बनने मे ज्यादा आनन्द है ? उसी प्रकार परमात्मा के दर्शन की इच्छा रखने मात्र मे आनद नहीं है। स्वय परमात्मा बनने मे अति आनद है और वह परमात्मा कहीं दूर नही है। अपने ही भीतर है। सिर्फ उसे प्रकट करने की आवश्यकता है। आत्मा मे अनत शक्ति विद्यमान है। वह चाहे तो सम्पूर्ण लोक को गेद की तरह से अपने हाथ मे उठा सकता है।

आत्मा की शक्ति परमात्मा की शक्ति से जरा भी कम नहीं है। जैसे परमात्मा अपने–आप मे पूर्ण है, उन्हे किसी के सहारे की अपेक्षा नही रहती, वैसे ही आत्मा भी अपने–आप मे पूर्ण है। उसे भी बाहरी पदार्थो की अपेक्षा नही है। फिर भी बाहरी पुद्गलो की जकडन मे जकड कर अपने अस्तित्व को विस्मृत कर रही है और जिस आत्मा मे परमात्मा बनने की शक्ति रही हुई है, उस आत्मा को इस ससार मे पुन –पुन शरीर धारण करना पडे व एक स्थान से दूसरे स्थान पर व दूसरे स्थान से तीसरे स्थान पर जाना पडे, बार–बार शरीर रूपी झोपडियाँ खाली करनी पडे, जन्म–मरण के दु खो से दु खित होना पडे व पुन –पुन ऑसू निकालना पडे, यह ठीक नही है। आप उस शक्तिशाली आत्मा की कद्र करिए और बाहरी पुद्गलो को श्रुत, चारित्र रूपी गेती और फावडे से दूर कर दीजिये ताकि आत्मा अपने शुद्ध परमात्मस्वरूप को प्राप्त कर सके।



स्व पर कंट्रोल, पर को मत टॅटोल

अप्पाण मेव जुज्झाहि

अर्थात् अपने आप से युद्ध करो।

अनादिकाल से मानव पॉच इन्द्रिय, मन व चार कषाय आदि के वशीभूत होकर राग–द्वेष की वृत्ति को बढाते हुए शत्रु–पक्ष के साथ युद्ध करता हुआ चतुर्गति ससार मे परिभ्रमण कर रहा है। युद्ध करना मानव का एक स्वभाव ही बन गया है। अपनी अनुकूलताओ मे, अपने स्वार्थ मे जरा–सी भी कभी कमी पड जावे तो सघर्ष करने से नही चूकता। आज लडाइयॉ हर समाज व परिवार मे चल रही हैं। हर राष्ट्र युद्ध करने को आतुर बैठा है इसीलिए तो एटम बम आदि के निर्माण कर चुके है। युद्ध मानव की अन्तरग मनोवृत्ति तक उतर चुका है।

वैसे प्रत्येक मानव शान्तिप्रिय है। युद्धप्रिय नही है। किन्तु जैसे ही अपने अभिमान पर जरा–सी चोट लगती है या जरा–सी स्वार्थ मे बाधा पडती है तो मानव की अनादिकाल से पडी हुई वृत्तियॉ जाग्रत हो जाती हैं। सत्य–असत्य का चितन किए बिना ही लडाई को तैयार हो जाते हैं। किसी के यहा कोई फक्शन है, सबंधी जनो को निमत्रित किया। अगर वे समय पर नहीं आये तो मन को वैमनस्य से युक्त बना लेते है। उस सबधी के मिलने पर ताना मारना प्रारभ कर देते है। युद्ध की भूमिका तैयार कर लेते है। फिर युद्ध होने मे देर नही लगती। पर वे यह नहीं सोचते कि सामने वाले व्यक्ति के स्वास्थ्य आदि का कारण हो सकता है या सामने वाला व्यक्ति भी परिवार को लेके बैठा है, उसके भी कोई समस्या आ सकती है। इस प्रकार सचाई पर ध्यान दिए बिना ही युद्ध करने को तत्पर हो जाता है।

कितनी ही लडाइयॉ मिथ्या भ्रम के कारण भी हो जाती है। जिस समय शीशे का प्रचलन नही था, उस समय की बात है कि एक व्यक्ति को रास्ते मे चलते हुए कॉच का एक टुकडा मिल गया। उसने उसको उठाके देखा तो उसमे फोटू दिख रहा था। उसने मन ही मन मे कहा–अरे! यह फोटू तो मेरे पिताजी का है। वह उसे प्राप्त करके बडा खुश होता है। घर पर पहुँच कर अपने ट्रक मे रख देता है। प्रतिदिन ऑफिस जाने से पूर्व ट्रक खोलकर कॉच मे फोटू देखकर खुश होता। उसे प्रतिदिन ऐसा करते देखकर उसकी पत्नी

को जिज्ञासा हुई और उसके जाने के पश्चात ट्रक खोलकर कॉच के टुकडे को देखा तो उसमे महिला का फोटू नजर आया। उसे देखते ही वह क्रोधित होकर बडबडाने लग गई कि मेरे पति यह किस चुडैल का फोटू हमेशा देखते है। लगता है, इन्होने एक औरत और रख रखी है। घर पर पतिदेव के आते ही लडाई प्रारभ हो गई। उसके पति ने कहा–आखिर, बात क्या है? साफ–साफ बताओ। तब उसने वह कॉच का टुकडा लाके बताया कि देखो यह फोटू जिसको हमेशा पूजते हो? उसने कहा– यह तो मेरे पिता की फोटू है। पत्नी–मेरे को मूर्ख बना रहे हो। यह औरत का फोटू है न कि किसी आदमी का। पति–पत्नी दोनो अपनी बात तानते रहे। सुबह एक पादरी घर पर आया। उसके सामने दोनो ने अपनी–अपनी बात रखी। पादरी ने कहा– लाओ, मुझे वह फोटू दिखाओ। पादरी ने उस कॉच के टुकडे को देखा और बहुत खुशी के साथ बोले कि यह तो मेरे गुरु का फोटू है। यह फोटू तो मै लेकर के जाऊँगा। यह कहते हुए उसने फोटू को एक कपडे मे लपेट लिया। और वे पति–पत्नी आश्चर्यचकित होकर देखते ही रह गए। पादरी उस फोटू को लेकर चला गया। इस प्रकार सच्चाई तक नही पहुँचने से लडाइयॉ हो जाती है और मानव बेकार की लडाइयो से दु खी हो जाता है।

अत भगवान ने फरमाया है कि सहस्रो सहस्र योद्धाओ को जीतने से भी एक अपनी आत्मा को जीतना श्रेष्ठ विजय है। क्योकि उसके बाद फिर किसी पर विजय प्राप्त करना बाकी नहीं रह जाता है। बाहरी युद्धो मे विजय प्राप्त होने पर भी वह विजय स्थाई नही होती है अपितु और ज्यादा दुश्मनी बढ जाती है। साथ ही अनेक समस्याऍ पैदा हो जाती है जिनको सुलझाने मे वर्षो पूरे हो जाते है। एक स्थान पर बम्ब पड जावे तो कई कोसो तक की जमीन ऊसर बन जाती है। वर्षो तक उस जमीन पर अन्न का दाना नहीं उग सकता तथा बाहरी विजय स्थाई विजय भी नहीं होती है। जब उसके सामने उससे भी अधिक शक्तिशाली अन्य राजा आ जावे तो वह उससे हार जाता है या फिर मृत्यु को ही प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार बाहरी युद्ध किसी भी तरह से ठीक नही है। किन्तु जिसने एक अपनी आत्मा पर विजय प्राप्त कर ली है, उसके दुनिया मे कोई शत्रु अवशेष नहीं रहते। उनके लिए कोई समस्यॉ शेष नही रहती। इसीलिए भगवान ने फरमाया है–

अप्पाण मेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण वज्झओ,
अप्पणा चेव अप्पाणं, जइत्ता सुह मेहए।।

अर्थात् आत्मा के साथ ही युद्ध करना चाहिये, बाहर के युद्ध से तुम्हे क्या लाभ है? केवल अपनी आत्मा के द्वारा अपनी आत्मा को जीतने से सुख प्राप्त होता है। स्वय के द्वारा स्वय से युद्ध करना कैसे सभव हो सकता है? कहा जाता है कि दो बर्तन होते हैं तभी वे बजते हैं। अकेला वर्तन नहीं वजता। दो

हाथो से ही ताली बजती है, एक हाथ से नहीं। युद्ध भी दो पक्षो मे ही होता है। किन्तु भगवान ने स्वय के द्वारा स्वय से युद्ध करने का फरमाया है। तो युद्ध किससे करे? इस हेतु उत्तराध्ययन सूत्र मे फरमाया है–

पचिंदियाणी कोह, माण, माय तहेव लोह च

अर्थात पॉच इन्द्रियॉ, क्रोध, मान, माया और लोभ, मन–इनको जीतना ही आत्मविजय है और जिसने आत्मा को जीत लिया है, उसने सभी को जीत लिया है। अपने आपको जीतना मुश्किल है। जैसे सयति–वर्ग दीक्षा लेते ही इन्द्रियो व मन पर कन्ट्रोल करते है, गरमी, सर्दी, भूख, प्यास आदि सभी प्रतिकूल वातावरण से युद्ध करते है, अपनी इच्छाओ से युद्ध करते है और सयम साधना के माध्यम से उन्हे पराजित करते है।

जब व्यक्ति को किसी निमित्त विशेष से क्रोध आ जावे तो चिन्तन करना चाहिए कि चडकोशिक सर्प के जीव ने साधु अवस्था मे क्रोध करके अधोगति की और भयकर विष से युक्त सर्प योनि मे पैदा हो गया। अत ज्ञानपूर्वक क्रोध का शमन करना चाहिए। जब व्यक्ति की आत्मा मान कषाय मे प्रवृत्त होती है उस समय बाहुबलि को चिन्तन मे ले लेना चाहिए कि बाहुबलि जैसे उत्कृष्ट साधक के भी एक थोडे–से मान के पीछे केवलज्ञान अटक गया तो फिर हमारा क्या होगा? सच्चाई को अपनाते हुए अहकार रूपी दुश्मन को पराजित किया जाए। माया शत्रु को गले लगाने से मल्लीनाथ भगवान को स्त्री लिङ्ग मे आना पडा। टेढे–मेढे जीवन मे जीने वाला मायावी व्यक्ति टेढी–मेढी गति, तिर्यच–पशु गति मे जाता है। यह सभी चिन्तन करते हुए माया शत्रु से युद्ध करना चाहिए। लोभ तो पाप का बाप कहा गया है। यह परम शत्रु है जो कि ग्यारहवे गुणस्थान पर चढी हुई आत्मा को भी वापस नीचे गिरा देता है। अत लोभ शत्रु को भी ज्ञान से परास्त कर देना चाहिए। अर्थात् कषाय आत्मा के समक्ष ज्ञान आत्मा को खडी कर देनी चाहिए। दोनो मे से ज्ञान आत्मा प्रबल होती है। अत सम्यक् ज्ञान आत्मा के समक्ष कषाय आत्मा के ठहरने की हिम्मत नही होती है। जैसे चक्रवर्ती के समक्ष छोटे–मोटे राजा स्वत ही समर्पण कर देते है, वैसे ही ज्ञान आत्मा के समक्ष कषाय आत्मा टिक ही नहीं पाती है। इसी प्रकार पॉच इन्द्रियो व मन के द्वारा हो रही दृढ प्रवृत्ति को भी ज्ञान व चारित्र आत्मा के माध्यम से रोकना चाहिए। अगर आत्मा मे मिथ्यात्व आ रहा है तो उसके समक्ष दर्शन आत्मा को खडी कर देना चाहिए ताकि मिथ्यात्व शत्रु स्वत ही भाग जायेगा। पॉच इन्द्रियो व मन पर कन्ट्रोल कैसे करे? इस विषय मे एक कहानी प्रचलित है।

एक राजा के मन मे विचार आया कि बकरे–बकरी हर समय चरते ही रहते है। खाद्य पदार्थ सामने आने पर वे चुप नहीं रहते, खाते ही खाते हैं। अत राजा ने घोषणा करवाई कि जो भी व्यक्ति बकरे को इस प्रकार से

प्रशिक्षित कर दे कि सामने हरा चारा वगैरह खाद्य सामग्री आने पर भी उसमे मुँह नही देवे तो उस व्यक्ति को पुरस्कृत किया जाएगा। पुरस्कार का नाम सुनकर सभी उस कार्य को करने हेतु तैयार हुए। एक व्यक्ति ने बकरे को बहुत खिलाया। निरन्तर इतना खिलाया कि कल्पना भी नहीं कर सकते कि यह अब और खाएगा। खिला–पिला कर उसी समय राजा के पास ले गया। राजा ने उस लाये गए बकरे के समक्ष हरी घास डलवायी। बकरा उसे देखते ही खाना शुरू कर देता है। इसी प्रकार अनेक व्यक्ति बकरे को ले–लेकर आए पर परीक्षा मे सफल नही हुए। आखिर एक व्यक्ति ने कहा– मै पॉच दिन बाद एक बकरे को लाऊँगा। वह बकरे को लेकर जगल मे गया। जैसे ही वह कुछ भी खाने लगता, ऊपर से डडा पडता। बकरा खाना छोड देता। थोडी देर बाद जैसे ही फिर दूसरी जगह मुह डालता, फिर लकडी की बकरे पर पडती। इस प्रकार अनेको बार प्रयोग किया। पॉच दिन के निरन्तर प्रयोग के बाद वह उस बकरे को लेकर राजा के पास पहुँचा। राजा ने वही हरा–हरा चारा डलवाया। किन्तु बकरा खाने को तैयार नही क्योकि उसके दिमाग मे वह बात गहराई से उतर चुकी थी कि चारे मे मुह डालने का मतलब ही डडे की मार खाना है। अत वह चुपचाप खडा ही रहा। राजा ने उसे पुरस्कार दिया। जब मार के बल पर बकरे जैसे प्राणी का खाना भी छूट सकता है तो फिर मनुष्य जैसा बुद्धिमान प्राणी तो हर आदत को छोड ही सकता है पर उन वृत्तियो पर अकुश लगाना होगा। पुन–पुन सयम के डडे उन पर लगाने होगे। कषाय आत्मा व दुष्प्रवृत्ति करती हुई योग आत्मा के समक्ष ज्ञान, दर्शन, चारित्र आत्मा को खडा करना होगा। प्रबल योद्धा के समक्ष निर्बल योद्धा परास्त होता ही है। इस प्रकार अपने–आपसे युद्ध करके विजय प्राप्त करने वाला स्थाई विजय प्राप्त कर लेता है। सदा–सदा के लिए कर्म शत्रुओ से मुक्त हो जाता है।

जब तक मानव अपने पर विजय प्राप्त नही कर लेता है तब तक किसी भी देश पर विजय प्राप्त कर लेवे, छह खड का राज्य प्राप्त कर लेवे, फिर भी पराजयी ही रहेगा। अत अपने–आप ही, अपने–आप के द्वारा अपने–आप का दमन करना ही अच्छा है। बनिस्बत कि अन्य लोग आपको अपनी वृत्तियो के लिए वध–बधन रूप सजा देवे। जैसे किसी व्यक्ति को धक्का देकर बाहर निकाले उससे तो अच्छा वह स्वय ही बाहर निकल जाये। इसी प्रकार कर्मो के वशीभूत होकर आत्मा अपने आप पर परेशानी मोल लेवे इससे तो अच्छा है कि स्वय से स्वय के द्वारा युद्ध करके कर्मो की परवशता से हमेशा–हमेशा के लिए मुक्त ही हो जावे।



निज से निज का दोस्ताना

स्वय के मित्र स्वयं बनो

पुरिसा! तुममेव तुमं मित किं बहिया मित्त मिच्छसि (आचा 3–3)

अर्थात् हे जीव तू स्वय ही तेरा मित्र है। बाहर के मित्र की इच्छा क्यो करता है? आत्मा अनन्त शक्ति का पुज होते हुए भी अपने–आपको पहचान नहीं पा रहा है। वह अपने–आपको निर्बल समझ रहा है। अत वह दुनिया मे कभी परिवार का सहारा ले रहा है, तो कभी धन का सहारा ले रहा है, तो कभी पद–प्रतिष्ठा का सहारा ले रहा है। अत भगवान ने सुषुप्त शक्तिशाली सिह रूपी आत्मा को जगाने हेतु उद्घोष किया है– पुरिसा! तुममेव तुम मित कि बहिया मित्त मिच्छसि– हे पुरुष तुम बाहर के सहारे की अर्थात् मदद की अपेक्षा मत करो क्योकि तुम स्वय ही अनन्त शक्ति के धारक हो। तुम्हे जो–कुछ चाहिए, जिस लक्ष्य को तुम प्राप्त करना चाहते हो, वह सब–कुछ तुम्हे अपने अन्दर से प्राप्त होगा। वह अक्षय सुख का खजाना तेरे अन्तरग मे ही भरा हुआ है। उसके स्वामी तुम स्वय ही हो। उसे बाहर ढूँढने की आवश्यकता नहीं है। जब तुम्हारी आत्मा से बाहर कुछ है ही नहीं, तो दूसरे तुम्हे देगे भी क्या? तू स्वय अपने अन्दर देख– तुझे अनत सुख दिखाई देगा।

भगवान महावीर ने स्पष्ट शब्दो मे फरमाया है– तू ही तेरा मित्र है। इतना स्पष्ट होते हुए भी व्यक्ति बाहर के मित्रो की अपेक्षा करता है। आज के व्यक्ति की सोच है कि जिन्दगी मे मित्रता से बढकर सुख नहीं है। चाहे स्वय के पास सब–कुछ हो, किन्तु मित्रो के बिना जीना पसन्द नही होता। वह अपने परिवार से भी बढकर अपने मित्र को समझता है। वह मित्र को जीवन की आधी मिठास मानता है। किन्तु ससार मे ज्यादातर मित्र स्वार्थ के ही होते है। परमार्थ तो सपने मे भी दिखाई नहीं देता है। मिठाई और चूरमा खाने वाले तथा मीठी–मीठी बाते बनाने वाले मित्र तो बहुत मिलेगे। गुड की डली पर मक्खिया स्वत ही चली आती है, उन्हे बुलाने की आवश्यकता नहीं पडती। उसी प्रकार धनवानो के मित्र स्वत ही अनेको बन जाते है पर निर्धनता व दुख के समय सब दूर भाग जाते है। हजरत अली ने कहा है–

"नीचो को जब तक कुछ मिलता–जुलता रहता है तब तक वे मित्र बने

रहते है और जब तू उनको कुछ न देगा, तब उनका विष तेरे लिए घातक बन जाएगा।" वास्तव मे जिस समय व्यक्ति को अपना भाग्य धोखा दे बैठता है, उस समय सगे–सबधी, मित्र आदि सभी दूर भाग जाते है। दुनियावी लोगो से भलाई की अपेक्षा रखना बेकार है। इसीलिए भगवान ने फरमाया है कि अपने मित्र स्वय बनो, ताकि कभी धोखा खाने की स्थिति ही नहीं आवे। मानव सुख की प्राप्ति हेतु कभी शरीर को मित्र बनाता है, कभी परिवार को मित्र बनाता है, कभी धन को मित्र बनाता है। किन्तु ये सारे मित्र धोखा देने वाले है। वह शरीर की चौबीस घन्टे परवरिश करता है। सर्दी, गरमी आदि हर मौसम मे शरीर की अनुकूलताओ का ध्यान रखता है। शरीर को ताकतवर बनाए रखने के लिए कई तरह की ऊँची रासायनिक दवाइयॉ लेता रहता है। फिर भी वह शरीर निरन्तर धोखा देता हुआ चला जाता है। कभी काले बाल सफेद हो जाते है, तो कभी दॉत ढीले हो जाते है। कभी ऑखो से दीखना कम हो जाता है, तो कभी कानो से सुनना कम हो जाता है। कभी अचानक ही शरीर मे कैन्सर की गठान उठ जाती है, तो कभी शरीरगत हार्ट की मशीन काम करना बन्द कर देती है। इस प्रकार सबसे ज्यादा निकट का मित्र शरीर भी अचानक धोखा दे देता है।

व्यक्ति परिवार को भी अपना नजदीक का मित्र समझता है और निरन्तर परिवार का सहयोग करता रहता है। वह समझता है– माता–पिता मेरे है, पत्नी मेरी है, पुत्र–पुत्री मेरे है, किन्तु ये सभी एक सीमा तक सेवा आदि के माध्यम से सहयोग कर सकते है पर परभव साथ चलने के लिए कोई तैयार नही होता। परिवार वाले ज्यादा से ज्यादा श्मशान तक पहुँचा सकते है। पत्नी घर के द्वार तक पहुँचा सकती है। उसके बाद तो व्यक्ति को अकेले ही जाना पडता है। कोई–कोई व्यक्ति धन को ही अपना सच्चा मित्र समझते है और प्राणतुल्य उससे प्यार करते है। किन्तु धन भी पुण्यवानी के अनुसार ही सहयोग कर सकता है, नही तो वही धन दुश्मन बनकर व्यक्ति को मरवा भी सकता है। दुनिया मे ज्यादातर विपत्तियॉ सपत्ति के पीछे ही आती है। धनवानो के मनभावन एक कहावत है कि रूपडी पल्ले तो रोही मे ही चले। अर्थात् धन होगा तो सब काम हो जाएगा। परिवारवालो की भी कोई जरूरत नही है। धन का नशा मनुष्य को बेभान बना देता है। पर यह सही नही है। सही तो यही होगा कि पुण्यवानी पल्ले तो रोही मे ही चले। पुण्यवानी है तो व्यक्ति हर परिस्थिति मे से अपने आप बच जाता है। अत धन भी मित्रता नहीं निभा सकता।

वास्तव मे बाहरी मित्र कोई भी आत्मा के सच्चे मित्र हो नहीं सकते। आत्मा ही आत्मा का सच्चा मित्र हो सकती है। आत्मा हर बुरा कार्य करते हुए रोकती है। मानव चोरी कर रहा हे, अब्रह्म का सेवन कर रहा है, अन्याय

कर रहा है, किसी भी गलत काम के लिए प्रवृत्ति करने हेतु तैयारी कर रहा है तो आत्मा अन्दर से आवाज करती है– तुम यह गलत काम कर रहे हो। यह तुम्हारे लिए ठीक नहीं है। अत तुम ये काम मत करो। किन्तु बाहरी भौतिक चकाचौध से आकर्षित हुआ व्यक्ति आत्मा की आवाज को सुनकर भी अनसुनी कर देता है। अपने मन को समझा देता है कि झूठ, चोरी आदि किए बिना तो हमे कुछ प्राप्ति होगी ही नहीं। ससार मे तो सब–कुछ करना ही पडता है। पर जब आपत्ति मे फॅसता है, तब याद आती है– आत्मा की आवाज। मुझे उस समय आत्मा मना कर रही थी फिर भी मैने यह कुकृत्य कर लिया है। अत फलभोग करना पड रहा है।

एक गुरु ने अपने शिष्यो को पढाई करवाने के बाद परीक्षा लेनी चाही। परीक्षा हेतु तीनो के हाथ मे एक–एक कबूतर दिया और उनसे कहा कि जाओ, जहा तुम्हे कोई नही देखता हो, वहा पर कबूतर की गर्दन मरोडकर कबूतर को ले आओ। तीनो शिष्य वहॉ से उठे। एक शिष्य अतिशीघ्र बडे दरवाजे के पीछे गया। वहॉ उसे कोई नही दिख रहा था। अत उसने जल्दी से गर्दन मरोडी और गुरुजी के पास आ गया और बहुत खुश होने लगा कि मैने सबसे पहले गुरुजी की आज्ञा का पालन किया है। दूसरा शिष्य गाव से बहुत दूर एक गुफा मे गया। ध्यान से देखा कि कोई देख तो नही रहा है? उस समय उसने किसी को नहीं देखते हुए गर्दन मरोडी और गुरुजी के पास मरे कबूतर को ले आया। पर तीसरा शिष्य कई जगह पर गया– कबूतर मार न सका। वापस गुरुजी के पास आ गया और कहने लगा कि मेरे को ऐसा कोई स्थान मिला ही नहीं कि जहॉ कोई देखता न हो। गुरुजी ने कहा– ऐसा कैसे हो सकता है? कोई तो स्थान तुम्हे मिल ही सकता था। शिष्य ने कहा– गुरुजी, मै जहॉ भी गया वहॉ मेरी आत्मा तो मेरे द्वारा होने वाले कृत्य को देखती ही और आपके वे शब्द मेरे कानो मे गूँज रहे थे कि जहॉ कोई भी न देखे, वहॉ मारना। गुरुजी उसकी बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। वही शिष्य गुरुजी की परीक्षा मे पास हुआ। कहने का मतलब है– आत्मा हमेशा साथ मे रहती है। उसकी आवाज सुनकर काम किया जाए तो व्यक्ति हर क्षेत्र मे सफल हो सकता है। आत्मा हर क्षेत्र मे गति करने से पूर्व ही सावधान कर देती है। लोग ज्योतिषियो के पास घूमते फिरते हैं– मुझे यह काम करना या नहीं? जबकि आत्मा पहले ही बोल देती है, पर उसकी आवाज को नहीं सुनते। ज्योतिषी तो आपके मन को देखकर आपके अनुसार बोल देता है तो आप खुश हो जाते है। फिर भले पश्चात्ताप ही करना पडे। आत्मा हर बुरे काम से आपको रोकती है।

एक बार एक सेठ के पास मे एक गरीब, असहाय व्यक्ति पहुॅचा और कहने लगा– सेठजी, मेरी मॉ बीमार हो रही है। उसके इलाज के लिए पैसे

की जरूरत है। आप 100 रुपये दे दीजिए। सेठ ने कहा– भाई, अभी मेरी जेब मे रुपये नही है। नही तो मै तुम्हे अवश्य दे देता। जबकि सेठ की जेब मे पॉच हजार रुपए पडे थे। गरीब चला गया। सेठजी उठे। कार कही गई हुई थी। अत उस दिन ऑफिस जाने हेतु सिटीबस मे बैठे। थोडी देर बाद जेब पर हाथ गया जो जेब कट चुकी थी। सेठजी को बहुत दु ख होने लगा। उस गरीब को 100 रु भी नहीं दे सका जबकि मेरी आत्मा निरन्तर बोल रही थी कि यह व्यक्ति सच्चा है– बहुत गरीब है, दे–दो इसे रुपये, पर मै नही माना। मैने उसे भी नाराज किया और पैसा भी चला गया।

कोई–कोई मानव क्रोध, मान, माया आदि को अपना मित्र बनाके चलते है। कुछ काम नहीं हो रहा है तो सामने वाले पर हावी हो जाएँगे। काम होना ही होना है। कई लोग पारिवारिक लोगो से क्रोध के सहारे ही काम करवाते है। किन्तु वह क्रोध आपका मित्र नही, दुश्मन ही है। वह आपको दु खी बनाये बिना नही रहता। वास्तव मे तो क्षमा, सरलता, मृदुता, सतोष आदि ही सच्चे मित्र है जो कि हमेशा साथ निभाते है। आत्मा के निजी गुणो को प्रकट करिये, वे आपको सच्चा सुख दिलवाएँगे।

अगर आप अपनी आत्मा के साथ सुव्यवहार करे तो वह निश्चित सद्‌गति मे ले जायेगी। अगर आपने क्रोध आदि करके आत्मा के साथ दुर्व्यवहार किया तो वह आत्मा आपको दुर्गति के खड्डे मे गिरा देगी जहॉ से निकल पाना मुश्किल हो जायेगा। बाहरी मित्रो पर आप विश्वास मत कीजिए। अपनी आत्मा पर ही विश्वास करिए। वही आपका सच्चा मित्र है। वह आपको दुर्गति से अवश्य बचाएगा। तेरी आत्मा पर अनादिकाल से कर्मो का मलबा पडा है। उसे तुझे ही हटाना होगा, अन्य कोई भी नहीं हटाने आएगा। हम किसको रक्षक समझे? आज तो रक्षक भी भक्षक बने हुए है।

एक भाई दो लाख रुपयो से भरी अटेची लेकर खरीदी के लिए इन्दौर स्टेशन पर उतरा। वहॉ पर सात पुलिस वालो ने एक साथ उसे घेर लिया और पूछने लगे कि तुम्हारी अटेची मे कितने रुपए हैं? वह भाई बोला– दो लाख रुपए है। मै तो नौकर हूँ। रुपये मालिक के है। पुलिस ने कहा–इस अटेची को खोलो। हमे 25 हजार रुपये तो देने ही पडेगे। पुण्योदय था कि उस भाई को जरा–सा रास्ता दिखाई दिया और भाग गया। किन्तु जहॉ पुलिस ही भक्षक बन जाए तो अन्य लोग उसे कैसे बचा सकते है? अत इस ससार मे कोई मित्र तो दिखाई ही नहीं देता है। इस स्वार्थभरी दुनिया मे किसे मित्र बनाया जाए? अत प्रभु ने स्पष्ट ही फरमा दिया कि आत्मा ही आत्मा की मित्र है। सच्चा दोस्त वही है जो हर सकट के समय साथ निभाता है।

आत्मा अनत शक्तिमान है। तुम्हे अपने उत्थान के लिए किसी की अपेक्षा रखने की आवश्यकता नहीं है। उनकी शक्ति ही नहीं है कि वे तुम्हे ऊपर उठा

सके। तुम्हारा उत्थान तुम ही कर सकते हो। तुम अपनी इच्छानुसार अपने भाग्य को बना सकते हो। आत्मन् तुम ही तुम्हारे, तुम ही अपने–आपके स्रष्टा हो। बौद्ध धर्म के मान्य ग्रन्थ धम्मपद मे भी कहा है–

अत्ता हि अत्तनो नाथो, अत्ता हि अत्तनो गति,
तस्मा सजमयऽत्ताणं, अस्स भद्दं व वाणिजो।। (धम्मपद–380)

अर्थात् आत्मा ही स्वय अपनी स्वामी है और आत्मा के सिवा हमे तारने वाला दूसरा कोई नही है। इसलिए जिस प्रकार कोई व्यापारी अपने उत्तम घोडे का सयमन करता है, उसी प्रकार हमे अपना सयमन आप ही भली भॉति करना चाहिए।



जागृति की ओर - सुख की भोर

उट्ठिए नो पमायए (आ 5–2)

अर्थात् जो कर्तव्य पथ पर उठ खडा हुआ है, फिर प्रमाद नही करना चाहिए। अनत–अनत पुण्यवानी के बाद प्राप्त मनुष्य भव का सदुपयोग करने हेतु प्रभु ने सकेत फरमाया है। मानव जीवन बौद्धिक शक्ति का भडार है। वह कर्तव्याकर्तव्य को पहचान सकता है और कर्तव्य पथ पर चलने हेतु खडा होकर चलने मे भी समर्थ है। उस समर्थता को प्राप्त करके प्रमाद मत करो। जैसे किसी व्यक्ति ने अर्थोपार्जन की आशा लेकर नई दुकान खोली। उद्घाटन समारोह सपन्न किया। मालिक दुकान पर जाके बैठ गया किन्तु दुकान पर बैठकर भी सतर्क नहीं है। नीद ले रहा है। ऐसी स्थिति मे वह उठ करके भी प्रमादी है। स्कूटर पर पति–पत्नी बैठकर जा रहे है। मार्केट के मध्य मे से निकल रहे है पर स्कूटर चलाने वाले उस व्यक्ति का ध्यान इधर–उधर की दुकानो मे जा रहा है तो वह जरूर एक्सीडेट कर बैठेगा। अगर उसे किसी दुकान को खोजना है, देखना है तो स्कूटर से नीचे उतरकर भी देख सकता है, किसी से पूछ सकता है, किन्तु स्कूटर चलाने के साथ–साथ इधर–उधर देखना– यह चलने के बाद भी उसके जीवन का प्रमाद है।

वर्षो तक निर्धन पिता के पैसे खर्च करवाकर खूब पढा। डिग्रियॉ प्राप्त कर ली पर अब नौकरी पर जाना नही चाहता, ऐसा व्यक्ति प्रमादी है। वह जीवन मे सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। कहा भी जाता है– "जो रोजी–रोटी से मजाक करता है। वह अपनी बेटी से मजाक करता है।" अर्थात्– जैसे व्यक्ति अपनी बेटी से अश्लील मजाक नहीं करता है वैसे ही अपनी नौकरी से भी मजाक नहीं करना चाहिए। यानी नौकरी की उपेक्षा न करते हुए पूर्ण रूप से पुरुषार्थ करना चाहिए।

ठीक इसी प्रकार आत्मा को कर्मो से हल्की होने हेतु सुलभ साधन भी प्राप्त हैं किन्तु उन साधनो को प्रयोग मे लाकर जब तक पुरुषार्थ न किया जाए तब तक मनुष्य भव, आर्य क्षेत्र, जिनधर्म आदि को प्राप्त करने का भी कोई फायदा नही है। आपने कदाचित् सयम ग्रहण कर लिया पर उसके वाद भी आपने सयम–क्रियाओ मे पुरुषार्थ नहीं किया तो क्या मतलव रहा? आप प्रतिक्रमण करने बैठे है तो आप उसे पूरे मनोयोगपूर्वक कीजिए। विधिपूर्वक

जाग्रत अवस्था के साथ–साथ चितन को सिर्फ उसी मे जोडकर प्रतिक्रमण करेगे तो वह अप्रमाद के साथ किया गया प्रतिक्रमण भारी कर्मो की निर्जरा कराने वाला बनेगा। आप प्रतिलेखन करने बैठ रहे है तो उपयोगपूर्वक शास्त्रीय विधि के अनुसार किया गया पुरुषार्थ महान् लाभदायक होगा। आप स्वाध्याय कर रहे है तो अपना पूरा ध्यान उसी मे लगादे। शुद्धता के साथ चिन्तन–मननपूर्वक पढे। अगर आप रास्ते मे चल रहे है तो अपना पूरा ध्यान उसी ओर आना चाहिए। दशवैकालिक सूत्र मे आया है–

जयं चरे जय चिट्ठे, जयमासे जयं सए,
जय भुजतो भासतो, पावकम्म न बंधई

अर्थात् हे साधक! चलना, खडा होना, बैठना, सोना, खाना, बोलना–सभी क्रियाएँ प्रमादरहित, विवेकपूर्वक करने से कर्मबधन नहीं होता। इस प्रकार साधक को चाहिए कि जब आप सासारिक अवस्था से ऊपर उठ गये है, सयमी जीवन मे प्रवेश पा लिया है, तो फिर प्रमाद मत करो। ताकि जिस लक्ष्य से सयम लिया है, उस लक्ष्य को शीघ्र प्राप्त कर सको। आचाराग सूत्र मे कहा है–

अल कुसलस्स पमाएणं

अर्थात् बुद्धिमान साधक को अपनी साधना मे प्रमाद नहीं करना चाहिए। अगर आप तीर्थकर भगवतो के कथनानुसार साधना मे प्रवृत्ति करते है तो उसके लिए भगवती सूत्र के शतक 14/9 मे वर्णन आया है कि बारह मास तक दीक्षा पर्याय पालन करने वाला सर्वोच्च सर्वार्थसिद्ध विमान के सुखो से भी ज्यादा प्राप्त कर सकता है। योगशास्त्र मे भी लिखा है कि "वर्षा दुर्ध्व भवेत् सिद्धो नात्र कार्याविचारणा"– अगर कोई साधक पूरे दिन मे चार बार अर्थात् सूर्योदय के समय तीन घटे, मध्याह्न मे तीन घन्टे व सूर्यास्त के समय तीन घटे व अर्धरात्रि के समय तीन घटे– इस प्रकार एक दिन मे बारह घटे यदि साधना करे, यह क्रम एक वर्ष तक निरन्तर चलाता रहे तो उसे मनोवाछित सिद्धि प्राप्त हो जाती है। पर व्यक्ति ने धारणा ही दूसरी बना ली है। कहा है–

साधु कौन जो सोवे नहीं, रांड कौन जो रोवे नहीं।

अर्थात् साधु होने का मतलब ही यही है कि आराम से सोया जाए। किन्तु भगवान फरमाते हैं जब आपने अखड सुख की प्राप्ति का लक्ष्य बना ही लिया है और लक्ष्य के अनुरूप सयम पथ पर खडे भी हो गए तो आत्मसाधना, सयमी साधना को.मनोयोगपूर्वक अप्रमत्त अवस्था के साथ निरन्तर करते चले जाओ। बीच मे प्रमाद करना ठीक नहीं है। तुम अपनी समग्र संयमी क्रियाएँ मनोयोगपूर्वक, सत्पुरुषार्थपूर्वक करते हुए चले जाओ। बीच मे अपनी बुद्धि का प्रयोग मत करो कि प्रतिलेखन करने से क्या होगा? ध्यान करने से क्या होगा? इस प्रकार

सयम की उपेक्षा करने वाला, सयम मे प्रमाद करने वाला साधक वर्षो तक सयमी जीवन मे रहकर भी नरक–निगोद मे चला जाता है। इस प्रमाद के कारण चार ज्ञान के धारक व चौदह पूर्व के अध्येता भी नरक–निगोद मे चले जाते है। कहते है– सावधानी हटी, दुर्घटना घटी। जरा–सा प्रमाद भी खतरे से खाली नहीं होता है। यह प्रमाद व्यक्ति को आराधक से विराधक बना देता है। अत वैसे तो प्रमाद छठे गुणस्थान तक रहता है इसलिए साधु भी प्रमादी–अप्रमादी दोनो अवस्था मे रहते है। साधु एक दिन मे कितनी बार तो प्रमाद मे व कितनी ही बार अप्रमाद मे चला जाता है। परन्तु साधक को ज्यादा से ज्यादा अप्रमत्त अवस्था मे ही रमण करना चाहिए। इसके लिए सतत् जागरूक रहना आवश्यक है। नही तो भवसागर के किनारे पहुँचकर भी गोते खा जाता है।

भगवान् महावीर स्वामी के पास जो भी दीक्षित होने की भावना से पहुँचता था और अपनी भावना प्रकट करता था, भगवान यही फरमाते थे– "अहासुह देवाणुप्पिया! मा पडिबध करेह" अर्थात् हे देवानुप्रिय, जिसमे तुम्हे सुख मालूम पड रहा है, वैसा करो। इस श्रेष्ठ कार्य मे देरी मत करो। यानी भगवान ने बधनमुक्ति के कार्य मे प्रमाद करने हेतु बिल्कुल मना किया है। मनुष्य भव प्राप्त करके श्रेष्ठ जीवन जीना ही व्यक्ति के लिए ज्यादा सुखकर है।

एक सेठ के तीन बेटे थे। पिता को परावलम्बी जीवन पसन्द नहीं था। अत एक दिन अपने तीनो बेटो को अपने पास बुलाया और कहा–मैं तुम्हे एक एक हजार मुद्राएँ देता हूँ। तुम इन्हे लेकर परदेश मे जाओ और पुरुषार्थ करके कमाके लाओ। तुम्हें बारह वर्ष की अवधि दी जा रही है। बारह वर्ष पूरे होने पर ही तुम्हे वापस आना है और सारा हिसाब बताना है।

तीनो भाई अपने शहर से चले, काफी दिनो तक चलने के बाद एक शहर मे पहुँचे, तीनो ने उसी शहर मे रहकर व्यापार करने का निश्चय किया। बडे भाई ने सोचा– मेरे पास एक हजार मुद्राएँ है और मैं तो अकेला हूँ। बिना काम किए भी मेरा काम इन मुद्राओ से आराम से चल सकता है। बल्कि बारह वर्ष बाद इनमे से बच भी सकती है। अत मुझे चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। मैं तो आराम से रहूँगा। उसने एक कमरा किराए से लिया। अच्छा खाता–पीता व आराम से सोया रहता। खाली दिमाग व खाली समय मे गलत सगत मे पड जाने से जुआ खेलना, वेश्यागमन करना आदि कुव्यसनो मे पड गया। दूसरे भाई ने सोचा– मेरे पिताजी ने एक हजार मुद्राएँ दी हैं। मैं ऐसा करूँ कि काम भी न करना पडे और मुद्राएँ बची भी रहे। इस हेतु उसने अपनी मुद्राएँ ब्याज मे डाल दी। ब्याज से उसका काम आराम से चलने लगा। छोटा भाई पुरुषार्थी था। उसने उन हजार मुद्राओ से व्यापार करना प्रारभ किया। व्यापार के

साथ–साथ पुरुषार्थ भी पूरा था। पुरुषार्थी के लिए अथर्ववेद मे कहा भी है–

कृतं मे दक्षिणे हस्ते, जयो मे सव्य आहितः (अथर्ववेद–7/50/8)

अर्थात् कर्म पुरुषार्थ मेरे दाऍ हाथ मे है और विजय मेरे बाऍ हाथ मे है। कुछ वर्षो मे ही वह बहुत धन अर्जित कर चुका। निरन्तर पुरुषार्थ के कारण कुछ वर्षो मे ही वह उस शहर का प्रथम धनाढ्य सेठ बन गया। पिता के द्वारा कथित बात उसे याद आयी और बारह वर्ष पूरे होते–होते अपने गॉव मे जाने की तैयारी की। किन्तु समस्या सामने आयी कि दोनो भाइयो को कैसे खोजा जाए? इसके लिए उसने नवकार मन्त्र की रसोई की। उसमे एक भाई तो मिल गया, जिसने ब्याज पर पैसे दे रखे थे। अब दूसरे भाई की खोज के लिए एक–एक वर्ग को जिमाना प्रारभ किया। कभी ब्राह्मण वर्ग को तो कभी क्षत्रिय वर्ग को जिमाया। एक बार लकडहारे के परिवेष मे भाई दिखाई दिया। उसे तरकीब से अपने पास रुकवा लिया। उसे एकान्त मे ले जाकर पूछने लगा कि भाई, तुम्हारी यह दशा कैसे हुई? वह अपने भाइयो को पहचानकर रोने लग गया और बताया कि सट्टे आदि मे सारी सम्पत्ति खत्म हो गई थी। उसके बाद से लकडी बेचकर मै अपना जीवनयापन कर रहा था। दोनो भाइयो ने उसे अपने गॉव चलने हेतु कहा। वह तैयार हो गया।

तीनो भाई साथ–साथ मे अपने गॉव पहुॅचे। पिताजी ने पहले बडे बेटे से पूछा। बडा बेटा रोने लगा। रोते–रोते ही अपनी सारी कथा भी सुनाई। पिताजी ने कहा–ठीक है। दूसरे बेटे ने मूल राशि एक हजार मुद्राऍ सुरक्षित लौटा दीं। तीसरे बेटे ने अपनी दुकानो की बहियॉ पिताजी के हाथ मे पकडायी। पिताजी बहियो के पत्ते पलटकर देखने लगे। उनमे अपार सपत्ति का ब्यौरा लिखा पडा था। सेठ उसे देखकर बहुत खुश हुए। सेठ ने तीनों को बराबर राशि व्यापारार्थ दी थी। तीनो भाई व्यापारार्थ परदेश गये भी थे। किन्तु वहॉ जाकर दो भाई आलस्य मे पड गए। अत एक भाई ने तो मूल पॅूजी ही गमा दी व दूसरे भाई ने मूल पूजी सुरक्षित रखी किन्तु बढाया कुछ भी नहीं। तीसरे भाई के पुरुषार्थ ने कमाल कर दिया। अपने पिता के द्वारा प्रदत्त एक हजार मुद्रा के द्वारा व्यापार करके पिता से भी अधिक सपत्ति वाला बन गया। ठीक इसी प्रकार आप भी जब महान् आत्मिक वैभव को पाने के लिए खडे हो ही गये है तो अब प्रमाद मत करो। आगे–आगे बढते चले जाओ। इसलिए भगवान महावीर ने फरमाया है– "उट्ठिए नो पमायए।"

एक बार एक बहिन के मस्तक मे भयकर दर्द हुआ। उसने अपने बेटे को दवाई लाने हेतु मेडिकल स्टोर पर भेजा और कहा कि जल्दी से दवाई लेकर आओ। मेरा सिर फटा जा रहा है। मुझे एक सैकिण्ड भी सहन नहीं हो रहा है। बेटा भी दौडकर दवाई लेने घर से निकला किन्तु रास्ते मे एक बाजीगर खेल दिखा रहा था। उसकी नजर उधर पडी। खेल आकर्षक था। अत वह

बच्चा भी उस तरफ आकर्षित हो गया और देखने खडा हो गया उस खेल को। सोच रहा था– अभी जाता हूँ, अभी जाता हूँ, उसमे घटाभर निकल गया। इधर माँ परेशान हो गई। एक तो सिरदर्द का दु ख हैरान कर रहा है, दूसरा दर्द और हो गया कि बेटा, अभी तक आया नही, क्या हो गया? उसका कही एक्सीडेट तो नही हो गया है? किसी पडोसी को खोज करने भेजा तो वह तो खेल देख रहा था।

उसी प्रकार श्रावक व साधु जिस लक्ष्य को लेकर साधना मे प्रवृत्त हुए है, उसके बीच मे प्रमाद नही होना चाहिए। अगर प्रमाद किया तो बीच मे ही यानी ससार मे ही अटक जाओगे। ससार से पार नही हो पाओगे। आज मानव चाहता है मोक्ष जाना, किन्तु आज का आज नही। वह कहता है–कभी जाएँगे, ठहर के धर्म साधना करेगे, अभी बहुत जल्दी नहीं है। मद, विषय, कषाय, निन्दा, विकथा रूप प्रमाद आज ही कर लेगा किन्तु धर्माचरण कल पर छोड देगे। पर भगवान फरमाते है– प्रमाद मत करो। ब्राह्मण सहित्य मे भी कहा है–

कलिः सयानो भवति, संजिहानस्तु द्वापरः,
उत्तिष्ठस्त्रेता भवति, कृतं संपद्यते चरन्।।

अर्थात् सोया पडा रहने वाला (आलसी, निष्क्रिय) कलियुग है, निद्रा त्यागकर जग जाने वाला (आलस्य त्यागकर कर्तव्य का सकल्प करने वाला) द्वापर है, उठकर खडा होने वाला (कर्तव्य के लिए तैयार हो जाने वाला) त्रेता है और कर्तव्य के सघर्षपथ पर चल पडने वाला कृत युग है।

व्यावहारिक क्षेत्र मे भी देखिए–पिताजी घर मे बैठकर बहियो का काम कर रहे है। उन्हे प्यास लगी अत बेटे को पानी का गिलास लाने हेतु आवाज लगायी। पिताजी ने आवाज लगायी है अत पानी का गिलास ले जाना ही है। किन्तु तत्काल न ले जाकर अपना पूरा काम समेटकर 15 मिनट बाद ले जाकर देवे तो पिताजी उस पर खुश नहीं हो सकते। जब काम करना ही है तो फिर तुरन्त ही किया जाए ताकि स्वय व दूसरे–दोनो ही खुश रहे। जबकि होना यह चाहिए कि बेटा अपनी पढाई कर रहा है, कॉपी मे कुछ लिख रहा है, अगर उसने "रा" लिखा है और "म" अभी लिखना बाकी है, तो वह "रा" लिखकर ही उठ जावे, आगे "म" न लिखे। पहले बडो ने जो काम करने को कहा है, वह करे। इस प्रकार प्रमादरहित प्रवृत्ति करने से अपने–आपका आनद भी अधिक बढता है।

कहा भी है– "उतिष्ठत जागृत वरान्न निबोधत।" अर्थात् उठो, जागो और श्रेष्ठ कार्यो को जानो। गाँधीजी ने कहा है–

स्वतन्त्र रीति से आदर्श को पहचानकर चाहे जितना कठिन होने पर भी उसे पाने के लिए जी–तोड परिश्रम करने का नाम ही पुरुषार्थ है। जब आप

जानते है कि प्रमादरहित आत्मसाधना करने से मोक्ष की प्राप्ति शीघ्र हो सकती है, तो फिर प्रमादयुक्त मिलावटी साधना नहीं करे।

सामायिक तो ले ली और उसमे बाते कर रहे हैं भोजन सबधी, सगाई, शादी सबधी हर तरह की चर्चाएँ हो रही है। सामायिक के 32 दोष कौन से हैं? इसका खयाल ही नही है। पौषध मे प्रतिलेखन, प्रमार्जन बराबर नही कर रहे है। आलस्य मे समय बिता रहे है। प्रतिक्रमण करते समय प्रतिक्रमण के पाठ धडाधड बोलते जा रहे है– किन्तु बेहोशी के साथ, प्रमाद की मिलावट के साथ सारी क्रियाएँ कर रहे है। भगवान फरमाते है– तुम सामायिक, पौषध आदि साधना हेतु उठ तो गए हो, तो साथ मे प्रमाद भी छोड तो ताकि वह सामान्य साधना भी महान् फल देने वाली सिद्ध होगी।



पुरुषार्थ प्रखर - उन्नति के शिखर

पुरुषार्थ एव पुरुषस्य परम निधानम् (माघ कवि, शिशुपाल वध)

अर्थात् पुरुषार्थ ही पुरुष का परम खजाना है।

विश्व का प्रत्येक व्यक्ति अपने विकास, उत्थान की चाह रखता है। पर चाहने मात्र से किसी का विकास नही हो जाता। चाह होना और बात है और जीवन उन्नत होना और बात है। चाह करने मे कोई जोर नही पडता किन्तु अपनी चाह के अनुसार उचित पुरुषार्थ का होना आवश्यक है। पुरुषार्थी व्यक्ति ही इष्ट वस्तु की प्राप्ति मे सफल हो सकता है। क्योकि पुरुषार्थ ही पुरुष का परम खजाना है। कभी पुण्ययोग से इष्ट वस्तु प्राप्त भी हो जाए तो भी पुरुषार्थहीन व्यक्ति प्राप्त इष्ट वस्तु का बराबर उपभोग नही कर सकता है। जैसे किसी दातार व्यक्ति ने किसी पुरुषार्थहीन व्यक्ति को खाने के लिए भोजन व पहनने के वस्त्र दे भी दिए हो फिर भी मुँह मे कवल तोडके रखने, चबाने, गले उतारने आदि का व कपडे पहनने का पुरुषार्थ तो उसे स्वय को ही करना पडता है। रास्ते मे चलते हुए व्यक्ति को सोने का हार दिखाई दे रहा है किन्तु नीचे झुककर उठाने का पुरुषार्थ तो उसे स्वय को ही करना पडेगा। पुरुषार्थहीन व्यक्ति अपना उत्थान कर नही सकता। प्रत्येक आत्मा मे उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार आदि रहे हुये है, पर उन्हे प्रकट करने की आवश्यकता है।

पुरुषार्थ ही अपने भाग्य का निर्माता है। वाल्मीकि रामायण मे राम व लक्ष्मण की चर्चा का वर्णन आया है। लक्ष्मणजी राम से कहते है– जो कातर और निर्बल होते है, वे ही दैव का आश्रय लेते है। वीर और आत्मनिष्ठ पुरुष दैव की ओर कभी नहीं देखते। किन्तु कई लोग भाग्य के भरोसे ही बैठे रहते है। वे कहते है– जो भाग्य मे लिखा होगा, वही होगा, पहले से चिन्ता करने से क्या फायदा है? किन्तु अगर पहले से पुरुषार्थ नहीं किया तो आपको भूख लगते ही रोटी कैसे प्राप्त होगी? सासारिक मानव भूख लगने के बाद कमाने जावे, गेहूँ लावे, गेहूँ पिसावे, रोटी बनावे आदि पुरुषार्थ करे तो वह मूर्ख ही कहा जाएगा। आग लगने के बाद पानी के लिए कुऑ खोदने वाला महामूर्ख कहलाता है। उसी प्रकार जब कर्म उदय मे आएगा, फल–भोग करने की क्षमता नहीं होगी, क्या उस समय कर्म को काटने हेतु तपस्या आदि करेंगे?

तपस्या आदि आत्मसाधना से आगे उदय मे आने वाले कर्म कट सकते है पर वर्तमान मे उदय मे आने वाले नहीं कट सकते। अत कर्मफल भोग के समय से पूर्व ही यदि साधना की जाए तो अनिकाचित कर्म तो उदीरणा आदि के माध्यम से उदय मे आने से पूर्व ही समाप्त हो सकते है। अत पुरुषार्थ का भाग्य–निर्माण मे व दु खो को हटाने मे महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। वैसे पूर्वकृत पुण्यो के आधार पर भाग्य का निर्माण होता है पर भाग्य तभी सफल होता है जब समय पर पुरुषार्थ किया जाए। पुण्य–उपार्जन के अन्न–दान आदि नौ साधन बताये है। उनमे पुरुषार्थ आवश्यक है। उर्दू भाषा मे कहा है– मै कहता था इन्सान की गर तकदीर नही तो कुछ नही, हिम्मत बढकर बोल उठी, तदबीर नहीं तो कुछ भी नहीं। ऐतरेय मे कहा है– जो मनुष्य घर मे बैठा रहता है, उसका भाग्य भी बैठ जाता है, जो खडा रहता है, उसका भाग्य खडा हो जाता है। जो सोया रहता है, उसका भाग्य सो जाता है और जो चलता–फिरता है, उसका भाग्य भी चलने–फिरने लगता है।

सच्चा पुरुषार्थी व्यक्ति वही होता है जो भाग्य की रेखाएँ मिटादे। पुरुषार्थी का दैव भी अनुवर्तन करता है। भाग्य मनुष्य को नहीं बनाता है पर मनुष्य भाग्य को बनाता है। मनुष्य अपने सुख–दु ख का कर्ता स्वय है। अत वह अपने भाग्य को भी स्वय बनाता है। पुरुषार्थ से मानव को B Sc , Ph D आदि डिग्रिया प्राप्त होती है। साधक पुरुषार्थ के आधार पर ही गुणस्थानो की श्रेणियो पर चढता हुआ सिद्धावस्था को प्राप्त करता है। पुरुषार्थी व्यक्ति कार्यकुशल होता है। वह अपनी कार्यकुशलता के आधार पर लिपिक से महाप्रबन्धक, सेना के जवान से कर्नल तथा प्राइमरी पाठशाला के अध्यापक से विश्वविद्यालय का कुलपति बन जाता है। वास्तव मे पुरुषार्थ वह प्रयोगशाला है जिसमे स्वगत शक्तियो का विकास होता है और व्यक्ति का महत्त्व दुनिया के सामने निखरकर प्रस्तुत होता है।

जार्ज वैरी एगलस्टन ने एक गरीब व्यक्ति की घटना लिखी है– उसका नाम एटोनिया था। वह फेलेरो नाम के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के घर पर बर्तन मॉजने का काम करता था। जब कभी उसे समय मिल जाता, तब वह कलाकारो की दुकानो पर पहुॅच जाता व पत्थर काटने का काम करता था। पर उस लडके मे एक विशेषता यह थी क्रि वह हर काम को ध्यान से देखता व ध्यान से करता था। पत्थर काटने के पैसे तो उसे मामूली मिलते थे पर वह उस कला मे निरन्तर होशियार बनता चला जा रहा था। एक बार उसके मालिक फेलेरो ने अपने कई मित्रो को बुलाया था। खाने की मेज के मध्य मे वस्तु सजा रहा था कि वह अनायास ही खराब हो गई। फेलेरो एकदम उदास हो गया, तब एटोनिया ने तुरन्त अपने मालिक से कहा– यह सजावट का कार्य अभी मै कर देता हूॅ। वह शीघ्र दौडकर बाजार से पर्याप्त मक्खन

ले आया और उसने तत्काल मक्खन का खूबसूरत शेर तैयार कर दिया। जिसका अगला भाग अत्यन्त खूबसूरती से झुका हुआ था। उस दिन के मेहमानो मे बडे–बडे व्यापारी तथा शाही परिवार के व्यक्ति भी थे। उनमे से कुछ कला के आलोचक भी थे। जब उनकी दृष्टि मक्खन के बने शेर पर गयी तो वे देखते ही रह गये। उनमे से एक ने बोला– यह बहुत ऊँची कला का नमूना है। उसने अपने मेजबान से पूछा कि– यह कला किस व्यक्ति की है? इस शेर का निर्माण किस व्यक्ति ने किया है? फेलेरो ने एटोनिया के पुरुषार्थ की बात सुनाते हुए कला की बात बताई। मेजमान ने तत्काल घोषणा की कि एटोनिया के कला के ऊँचे अध्ययन का सारा खर्च मै उठाऊँगा। वह एटोनिया, जो कि बर्तन मॉजता था, अपने पुरुषार्थ के बल पर विश्व का बहुत बडा मूर्तिकार बन गया। वह कनोवा के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

वास्तव मे बिना किसी प्रतिफल की आकाक्षा के सहज भाव से किया गया पुरुषार्थ अवश्यमेव सफलीभूत होता है। अगर तुम गेहूँ, चावल आदि खेती से प्राप्त धान्य चाहते हो तो पहले तुम्हे हल चलाना, बीज बोना, पानी सिचन करना आदि पुरुषार्थ करना पडेगा, तभी इच्छित फल की प्राप्ति हो सकती है। कन्नड कहावत है– "कुएँ मे जितना पानी हो, मगर महज चाहने से तो वह नही निकल आता।" पुरुषार्थी व्यक्ति का स्नायु तत्र अवश्य ही बलवान होता है। आप अपने दोनो हाथो को ही देखिये। एक हाथ पतला व एक हाथ मोटा होता है। अर्थात्– दाहिना हाथ मोटा होता है और बायॉ हाथ पतला होता है। दायॉ हाथ ही ज्यादा काम करता है, अत मोटा भी वही होता है व शक्ति भी उसी मे ज्यादा होती है। जितना वजन दायॉ हाथ उठा सकता है उतना बायॉ हाथ नही उठा सकता। अर्थात् जो ज्यादा काम करता है वह शक्तिशाली होता ही है। व्यावहारिक क्षेत्र मे भी हम देखते है कि गॉव मे खेती करने वाले महिला व पुरुष का व सारा गृहकार्य अपने हाथ से करने वाली महिलाओ व पुरुषार्थ करने वाले पुरुषो का शरीर मजबूत होता है। जबकि उन्हे खाने हेतु शुद्ध घी भी नसीब मे नहीं होता। किन्तु जो धनाढ्य पुरुष–महिलाएँ मनोज्ञ भोजन करते है और गद्दो पर सोये रहते है, सारा काम नौकरो से करवाते है, गाडियो मे घूमते हैं, ऐसे लोगो के शरीर के स्नायु कमजोर हो जाते है। ब्लड सरक्यूलेशन बराबर नही होता और उस शारीरिक शिथिलता मे बीमारियो का सहज रूप मे प्रवेश हो जाता है। पूर्व जमाने मे घर–घर मे सवेरे–सवेरे चक्कियॉ चलती थीं। जिससे शारीरिक परिश्रम पूरी मात्रा मे होता था। पर आज की सेठानियॉ घर मे चक्की रखना ही गृह शोभा के लिए अनुचित समझती है और डॉक्टर के कथनानुसार चक्की चला कर परिश्रम करने योग केन्द्र पर पहुँचती है। आज योग का भी प्रचलन बहुत है। पूर्व जमाने मे अपने हाथो से सारा काम करने से सहज रूप मे ही योग हो जाता

था। वह सहज योग छूट जाने से योग केन्द्र पर जाकर पुरुष–महिलाएँ योग करके शारीरिक पुरुषार्थ कर रहे है।

अत जब तक शरीर मे शक्ति है तब तक उसका पूर्ण प्रयोग करना चाहिए। आज मानव व्यापार भी वैसा ही करना चाहते है जिसमे पुरुषार्थ भी न करना पडे व धन भी ज्यादा मात्रा मे प्राप्त हो जावे। जैसे – जुआ खेलना, दो नबर के काले धन्धे करना आदि। काले धधे से आया हुआ पैसा व उससे आया अन्न खाने वाले के मन पर वह असर डाले बिना नही रहता है। कहा भी है– "जैसा खाये अन्न, वैसा होवे मन"। गलत ढग से धन कमाने वाले व्यक्ति का मन कभी भी सही नही रह सकता। उसके घर मे अशान्ति बनी रहती है। उसके कदम गलत रास्ते पर बढते हुए दिखाई देते है। हर पल टेन्सन मे जीता हुए दिखाई देता है। किसी–किसी का कहना है कि महाराज के पातरो मे भी तो वही अन्न जाता है। अत वे सयमी जीवन का पालन कैसे कर पाएँगे? किन्तु सयतिवर्ग तो भगवान की आज्ञानुसार ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप का पालन करते हुए भव्यो की आत्मिक उन्नति हेतु उपदेश देते हुए तथा गोचरी के बयालीस दोषो को टालते हुए आहार ग्रहण करते है। अत उनका आहार अपने स्वय के पुरुषार्थपूर्वक होता है। अत जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन की युक्ति सयतिवर्ग के साथ चरितार्थ नहीं होती। जैसे काला धन्धा करने वाले सेठ के यहाँ पर एक हमाली काम करता है। उस हमाली को अपने काम के बदले सेठ के हाथो से वही पैसा मिलता है, फिर भी वह पैसा हमाली के हाथो मे दो नबर का नहीं रहता। क्योकि उसने तो उस पैसे को अपने पुरुषार्थ के माध्यम से प्राप्त किया है। अत उसके लिए वही पैसा एक नबर का हो जाता है। उसी प्रकार साधु ने भी अपने पुरुषार्थ के बल पर गोचरी प्राप्त की है अत साधु के लिए वह अन्न दो नबर का नही रहा, जिससे उसकी साधना मे अडचन पैदा होवे।

जो पुरुषार्थी होते है, वे धर्मवीर भी होते है। कहा भी जाता है– "जे कम्मे शूरा ते धम्मे शूरा" अर्थात्– जो कर्म मे शूरवीर होते हैं यानी पुरुषार्थी–शौर्यवान होते है, वे ही धर्म के विराट् क्षेत्र मे भी आसानी से प्रवेश पा सकते है और अपना विकास कर सकते है। पुरुषार्थहीन व्यक्ति पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक कर्तव्यो को भी निभाने मे जब समर्थ नही हो पाता है तब वह धर्म के क्षेत्र मे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप के अनुपालन मे पुरुषार्थ कैसे कर सकेगा? पुरुषार्थी के भव–भ्रमण भी कम हो जाते है।

दो मित्र एक केवलज्ञानी प्रभु के पास पहुँचे और विधिवत् वदना करके पूछने लगे– भगवन् हमारे मोक्ष मे जाने मे अभी कितने भव बाकी हैं? केवलज्ञानी ने एक से कहा– तुम्हारे सात भव बाकी है व दूसरे से कहा तुम्हारे असंख्यात भव बाकी है।

पहला सात भव की बात सुनकर बहुत खुश हुआ, दूसरा असख्यात भव को सुनकर गभीर बना रहा। पहले ने धर्मध्यान करना सब छोड दिया। सोचा—अभी 6 भव तो मोक्ष मिलनी ही नही है। यहा तक कि पापाचरण का सेवन भी करने लगा। वह वहॉ से मरकर सातवीं नरक मे गया। सातवी नारकी की स्थिति तेतीस सागरोपम होती है अर्थात् लम्बे समय तक सातवी नारकी मे रहेगा। दूसरा मित्र असख्यात भव के डर से बहुत धर्म—ध्यान करने लगा। अन्तिम समय मे घर के चौक मे स्थित बोर के वृक्ष पर दृष्टि चली गई और बोर खाने की इच्छा पैदा हुई। उस अध्यवसाय के अनुसार वहॉ से मरकर बोरडी मे जन्म ले लिया। और वही पर असख्यात जन्म—मरण पूरे करके अल्पकाल मे ही पुन मनुष्य बनकर मोक्ष मे चला गया। उस पहले मित्र को तो सातवी नारकी मे गए कुछ वर्ष ही बीते कि इधर दूसरा मित्र असख्यात भव करके मोक्ष मे भी चला गया।

पुरुषार्थी व्यक्ति के लिए असभव कुछ भी नहीं है। नेपोलियन ने कहा था कि असभव शब्द सिर्फ मूर्खो के कोष मे होता है। कहा भी है— "जिस राह पे फरिश्तो को हो चलना मुश्किल, उस राह से इन्सान गुजर जाते है।" पुरुषार्थी व्यक्ति अपनी भाग्यरेखाओ को पलट देता है। एक बच्चे को बहुत पढने पर भी याद नही होता था। मास्टरजी ने डडे की हाथ मे मारी और बोल उठे—तेरे हाथ मे विद्या की रेखा नही है। तू क्या पढ लेगा? बच्चे ने बडी शालीनता व साहस के साथ पूछा—गुरुजी विद्या की रेखा कहॉ पर होती है? गुरुजी ने उसे रेखा का स्थान बताया। थोडी ही देर मे बच्चे की हथेली खून से लथपथ थी। गुरुजी को बहुत पश्चात्ताप हुआ। खैर, हथेली तो खून से लथपथ हुई सो हुई किन्तु विद्या प्राप्ति की लगन की रेखा हृदय मे अमिट हो गई। खूब पुरुषार्थ के साथ वह पढने लगा। वही बच्चा आगे जाकर सस्कृत व्याकरण का निर्माता बना। वे थे पडित "पाणिनी"। वास्तव मे पुरुषार्थ से कार्य करने पर हर कार्यक्षेत्र मे सफलता अवश्य प्राप्त होती है।

भगवती सूत्र मे पहले शतक के आठवे उद्देशे मे कहा है कि जो व्यक्ति वीर्यलब्धि से सम्पन्न होते हुए भी उत्थान, कर्म, बल, वीर्य पुरुषाकार पराक्रम का उपयोग न करे तो वह वीर्यहीन है। अत हमेशा पुरुषार्थ करते ही रहना चाहिए। किन्तु पुरुषार्थ भी किस व्यक्ति का अच्छा होता है, इस विषय मे जयती श्रमणोपासिका ने भगवान से प्रश्न पूछा कि अहो भगवन्! उद्यमी व्यक्ति अच्छा होता है या आलसी व्यक्ति अच्छा होता है? तब भगवान ने फरमाया— हे जयन्ती! कोई जीव उद्यमी अच्छे होते है और कोई जीव आलसी अच्छे होते हैं। क्योकि जो जीव अधर्मी है, अधर्म का काम करते हैं, अधर्म का उपदेश देते है, अधर्म मे आनद मानते हैं, अधर्म से ही आजीविका करते हैं, वे जीव आलसी अच्छे है ताकि वे सर्वप्राण, भूत, जीव, सन्त को दु ख नहीं उपजाऍगे, उन्हे

पीडित नही करेगे। जो जीव धर्मी है, धर्म का काम करते हैं, धर्म का उपदेश देते है, धर्म मे आनद मानते है, धर्म से ही आजीविका करते है, वे जीव उद्यमी अच्छे है क्योकि वे सर्वप्राण, भूत, जीव, सन्त को सुख उपजाते है और अपनी तथा दूसरो की आत्मा को धर्म मे जोडते है। पुरुषार्थ तो हिसक व्यक्ति भी करते है, चोर–डाकू भी करते हैं। अपराधी को बचने के लिए न जाने कितनी परेशानियॉ उठानी पडती है, कहॉ कहॉ भटकना पडता है किन्तु उन अधर्मी जीवो के पुरुषार्थस्वरूप अनेकानेक कर्मो का बधन होता है तथा उसके फलस्वरूप नरक तथा तिर्यचादि गतियो मे नाना प्रकार के दु खो को भोगता हुआ परिभ्रमण करता है। इस प्रकार गलत क्षेत्र मे पुरुषार्थ करने वाला पतन के खड्डे मे ही गिरता है। इसलिए त्याग, तप आदि धर्म के क्षेत्र मे उद्यम करना चाहिए। महाभारत मे भी लिखा है–

सर्वेरपि गुणैर्युक्तो निर्वीर्य· किं करिष्यति।
गुणीभूता. गुणा सर्वे तिष्ठन्ति हि पराक्रमे।।

अर्थात् जो निर्बल है, वह सर्वगुणसम्पन्न होकर भी क्या करेगा? क्योकि सभी गुण पराक्रम के अगभूत बनकर ही रहते है। पुरुषार्थी व्यक्ति के लिए न हिमालय पर्वत ऊँचा है और न समुद्र गहरा है। बस, आत्मा मे अनत शक्तियो को जाग्रत करने की आवश्यकता है। फिर व्यक्ति चाहे जो कर सकता है। यहॉ तक कि नरक को स्वर्ग के रूप मे बदल सकता है। अत मानव को पुरुषार्थी बनना चाहिए।



लघुता में प्रभुता

खति सेविज्ज पडिए

अर्थात् पडित पुरुष को क्षमा धर्म की आराधना करनी चाहिए।

क्षमा बौद्धिक शक्ति के भडार महापुरुषो के जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अग होता है। बुद्धिमान व्यक्ति मन, वचन, काया की प्रवृत्ति आगे–पीछे सोचकर, हिताहित का विचार कर करते है। अत भगवान ने बुद्धिमान व्यक्ति को ही सकेत किया कि तुम्हे क्षमाधर्म की आराधना करनी चाहिए। क्योकि कहा भी है–

नरस्याभरणं रूपं, रूपस्याभरणं गुणः,
गुणस्याभरणं ज्ञानं, ज्ञानस्याभरणं क्षमा।।

अर्थात् मनुष्य का आभूषण रूप व रूप का आभूषण गुण व गुण का आभरण ज्ञान है व ज्ञान का आभरण क्षमा है। मनुष्य का ज्ञान क्षमा से शोभित होता है। यदि कोई व्यक्ति ज्ञानवान होकर भी बात–बात मे गुस्सा करता है, बात को तानता है, झगडा करता है, जरा–सी अपने से प्रतिकूल स्थिति को देखते ही भडक उठता है, तो वह वास्तव मे बुद्धिमान नही कहा जा सकता है। बुद्धिमान वही है, जो प्रत्येक छोटी–मोटी प्रवृत्ति, वस्तु तत्त्व की तह मे पहुचकर, दूरदर्शिता के साथ करता है। अत समय पर क्षमाभाव भी वही सम्यक् ज्ञानी ही रख सकता है।

क्षमाभाव को जीवन मे धारण करना सामान्य व्यक्ति के वश की बात है ही नही। जैसे कामधेनु गाय के दूध को चक्रवर्ती ही पचा सकता है। कामधेनु गाय का दूध कितना गरिष्ठ होता है। इस विषय मे बताया है कि पॉच हजार गायो का दूध ढाई हजार गायो को पिलाया जाता है। इस प्रकार आधी–आधी गायो को पिलाते हुए अन्त मे दो गायो का दूध एक कामधेनु गाय को पिलाया जाता है। इस प्रकार 5000 गायो के दूध का सत्त्व रूप दूध कामधेनु गाय के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। वह छह खड के सम्राट–चक्रवर्ती ही पचा सकते हैं। उस दूध मे महान् शक्ति होती है। उस दूध की कडाही के खाली होने के बाद जो खुरचन बचती है, उस खुरचन को चक्रवर्ती की दासी खाती है। उस दासी मे भी इतनी शक्ति पैदा हो जाती है कि वह हीरे को चिमटी से मसल देती है। ऐसा दूध सामान्य व्यक्ति नहीं पी सकता। केशरिया मोदक

भी चक्रवर्ती, वासुदेव व दीर्घ तपस्वी के सिवाय अन्य साधारण व्यक्ति नही पचा सकते। वे लड्डू देवकी महारानी ने अपने सपूत श्रीकृष्ण के लिए तैयार किए थे। ठीक उसी प्रकार क्षमा को पचाना भी साधारण व्यक्ति के लिए महामुश्किल काम है। इसीलिए तो कहा है– खति सेविज्ज पडिए।

एक विचारक (कबीर) ने कहा है–

ताबा सोना सुघड नर, टूट जुडे सौ बार,
मूरख हॉडी कुम्हार की, जुडे न दूजी बार।

पत्थर का टुकडा टूटने पर पुन उसे जोड भी दिया जाए तो भी वह जुडा हुआ अलग–सा ही दिखता है। पर सोने के टुकडे को, कण–कण को जोडा जाए तो भी उसकी डली आराम से बन जाती है यानी स्वर्ण एकमेक हो जाता है। ठीक उसी प्रकार से उच्च विचारो के धनी बुद्धिमान व्यक्ति के विचार, मतभेद हो भी जाए तो भी एकाएक टूटते नही है। टूट भी जाए तो क्षमा के माध्यम से पुन एकमेक हो जाते है।

भगवान महावीर स्वामी ने कान मे कीले ठोकने वाले व पैरो मे खीर पकाने वाले को भी क्षमा कर दिया। गजसुकुमाल मुनि ने सिर पर अगारे रखने वाले को भी क्षमा कर दिया। खदक मुनि ने चमडी खीचने व खिचवाने वाले को भी क्षमा कर दिया। स्कदक मुनि के पॉच सौ शिष्यो ने कोल्हू मे पीलने वाले को भी क्षमा कर दिया। परदेशी राजा ने जहर पिलाने वाली महारानी सूर्यकान्ता को भी क्षमा कर दिया। द्रौपदी ने अपने पॉच पुत्रो को मारने वाले अश्वत्थामा को भी क्षमा कर दिया। जैन शास्त्रो मे इस प्रकार के क्षमा के उदाहरणो को पढकर शरीर मे कॅपकॅपी छूटे बिना नही रहती। फौलादी दिल भी ऐसी कथाओ को पढकर पिघले बिना नही रह सकता।

कैसी इनकी लोकोत्तर क्षमा है! उन भव्य आत्माओ ने जरा भी दु ख, विरोध या क्रोध किए बिना आने वाले उपसर्गो को सहन कर लिया था और उन्हे अज्ञानी समझकर और अपने प्राणो को बुरी तरह से हरण करने वालो को भी सहज भाव से माफ कर दिया था। इसीलिए तो उनका जीवन स्वर्णवत् निखार पर आ गया था और उन्होने उच्च गति को प्राप्त कर लिया था।

क्षमा आत्मा का सहजिक गुण है। यह आत्मा को परम आनद देने वाला है। जितनी प्रसन्नता मनभावन मिठाई खाने से नही होती है उतनी प्रसन्नता किसी को क्षमा कर देने मात्र से होती है। एक बार क्रोध करने से व्यक्ति का पूरा दिन खराब हो जाता है। अत जिन्दगी मे कुछ कर गुजरने के इच्छुक बुद्धिमान व्यक्ति क्रोध करके बेकार मे मस्तिष्क को टेन्सनयुक्त नहीं बनाना चाहते। वे अपने ज्ञान के बल पर अपनी सोच को सही बनाते हुए क्रोध करने के स्थान पर भी क्रोध न करते हुए क्षमा ही जीवन मे अपनाते है।

एक सेठ के यहॉ पर एक परदेशी मुनीम रहता था। उसका इतना ज्यादा

विश्वास सेठ के दिल मे जम गया था कि वह जब भी कही उगाही आदि पर जाता तो उसे साथ मे लिए बिना नही जाता था। एक बार मुनीम को साथ मे लेकर उगाही पर जा रहा था। रास्ते मे पशु के खाने योग्य काकडियो, मतीरो से भरी गाडी मिली। सेठजी ने गाडीवान से कहा कि तुम इस पूरी गाडी के कितने रुपये लोगे? गाडीवान ने कहा– सिर्फ पॉच रुपये। सेठजी ने कहा– वाह! तू मेरे से पॉच रुपये लेगा? हमेशा तो मेरे घर पर छाछ लेने के लिए आता है और आज रुपये मॉग रहा है! चल, जा, ऐसे ही गाडी खाली करके आना। छाछ के बोझ के नीचे दबा वह गाडीवान सेठजी के घर पर पहुँचा और काकडिये, मतीरे खाली करके आ गया। कहा भी है–

दूध घालतॉ माथो दूखे, दही घालणो दोरो,
छाछ घालतॉ छाती फाटे, उत्तर देनो सोरो।।

आज के इस युग मे पानी जैसी पतली छाछ भी बाजारो मे बिकती है। सेठ ने छाछ जैसी वस्तु के लिए भी गाडीवान को जब बोल दिया तो वह बात मुनीम को जरा भी अच्छी महसूस नही हुई। मुनीम ने सोच लिया कि बस, लगता है अब सेठ के दिन गिरने वाले है। पुण्यवानी समाप्त होने वाली है। क्योकि व्यक्ति की जैसी नीति होती है वैसी ही बरकत भी होती है। अत मुझे अब सेठजी के यहॉ पर नहीं रहना है। वह उस समय तो चुपचाप रहा। किन्तु घर जाने पर शाम को सेठजी को शान्ति के साथ बोल दिया कि मैं अब अपने घर जाना चाहता हूँ। सेठजी ने कहा– क्या बात है, घर से तुम्हे बुलाया है क्या? मुनीम– वैसे बुलाया तो नहीं है पर अब अपने देश मे रहकर ही अपना काम करना चाहता हूँ। सेठजी– तुम यहीं पर रहो, तुम्हारी नौकरी के पैसे बढा देगे। तेरे जैसा मुनीम मिलना भी मुश्किल है। मुनीम– आप की पूरी कृपा मेरे पर रही है। आपकी कृपा से ही मै कुछ सीख पाया हूँ पर परिवार बहुत दूर रह जाता है। अत वहीं पर जाना चाहता हूँ। सेठजी ने उसकी नौकरी के पैसे दे दिए व उसे इनाम रूप मे अलग से और भी रुपये दिए। मुनीम अपने घर चला गया और वही पर अपने घर की दुकान खोलकर व्यापार करने लगा। व्यापार भी नीति के साथ करने से अच्छा चल पडा।

इधर सेठजी के निरन्तर घाटे पर घाटा होता रहा। धीरे–धीरे घाटा होते–होते एक दिन वे रोड पर आ गये। पास मे कुछ भी नहीं बचा। पुण्यवानी सारी समाप्त हो गयी थी। सेठजी ने सोचा– अब कहॉ जाऊॅ? विपत्ति के समय कोई सहयोग देने वाला नहीं होता है। पर इस समय किसी का सहारा भी अपेक्षित लग रहा है। आखिर मुनीम का ध्यान आया और उसी के नगर मे पहुॅच गए। सेठजी सेठानी को बस स्टेण्ड पर बने बगीचे मे बिठाकर खुद गॉव मे मुनीम की खोज मे पहुॅचे। खोज करते हुए मुनीम की दुकान मिल गई थी। पर एकाएक मुनीम के पास जाऊँ तो कैसे जाऊॅ? मुनीम की दुकान पर

ग्राहको की भीड भी बनी हुई थी। सेठजी मुनीम की दुकान के सामने वाली लाइन की दुकानो के फुटपाथ पर खडे हो गए और सोचने लगे कि ग्राहको की भीड कम होने पर मुनीम की निगाह मेरे पर पड सकती है। निगाह पडने पर वह मेरे को पहचानेगा या नही? उसके चेहरे पर क्या प्रतिक्रिया आती है, उससे पता लग जाएगा कि वह मेरे को चाहता है या नही। थोडी देर मे ग्राहको की भीड वहॉ से हटी और मुनीम की दृष्टि उस फटेहाल सेठ पर पडी और तुरन्त दुकान से उतरकर सेठजी के सामने गया। सेठजी भी मुनीम के स्नेह को देखकर शीघ्र ही सामने आये, रोड पर मिलन हुआ। मुनीमजी ने सेठजी के चरणो मे प्रणाम किया और बडे आदरभाव से अपनी दुकान पर लेके आया। सेठजी गद्‌गद् हो गए। सारा मार्केट भी इस दृश्य को देखकर आश्चर्यचकित हो रहा था कि एक भिखारी के वेश मे लिपटे हुए व्यक्ति के चरणो मे प्रणाम क्यो किया? उधर सेठानी बगीचे मे बैठी है। उसने बगीचे मे खेलते हुए एक बच्चे को देखा जिसने गले मे, हाथो मे, पैरो मे सोने के आभूषण पहने हुए थे और नौकर लेटरिन के लिए बगीचे के पीछे जगल मे गया हुआ था। अकेले बच्चे को खेलते हुए देखकर सेठानी के मन मे पाप आ गया और तुरत बच्चे को पकडकर गर्दन दबा दी और गहने उतार लिए। बच्चे को भी अपने पास मे रही हुई टोकरी मे डाल दिया और फटे कपडे ओढा दिए।

नौकर जल्दी से आया किन्तु बच्चा नही है। खोज भी की किन्तु मिला ही नही। नौकर बहुत परेशान हो रहा था। उसे उस औरत पर शका हो गई। उससे पूछा– तुमने बच्चे को देखा क्या? वह कहने लगी– मै तो काम से बैठी हूँ, परदेशी हूँ। मुझे क्या पता, कौन बच्चा, किसका बच्चा व कौन उसका मालिक है? नौकर ने कहा– मै यहॉ तुम्हारे सामने खेलता हुआ छोडके गया हूँ। लेकिन सेठानी और ज्यादा तेजी से चिल्लाने लगी। नौकर को पूरी शका हो गई। वह उसकी टोकरी के पास गया। सेठानी ने तुरन्त टोकरी अपने पैरो के नीचे दबाली और कट्टी पकड ली। तब तो नौकर को पूरा ही शक हो गया। उसने जबरदस्ती छबडी को पकडी और कपडा उठाया तो बच्चा अन्दर पडा हुआ है। उसने उस बच्चे को व गहनो को लिया और उदास चेहरे से घर पर पहुँचा। इधर मुनीम दूसरे नौकर को सेठानी को लेने बगीचे मे भेज ही रहे थे। इधर वह कहने लगा कि ऐसे–ऐसे कपडे पहनी औरत ने बच्चे की यह हालत की। मुनीम ने कहा– ऐसा नहीं हो सकता। आखिर सेठानी को घर पर लाये और इधर डाक्टर को घर पर बुलाया। बच्चे मे कुछ धडकन थी। डाक्टरी उपचार से वह वापस ठीक हो गया। सेठानी की ऑखो ने वह दृश्य देखा तो उसका शरीर कॉप गया। क्या यह मुनीम का हीं बेटा था? अब क्या होगा? मैने जिन्दगी मे जैसा पाप नही किया वैसा अब कर लिया। कहा भी है–**बुभुक्षित किं न करोति पाप।** अर्थात् भूखा व्यक्ति क्या पाप नहीं

करता है? सेठानी को पश्चात्ताप हुआ और मुनीम की बहू के पॉवो मे गिर गई और क्षमा मॉगने लगी। मुनीम ने व सेठ ने भी वह दृश्य देखा। किन्तु मुनीम व उसकी पत्नी ने कहा– इसमे आपकी क्या गलती है? यह तो हमारे व बच्चे के ही कर्म है। आप तो विराजिए, आराम से रहिए। सेठानी उनके प्रेममय व्यवहार से बहुत प्रभावित हुई और वे अपने मुनीम के यही आराम से रहने लग गए। ऐसे भयकर दु खद क्षणो मे भी आत्मिक गुण क्षमा को नही छोडा। ऐसे क्षमायुक्त व्यवहार से उनका घर उस पूर्व वाले बच्चे से भी अधिक सुन्दर व सुयोग्य बच्चो से भर गया था। वाल्मीकि रामायण में कहा है–

क्षमा यशः क्षमा धर्मः क्षमाया विष्ठितं जगत्।।

अर्थात् क्षमा ही यश है, क्षमा ही धर्म है, क्षमा से ही चराचर जगत स्थित है। जिस समय आपको कोई गालियॉ बोल रहा हो, असहनीय ऊलजलूल–शब्दो का प्रयोग कर रहा हो, डडे से मारने से भी ज्यादा क्रोधित होकर क्रोध कर रहा हो, उस समय यदि आप तत्काल शान्ति रख लेते है तो आपकी तारीफ चारो तरफ हुए बिना नही रहेगी। क्षमा गुण की सुगध से हर व्यक्ति प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। गुलाब का फूल बाहर से भी सुन्दर व भीतर से भी परागयुक्त होता है। अत उसको हर व्यक्ति पसद करता है। ठीक उसी प्रकार क्षमा गुण की पराग जिस किसी के अन्दर होती है तो उसकी ओर हर कोई आकृष्ट हो जाता है।

क्षमया किं न सिद्धयति।।

अर्थात् क्षमा से क्या सिद्ध नही हो सकता?

चण्डकोशिक जैसा भयकर दृष्टिविष सर्प जिस वन मे रहता था। उस वन से लोगो ने आना–जाना बन्द कर दिया। ऐसे रास्ते पर क्षमावीर भगवान महावीर स्वामी जान–बूझकर गए थे। विषधर अपने स्वभावानुसार चड प्रकृति को लेकर भगवान महावीर को डक मारने दौडकर सामने आया किन्तु क्षमायुक्त ऑखो से जहॉ क्षमा का अमृत विपुल मात्रा मे बरस रहा हो, वहा विषधर का क्रोधरूपी विष कब तक काम कर सकता है? उस विषधर ने भी अमृत को ग्रहण किया और अपने जीवन को क्षमायुक्त बना लिया।

क्षमा की महिमा ही अपरम्पार है। क्षमावान् के चरणो मे देव भी झुक जाया करते है। पूर्वकाल मे क्षमावान साधु व श्रावको की परीक्षा हेतु देव आया करते थे और उन्हे भयकर कष्ट देकरके येन–केन–प्रकारेण डिगाने की हर कोशिश करते थे। पर वे क्षमाधर्मवान विचलित नहीं होते थे। कहा भी है–

क्षमा खड्गं करे यस्य, दुर्जनः किं करिष्यति।।

जिन महापुरुषो के हाथ मे क्षमारूपी खड्ग है, दुश्मन भी उनका कुछ बिगाड नहीं सकते। साधु के दस यतिधर्म मे क्षमा को प्रथम धर्म कहा है। साधु से छोटी–सी भूल हो जावे तो भी साधक तुरन्त क्षमायाचना करता है।

क्षमायाचना किए बिना आहार का एक निवाला भी मुँह मे नहीं उतारता है।

एक बार एक स्थान पर सत पर्युषण पर्वो मे प्रवचन कर रहे थे। लोच किया गया था। अत उनका सिर चमक रहा,था। उसी धर्मसभा मे एक ग्रामीण व्यक्ति आकर बैठा। वह दूर से महाराज की खोपडी को ही देख रहा है। उसे उनकी खोपडी बहुत सुन्दर लग रही थी। नाई बाल काटता है, उस्तरा भी फेर देता है पर वे बाल जड मूल से नही उखडने से खोपडी इस–ढग से चमकती नही है। महाराज लोच करते है, बाल अन्दर से निकलते है। अत खोपडी मे सफाई अधिक आ जाती है। वह ग्रामीण प्रवचन तो सुन नही रहा था किन्तु उसका आकर्षण उस खोपडी की तरफ अत्यधिक था। प्रवचन के पश्चात् चरण स्पर्श हेतु लाइन लग रही थी। वह भी उसी मे खडा हो गया, लेकिन उसका ध्यान महाराज की खोपडी की तरफ ही था। जेसे ही उसका नबर आया और उसने महाराज के सिर पर दो–चार ठोलिए जमा दिए। उसकी उस हरकत से लोग उसे डॉटने लगे तब उसे होश आया कि मैने क्या किया? महाराज ने उन डॉटते हुए लोगो से कहा– शान्त रहिए। इसने ठोलिये मार दिए तो क्या हो गया? कहा भी है–

एक टका की हाडी लाया, ठोल्या मास्या चार,
गुरु परीक्षा नहीं करी तो, गयो जमारो हार।।

धर्मप्रेमी भाईयो! बाजार से एक मिट्टी की हॉडी लाने वाला भी उस हॉडी को ठोलिए से मारकर परीक्षा करके लाता है तो गुरु की परीक्षा हेतु इसने मेरे ठोलया मार दिया तो इस पर बेकार ही क्रोध करना ठीक नही है। वह ग्रामीण महाराज के मुखारविन्द से उन वाक्यो को सुनकर पानी–पानी हो गया और उस सन्त को गुरु के रूप मे स्वीकार किया। यह है सयति वर्ग की क्षमा। कूरगडूक मुनि ने क्षमागुण के आधार पर ही खाते–खाते मोक्ष प्राप्त कर लिया था। ईसा मसीह को जब सलीब पर चढाया जा रहा था, उस समय उन्होने अपने हत्यारो पर भी क्रोध नही किया था।

उदयसागरजी म सा को, किसी व्यंक्ति ने सयमी के क्षमाभाव की परीक्षा लेने हेतु उनके स्थानक मे आकर बहुत गालिया दीं किन्तु क्षमासागर आचार्य भगवन् ने एक शब्द भी वापस नही कहा। उन्होने यही सोचा कि जिसके पास जैसी वस्तु है वैसी ही बतायेगा किन्तु लेने वाला अगर उसे नही लेता है तो वह वस्तु उसी के पास रहती है। सयति वर्ग के लिए कहा है– **पुढवी समो मुणी हवेज्जा** अर्थात् मुनि को पृथ्वी के समान क्षमाशील होना चाहिए। जैसे पृथ्वी पर कूडा–कचरा व हर तरह की गन्दी वस्तु डाल देने पर भी वह कुछ नहीं कहती। यहॉ तक कि उसके पेट मे गड्ढा बनाने वाले को भी कुछ नहीं कहती अपितु सभी जीव, अजीव को आधार प्रदान करती है। उसी प्रकार साधु को भी पृथ्वी की तरह क्षमाशील होना चाहिए। वह छह काय जीवो की

रक्षा का भार लेकर चलते है। महाभारत मे कहा है—

क्षमा तेजस्विना तेजः क्षमा ब्रह्म तपस्विनाम्

अर्थात् क्षमा तेजस्वी पुरुषो का तेज है, क्षमा तपस्वियो का ब्रह्म है। क्षमा आत्मा का बख्तर है। इस बख्तर को धारण करने वाले क्षमावान का कोई भी, कुछ भी बिगाड नहीं कर सकता है। क्षमावान् की प्रसन्नता को कोई छीन नहीं सकता। क्षमा महान् पुरुषो मे ही होती है। पानी से भरे कटोरे मे छोटा–सा पत्थर भी डालने पर वह छलक जाता है। किन्तु समुद्र मे पहाड डालने पर भी नहीं छलकता। इसी प्रकार क्षमा बडे पुरुषो मे हुआ करती है। हाथी पर कुत्ता भौकता है, तब भी हाथी शान्ति के साथ निकल जाता है। किन्तु ऐसे मौके पर गधा लात मारता है। ठीक उसी प्रकार वीर पुरुष क्षमा से सब–कुछ सहन कर लेते है पर अज्ञानी जीव पुन–पुन क्रोध करते रहते है।

शूरवीर, ज्ञानी, पडित पुरुष ही जानते है कि क्षमा कैसे दी जाती है? बुजदिल कभी भी क्षमा नही कर सकते। ऐसा उनके स्वभाव मे नहीं होता। महापुरुषो के पास क्षमारूपी उत्तम सजीवनी बूटी होती है जिसके सहारे वे कर्मरूपी सारे रोगो को नष्ट करके शिवपुरी मे सुगमता से प्रवेश पा लेते हैं। अत वर्तमान मे भी टेन्सनमुक्त रहने के लिए, प्रसन्न रहने के लिए व शान्ति को इस भव–परभव मे प्राप्त करने के लिए क्षमाभाव को अपनाना चाहिए।



आगम का आह्वान - मानले इंसान

दया धम्मस्स मूलो अत्थि

अर्थात् दया धर्म का मूल है।

दयाधर्म अनादिकाल से चला आ रहा है। जब से जीव–जगत है तभी से दयाधर्म भी है। दयाधर्म के बिना जीव–जगत का अस्तित्व रह पाना असभव है। जिस क्षण जीवो मे से दयाधर्म उठ जाएगा उस दिन प्रलय मचते देर नहीं लगेगी यानी दयाधर्म के आधार पर ही जीव जगत टिका हुआ है।

दयाधर्म सभी धर्मो मे अत्युत्तम है। सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि सभी धर्मो के मूल मे दयाधर्म ही रहा हुआ है। जहॉ दया नही, वहॉ कोई धर्म नहीं टिक सकता। सत्य आदि समस्त धर्मो मे प्राण सचार कर देने वाला दयाधर्म ही है। दयाधर्म के आधार पर ही सारे धर्म पनपते हैं। दयाधर्म के बिना तो पेट–पूर्ति भी नही होगी। दयाधर्म के आधार पर ही अहिसाव्रत का भी पालन हो सकता है। दयागुण के अभाव मे जीव सम्यक्दृष्टि भी नही हो सकता। सम्यक्दृष्टि का प्रमुख लक्षण अनुकपा ही है। सम्यक्त्व के अभाव मे दया तो फिर भी पायी जा सकती है किन्तु दया के अभाव मे सम्यक्त्व नही पाया जा सकता।

दयागुण तो मानव मात्र का सहजिक गुण होता है। मानवता भी दयाधर्म पर ही टिकी हुई है। दयाधर्म के प्रभाव से ही भाई अपने भाई को भाई के रूप मे समझता है व अन्य व्यक्तियो को भी भाईरूप मे देखने की दृष्टि रख पाता है। छोटे–बडे, रोगी, तपस्वी, ग्लान की सेवा करने की भावना जाग्रत होती है। मान–अपमान, ऊॅच–नीच की भावनाऍ समाप्त होकर समतोल की भावनाऍ जाग्रत होती है और ससारगत सभी जीवो के साथ आत्मवत् सर्वभूतेषु की भावनाऍ उद्भूत होती है जिससे वह सहज रूप मे ही हर दु खी प्राणी का सहयोग करने हेतु तत्पर हो जाता है।

अमेरिका के प्रेसीडेन्ट अब्राहम लिकन एक बार अपने भवन से राजभवने की ओर जा रहे थे। रास्ते मे उन्होने एक सुअर को कीचड मे फॅसा हुआ देखा। वह सुअर बाहर निकलने का जितना प्रयास कर रहा था उतना ही उस दलदल मे फॅसता जा रहा था। अब्राहम लिकन ने जब उस सुअर की दयनीय स्थिति देखी तो मन करुणा से भर उठा। बिना कुछ सोचे उस सुअर

को बचाने के लिए वे कीचड के अन्दर गए और अपनी दोनो भुजाओ की सहायता से सुअर को खींचकर बाहर निकाल दिया। लिकन का सारा शरीर व सुन्दर पोशाक, सभी कीचड से भर गए थे। वे उसी हालत मे राजभवन पहुँचे। सभी सभासदो ने जब उन्हे इस हालत मे देखा तो वे आश्चर्यचकित हो गए। सभी ने लिकन से इस विषय मे पूछा तो लिकन ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तब सभासद बोलने लगे कि जब हमारे राष्ट्र के राष्ट्रपति ने एक दु खी सुअर पर इतनी दया की है तो फिर जनता की सुख–सुविधा के सबध मे तो कहना ही क्या! इस तरह उनके गुणो का बखान करके उनकी प्रशसा करने लगे।

जब लिकन ने ऐसी बात सुनी तो उन्होने बडी नम्रता से कहा कि–अरे! मैने कीचड मे फँसे हुए सुअर को निकालकर खुद पर दया की है न कि उस सुअर पर। क्योकि मैने कीचड मे फँसे हुए सुअर को देखकर दु ख का अनुभव किया था और उस दु ख को दूर करने के लिए उस सुअर को बाहर निकाला। अब आप ही बताइए कि मैने अपने पर दया की या उस सुअर पर?

ससार मे इसान अपने दु ख को ही दु ख मानता है परन्तु दुसरो के दु ख को अपना दु ख मानकर सहयोग करने वाला विरला होता है। यह सहजिक दया का सद्गुण व्यक्ति को मानवता के साथ जीने हेतु प्रेरित करता है। वे प्रत्येक आत्मा के सुख–दु ख को अपना सुख–दु ख मानने लगते है, छोटे–से–छोटे जीव के सुख–दु ख को अपना सुख–दु ख समझके चलते है। अब्राहम लिकन को राजसभा भवन मे समय से पहुँचना जरूरी था। किन्तु उस सुअर के दु ख को भी वे नहीं देख सके और किसी दूसरे को उसे बचाने का आदेश बिना दिए, स्वय अपने हाथो से उसे पकडकर निकाल दिया और उसी कीचड की गदगी से सने कपडो मे राजभवन मे पहुँच गए। सभी लोगो ने राष्ट्रपति को देखा और वे आश्चर्यचकित हो गए।

तभी उन आश्चर्यचकित दृष्टियो का समाधान करते हुए बग्घी वाले ने सुअर को निकालने वाली बात बतायी। ऐसी करुणामयी बात को सुनकर सभी प्रशसा करने लगे। तब लिकन साहब ने कहा– मैंने सुअर को तो बचाया किन्तु उससे भी ज्यादा अपने आपको बचाया। अगर मै सुअर को नहीं निकालता तो वह मेरी आखो से प्रत्यक्ष देखी गयी सुअर की स्थिति मुझे दुखित करती रहती। मैने तो अपने आपको दु ख से बचाया हे।

देखिए अब्राहम लिकन ने उस सुअर की आत्मा के दु ख को भी अपना दु ख ही समझ लिया था। किन्तु आज रास्ते मे चल रहे है या प्रवचन–स्थल पर ही आ रहे है। रास्ते मे दु खी–दर्दी को देखले तो आपका मन दया से भरता है या नहीं? अगर आपका हृदय दयार्द्र नहीं होता है तो फिर दयामय प्रवचन माता की सेवा आप केसे कर सकेगे? प्रवचन सुनना आपका व्यर्थ ही

होगा। अत रास्ते मे कोई तडफता हुआ, दु खी आत्मा मिल जावे तो पहले आप उसके लिए यथायोग्य कुछ करे, फिर आगे बढे। क्योकि प्रवचन मे भी तो आपको यही मिलना है।

घर मे सास या बहू तीन–चार डिग्री बुखार मे पडी है, अपग है। उसे उसी समय सेवा की अपेक्षा है और आप उन्हे छोडकर, उनकी उपेक्षा करके स्थानक मे जा रहे हैं, सामायिक, दया, पौषध कर रहे हैं। यह किसी सम्यग्दृष्टि का भी लक्षण नही है। चाहे आप कितना भी धर्म–ध्यान करो, तपस्याएँ करो, महीने के छह पौषध भी करो किन्तु किसी दु खी जीव की उपेक्षा कर दी या विवेक के साथ समय पर काम नही किया तो वह सब धर्म–ध्यान बेकार ही सिद्ध होगा। दयाधर्म को सभी धर्मो ने एक स्वर से स्वीकार किया है। यहॉ तक कि मुस्लिम कहलाने वाली जाति ने भी दयाधर्म को माना है।

एक बार एक मुस्लिम सन्त शेख शिबली एक बनिये की दुकान से आटा लेके आए। घर पर आकर आटे के बर्तन को खोलकर देखा तो एक चींटी उसमे तेजी से इधर–उधर भाग रही थी। उस आकुल–व्याकुल दौडती हुई चीटी को देखकर शेख शिबली बडे दु खी हुए। रात मे दुकान बद होने का समय था। अत अब करे क्या? वे उस चींटी के दु ख से इतने दु खित हो गए कि खाना–पीना व सोना भी अच्छा नही लग रहा था। वे आखिर उठे और उस चीटी को ले जाकर उस बन्द दुकान मे भी दरवाजे के नीचे की जगह मे छोडकर आ गए। उनके मन मे एक ही बात थी कि चींटी का घर नही छूटना चाहिए। आज तो चीटी का घर क्या जहरीली दवाइयो से बनी चॉक की लकीरे ही चीटी के घर के पास कर देते है जिससे वे कीडियॉ जहरीली सुगन्ध से ही मुर्च्छित होकर मर जाती है। मच्छरो को मारने की दवाइयॉ घर मे छिडकाते रहते है।

जीवो की दया को गौण करके एकमात्र घर की सफाई का ही लक्ष्य बना हुआ है। किन्तु आत्मिक घर को निरन्तर मैला बनाते जा रहे है, अपने अन्तर से उठ रहे दयाभाव की उपेक्षा करके। कहॉ तो शास्त्रो मे धर्मरुचि अणगार का वर्णन आता है कि कीडियो की रक्षा के लिए कडवे तूम्बे की सब्जी को ही पी गए, अपने आपका ही उत्सर्ग कर दिया। प्रतिफलस्वरूप एकाभवतारी बनकर सर्वार्थसिद्ध विमान मे देव बने।

वास्तव मे करुणावान की करुणा निराली ही होती है। वे अपने प्राणान्त का दण्ड देने वालो पर भी करुणा ही बरसाते रहते हैं। खदक मुनि की चमडी उतारने चाडाल पहुँच गए। खदक मुनि उन पर भी करुणा रस बरसाते हुए बोला–मेरे शरीर मे मास कम होने से चमडी हड्डियो से चिपक गई है। अत आप लोगो को चमडी उतारने मे दिक्कत आएगी। आपको जिस तरह से सहूलियत हो, वैसे आसन मे खडा रहने, बैठने हेतु कह देना। मै उसी ढग से

को बचाने के लिए वे कीचड के अन्दर गए और अपनी दोनो भुजाओ की सहायता से सुअर को खींचकर बाहर निकाल दिया। लिकन का सारा शरीर व सुन्दर पोशाक, सभी कीचड से भर गए थे। वे उसी हालत मे राजभवन पहुॅचे। सभी सभासदो ने जब उन्हे इस हालत मे देखा तो वे आश्चर्यचकित हो गए। सभी ने लिकन से इस विषय मे पूछा तो लिकन ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तब सभासद बोलने लगे कि जब हमारे राष्ट्र के राष्ट्रपति ने एक दु खी सुअर पर इतनी दया की है तो फिर जनता की सुख–सुविधा के सबध मे तो कहना ही क्या! इस तरह उनके गुणो का बखान करके उनकी प्रशसा करने लगे।

जब लिकन ने ऐसी बात सुनी तो उन्होने बडी नम्रता से कहा कि–अरे! मैने कीचड मे फॅसे हुए सुअर को निकालकर खुद पर दया की है न कि उस सुअर पर। क्योकि मैने कीचड मे फॅसे हुए सुअर को देखकर दु ख का अनुभव किया था और उस दु ख को दूर करने के लिए उस सुअर को बाहर निकाला। अब आप ही बताइए कि मैने अपने पर दया की या उस सुअर पर?

ससार मे इसान अपने दु ख को ही दु ख मानता है परन्तु दुसरो के दु ख को अपना दु ख मानकर सहयोग करने वाला विरला होता है। यह सहजिक दया का सद्गुण व्यक्ति को मानवता के साथ जीने हेतु प्रेरित करता है। वे प्रत्येक आत्मा के सुख–दु ख को अपना सुख–दु ख मानने लगते है, छोटे–से–छोटे जीव के सुख–दु ख को अपना सुख–दु ख समझके चलते है। अब्राहम लिकन को राजसभा भवन मे समय रो पहुॅचना जरूरी था। किन्तु उस सुअर के दु ख को भी वे नहीं देख सके और किसी दूसरे को उसे बचाने का आदेश बिना दिए, स्वय अपने हाथो से उसे पकडकर निकाल दिया और उसी कीचड की गदगी से सने कपडो मे राजभवन मे पहुॅच गए। सभी लोगो ने राष्ट्रपति को देखा और वे आश्चर्यचकित हो गए।

तभी उन आश्चर्यचकित दृष्टियो का समाधान करते हुए बग्घी वाले ने सुअर को निकालने वाली बात बतायी। ऐसी करुणामयी बात को सुनकर सभी प्रशसा करने लगे। तब लिकन साहब ने कहा– मैने सुअर को तो बचाया किन्तु उससे भी ज्यादा अपने आपको बचाया। अगर मै सुअर को नही निकालता तो वह मेरी आखो से प्रत्यक्ष देखी गयी सुअर की स्थिति मुझे दुखित करती रहती। मैने तो अपने आपको दु ख से बचाया है।

देखिए अब्राहम लिकन ने उस सुअर की आत्मा के दु ख को भी अपना दु ख ही समझ लिया था। किन्तु आज रास्ते मे चल रहे है या प्रवचन–स्थल पर ही आ रहे है। रास्ते मे दु खी–दर्दी को देखले तो आपका मन दया से भरता है या नही? अगर आपका हृदय दयार्द्र नही होता है तो फिर दयामय प्रवचन माता की सेवा आप कैसे कर सकेगे? प्रवचन सुनना आपका व्यर्थ ही

होगा। अत रास्ते मे कोई तडफता हुआ, दु खी आत्मा मिल जावे तो पहले आप उसके लिए यथायोग्य कुछ करे, फिर आगे बढे। क्योकि प्रवचन मे भी तो आपको यही मिलना है।

घर मे सास या बहू तीन–चार डिग्री बुखार मे पडी है, अपग है। उसे उसी समय सेवा की अपेक्षा है और आप उन्हे छोडकर, उनकी उपेक्षा करके स्थानक मे जा रहे हैं, सामायिक, दया, पौषध कर रहे हैं। यह किसी सम्यग्दृष्टि का भी लक्षण नही है। चाहे आप कितना भी धर्म–ध्यान करो, तपस्याएँ करो, महीने के छह पौषध भी करो किन्तु किसी दु खी जीव की उपेक्षा कर दी या विवेक के साथ समय पर काम नही किया तो वह सब धर्म–ध्यान बेकार ही सिद्ध होगा। दयाधर्म को सभी धर्मो ने एक स्वर से स्वीकार किया है। यहॉ तक कि मुस्लिम कहलाने वाली जाति ने भी दयाधर्म को माना है।

एक बार एक मुस्लिम सन्त शेख शिबली एक बनिये की दुकान से आटा लेके आए। घर पर आकर आटे के बर्तन को खोलकर देखा तो एक चींटी उसमे तेजी से इधर–उधर भाग रही थी। उस आकुल–व्याकुल दौडती हुई चींटी को देखकर शेख शिबली बडे दु खी हुए। रात मे दुकान बद होने का समय था। अत अब करे क्या? वे उस चींटी के दु ख से इतने दु खित हो गए कि खाना–पीना व सोना भी अच्छा नही लग रहा था। वे आखिर उठे और उस चींटी को ले जाकर उस बन्द दुकान मे भी दरवाजे के नीचे की जगह मे छोडकर आ गए। उनके मन मे एक ही बात थी कि चींटी का घर नही छूटना चाहिए। आज तो चींटी का घर क्या जहरीली दवाइयो से बनी चॉक की लकीरे ही चीटी के घर के पास कर देते है जिससे वे कीडियॉ जहरीली सुगन्ध से ही मुर्च्छित होकर मर जाती है। मच्छरो को मारने की दवाइयॉ घर मे छिडकाते रहते है।

जीवो की दया को गौण करके एकमात्र घर की सफाई का ही लक्ष्य बना हुआ है। किन्तु आत्मिक घर को निरन्तर मैला बनाते जा रहे है, अपने अन्तर से उठ रहे दयाभाव की उपेक्षा करके। कहॉ तो शास्त्रो मे धर्मरुचि अणगार का वर्णन आता है कि कीडियो की रक्षा के लिए कडवे तूम्बे की सब्जी को ही पी गए, अपने आपका ही उत्सर्ग कर दिया। प्रतिफलस्वरूप एकाभवतारी बनकर सर्वार्थसिद्ध विमान मे देव बने।

वास्तव मे करुणावान की करुणा निराली ही होती है। वे अपने प्राणान्त का दण्ड देने वालो पर भी करुणा ही बरसाते रहते हैं। खदक मुनि की चमडी उतारने चाडाल पहुँच गए। खदक मुनि उन पर भी करुणा रस बरसाते हुए बोला–मेरे शरीर मे मास कम होने से चमडी हड्डियो से चिपक गई है। अत आप लोगो को चमडी उतारने मे दिक्कत आएगी। आपको जिस तरह से सहूलियत हो, वैसे आसन मे खडा रहने, बैठने हेतु कह देना। मैं उसी ढग से

हो जाऊँगा ताकि आपको अपने कार्य मे मेरे कारण कोई तकलीफ पैदा न हो।

मेघरथ राजा ने एक कबूतर को बचाने हेतु अपने शरीर के मास को काटकर कबूतर के मालिक को दे दिया। अरिष्टनेमि भगवान ने पशुओ की रक्षा हेतु अपना विवाह करना अस्वीकृत कर दिया और तोरण से लौट गए।

मेघकुमार ने हाथी के भव मे एक शशक की रक्षा की। अत हाथी से देव, फिर मनुष्य बन गए। मेतार्य मुनि ने क्रोच पक्षी की रक्षा करके मोक्ष को प्राप्त कर लिया। व्यक्ति के लिए तपस्या, पौषध, सयम, साधना आदि कठिन पड सकते है पर दयाभाव रखना तो सरल ही है। आप महापुरुषो जैसी दया नही कर सकते तो अपनी यथाशक्ति दयाभाव को अवश्य अपनाएँ। व जीवो की रक्षा हेतु पूरे प्रयत्न किए जाएँ।

न तत्परस्य सदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः।

अर्थात् जो व्यवहार अपने साथ किए जाने पर प्रतिकूल मालूम देता है, वह दूसरो के लिए भी नही करना चाहिए।

धारा नगरी के राजा यदुराज को एक बार किसी भयकर बीमारी ने घेर लिया। कई मत्र–तत्र, ताबीज करवाये किन्तु ठीक नही हुए तब किसी ने बताया कि आप 900 युवा जोडो के रक्त से स्नान करेगे तो ठीक हो सकेगे। राजा उस हेतु भी तैयार हो गए। दुनिया मे सब तरह के व्यक्ति होते है। कोई अपनी जान देकर छोटे–से प्राणी को भी बचा लेते है तो कोई दूसरो के प्राणो को लेकर अपने प्राणो की रक्षा करना चाहते है। ऐसे घृणित काम करने वालो की भी कमी नही है। राजा ने 900 युवा मानव के जोडे एकत्रित करवा लिए और कारागृह मे डाल दिये। ज्योतिषी को बुलाकर पूछा कि अब किस दिन इन जोडो को पीलकर रक्त निकाला जाए व स्नान किया जाए? दिन भी निश्चित हो गया।

बन्दीगृह के पहरेदार बहादुर शेरसिह को यह बिल्कुल पसन्द नही आया। कुछ दिन और जीने के लिए 900 युवा मानवीय जोडो की क्रूरतम हत्या! सभी रो रहे है। घर–घर मे भी रुलायी हो रही है। बहादुर शेरसिह ने सोचा– इतनो को बचाने के लिए मै मेरे प्राण दे दूँ तो अच्छा रहेगा। उसका दयावान मन पूरी तरह से तैयार हो गया और निश्चित तिथि से एक दिन पहले ही रात को 900 जोडो को बन्दीगृह से छोड दिया। रातो–रात बहुत दूर निकल जाने को बोल दिया। सवेरे पता लगते ही सम्राट को बहुत गुस्सा आया और शेरसिह की बोटी–बोटी उडाने का आदेश दे दिया। शेरसिह तो पहले ही मृत्यु हेतु तैयार था पर फिर भी राजा के सैनिको से खूब लडा आखिर सिर धड से अलग हो गया। 900 जोडो मे हिन्दू–मुस्लिम दोनो थे। अत जहाँ उसका सिर गिरा वहा हिन्दुओ ने अपना मन्दिर बना दिया व जहाँ धड गिरा वहाँ पर मुसलमानो ने अपना मन्दिर बना दिया।

बहादुर शेरसिह ने अपने प्राण देकर 1800 युवक–युवतियो को बचा लिया। किन्तु आज की स्थिति एकदम विपरीत हो रही है। अपने शरीर को पुष्ट बनाने हेतु अण्डे, मास, मछली, के तेल का सेवन किया जा रहा है। जिह्वेन्द्रिय के स्वाद हेतु अडेमिश्रित बाजार की बनी वस्तुओ को खाया जा रहा है। कुछ देर के लिए टेन्सन को मिटाने शराब पी जा रही है। इस प्रकार जैनियो की स्थिति बिगडती जा रही है। दयागुण को आत्मा से निकालकर जबरदस्ती बाहर फेका जा रहा है।

सौन्दर्य प्रसाधन हेतु दयाधर्म की ओर से दृष्टि बिल्कुल हटा ली है। जहॉ स्थानक मे वायुकाय जीवो की रक्षा के लिए मुँह पर आठ लडा कपडा बाधा जा रहा है। वही पर हजारो कीडो से बनी साडी पहनके आ रहे है। खून से सनी लिपस्टिक लगाके आ रहे है। जीवित मगरमच्छ व सर्प को बेरहमी से मारकर निकाली गई चमडी से बने पर्स को लेके आ रहे है। सीपो को मारकर निकाले गये मोतियो की मालाऍ पहनकर आ रहे है। क्या स्थिति बनी हुई है आज की?

आज व्यक्ति को सामान्य वस्तु पसन्द नहीं आती किन्तु जिसमे जिन्दे पशुओ की, गर्भगत शिशुओ की हिसाऍ हुई हो, उनसे बनी वस्तुऍ पसन्द आती है और उन हिसात्मक वस्तुओ का प्रयोग करके अपना स्टेण्डर्ड बनाने मे लगे हुए है। चेहरे की सुन्दरता के लिए कैसी–कैसी हिसात्मक क्रीम आदि का प्रयोग करते है। किन्तु इस प्रकार से बाहरी सुन्दरता बढाकर अन्तरग मे पापो की गन्दगी भर रहे है। एक तरफ तो सवेरे उठकर गाय को व कुत्ते को रोटी देगे, दूसरी ओर उन जिन्दी गर्भवती गायो को बेरहमी से मारकर उनके मासूम बछडे को अन्दर से निकालकर उस पर गर्म–गर्म पानी डालकर लकडियो से पीटकर उस फूली हुई चमडी के नरम–नरम जूते व बेल्ट आदि पहनना पसद करते हैं। कहॉ गई आपकी दया? सन्नी पच्चेन्द्रिय प्राणियो की हत्या से भी आप नहीं घबराते। कितना कठोर होगा आपका दिल ! सब–कुछ जानते हुए भी अनजान कैसे बन जाते है? क्या उन जूतो, बेल्ट, पर्स, सिल्क की साडी आदि हिसात्मक पहनावे के बिना आपकी जिन्दगी नहीं चल सकती? आपका शरीर कैसे उन जानवरो की हिसा से बनी सामग्रियो को अपने ऊपर लाद लेता है? उनमे उनकी बद्दुआए भरी हुई है। उन पशुओ की दर्दभरी आहे आपको ले डूबेगी। आपकी जिन्दगी समस्याओ से भर जाएगी। आप तो आबाद होने के सपने लेकर चल रहे हो, वे सारे एक क्षण मे बर्बाद हो जाऍगे। अचानक विकट परिस्थितियो से घिर जाऍगे। तनावपूर्ण जिन्दगी बन जाएगी। नींद की गोलियॉ लेने पर भी नींद आना सभव नहीं होगा। फिर आप दौडते रहेगे डाक्टर, वैद्यो के पास। तात्रिक–मात्रिको के पास। महात्माओ से आशीर्वाद लेने जाओगे। किन्तु इन सबसे होगा क्या? जहॉ आपके कार्य ही

ऐसे किए हुए है तो आप जिन्दगी मे सफल नही हो सकते। ऐसी स्थिति मे आपकी जिन्दगी बनाने मे कोई सहारा, सहयोग नही कर सकता।

अगर आप अपनी जिन्दगी को शान्ति के साथ जीना चाहते है तो प्राणीमात्र के साथ मित्रवत् व्यवहार कीजिए। आपका अच्छा पहनावा आपकी जिन्दगी मे खुशी नही भरेगा। अपितु आपका दयापूर्ण सद्व्यवहार आपकी जिन्दगी मे खुशियॉ भरने वाला बनेगा। ससार मे सुख, शाति, आनद, मगल का साम्राज्य धर्म (दया) पर ही आधारित है किन्तु दया का झरना सूखता हुआ नजर आ रहा है। दया की अल्पता से राग, द्वेष, घृणा, कलह आदि की उत्पत्ति हो रही है व मानवता का टिक पाना भी मुश्किल हो रहा है। दया सिर्फ छोटे जीवो तक ही सीमित रह गई है। चीटियो को बचाने हेतु जैनियो का ध्यान जाता है। किन्तु भाई को मारने के लिए उतारू हो जाते है। उसे हानि पहुॅचाने, उसके हक को छीनने के लिए तैयार हो जाते है। इसका मतलब यह नही कि चीटियो को बचाने मे धर्म नहीं। किन्तु जिस व्यक्ति की दया चीटी जैसे छोटे जीव को भी बचाने मे लगी है, वहॉ पर मनुष्य तक तो दया पहॅुचनी ही चाहिए।

पशु कहलाने वाले प्राणी मे भी दया होती है। हाथी ने शशक पर दया की थी। नन्दन मणिहार के जीव ने मेढक के भव मे अपने श्रावक व्रतो का पालन करते हुए जीवो की रक्षा की थी। हिसक कहलाने वाले सिह के अन्दर भी दया होती है जिससे वह अपने सजातीय बच्चे की रक्षा करता है। किन्तु मानव अपने स्वार्थ–पोषण मे दयाविहीन हो रहा है। दूल्हा जब तोरण पर जाता है तो तोरण पर बने हुए पशु–पक्षी के चित्र दूल्हे के हाथ मे तलवार देखकर सकेत करते है– हे दयावान्! तेरे घट मे यदि दया है तो तू वापस लौट जा। किन्तु वह दूल्हा काम–भोगो के वशीभूत होकर उन पशु–पक्षियो पर तलवार टिका ही देता है। वो तो अरिष्टनेमि भगवान थे, जो पशुओ के करुण क्रन्दन को सुनकर पुन लौट गए। सयति वर्ग भी हृदय मे रहे हुए दयागुण के कारण ही कितनी भी गरमी हो, पखे, कूलर, बर्फ आदि का प्रयोग नही करते तथा कितनी भी सर्दी हो फिर भी हीटर आदि का प्रयोग नही करते। कठिनतम साधनाऍ व दीर्घ तपस्याऍ दया के वशीभूत होकर ही करते है।

वैसे दया अभी भी जीवित है। तभी तो परिवार, समाज व राष्ट्र चल रहे है तथा परस्पर सहयोग, सेवा आदि की उत्तम भावनाऍ बनी हुई है और जब तक दया का अस्तित्व रहेगा तब तक इस ससार का भी अस्तित्व रहेगा। वेद मे भी कहा है –

सर्वे वेदास्तु तैर्ज्ञात· सर्वे यज्ञाश्च भारत,
सर्वे तीर्थाभिषेकाश्च, कृतायै प्राणिनां दया।

अर्थात् सभी वेद उसी ने जाने है, सभी यज्ञ उसी ने किए है, सभी तीर्थ उसी ने किए है, जिसने प्राणी की दया पाली है।

साधु–साध्वी भी अपने पास मे आने वाले भाई–बच्चो को सर्वप्रथम यही फरमाते है कि "दया पालो।" यानी साधु–साध्वी अपने पास आए हुए भाई बहिन को अल्पतम समय मे व अल्पतम शब्दो मे उपदेश दे देते है कि दया पालो यानी ससारगत सभी जीवो पर दया करो ताकि सारी सृष्टि आपकी हो जाएगी। आध्यात्मिक क्षेत्र मे भी दया के बिना हर तरह की त्याग–तपस्याएँ बेकार है।

अत हर तरह की त्याग–तपस्या से पूर्व दयाभाव को दिल मे गहराई के साथ उतारना जरूरी है व कार्यप्रणाली भी दयाभाव के साथ ही बने तो वर्तमान जीवन मे ही शान्ति की प्राप्ति हो जाएगी।



सहकार - सदा सुखकार

परस्परोपग्रहो जीवानाम्

अर्थात् परस्पर एक दूसरे का सहायक होना जीवो का उपकार है।

ससार का प्रत्येक प्राणी एक–दूसरे के उपकार–सहयोग पर आश्रित है। मानव के दोनो हाथ एक–दूसरे को सहयोग प्रदान करते है। एक हाथ से कोई भी काम बराबर नही हो सकता। चलने मे दोनो पॉव एक–दूसरे का सहयोग करते है। एक पॉव से चलना मुश्किल होता है। पैर मे यदि कॉटा लग गया है तो तुरन्त मस्तिष्क को सूचना पहुँचती है और मस्तिष्क हाथो को आदेश देता है और हाथ तुरत कॉटे को निकालने के लिए पॉव की ओर बढ जाते है। पेट के खाली होने पर रोटी की आवश्यकता होती है। हाथ रोटी का कौर तोडकर मुँह मे रखता है। दॉत रोटी को चबाते है। मुँह उस चबी हुई खाद्य वस्तु को गले की ओर ढकेलता है। पेट उस वस्तु मे से सार तत्त्व निकालकर सप्त धातु रूप परिणमाता है व असार वस्तु को बाहर फेक देता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति ऑखो से परवश होता है उसकी अन्य इन्द्रियॉ ज्यादा काम करना प्रारभ कर देती है। इस प्रकार शरीर के अग–प्रत्यग भी एक–दूसरे का सहयोग करते है।

ठीक इसी प्रकार मानव को प्रतिपल सहयोग के लिए तैयार रहना चाहिए। भगवान महावीर स्वामी ने दीक्षा से पूर्व प्रतिदिन दान देकर मानवो को सहयोग किया व दीक्षा के बाद उपदेश के माध्यम से भव्य जीवो को ससार सागर से तिराने मे सहयोग किया। हर जीव को अन्य जीव के सहयोग की अपेक्षा रहती है। परिवार मे बच्चा जन्म लेता है तो मॉ के सहयोग की अपेक्षा रहती है। कुछ बडा होता है तो अध्ययन के लिए मास्टर की आवश्यकता होती है। कुछ और बडा होने पर पत्नी, बच्चे, दोस्त आदि अनेको की आवश्यकता होती है। अपनी सुरक्षा हेतु राज्य, शासन के सहयोग की अपेक्षा होती है। आध्यात्मिक विकास व सुसस्कारो हेतु धर्मसघ व धर्मगुरु के सहयोग की अपेक्षा होती है। इतना ही नही, इस जीवन को जीने के लिए अनेको की आवश्यकता होती है।

रोटी के एक कौर के पीछे पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति व अनेक पशु व मानवो का सहयोग होता है। तब कहीं जाकरके वह रोटी का एक कौर तैयार होता है। जीवनोपयोगी किसी भी मकान , वस्त्र आदि सामग्री को

लीजिए। हर सामग्री के पीछे अनेकानेक जीवो का सहयोग जुडा हुआ है। बिना सहयोग के किसी भी जीव का काम नही चलता है।

नौकर मालिक का सहयोग सेवा करके करता है और मालिक नौकर का सहयोग समय पर वेतन देकर करता है। मॉ सन्तान का सहयोग, परवरिश करके व सस्कार देकर करती है और पुत्र माता–पिता की सेवा करके, उनकी आज्ञाओ का पालन करके, धर्म–साधना हेतु पूरा समय देकर उनका सहयोग करता है। पति–पत्नी आपस मे पूर्ण सहयोग करते है। जहॉ जरा भी लुकाव–छुपाव होता है वहॉ तकरार हुए बिना नहीं रहती। अर्थात् विरोधी विचार वाले जोडे मे फोडे पड ही जाते है किन्तु जो पति–पत्नी पूर्ण रूप से हर कार्य मे एक–दूसरे के सहयोगी बने रहते है तो जीवन मिठासयुक्त बना रहता है।

देवरानी–जेठानी को भी परस्पर सहयोग की आवश्यकता होती है। अगर बराबर सहयोग करते हुए परिवार मे काम करते रहे तो वह परिवार स्वर्गवत् बन जाता है। अगर देवरानी–जेठानी आपस मे सहयोग नही करते हैं तो घर नरक बन जाता है। भाई को भाई के सहयोग की पूर्ण आवश्यकता रहती है। समय पर भाई ही काम आता है। यार–दोस्त तो स्वार्थ के होते है। उनका सहयोग स्वार्थ से परिपूरित रहता है। किन्तु भाई का सहयोग नि स्वार्थ होता है। कहा भी जाता है–

खाना तो मॉ के हाथ का, चाहे जहर ही हो,
चलना हो तो सडक का, चाहे फेर ही हो,
बैठना भाई के साथ, चाहे वैर ही हो।।

किन्तु आज भाई के नि स्वार्थ सहयोग को छोडकर मित्रो के स्वार्थमय सहयोग को स्वीकार करते है जिससे परिवार मे विग्रह होते हुए दिखते है।

सयुक्त परिवार मे रहने के लिए भी परस्पर सहयोग की आवश्यकता होती है। बिना परस्पर सहयोग के सयुक्त परिवार चल नही सकते। सहयोग देने से जैसे ही अपने आपको बचाया तो परिवार मे विग्रह होते देर नही लगती। परिवार के टुकडे–टुकडे हो जाते है। परिवार के टुकडे होने के बावजूद भी तो उस परिवार मे सहयोग की आवश्यकता रहती है। अगर वह अपनी अकड मे फॅस कर किसी से सहयोग नहीं लेता है तो अपनी बात किसी से नही कह पाता है। कभी–कभी डिप्रेशन मे चला जाता है। जिससे सही निर्देश भी नही मिल पाते है। ऐसी स्थिति मे पडोसी–पडोसी को भी आपस मे सहयोग की अपेक्षा रहती है। पडोसी के घर मे आग लग रही है तो पडोसी को उस आग को बुझाने हेतु भाग–दौड करनी पडेगी। अगर वह पडोसी को सहयोग नहीं करता है तो उसका घर भी आग की चपेट मे आ जाएगा। अत पडोसी को पडोसी के सहयोग की परम आवश्यकता होती है। इसलिए आज देखा जाता है कि पडोसी अच्छा नही तो बिल्डिग की कीमत गिर जाती है।

मकान खरीदने या किराए पर लेने से पूर्व लोग पडोसी को पहले देखते है।

श्रावक और साधु का भी आपस मे सहयोग रहता है। साधु–साध्वी ससार छोड देने पर भी कपडा व आहार आदि के लिए श्रावक–श्राविकाओ का सहयोग लेते ही है तथा श्रावक–श्राविका भी साधु–साध्वी से दु खो के निवारण व सुखो की प्राप्ति हेतु सही मार्ग–निर्देशन लेने के रूप मे सहयोग लेते ही है। श्रावक व साधु तो दो हाथो की तरह आपस मे सहयोगी होते है। दो हाथो मे से एक हाथ मोटा होता है व दूसरा हाथ पतला होता है पर आपस मे दोनो का सहयोग अपेक्षित होता है। ठीक उसी प्रकार साधु मोटे हाथवत् व श्रावक पतले हाथवत् है पर दोनो को आपसी सहयोग की परम आवश्यकता होती है। श्रावक साधु को बराबर सहयोग देता रहे तो साधु अपने सयमी जीवन का बराबर पालन कर सकते है और साधु भी श्रावको के समक्ष शास्त्रो के सिद्धान्तो का सही निरूपण करते रहे तो श्रावक भी अपने श्रावकधर्म का परिपालन बराबर कर सकते है और परस्पर सहयोग से समाज को उन्नत बना सकते है।

समाज मे भी हर व्यक्ति को आपसी सहयोग की आवश्यकता होती है। अगर अध्यक्ष व मन्त्री सोचले कि हम ही सब–कुछ है और सर्वसाधारण लोगो की उपेक्षा करे तो वे अपने कार्यकाल मे कभी भी सफलता प्राप्त नही कर सकते। वे उन्हे जड से ही उठा देगे। सन्त स्टेज पर भी सन्तो को एक–दूसरे सतो के सहयोग की परम आवश्यकता रहती है। तभी सतो की साधना सफल हो सकती है।

मानव की मानवता भी आपसी सहयोग पर ही जीवित है। परस्पर सहयोग के निमित्त ही माता–पिता, भाई–बहिन, पति–पत्नी आदि के मधुर रिश्ते कायम रह रहे है तथा परिवार, समाज, राष्ट्र, धर्म भी पारस्परिक सहयोग से ही विकसित होते है। इस प्रकार मानव की पूरी जिन्दगी अन्य के सहयोग पर ही आधारित है। दूसरो से सहयोग लेने के साथ–साथ सहयोग देना भी सीखिए। अगर व्यक्ति सिर्फ लेता ही लेता है, देता कुछ भी नही है तो वह दिवालिया के विशेषण से उपमित हो जाता है। लेने के साथ हर क्षण सहयोग देने का भी अपना कर्तव्य व्यक्ति को समझना चाहिए।

आज आप देखते हैं कि दो दुकाने पास–पास मे है। दोनो ही दुकानो पर माल का स्टॉक बराबर है पर एक की दुकान बहुत अच्छी चल रही है व दूसरे की नही। ऐसा क्यो होता है? वह इसीलिए कि पूर्वभव मे दूसरो को सहयोग देने वाले को सहज मे ही अधिक लाभ प्राप्त हो जाता है। जिसने पूर्व मे किसी को सहयोग नही किया है। उसे यहॉ बहुत ज्यादा पुरुषार्थ करने पर भी पर्याप्त नही मिल पाता। दुनिया मे आकर आप कितना भी धन एकत्रित कर लो, परिवार बढा लो किन्तु वे आपके परभव मे सहयोगी नहीं बन सकते। एक धनवान व्यक्ति ने अपनी जीवन गाथा सुनाई कि मै पहले जब गरीब था तब

आराम की निश्चित होकर नीद लेता। शरीर भी स्वस्थ रहता था। पर जब से धनवान बना हूँ, दुकान व फेक्ट्रियो का काम इतना अधिक बढ गया है कि लेटरिन जाने की फुरसत नहीं मिलती। वहॉ भी फोन की घन्टियॉ सुनाई देती रहती हैं। अखबार भी थोडा–बहुत वही पढ लेता हूँ तथा पूरे–पूरे दिन कुर्सियो व गद्दो पर बैठे रहने से मेरा पेट खराब हो गया है। पाचनशक्ति समाप्त हो गई है। इच्छानुसार कुछ खा–पी नहीं सकता। ब्लडप्रेशर बढने लग गया है। डाक्टर ने सिर्फ लूखी रोटी व पालक की सब्जी खाने का बोला है। इसी प्रकार की बाते अनेको लोग बताते है। वास्तव मे धन कभी भी सहयोगी नही हो सकता है। परिवार भी सहयोगी नहीं बन सकता क्योकि आज देखते ही है कि घर मे चार बेटे है और चूल्हे पॉच चल रहे है। बूढे–बूढी की सेवा करने वाला कोई नहीं है। परिवार के सदस्य सभी स्वार्थ के सबधी होते है। अत व्यक्ति को अपने सकीर्ण घेरे मे न रहकर सभी का सहयोग करना चाहिए। इन्सान की कीमत धन, परिवार व सौन्दर्य से नही होती अपितु सहयोग, विनय, उदारता आदि गुणो से होती है। कुत्ता सोने की जजीर पहन करके चले तो भी उसका वह सम्मान नही होता जबकि हाथी धूल से भरा है फिर भी उसका सम्मान सर्वत्र होता है। ठीक उसी प्रकार व्यक्ति धनवान हो जाए, सत्ताधीश हो जाए किन्तु दूसरो का सहयोग न करे तो उसका धनवान व सत्ताधीश होना बेकार है।

स्वय जीवित रहकर दूसरो को भी जीने हेतु सहयोग करने वाला दुनिया मे यश प्राप्त करता है। किसी की बसी दुनिया को उजाडने वाला, किसी की तैरती किश्ती को डुबाने वाला अर्थात् जीवन मे उपग्रह न कर विग्रह पैदा करने वाला अपयश का भागी होता है। यश मरकर भी अमर बना रहता है व अपयश जीवित रहकर भी मृत्यु तुल्य होता है। आप कभी किसी का उपग्रह उपकार–सामग्री के अभाव मे न कर सके तो भावनाओ को असहयोग की भावना से कभी भी मलिन न बनाएँ। किसी के जीवन मे अडचने, बाधाएँ पैदा न करे। किसी की चलती गाडी के आगे से पटरी न उठाकर, विग्रह पैदा करके अपनी पुण्यवानी को न खोये। जिससे लोग यह कहने लग जाएँ कि इसका टिकिट जल्दी कटे तो अच्छा है।

आप अपना जीवन तेजाब की शीशी नहीं अपितु इत्र की शीशीवत् बनाइये। तेजाब की शीशी कितनी भी बडी हो पर वह दूसरो को जलाती है जबकि इत्र की छोटी–सी शीशी भी सुगन्ध से माहौल को भर देती है। वास्तव मे जीवन की सार्थकता परस्पर सहयोग मे ही है। परस्पर सहयोग मे ही सभी के साथ अपनत्व जुड सकता है व अपने जीवन मे खुशियॉ भर सकता हे। जीवन के हर क्षेत्र मे परस्पर सहयोग की आवश्यकता होती है। अत आपको भी हर समय सहयोग के लिए तैयार रहना चाहिए।



फूल और कॉटे

जे आवा ते परिसव्वा जे परिसव्वा ते आसवा।

अर्थात् जो आश्रव(कर्मबन्धन) के हेतु है, वे कर्म की निर्जरा के हेतु भी हो सकते है और जो कर्म की निर्जरा के हेतु है, वे कर्म–बन्धन के हेतु भी बन जाते है।

जगत् के सभी प्राणी आन्तरिक शुद्धि–अशुद्धि के आधार पर नरक, तिर्यच, स्वर्ग–अपवर्ग आदि स्थानो को प्राप्त कर रहे है। बाह्य निमित्त पापमय वातावरण का मिल जावे किन्तु अन्तरग सही है तो मानव पापबन्ध के स्थान पर निर्जरा कर लेगा। जैसे बाह्य तपस्या आदि साधना करते हुए अन्तरग कषाय मोह, माया आदि से मलिन होने से वह तपस्या भी बेकार हो जाती है। जैसा कि भगवान ने फरमाया है कि–

मासे-मासे उजो वालो, कुसग्गेण तु भुजए,
ण सो सुअक्खायधम्मस्स, कल अग्घइ सोलसि।।

अर्थात् जो अज्ञानी पुरुष प्रतिमास यानी एक–एक मास का अनशन कर पारणे के दिन कुशाग्र परिमाण आहार करता है वह पुरुष तीर्थकर देव द्वारा प्ररूपित चारित्र धर्म की 16वी कला के यानी 16वे भाग के बराबर भी नही है।

अग्निशर्मा तापस मास–मासखमण की तपस्या कर रहे थे। किन्तु प्रचण्ड क्रोध के कारण उसने अपनी गति बिगाड ली। चडकोशिक सर्प के पूर्व भव का जीव साधुवेश मे गुरु के स्थान पर होते हुए भी क्रोध के कारण सर्प योनि मे चला गया। तथा बाह्य कार्य पापकर्मबन्धन का होते हुए भी आपका अध्यवसाय शुद्ध है, सेवा की भावनाएँ है तो कर्मबन्धन के स्थान पर निर्जरा हो जाती है। जैसे घर मे महिला भोजन बना रही है। इस काम मे पक्की बात है कि हिसा हो रही है। किन्तु उसी काम को विवेक से किया जा रहा है। आटा, चावल, सब्जी आदि देखकर किए जाएँ व उनमे से निकले हुए बेइन्द्रिय जीव की रक्षा कर ली तो उसे उस जीव की रक्षा से बहुत कर्मो की निर्जरा हो जाती है। जबकि रसोई बनाने से उसमे हुई अग्निकाय के एकेन्द्रिय जीवो की हिसा से जितने कर्मो का बन्धन होता है उससे भी ज्यादा विवेक से काम करने से कर्मो की निर्जरा हो जाती है।

भगवान महावीर के छिहत्तरवे पाट पर विराजमान आचार्यश्री उदयसागर जी म सा के जीवन की घटना है कि वे जब दूल्हे के परिवेष मे घोडी पर बैठकर शादी करने के लक्ष्य को लेकर कई परिकल्पनाओ के साथ तोरण द्वार पर पहुँचे तो वहा पर अनायास ही सिर पर से साफा गिर गया। शादी करने के लिए तोरण द्वार पर जाते दूल्हे के मन मे क्या–क्या विचार हो सकते है, जिनसे पापाश्रव सहज मे ही हो जाता है? पर उदयसागरजी उस गिरे हुए साफे को पुन सिर पर न रखकर जिन्दगीभर खुले सिर ही रहने के उद्देश्य से साधु बन गए। इस प्रकार जो स्थान कर्मबन्धन का कारणभूत था, वही निर्जरा का कारण बन गया।

स्थूलिभद्र मुनि के कोशा जैसी अनुपम लावण्यवती वेश्या के विलासगृह मे लम्बे काल तक रात–दिन रहने पर भी उन निर्मोही मुनि ने वेश्या के समक्ष ऑख उठाकर भी नही देखा व निर्विकार बन रहे। जबकि स्थूलिभद्र की गृहस्थावस्था मे बारह वर्ष तक उसी वेश्या के साथ उनका घनिष्ठ सम्पर्क रह चुका था। वे लोकमर्यादा व शिष्टाचार को भी भूलकर वेश्या के घर ही रहे थे। किन्तु अन्तरग विवेक के जाग्रत होते ही वैराग्य को धारण करके दीक्षित हुए और इतना ज्यादा मन को वश मे कर लिया कि उसी पूर्व प्रेमिका वेश्या के यहॉ निरन्तर चार महीने रहकर भी मन को जरा भी विकृत न होने दिया और काजल की कोठरी मे से बिना एक दाग लगाए बाहर निकल गए। वेश्या का विलासगृह कर्मबन्धन का मुख्य स्थान था परन्तु उस स्थान पर रहकर भी स्थूलिभद्र मुनि ने अपने अखण्ड सच्चारित्र की छाप उस अनुपम सुन्दरी वेश्या पर डाली और वेश्या को भी सन्मार्ग पर ले आये। इस प्रकार पापाश्रव के स्थान को भी निर्जरा का स्थान बना दिया।

राजा सयति शिकार खेलने के लिए जगल मे गया था। उसने हरिंण को तीर मारा। वह आश्रव का ठिकाना था। मगर वहॉ मुनिराज का अचानक समागम हो जाने से वह आश्रव का स्थान भी सवर के रूप मे परिवर्तित हो गया। भरत चक्रवर्ती छह खण्ड पर राज्य कर रहे थे। कहा जाता है– "राजेश्वरी सो नरकेश्वरी" यानी राज्य करने वाला नरक मे जाता है पर भरत चक्रवर्ती का अन्तरग बहुत शुद्ध था। ससार की अनित्यता के विषय मे उसके दिल मे प्रतिपल विचार था। अत आश्रव का स्थान रूप, सुन्दर कॉच का महल, जहॉ पर जाकर व्यक्ति कर्मबन्धन ही कर सकता है, पर भरतजी का अन्तरग शुद्ध होने से उस कॉच के महल मे भी पापाश्रव के स्थान पर घनघाति कर्मो की निर्जरा कर डाली। इस प्रकार जिनका मन पूरी तरह वश मे हो गया है, अन्तरग शुद्ध हो गया है, जिनकी इन्द्रियो की चचलता समाप्त हो गई है, उनके लिए आश्रव के कारण भी निर्जरा के कारण बन जाते हैं। किन्तु जिनका मन राग–द्वेष आदि कषायो से कलुषित है, उनके लिये निर्जरा के कारण भी

आश्रव के कारण बन जाते है। जैसे किसी को पूर्वपुण्य से बहुत धन प्राप्त हुआ, जैन धर्म–सस्कार वाला श्रावक का कुल भी प्राप्त हुआ किन्तु वह उस पुण्य से प्राप्त धन से दुर्व्यसनो का सेवन करता है तो सवर के स्थान पर आश्रव यानी कर्मबन्धन हो जाता है।

भाई–बहिन अध्यात्म साधना हेतु धर्मस्थान पर पहुँचते है। सामायिक करते है। किन्तु सामायिक करके भी अगर बाते की जाती है, एक–दूसरे की निन्दा–विकथा की जाती है, किसी स्त्री–पुरुष के विषय मे बाते की जाती है व भोजन सबधी बाते की जाती है कि अमुक के यहॉ फक्शन पर अमुक मिठाई आदि आइटम बनाये गए। अच्छा बनाया या खराब बनाया आदि कथा करना तथा देश व राज्य सबधी बाते करना, ऐसा करने से सामायिक की साधना, जो निर्जरा का स्थान था, वह आश्रव का स्थान बन जाता है।

घर–परिवार, कचन–कामिनी को छोडकर कर्मो की निर्जरा हेतु सयम मे प्रवृत्ति की, किन्तु सयम लेकर चन्दे–चिट्ठे मे लग गए। अन्य के लडके–लडकी के सगाई–सबध करवाने मे लग गए। अपने नाम से बैको मे पैसे रखवाने लग गए। ऐसे साधक सयम के निर्जरा स्थान को भी आश्रव का स्थान बना लेते है। किसी को बौद्धिक शक्ति प्राप्त हुई, उससे देश की उन्नति की जा सकती थी किन्तु उसी प्रज्ञा से अणुबमो का निर्माण विश्व के विनाश के लिये किया गया। इस प्रकार सहारक साधनो का निर्माण करके पापाश्रव किया जा रहा है।

एक सन्यासी गॉव से बाहर एक आश्रम मे रहता हुआ तपस्या करता था। ठीक उसके सामने एक वेश्या का अड्डा था। सन्यासी के पास मे दिन मे सत्सग हेतु कई लोग आते थे। वेश्या के पास रात्रि मे कई गाडियॉ आती, बडे बडे सेठ आते। सन्यासी उस दृश्य को देख कर गुस्सा करता कि वेश्या खुद भी पाप करती है व अन्य को भी पाप के गर्त मे डाल देती है। कितने कर्म बॉधती है। सन्यासी रात मे देखते रहते और वेश्या के पास जितने लोग जाते, उनकी गिनती करने एक–एक ककर इकट्ठा करते थे। कुछ दिनो मे ककरो का ढेर लग गया। एक बार सर्दी के दिनो मे सन्यासी धूप मे बाहर बैठे थे। उधर सामने वेश्या भी धूप मे खडी थी। वेश्या सन्यासी को देखकर मन मे चिन्तन कर रही है–धन्य है ये तपस्वी, जो निर्विकार रहते हुए कितनी उच्च साधना कर रहे है व अपनी आत्मा को ऊपर उठा रहे है। सर्दी–गरमी आदि सहन कर रहे है। किन्तु मेरी आत्मा को धिक्कार है कि जो चन्द चॉदी के टुकडो के पीछे अपने शरीर को बेच रही हूँ व निम्न गति की ओर जाने की निकृष्ट गति कर रही हूँ। एक दिन वेश्या सन्यासी को बाहर देखकर पास मे आयी व हाथ जोडकर प्रणाम करने लगी तो सन्यासी एकदम बोल उठे कि हे पापिनी! दूर रह! तेरा शरीर अपवित्र है, मेरे को मत छू। चली जा यहॉ से।

यह देख तेरे पाप का ढेर। ये जितने ककर है, उतने ही व्यक्तियो को तुमने बिगाडा है। वेश्या ककरो के ढेर को देखकर अपने आप मे घृणा भाव लाती हुई अपने–आपको धिक्कारने लगी व अब हमेशा दूर से ही सन्यासी की शुद्ध भावो से भक्ति करने लगी व उनकी साधना को धन्यवाद देती।

एक दिन दोनो की मृत्यु हो गई। सन्यासी की डोल निकालने हजारो लोग इकट्ठे हुए। जय–जयकार करते हुए बाजारो से डोली निकाली गई व चन्दन की चिता मे सन्यासी का अन्तिम दाह–सस्कार किया गया। किन्तु वेश्या का मृत शरीर ऐसे ही पडा है। उसे उठाने के लिए कोई भी सेठ नही पहुँचा। आखिर भगी उस वेश्या के पैर मे रस्सी बॉधकर घसीट कर उसे दूर ले गया और उसे जलाया। इधर यमदूत दोनो को ले गया। एक को नीचे व एक को ऊपर। आपकी कल्पनानुसार सन्यासी ऊपर व वेश्या नीचे गई होगी किन्तु हुआ उलटा कि सन्यासी को नीचे ले जाया जा रहा था व वेश्या को ऊपर ले जाया जा रहा था। तभी सन्यासी बोल उठा–अरे! यमदूतजी आपसे कभी गलती नहीं हो सकती। मै तो सन्यासी हूँ। मैंने बहुत तपस्या की, ब्रह्मचर्य व्रत पाला है। बहुतो को ससार से तिराया है। परोपकार किया है। मुझे नीचे क्यो ले जा रहे हो? आप दो आत्मा एक साथ ले आये। इसीलिए आपसे भूल हो रही है। यमदूत ने कहा– मै भूल नहीं कर रहा हूँ, भूले तो तुम थे। तुमने सिर्फ सन्यासी का वेश धारण कर रखा था किन्तु तुम्हारा मन वेश्या मे ही लगा हुआ था। तुम्हारे मन मे ऐसी भावना भी आ गई थी कि मै वेश्या होता तो अच्छा रहता। इसके पास कितने लोग आते है। सन्यासी, तपस्वी, साधक वर्ग के पास मे तो गिनती के 10–15 धर्मी भाई आते हैं। सन्यास से क्या मतलब है? ऊपर से सन्यास का वेश भले ही था किन्तु मन वेश्या मे था। तुम्हारी प्रभु के प्रति ऊपरी भक्ति होने से देखो तुम–मध्यलोक मे तुम्हारी डोली कितनी शानदार निकाली जा रही है व चन्दन की चिता तैयार है। वेश्या का शरीर अपवित्र था किन्तु मन पवित्र था। तुम्हारे द्वारा धिक्कारी जाने पर भी उसने अपने आपको ही धिक्कारा और दूर रहकर भी तुम्हे बार–बार धन्यवाद देती रही व तुम्हारी तप–साधना का अनुमोदन करती रही। इस प्रकार उसका मन पवित्र था। अत उसकी आत्मा ऊपर जा रही है और शरीर अपवित्र था अत उसके शरीर को घसीटा जा रहा है। यह है–

जे आसवा ते परिसव्वा
जे परिसव्वा ते आसवा

इलायचीकुमार ने नाचते–नाचते भी अन्तरग की शुद्धता से कर्मो के आश्रव के स्थान पर कर्मो की निर्जरा कर दी। कूरगडूक मुनि सवत्सरी के दिन, पूर्ण आराधना के दिन भी आहार करने लगे और समताभाव से आहार करते–करते भी घनघाति कर्मो की निर्जरा कर दी। इस प्रकार आश्रव के

स्थान मे भी कर्मो की निर्जरा का प्रसग उपस्थित किया। इस प्रकार बाह्य कारणो पर कर्मबन्धन या कर्मनिर्जरा नही होती है। पर अध्यवसाय के आधार पर ही सब–कुछ होता है। मिथ्यादृष्टियो के लिए जो पाप के कारण है वे ही सम्यक्दृष्टियो के लिए कर्म–निर्जरा के कारण हो जाते है। कहा भी है–

यथा प्रकाराः यावन्तः संसारा हेतव.,
तावन्त स्तद्वि पर्यासान्निर्वाण सुख हेतवः।।

अर्थात् जितने प्रकार के और जितने ससार मे परिभ्रमण के कारण है उतने ही प्रकार के और उतने ही उनको विपरीत रीति से लेने से मोक्ष–सुख के कारण हो जाते है। तात्पर्य यह है कि जितने कर्मनिर्जरा के लिए सयम के स्थान है, उतने ही कर्मबधन के लिए असयम के स्थान है।

जिस प्रकार सर्पदश से पीडित व्यक्ति को नीम की पत्तियॉ भी मीठी लगती है व ज्वरग्रस्त व्यक्ति को मीठा दूध भी कडवा लगता है, उसी प्रकार राग–द्वेष के कारण जिसका हृदय कलुषित है, जो विषय–सुख के लिए लालायित है, उसके अध्यवसाय अशुभ होने से उसकी समस्त क्रियाऍ ससार के लिए ही होती है। इसके विपरीत जो सम्यक्दृष्टि है, विषय–सुख से पराङ्मुख है, जो पदार्थो के असली रहस्य को जानता है और जो वैराग्य से भरा हुआ है, उसके लिए सारी क्रियाऍ मोक्षमार्ग की साधक रूप होती है।



जीवन का दूसरा नाम - मौत

मरण सम नत्थि भय

अर्थात् मृत्यु के समान अन्य कोई भी भय का कारण नही है।

विश्व की डिक्सनरी मे "मृत्यु" से कडवा दूसरा शब्द नही है। गटर मे रहने वाले कीडे से लेकर मनुष्य तक कोई भी मरना नही चाहता। येन–केन–प्रकारेण बचना ही चाहते है किन्तु फिर भी मरते सभी हैं। चाहे उत्तम पुरुषो मे श्रेष्ठ तीर्थकर हो या भोग–पुरुषो मे श्रेष्ठ चक्रवर्ती हो या युद्ध मे शूरवीर वासुदेव हो या साधु–साध्वी, श्रावक–श्राविका, डाक्टर–वैद्य कोई भी हो, सभी को इस शरीर को छोडकर जाना ही होता है। आज विज्ञान ने बहुत विकास किया है। अत जिसका हार्ट खराब है तो दूसरा हार्ट लगा देता है। किडनी खराब है तो दूसरी किडनी लगा देते है। ऑख खराब है तो दूसरी ऑख फिट कर देते है। किन्तु शरीर से निकलती हुई आत्मा को कोई भी रोक नही सकता। जीवन के ध्रुव सत्य–मृत्यु को कोई टाल नही सकता।

कहा भी है– **जन्ममेव मृत्यु।** अर्थात् जन्म ही मृत्यु है। भगवती सूत्र मे आवीचिक मरण का वर्णन आता है। आवीचिक मरण से तात्पर्य है– जन्म से ही व्यक्ति के प्रतिक्षण आयुकर्म के पुद्गल क्षय हो रहे है। वह निरन्तर मृत्यु के मुख मे प्रवेश कर रहा है। जब आयुकर्म के समस्त पुद्गल क्षीण हो जाते है, उस समय इस शरीर को छोडकर आत्मा नये शरीर को धारण करने अन्य गति मे चला जाता है। कोठी मे से हमेशा थोडा–थोडा पानी हमेशा निकालते रहे तो वह कोठी या हौज एक दिन अवश्य खाली हो जायेगा। ठीक वैसे ही निरन्तर आयुकर्म के पुद्गलो के क्षय हो जाने से एक दिन मृत्यु होनी ही होनी है। मृत्यु किसी से डरती नही। गिरते हुए मकान को टेका लग सकता है पर आयु को टेका नहीं लग सकता। आयु निरन्तर घटती ही रहती है।

एक राजा के पास एक नाट्यकार पहुँचा। राजा को खुश करने के लिए बहुत सुन्दर नाटक किया। किन्तु राजा के चेहरे पर कोई प्रसन्नता की रेखाएँ नही आयीं। ऐसा देखकर नाट्यकार ने राजा से पूछा कि क्या आपको नाटक देखकर प्रसन्नता नही हुई? राजा ने कहा–नहीं। नाट्यकार–ऐसा क्यो? राजा–इसका उत्तर कुछ दिन बाद दूँगा। एक बार राजा नाट्यकार पर किसी बात से अप्रसन्न हुआ और उसे एक टूटी कुर्सी पर बिठाया। नीचे जलती हुयी

सिघडी रख दी और ऊपर कडे मे सूत के कच्चे डोरे से बॅधी तलवार लटका दी। फिर उसे मिठाई खाने को दी। किन्तु उसे मिठाई बिल्कुल अच्छी नहीं लग रही है। राजा ने उसे मिठाई नही खाते हुए देखकर पूछा–भाई! क्या मिठाई अच्छी नही है? तुम इसे क्यो नही खा रहे हो? नाट्यकार–पहले सिघडी व तलवार को हटाओ तो फिर मिठाई भी शौक से खा सकता हूँ। नहीं तो मौत के ढॉचे मे मौज कैसी? तब राजा बोला कि उस दिन नाटक देखकर मेरे चेहरे पर इसीलिए प्रसन्नता नही आयी कि मस्तक पर मौत रूपी तलवार लटक रही है। न जाने किस समय कच्चे धागे से बॅधी मृत्यु रूपी तलवार टूटकर सिर पर पड जावे और नीचे अग्नि का पथरना करना पड जावे।

इतना स्पष्ट होने पर भी मौत को भूलकर व्यक्ति पापो को करने मे लगा है। गाय के सामने शेर को खडा कर दिया जाये और हरी घास भी डाल दी जाये तो गाय मृत्यु के भय से हरी घास नही खाती। किन्तु मनुष्य को मृत्यु का कोई विचार ही नहीं है। दु खो से घबराकर व्यक्ति बोल उठता है–हा! मेरे मरने की तारीख की चिट्ठी क्या चूहे खा गये है। क्या हुआ? किन्तु जब एक सर्प भी पास मे आ जाता है तो भागमभाग प्रारभ हो जाती है। कोई भी मरना नही चाहता। कहा भी है–

दुःख री दाजी डोकरी, कहे परमेश्वर मार,
सॉप जो काळो निकळयो, नाठी घर सूं बाहर।।

व्यक्ति अपने आपको मृत्यु से बचाने की बहुत कोशिश कर रहा है। बाल सफेद हो रहे हैं तो डाई करवा रहे है। दॉत गिर रहे है तो पुन बत्तीसी बनवा रहे है। इस शरीर को बनाए रखने के लिए व्यक्ति कभी च्यवनप्रास, केशरी जीवन, स्वर्ण भस्म आदि अनेक प्रकार के रसायन, दवाइयॉ खा रहा है। हर कोशिश करने के बावजूद भी मृत्यु अवश्यभावी है।

हर खिलौना फूटना है एक दिन,
हर सुमन को टूटना है एक दिन,
कैद कितना भी करो इस जिन्दगी को,
हर उमर को रूठना है एक दिन।

हमारे यहॉ चक्रवर्ती वासुदेव की कल्पना बहुत बडी है। आठ हजार देव वासुदेव के सेवक होते है। वासुदेव के पास सुदर्शन चक्र, सारग धनुष, नद खड्ग, कौमुदी गदा, गरुड ध्वज, रथ–ये शस्त्र होते है। ससार मे किसी की सामर्थ्य नही जो वासुदेव को पराजित कर सके। यह सब सामग्रियॉ वासुदेव को प्राप्त होते हुए भी मृत्यु ने उन्ही भी नही छोडा।

इन्द्र, भगवान् से कहते है– अभी 2000 वर्ष का भस्म ग्रह बैठने वाला है। इससे जैनधर्म की बडी हानि होगी। अत आप थोडा–सा आयुष्य न्यूनाधिक

कर लीजिये। भगवान् फरमाते है– भूत, भविष्य व वर्तमान समय मे जितने भी तीर्थकर हुये है व होगे उनमे मेरु पर्वत को चिट्टी अगुली पर उठा लेने की शक्ति तो है किन्तु आयुष्य को न्यूनाधिक करने की शक्ति नहीं है। इस प्रकार मृत्यु तो मुक्तिगामी की भी निश्चित है, तो ससारी की भी। किन्तु एक मृत्यु से भयभीत है तो एक मौत का स्वागत करने के लिये तैयार खडा है, क्योकि एक ने अपनी जिन्दगी मे बहुत अपराध किये है, काले काम किये है। जबकि मुक्तिगामी आत्मा ने अपने आत्मकल्याण को ध्यान मे रखते हुए स्व–पर उपकार मे निरन्तर सलग्न रहते हुये–100 परसेन्ट अच्छे ढग से जिन्दगी को जीया है। इस प्रकार एक व्यक्ति मृत्यु से पराड्मुख होकर भागना चाह रहा है, तो दूसरा सथारा करके हॅसते–हॅसते मृत्यु का वरण करने के लिये तैयार है।

भृगु पुरोहित के दोनो छोटे–छोटे पुत्रो ने जन्म व मृत्यु के स्वरूप को समझ लिया था। वे दोनो पिताजी से सयम लेने हेतु आज्ञा मॉग रहे थे तब पिताजी ने उन्हे समझाने के लिए बोला–पुत्रो! अभी तो तुम बच्चे हो। यह बचपन की अवस्था तुम्हारे खाने व खेलने की है। पढो–लिखो और खुशी–खुशी जीवन व्यतीत करो। यौवन आने पर ससार के सुखो को भोगकर फिर तुम आत्मकल्याण के कठिनतम मार्ग पर गमन करना तथा तपस्या आदि साधना करके अपने लक्ष्य को प्राप्त करना। मै तुम्हे मना नहीं करता, पर अभी तो तुम्हारा बचपन है।

बच्चो ने प्रत्युत्तर मे कहा–पितुश्री! आप जो–कुछ भी कह रहे है वह मोह के वशीभूत होकर कह रहे हैं। आप यौवन के बाद वृद्धावस्था मे आत्म–कल्याण के मार्ग पर बढने का बोल रहे हैं। किन्तु किसको मालूम है कि वृद्धावस्था तक यह शरीर टिक पायेगा या नहीं ? यह भी पता नहीं है कि कल का सूर्य भी इस जीवन के अस्तित्व के साथ निकलेगा या नही ? यहॉ तक कि पल के चौथाई भाग जितने सूक्ष्म समय मे भी इस जीवन का क्या होने वाला है, इसका भी पता नही है। ऐसा तो वही कह या सोच सकता है कि–

जस्सत्थि मच्चुणा सवख, जस्स वत्थि पलायणं
जो जाणे न मरिस्सामि, सो हुकंखे सुए सिया।।

अर्थात् जिसकी मृत्यु के साथ मित्रता हो गयी हो, तथा जो मौत आने पर भाग कर बच जाने की आशा करता हो अथवा जिसे यह विश्वास हो कि मै कभी मरूॅगा नही, वही कल की बात सोच सकता है। किन्तु पितुश्री न तो हमारी मौत के साथ मित्रता है, और न ही मौत से बचकर भाग जाने की हमारे अन्दर सामर्थ्य है और न ही हमे ऐसा विश्वास है कि हम अजर–अमर रह पाऍगे। ऐसी स्थिति मे हम कैसे यह निर्णय कर सकते है कि भविष्य मे आत्म–कल्याण कर लेगे। इसीलिये कहा जाता है–

पाव पलक की खबर नहीं, करे काल की बात,
ना जानूँ क्या होत है, उगते ही परभात।

कोई सोच लेता है कि मेरे घर मे तो बहुत पैसा है। अत हर बीमारी का इलाज मेरा आराम से हो सकता है। फॉरेन जाकर भी उपचार करवाया जा सकता है। हर तरह के मूल्यवान इजेक्शन, दवाइयॉ आदि ले सकता हूँ। मेरे घर मे किसी बात की कमी नही है। अत मौत एकाएक परेशान कर ही नही सकती। कोई सोचे, मेरे पिता देश के प्रधानमत्री है। उनका पूरे देश मे दबदबा है। वे तो मुझे बचा ही लेगे। किन्तु ऐसा सोचना एकदम गलत है। क्योकि जिसकी सहायता से बचना चाह रहे है, वे भी बचे हुए है या नही, पहले उन्हे तो पूछ लिया जाये?

अनाथी मुनि के घर मे किसी तरह की कमी नही थी। माता–पिता–पत्नी आदि सभी हरपल सेवा मे प्रस्तुत थे, फिर भी उनकी वेदना को कोई ठीक नहीं कर सका या करवा सका तो मौत के मुँह से कौन बचा सकता है? आचारांग सूत्र मे कहा है–

णत्थि कालस्सणागमो अर्थात् मृत्यु का अनागमन नहीं है यानी मृत्यु का अवश्यमेव आगमन होता है, उसे रोका नही जा सकता।

अगर पुन पुन मृत्यु को प्राप्त नही करना चाहते हो तो अरिहत सिद्ध भगवन्तो के जीवन आदर्शो को सुन व पढकर अपने जीवन–व्यवहार को भी वैसा ही सुन्दर बनाया जाये व सयम के पथ पर बढकर ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप की साधना करके पडित–मरण को प्राप्त करके अमर अवस्था को प्राप्त कर लिया जाये।



चेतन का जतन - मत कर हनन

सव्वेसि जीविय पिय

अर्थात् सभी प्राणी जीवित रहना चाहते है। सभी को अपना जीवन प्यारा है, चाहे वे किसी भी स्थिति मे क्यो न हो? अत किसी भी प्राणी के प्राणो का वियोग मत करो।

समस्त जीवलोक मे जितने भी जीव है वे चाहे छोटे हो या बडे, स्वर्गपति इन्द्र हो या विष्ठा का कीडा हो, ससारी मनुष्यो मे उत्तम पुरुष चक्रवर्ती हो या चाडाल जातीय मानव हो–सभी जीना चाहते है। मरना कोई पसद नही करता। यह सत्य सिद्धान्त है कि सभी को अपना–अपना जीवन प्रिय है। भगवान महावीर स्वामी ने जगलो मे अनार्य देशो मे घूम–घूम कर साढे बारह वर्षो तक मौन साधना करके सुख के राजमार्ग को ढूँढा और दुनिया के सामने प्रस्तुत किया। उन्होने कहा "मा हणो" – "मत मारो", "जीओ और जीने दो।" जिस प्रकार से आप जीना चाहते हैं वैसे ही दूसरे जीवधारी प्राणी भी जीना चाहते है। अत किसी भी प्राणी का वध मत करो। प्राणियो को सबसे अधिक प्रिय अपना शरीर ही होता है। जब चोर रात्रि मे अनायास ही आकर छाती पर बैठ जाता है और आपको चाकू दिखाकर धन मॉगता है तब आप अपने शरीर को बचाने के लिए चोर को हाथ जोड कर अपने हाथो से तिजोरी से धन निकालकर दे देते है। सारी जिन्दगी मे कमाया हुआ धन अपने हाथो से देकर भी अपने प्राणो को बचा ही लेते है। व्यक्ति को प्राणो से बढकर और अधिक प्रिय दूसरी वस्तु नही लगती। यही कारण है कि भगवान महावीर ने किसी के प्राणो का नाश करना सबसे बडा पाप कहा है।

शरीर से प्राणो को विलग करना, यह कायिक हिसा ही जैन धर्म मे हिसा का स्वरूप नही है, अपितु मन मे किसी के प्रति अहित की भावना आना व अन्य के अहित की भावना से झूठ बोलना, इशारे करना, ताना मारना आदि सभी बाते हिसा के अन्तर्गत ही आती है। इसे भाव–हिसा कहते है। दिखने मे तो हिसा नही दिख रही है किन्तु भावो से निश्चित हिसा होती है, जैसे कोई व्यक्ति किसी की हिसा करने बदूक को तान देता है किन्तु सयोगवश निशाना चूक जाता है। फिर भी भावना मारने की होने से उसे हिसा का पाप अवश्य लगेगा। इसी प्रकार पिक्चर देखते हुये या लडाई आदि देखते हुए ऐसा विचार

करना कि यह मर जावे तो अच्छा है, यह भाव–हिसा है। इससे भी कर्मो का बधन अवश्य होता है।

महाभारत मे एक स्थान पर प्रसग आया है– एक ऋषि ने, एक मुनि ने प्रश्न किया कि–

जले जन्तुः स्थले जन्तुराकारो जन्तुरेव च,
जन्तुमाला कुल लोके कथं भिक्षुरहिंसकः।

जल मे जीव है, पृथ्वी और आकाश मे भी जीव है। यह लोक पूरा ही जन्तुओ से पूरा ठसाठस भरा हुआ है। फिर व्यक्ति कैसे अहिसक बन सकता है?

इस प्रश्न का उत्तर मुनिराज ने निम्न दिया–

अहनन्नपि भवेत्पापी निछनन्नपि न पाप भाक्,
परिणाम-विशेषेण यथा धीवर-कृषको।।

पाप और पुण्य परिणाम–विशेष पर होते है। जैसे एक धीवर मछुआरा सागर मे जाल फैलाकर खडा है। उसमे एक भी मच्छी नही आ रही है। फिर भी उसकी भावना मच्छियाँ पकडने की है। उन्हे मारने की है। अत भले ही मच्छियाँ उसके जाल मे नही आ रही है, फिर भी उसे भावो से हिसा का पाप लगातार लग रहा है। दूसरी ओर किसान खेती कर रहा है। हल चलाते वक्त कई जीवो की हिसा हो जाती है, फिर भी उसे उतना पाप नहीं लगता। क्योकि किसान की भावना जीवो को मारने की नही है अपितु धान्य उगाने की है।

केवली भगवान चल रहे है। रास्ते मे कोई जन्तु हवा से उडकर पैर के नीचे आकर मर जावे तो उनको उस जीव–हिसा का पाप नही लगता क्योकि वे अप्रमत्त अवस्था के साथ विचरण कर रहे है।

भगवती सूत्र में तन्दुल मत्स्य का उदाहरण आता है कि एक बडे मत्स्य के ऑख की पलक पर एक छोटा–सा चावल जितना मत्स्य बैठा है। बडे मत्स्य का मुँह खुला है। उसके मुँह मे अनेको मछलियाँ आ रही है और जा रही है किन्तु मत्स्य उन्हे खा नही रहा है। तब ऑख पर बैठे तन्दुल मत्स्य ने सोचा–यह कैसा मूर्ख मत्स्य है? अगर इसकी जगह मै होता तो एक भी मछली को ऐसे नहीं छोडता, सभी को खा जाता। इन हिंसक विचारो से तन्दुल मत्स्य सातवीं नारकी मे चला गया जबकि उसने एक भी मछली की हिसा नही की थी। यह है भाव–हिसा।

तत्त्वार्थ सूत्र मे भी कहा है–

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः

मन मे ऐसी शक्ति रही हुयी है कि किसी भी प्रकार की बाह्य हिसा या अहिसा के कार्य मे प्रवृत्ति नही करते हुए भी सिर्फ विचारो से ही आत्मा अनत

पापकर्मो का प्रगाढ बन्धन कर लेती है व सिर्फ शुद्ध अध्यवसायो से ही अनत कर्मो की निर्जरा भी कर लेती है। कहने का मतलब यह है कि अधर्म–धर्म, पाप–पुण्य का मूल कारण मन ही है। जैसे पानी से ही कीचड पैदा होता है और पानी से पुन कीचड की सफाई होती है। ठीक वैसे ही मन से पापकर्मो का बधन भी होता है व मन से पापकर्मो की धुलायी अर्थात् निर्जरा भी होती है। प्रसन्नचन्द्र राजर्षि साधु के परिवेश मे उत्कृष्ट सयम का पालन करते हुवे ध्यान मे खडे थे। उसी समय उनके मन मे हिसात्मक अशुभ विचारो की रील चलने लगी जिससे सातवी नारकी के कर्म दलिको का उपार्जन कर लिया। और जब विचारो ने पुन पलटा खाया और शुद्ध अध्वसायो मे रमण करते हुए शुक्ल ध्यान मे प्रवेश कर लिया तो घनघाति कर्मो का क्षय करके केवलज्ञान को भी प्राप्त कर लिया।

इसी प्रकार कालू (कालिया) कसाई ने भी कारागृह मे कैद होकर भी भावो से ही 500 पाडो की हिसा की थी। इसे भगवान् ने हिसा करना ही फरमाया है। वह कालू कसाई सातवी नरक मे चला गया।

मन से होने वाली हिसा की तरह वाचिक हिसा भी भयकर परिणाम को लाने वाली होती है। क्रोध आदि कषाय के वशीभूत होकर जीव कई बार बेभान हो जाता है और अपने पूज्यजनो के समक्ष भी कठोरतम भाषा का प्रयोग करते हुए अट–शट बोलने लग जाता है। कभी–कभी तो यहॉ तक कहते हुए सुने जाते है– मैं तुझे जान से मार दूॅगा, मै तेरी हड्डी–पसली तोड दूॅगा आदि। कभी–कभी तो मर्मकारी भाषा के प्रयोग से आत्महत्याऍ तक हुई देखी जाती है। इसी प्रकार गाली–गलौज करना, कर्कश, कठोर, क्लेशमय भाषा का प्रयोग करना भी हिसा ही है।

इस प्रकार मन, वचन, काया–इन तीनो योगो से होने वाली हिसा से बचना चाहिये।

कई लोग यह कह उठते है कि जैनियो का अहिसा सिद्धान्त मानवो को कायर बनाता है। किन्तु ऐसी बात नही है। ऐसा वही व्यक्ति कह सकते है जिन्होने जैन सिद्धान्तो का गहराई से अध्ययन नही किया है। चेडा राजा बारह व्रतधारी श्रावक थे फिर भी उन्होने अन्याय का विरोध करने के लिए सेना का सचालन स्वय किया। इस युद्ध मे एक करोड अस्सी लाख व्यक्ति मारे गए। इतनी हिसा युद्ध मे होने के बावजूद भी चेडा राजा का अहिसा व्रत नहीं टूटा था। क्योकि श्रावक को निरपराधी त्रस जीव की जान–बूझकर हिसा करने का ही त्याग होता है। इसी प्रकार वरुण नाग नत्तुआ नामक श्रावक तपस्या मे भी युद्ध मे गये थे। सम्राट चन्द्रगुप्त व सम्राट अशोक भी अहिसा धर्म के उपासक थे। उनके शासनकाल मे भारत कभी पराधीन नहीं हुआ। महात्मा गॉधी भी अहिसा के उपासक थे। किन्तु क्या कोई कह सकता

है कि वे कायर थे? उन्होने रक्त की एक भी बूँद बहाए बिना ब्रिटिश सरकार के पजे से भारत को स्वतत्रता दिलायी थी। यह है अहिसा की असाधारण शक्ति। इन सभी उदाहरणो से सिद्ध होता है कि अहिसा मनुष्य को कदापि कायर नही बनाती है अपितु निर्भीक, शूरवीर और तेजस्वी बनाती है।

किसी–किसी का यह भी कहना है कि जैन धर्म की अहिसा का पूर्णरूपेण पालन करना किसी के लिए शक्य नही है। एक गृहस्थ को भोजन बनाना, व्यापार करना, चलना–फिरना आदि अनेक आवश्यक काम करने पडते है, जिनमे हिसा अनिवार्य रूप से होती है, फिर अहिसा का पालन कैसे कर सकते है? अहिसा का पालन करने के लिए तो निस्चेष्ट, निष्कप होकर एक स्थान पर बैठना होगा। किन्तु यह बात भी जैन सिद्धान्त से अनभिज्ञ ही बोल सकता है। जैन शास्त्रो मे साधक की योग्यतानुसार अहिसा का वर्गीकरण किया गया है।

साधु–साध्वी वर्ग सम्पूर्ण रूप से अहिसा का पालन करते है तथा गृहस्थ वर्ग देश–अहिसा का पालन करते है। देश–अहिसा मे भी बहुत–सी श्रेणिया है। जिससे जिस श्रेणी की अहिसा का पालन हो सकता है, वह वैसी अवश्य ही करे। गगा नदी के पानी की धारा बहुत चौडाई मे बह रही है। आपको प्यास लगी है पर आपका मुँह छोटा है तो आप अपने छोटे मुँह के अनुसार व अपनी प्यास के अनुसार गिलास–दो गिलास पानी ही पी लीजिये। किन्तु यह सोचकर कि गगा की इतनी चौडी धारा मेरे मुँह मे नही जा सकती है तो मै पानी कैसे पीऊँ, प्यासे मत रहिये। इसी प्रकार आप सम्पूर्ण रूप से अहिसा का पालन नही कर सकते है तो अपनी ताकत के अनुसार ही करिये। बडे–बडे राजा–महाराजा अपने राज्य का सचालन भी करते थे व अणुव्रतो का पालन भी करते थे। अत सिद्ध होता है कि अहिसा का पालन अशक्य नही है।

अहिसा जगत की माता है। अहिसा माता का ही प्रताप है कि जगत मे मानव आनद से जी रहे है। अगर दुनिया मे अहिसा की भावना नही होती तो इस ससार की स्थिति नरकवत् हो जाती। भाई भाई को, माता अपने पुत्र को, पति पत्नी को, इस प्रकार सभी एक–दूसरे को मार डालने पर उतारू हो जाते। इन सब बातो से स्पष्ट होता है कि हमारे जीवन मे अहिसा का कितना महत्त्व है।

जगत के प्रत्येक धर्म ने अहिसा को स्वीकार किया है। सिक्ख धर्म के ग्रन्थ साहब मे कहा है–

ना को बैरी नहीं बेगाना, सगल संग हमको बन आई।

(कानडा महल्ला–5)

अर्थात् जगत मे कोई भी पराया या बैरी नही है। सभी अपने है। इस्लाम

धर्म मे कहा है–

वल्लाहो ला युहिब्बुल जालमीन अर्थात खुदा अत्याचारियो से प्रेम नही करता। इस्लाम धर्म मे भी अहिसा के कई उदाहरण आए है। एक स्थल पर लिखा है– मुहम्मद साहब अपने शत्रुओ के बढ जाने से एक बार घर छोडकर जगल की ओर निकल पडे। शत्रुओ ने उनका पीछा करना शुरू किया। मुहम्मद साहब को एक पहाड की गुफा नजर आयी। वे उसमे प्रवेश करने वाले थे कि उन्हे गुफा के प्रवेश मुख पर ही मकडियो का जाल दिखाई दिया। मुहम्मद साहब ने सोचा– अगर मैने अन्दर प्रवेश किया तो मकडियो की हिसा हो जाएगी। अत वे वहॉ से आगे बढ गए। शत्रुगण भी मुहम्मद साहब को ढूँढते–ढूँढते उस गुफा तक पहुँचे और देखा इस गुफा के प्रवेश मुख पर तो मकडियो का जाल बना हुआ है। इससे अन्दाज लगता है कि मुहम्मद साहब इधर आये ही नहीं है। वे शत्रुगण वहीं से लौट गए। इस प्रकार मुहम्मद साहब के दयाभाव से उनकी स्वय की भी प्राणरक्षा हो गयी।

ईसाई मत के धर्मशास्त्र इञ्जील मे लिखा है–

Thou shalt not kill अर्थात् तू किसी का वध नही करेगा।

भगवद्गीता मे लिखा है–

यस्मान्नोद्विजते लोको-लोकान्नोद्विजते च मः।। (गीता अ 12, श्लोक 15)

अर्थात् जो मनुष्य न किसी को दु ख देता है और न किसी से दु खी होता है, वही ईश्वर का प्यारा होता है।

इस प्रकार अहिसा को सभी धर्मो मे उच्च स्थान दिया है। अहिसा तो मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। अहिसा के बिना विश्व का पलभर भी काम नहीं चल सकता। इस प्रकार हिसा व अहिसा के स्वरूप को समझकर अपने जीवन–व्यवहार को रूपान्तरित किया जावे। ताकि वर्तमान क्षणो मे ही सुख और शाति की प्राप्ति हो सके।



झुकिये और पाइये

एव धम्मस्स विणओ, मूल परमो से मुक्खो,
जेण कित्तिं सुय सिग्घ नीसेस चाभिगच्छइ।।

अर्थात् विनय धर्म रूप वृक्ष का मूल है और मोक्ष उसका सर्वोत्तम रस है। विनय से कीर्ति होती है और पूर्णत प्रशस्त श्रुतज्ञान का लाभ होता है।

विनय मानवीय जीवन का एक महान् गुण है। विनय अनेकानेक गुणो की जड है। यदि व्यक्ति के जीवन मे विनय गुण है तो अनेक गुण स्वत ही मानव के जीवन मे चले आएँगे। जिस व्यक्ति मे विनय होता है, वह महान् समझा जाता है।

स्वर्ण धातु लचीली होती है अत हीरा, रत्न आदि उसमे आराम से फिट हो जाते हैं। लोहा कठोर होता है अत उसमे हीरे, रत्न आदि नहीं लगते। मिट्टी मे भी काली मिट्टी ही लचीली होती है अत उसमे बढिया से बढिया खेती हो सकती है। किन्तु बालू–रेत के कण कठोर होते है अत उसमे वैसी खेती नहीं हो सकती है। गेहूँ नरम होता है अत उसमे दूध का प्रवेश हो सकता है। पर उसी दूध मे गेहूँ के साथ पड़े हुये चम्मच मे दूध का प्रवेश नही हो सकता है जबकि दूध मे रहा गेहूँ, दूध चूसकर मोटा हो जाता है। ठीक वैसे ही विनयवान् आत्मा मे ही मोक्षरूपी फल का बीज अकुरित, पल्लवित, पुष्पित हो सकता है, अविनीत आत्मा मे नही। और वह विनय भव्य आत्मा मे ही आ सकता है, अभव्य मे नही।

कुएँ से घडे के द्वारा पानी निकालना है तो घडे को पानी मे झुकना ही पडेगा, बिना झुके घडे मे पानी नहीं आ सकता। रोटी का कौर तोडने के लिये अगुलियो को झुकना ही पडेगा। ठीक उसी प्रकार से जीवन मे उत्थान के लिये विनय को जीवन मे अपनाना ही पडेगा।

कन्फ्यूशियस अन्तिम श्वासोच्छ्वास ले रहे थे। शिष्यगण आस–पास मे सेवा मे खडे थे तथा अन्तिम क्षणो मे गुरुजी के मुखारविद से शिक्षारूपी मक्खन को पाने की परम आशा लिये हुये थे। गुरुजी शिष्यो के मन की बात को समझते हुए जिन्दगी के अन्तिम क्षणो मे मक्खनरूप शिक्षा देने को तत्पर हुए और अपने मुँह को खोलते हुए शिष्यो को बोले कि देखो! मेरे मुह मे क्या है? शिष्यो ने बताया कि आपके मुँह मे सिर्फ जबान है। कन्फ्यूशियस बोले– मुँह मे पहले जबान आई या दाँत? शिष्यो ने एक स्वर से बोला– पहले जबान

आई है। गुरुजी ने कहा– जबान पहले आई तो पहले जबान को जाना था। बाद मे आने वाले दॉत पहले क्यो चले गये? सभी शिष्य चुप रह गए। तब गुरुजी ने बोला– शिष्यो! दॉत कडक होते है अत पहले चले गए है किन्तु जबान लचीली होती है अत वह अपना अधिकार जमाये हुए रहती है।

इसी प्रकार से तुम्हारे जीवन मे विनय गुण रहेगा तो तुम्हारा अस्तित्व भी सभी के दिलो मे बना रहेगा व विनय के आधार पर आगे गति करते हुये अपने अन्तिम लक्ष्य अखड सुख को प्राप्त कर लोगे। अगर तुम दॉत की तरह से अकड कर रहे तो तुम दॉतवत् शीघ्र अपने अस्तित्व को खो दोगे। श्रीकृष्ण प्रतिदिन 400 माताओ के चरणो मे झुककर प्रणाम करते व उनके अन्तरदिल से आशीर्वाद प्राप्त करते थे।

राम अपने पिता के वचनो से राज्य छोडकर चौदह वर्ष हेतु वन मे चले गए। माता–पिता के इशारे के अनुसार चलने वाली सतान उनसे प्राप्त आशीर्वादो से शीघ्र अपने क्षेत्र मे आगे बढ जाती है। नम्र, झुकने वाले वृक्ष मे ही मीठे, रसीले फल लगते है। कडक रहने वाले वृक्ष मे मीठे फल तो लगते नहीं है और ऊपर से उसे ठूँठ और कहते है।

आज की सस्कृति भी शीर्षासन कर रही है। परिवार और स्कूलो मे देखते है शिक्षक खडे–खडे पढा रहे है और विद्यार्थी कुर्सियो पर बैठे–बैठे पढ रहे है। किन्तु ऐसे विद्यार्थी का मस्तिष्क विद्या भी कैसे पकड सकता है?

महारानी चेलना के बगीचे से जब आम गायब हुये तब अभयकुमार ने अपनी बुद्धि से चोर को पकड लिया और राजा श्रेणिक के समक्ष उस चाडाल जातीय चोर को उपस्थित किया। राजा श्रेणिक ने क्रोध मे आकर मृत्युदड की सजा सुना दी। अभयकुमार ने बीच–बचाव करते हुये कहा– कि पृथ्वीनाथ! यह चाडाल कई दुर्लभ विद्याएँ जानता है अत इससे विद्यामत्र सीख लेना चाहिए। तब श्रेणिक ने चाडाल से कहा–अच्छा! तुम मुझे मन्त्र याद कराओ। चाडाल के द्वारा पुन–पुन याद करवाने पर भी राजा को मत्र याद नहीं हो रहा था। तब अभयकुमार ने कहा कि विद्यादाता का स्थान हमेशा ऊँचा होता है।

विद्या विनय से आती है। राजा श्रेणिक अभयकुमार का भाव समझ गये और तुरत सिहासन से उठकर नीचे बैठ गए व उस चाडाल को सिहासन पर बिठा दिया। अब तो चाडाल के द्वारा मत्र बोलते ही राजा को एक बार मे ही याद हो गया और उसका मृत्युदड माफ कर दिया। इस प्रकार विनय से ही विद्या प्राप्त होती है। विनय गुण महानता एव उच्चता का द्योतक है। विनय के अभाव मे विद्या पाप्त करना असभव है। जैसे जड उखड जाने पर वृक्ष धराशायी हो जाता है उसी प्रकार विनय गुण के समाप्त होने पर सारे गुण भी उसके साथ ही समाप्त हो जाते है।

लोग समझते है कि हम क्यो झुके? हम झुकेगे तो हमारी नाक कट जायेगी। पर यह नहीं पता कि अगर झुके नहीं तो कितने जन्मो तक नाक नहीं मिलेगी। अर्थात् एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय आदि जातियो मे घूमता रहेगा। नाक कितनी भी ऊँची क्यो न हो, ललाट से तो नीचे ही रहेगी, फिर झुकने से आपकी नाक नीची कहॉ से हो जाएगी? विनय गुण वाला व्यक्ति हमेशा टेन्सन से मुक्त रहता है व उसे पारिवारिक जनो से सम्मान भी पूरा मिल जाता है। अत आपको हर तरह से लायक बनना है तो जीवन मे झुकने की प्रक्रिया अपनानी ही चाहिये।



प्रकृति के घर देर है, पर अंधेर नहीं

सव्व सुचिण्ण सफल नराण,
कडाण कम्माण न मुक्ख अत्थि।

अर्थात् प्राणियो के सभी सदनुष्ठान फलसहित होते है। फलभोग किए बिना उनसे छुटकारा नहीं होता। किन्तु वे अपना फल अवश्य देते है।

अनादि–अनतकाल से यह आत्मा कर्म के वशीभूत होकर सम्पूर्ण लोक मे परिभ्रमण कर चुकी है। यह ससार एक रगशाला है जिसमे जीव कभी हॅसता है तो कभी रोता है। कभी पुण्यपुज के खिलने से ताता–थैया करने लगता है तो कभी पाप–पक मे फॅस जाने से निष्क्रिय होकरके बैठ जाता है।

कोई प्राणी एक इन्द्रिय को धारण करके चल रहा है तो कोई पॉचो इन्द्रियो का धारक है। पचेन्द्रिय जाति मे भी कोई नारकी, पशु बनकर दु खो के सागर मे डूब रहे है तो कोई मनुष्य बनकर सुख–दु ख का अनुभव कर रहे है। मनुष्य चोले की स्टेज प्राप्त कर लेने के बावजूद भी कोई मनुष्य शारीरिक, आर्थिक व प्रज्ञाशक्ति से सशक्त है तो कोई दुर्बल, अशक्त, निर्धन, मन्दबुद्धि से युक्त है। कोई वैभव के झूले मे झूल रहा है तो कोई सडको को साफ करने मे लगा हुआ है। इन सारी विचित्र स्थितियो का मूल कारण कर्म ही है। जो जैसा करता है, उसे वैसा भागना ही पडता है।

मिर्ची खाने पर मुॅह जलता ही है,
गर्म पानी मे हाथ डालने से वह जलता ही है,
ठीक वैसे ही कर्मो के वशीभूत हुयी आत्मा को,
संसार सागर मे गोते लगाना ही पडता है।।

किसी बच्चे ने पेट भरकर तेज मसाले वाली कचौडी, समोसे खा लिये और जेठ–आषाढ की भरी दोपहर की गरमी मे खेलने के लिए चला गया। और अब मन मे सोचे कि अब दो घटे मुझे प्यास न लगे, तो ऐसा कभी भी हो नही सकता। प्यास अवश्य लगेगी। उबलते हुये गर्म तेल मे बेसन का घोल डाल देवे और सोचे कि यह घोल पककर बडा नही बने, तो वह सभव नहीं है। ठीक वैसे ही कृतकर्मो का फल तो अवश्य भोगना ही पडता है।

कर्म भी दो प्रकार के होते हैं–अनिकाचित व निकाचित। अनिकाचित कर्मो को तो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, ध्यान, मौन आदि साधनाओ के माध्यम

से, उदय मे आकर फलभोग देने से पूर्व ही नष्ट किया जा सकता है। अर्थात् उन कर्मो को प्रदेशोदय के द्वारा भोग लिया जाता है। किन्तु निकाचित कर्मो मे कोई बदलाव नही आ सकता। वे तो फलभोग देकर ही आत्मा से दूर होते है। हॉ, ऐसा जरूर होता है कि कोई कर्म बॉधने के बाद हाथोहाथ उदय मे आ जाते है, तो कोई कितने ही समय व भव के बाद उदय मे आते है। जैसे टाइमिग बम का समय होता है कि वह उतने–उतने समय के बाद ही फूटेगा। ठीक उसी प्रकार कर्मो की जैसी–जितनी स्थिति होती है, उसके अनुसार ही उदयकाल मे आकर फलभोग देने मे प्रवृत्त होते है। गजसुकमाल मुनि के निन्यानवे लाख भव के बाद मे पूर्वकृत कर्म उदय मे आये थे।

खदक मुनि 12 5 करोड भव पूर्व सिर्फ काचरे की छाल उतारकर अपनी हस्तकला पर खुश हुवे। उस अति खुशी के विचारो की प्रगाढता मे जो कर्मबन्धन हुए थे। वे 12 5 करोड भव के बाद भी उदय मे अवश्य आये और उन्हे स्वय के शरीर की चमडी उतरवानी पडी।

महारानी रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण के साथ उद्यान मे फाग खेलते हुए अपने रग के गीले हाथो से मयूरनी का अडा हाथ मे उठा लिया था और उसे देखकर पुन वापस तथावत् रख दिया। किन्तु अडे के रग लग जाने से मयूरनी ने उस अडे को 16 घटे तक नहीं पहचाना। उसके बाद बरसात आने पर रग साफ होने से मयूरनी ने अडे को पहचाना और उसका सेवन किया। इस प्रकार मयूरनी ने 16 घटे तक अपने उस अडे का सेवन नहीं किया अर्थात् मयूरनी से 16 घटे तक अडे का बिछोह महारानी रुक्मिणी के कारण रहा। उस कर्मबन्धन का परिणाम यह रहा है कि 16 वर्षो तक रुक्मिणी को अपने पुत्र प्रद्युम्नकुमार का वियोग देखना पडा।

किसी भाई ने दूसरे भाई से पूछा कि मै घोडे की पूँछ पकडूँ तो मुझे क्या देओगे? तो उस दूसरे भाई ने उत्तर दिया कि घोडा स्वत ही दे देगा। अर्थात् कृत कर्मो का फल स्वत ही प्राप्त होगा। मारवाड मे कहा भी जाता है कि "कॉकरै री देसी जिको पसेरी री खासी।" एक आदमी प्रतिदिन हलवाई के यहॉ से मिठाई लाता है किन्तु जब 12 महीने का एक साथ हलवाई के यहॉ से बिल आता है तब मॉ–बाप याद आते है। वैसे ही कर्म करते समय व्यक्ति को दु ख नहीं होता, किन्तु भोगते समय रोने लगता है।

गुजरात के एक शहर मे मटकूलाल भाई रहता था। जैसा उसका नाम था, वैसे ही उसके बोल–चाल व कार्य–कलाप भी थे। एक वार रविवार–छुट्टी के दिन घूमने के लिए निकले। घूमते हुए एक होटल के ऊपर लिखे एडवर्टाइज को पढा। लिखा था गुजराती भाषा मे– "तमारा जमवा ना पैसा तमारा पोता थी लेवाशे।" मटकूलाल को वह बात बहुत पसद आयी और होटल मे प्रवेश कर लिया। आराम से चेयर पर बैठा और बढिया से बढिया

वेरायटीज की मॉग करने लगा। सारी वस्तु, मॉग करते ही वेटर ने मटकूलाल भाई के सामने टेबल पर लाकर रख दी। मटकूलाल भाई ने खूब मस्ती से स्वाद ले–लेकर खुशी के साथ खायी। जब गले तक पेट भर गया तब खडा हुआ और होटल से बाहर जाने लगा। तभी वेटर ने बिल लाकर पकडाया मटकूलालजी के हाथो मे। उस भाई ने कहा–रे! पहले तुम्हारी होटल पर लिखे विज्ञापन को पढ लो क्या लिखा है? उसके अनुसार मेरे जीमने के पैसे मेरे पोते से लेना। होटल वाले ने कहा–बिल्कुल ठीक। आपके जीमने के पैसे तो आपके पोते से ही लेगे। पर आपके दादाजी हमारी होटल मे पहले जीमकर गये हैं। अत यह बिल उनके जीमने का है, वह आपको भरना होगा। आखिर उस भाई को बिल भरना ही पडा। कान हाथ से सीधा पकडो या हाथ को घुमाकर पकडो, एक ही बात है। ठीक वैसे ही कृतकर्मो का फल तो भोगना ही पडेगा।

कहा भी है– **सकम्मुणा विप्परिया सुवेइ** अर्थात् प्रत्येक प्राणी अपने ही कृतकर्मो से कष्ट पाता है।

किसी का कहना है कि जीव बुरे कर्म करता तो है पर बुरा फल भोगना नहीं चाहता। तथा दूसरी बात यह है–कर्म स्वय जड होने से जीव को कर्मफल भोग नहीं करवा सकते। अत ईश्वर जीव को कर्मफल भोग करवाता है।

ईश्वरवादी का ऐसा कहना उचित नहीं है क्योकि बुरे कर्म का फल नहीं चाहने से भोगना न पडे, ऐसा नहीं हो सकता। शराब पीने के बाद व्यक्ति चाहे कि मुझे नशा न आवे, ऐसा नही हो सकता। उसे नशा आयेगा ही। केवल चाहने या न चाहने से कुछ भी नहीं होने वाला है। कृतकर्म का फल तो भोगना ही पडता है। उसमे ईश्वर की आवश्यकता ही नही है। क्योकि कर्म अकेले रहकर तो फलभोग करवाते ही नहीं हैं। कर्म मे चेतन के ससर्ग से एक ऐसी शक्ति उत्पन्न हो जाती है कि जिससे वह अच्छे–बुरे कर्मो का फल प्रकट करने मे सक्षम हो जाता है। अत कर्मफलभोग मे ईश्वर को बीच मे लाना ठीक नही है।

प्रत्येक जीव कर्म करने मे जैसे स्वतत्र है। वैसे ही फलभोग मे भी स्वतत्र है। अत स्वकृत अच्छे–बुरे कर्मो का फलभोग सभी को करना ही होता है।

वास्तव मे प्रकृति के घर मे देर है, पर अधेर नही।



तृष्णा की बात - सघन अँधेरी रात

कसिण वि जो इम लोयं, पडिपुण्ण दलेज्ज एगस्स।
तेणावि से ण संतुस्से, इइ दुप्पूरए इमे आया।।(उत्त 8/16)

अर्थात् धन–धान्यादि से भरा हुआ परिपूर्ण यह लोक यदि कोई सुरेन्द्रादि एक ही व्यक्ति को दे दे तो उससे भी वह आत्मा सतुष्ट नही होती है। इस प्रकार इस आत्मा का तृप्त होना अति ही कठिन है।

मानव 24 घटे अशात, दु खी, अप्रसन्न दिखायी देता है। उसका एक ही कारण है–असतोष। तृष्णा की भट्टी मे से दु ख की ज्वालाएँ आ रही है। आदमी अधिक से अधिक 100 वर्ष जीता है, पर हजारो वर्षो की तैयारी करने हेतु आकाश–पाताल एक कर रहा है। चोर तो किसी एक की चोरी करता है, परन्तु तृष्णावान् अन्याय, अनीति व असत्य के बल पर सैकडो मनुष्यो का धन छीन लेते है।

ठाणाग सूत्र के चौथे ठाणे मे चार प्रकार के खड्डे बतलाए गए है– 1 पेट का खड्डा 2 समुद्र का खड्डा 3 श्मशान का खड्डा 4 तृष्णा का खड्डा।

सवेरे उठने के बाद से शाम को सोने तक पेट को भरते रहते है। हो गए इतने वर्ष पेट को भरते–भरते। मनोबद अनाज पेट मे चला गया फिर भी पेट का खड्डा अभी तक भरा नहीं है। निरन्तर पेट मे डालने के लिए कुछ–न–कुछ चाहिये ही चाहिये।

दूसरा खड्डा समुद्र का है। हजारो नदियो का पानी निरन्तर समुद्र मे गिर रहा है फिर भी समुद्र कभी भरता ही नही है।

तीसरा खड्डा है श्मशान का। हो गए हजारो वर्ष श्मशान में निरन्तर मृत लोगो को जलाते हुए, किन्तु श्मशान का खड्डा कभी भरता नहीं है।

तृष्णा का चौथा खड्डा तो पूर्व के तीन खड्डो से भी बडा है जिसे भर पाना असभव है।

कहा भी है–

जो दस, वीस पचास भया,
बट होय हजार लाख मॉगेगी।
क्रोड अरब खरब भया तो पुण्य पृथ्वी राज की चाह जगेगी,

सुरग का राज पाताल भया तो तृष्णा अधिक-अधिक जगेगी,
सुंदर एक संतोष बिना थारी, सुख भागी नहीं, भगेगी।
आवश्यकता है कण जितनी पर तृष्णा है मण जितनी।

सोने के लिए चार हाथ जमीन चाहिए पर विशाल बॅगला बनवा लेने पर भी सतोष नही। एक कोठी बन गयी तो दूसरी की चाह जग जाती है। हजारो है तो लाखो की तृष्णा लगी है और लाखो है तो करोडो की कामना हो रही है। घर मे साइकिल है तो स्कूटर की चाह जगी है व स्कूटर है तो कार की चाह जग रही है। मनुष्य को अपना जीवन–निर्वाह करने के लिए कितना चाहिये? वह पेट मे कितना अन्न डाल सकता है? और शरीर पर कितने कपडे लपेट सकता है? जितनी आवश्यकता है उतना प्राय सभी को मिल जाता है। फिर भी अन्तर मे तृष्णा अधिक से अधिक बढती हुई नजर आती है।

जहॉ जहॉ होती है तृष्णा की बात।
वहॉ वहॉ होती है सघन अॅधेरी रात।
तृष्णा का अन्त कभी नहीं होता।
वह मचाती है जीवन मे उत्पात।।

कोशाम्बी नगरी के राजा प्रसेनजित के राजपुरोहित काश्यपगोत्रीय अति विद्वान थे। उनके स्वर्गवासी हो जाने पर विधवा मॉ के साथ रहने वाले पुत्र कपिल मे परिवर्तन आया और नगरी के इन्द्रदत्त उपाध्याय की दासी के साथ उस का अनैतिक सबध बना। उसके लिये तथा उससे होने वाली सतान के लिये व स्वय के निर्वाह के लिये जब अर्थ की आवश्यकता महसूस हुई तब वह दो माशा स्वर्ण के लिये सूर्योदय से बहुत पूर्व ही राजा को आशीर्वाद देने के लिये अपने निवासस्थान से निकल गया था। रास्ते मे नगर–रक्षको ने चोर समझकर पकडा। सवेरे राजसभा के मध्य राजा के सामने उपस्थित किया। कपिल ने अपने गलत सबध वाली बात व उससे होने वाले बच्चे हेतु अर्थ की आवश्यकता पडेगी– आदि सारी बात बिलकुल सच्चाई के साथ पेश कर दी। राजा उसकी सच्चाई पर बडा खुश हुआ और कहा– वास्तव मे तुम्हे अर्थ की आवश्यकता पडेगी ही। अत तुम चाहो उतना अर्थ मॉगलो।

ऐसा सुनकर वह एक बार तो आश्चर्यचकित हुआ कि कहॉ तो मैं जेल मे ठूॅसा गया था और कहॉ मुझे वरदान मिला है कि जो चाहो वो मॉग लो। वह सोचने लगा कि जब राजा प्रसन्न है तो दो मासा ही क्यो, 10–20 तोला सोना मॉग लूॅ। फिर सोचा, यह तो थोडे दिन मे ही समाप्त हो जायेगा। अत 50 तोला सोना मॉग लू। इस प्रकार कुछ सोच ही रहा था, तभी राजा ने कहा कि तुम असमजस मे मत पडो और सामने वाले बगीचे मे घटेभर बैठकर सोच लो कि तुम्हे क्या आवश्यकता है? कपिल खुश हुआ और बगीचे मे वृक्ष की छाया मे बैठकर सोचने लगा कि किलो, दो किलो सोना भी आ गया तो भी

एक दिन तो वह खत्म होना ही है। ऐसा कुछ मॉगू कि स्थायी आय चलती रहे। राजा जब प्रसन्न ही है तो 5–7 गॉव की जागीरी मॉगलूँ। विचारो मे फिर समस्या पैदा हुयी कि कभी राजा अप्रसन्न हो गया और पुन जागीरी छीन ली तो क्या होगा? अत आधा राज्य मॉग लूँ ताकि बराबर की राज्य–सत्ता मेरे पास भी रहेगी। किन्तु कभी राजा को क्रोध आ गया और अनायास आक्रमण कर पुन राज्य को छीन लिया तो मै तो वही का वही रहूँगा। अत पूरा राज्य ही मॉग लूँ। पूरा राज्य मॉगने की भावना बनाकर राजा के पास जाने हेतु जैसे ही कदम बढाये और एकदम अन्दर से आवाज आयी–धिक्कार है तुम्हे! उपकारी का ही गला काटने जा रहा है! जिसने इच्छानुसार मॉगने का बोला उसी को रोड पर खडा करने जा रहा है? इस अन्तरग आवाज को कपिल ने दबाया नहीं अपितु उसे सुनकर चितन मे डूबा–वास्तव मे मै कितना गलत काम करने जा रहा हूँ। मेरे जैसा कृतघ्न और कोई नही होगा। हा ! यह तृष्णा व्यक्ति को कहॉ से कहॉ तक भटका देती है। शुद्धता के साथ चितन करते–करते जाति–स्मरण ज्ञान हो गया और अपने पूर्वभव को देखने लगे–कहॉ तो मैने पूर्वभवो मे उत्कृष्ट सयम का पालन केवलज्ञान–केवल दर्शन को पाने को किया था, और अब मेरे मन मे कैसी निकृष्टतम तृष्णा पैदा हुयी है। धिक्कार है मेरी इन दुर्भावनाओ को!

कहा भी है–

चाह चमारी चोरटी, सौ नीच की नीच।
मै था पूरण ब्रह्म, यदि चाह न होती बीच।।

राजा ने कपिल को बुलाया तो कपिल ने कहा–मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। जो चाहिए था, वह मिल गया है। कपिल के मन मे सयम की जबरदस्त तडपन पैदा हो गयी। उसी समय देव के द्वारा सयम की ड्रेस प्राप्त हुयी और दीक्षा अगीकार करके विचरण करने लगे। छह महीने के उत्कृष्ट सयमपालन के बाद केवलज्ञान– केवलदर्शन की प्राप्ति हो गयी। धन्य है कपिल मुनिवर को! जो स्त्री–जाल मे व तृष्णा के जाल मे फॅसकर भी शुद्ध चितन के माध्यम से तुरत निकल गए। तृष्णा की जल रही भयकर आग को सतोष के शुद्ध चितन से शात कर दिया। भौतिक सपदा से मन हटाकर आध्यात्मिक सपदा को सप्राप्त करने मे लगा दिया। अर्थचितन मे लगे मन को मजबूती के साथ खीचकर इच्छाओ का एकदम दमन कर दिया था। वास्तव मे सुख पाने के लिए इच्छाओ का अन्त तो करना ही पडेगा। इच्छा–आपूर्ति हेतु अनेक जीवन भी लगा दिये तो भी इच्छा पूर्ण होना असभव है। वास्तव मे इच्छापूर्ति से इच्छा अपूर्ति का पलडा हमेशा भारी ही रहेगा।

दहेज मे ससुरालवालो ने जॅवाई सा को कितना भी दिया हो पर जॅवाई सा की तृष्णा कभी शात नहीं होती। मुहम्मद गजनवी नगरकोट का मदिर लूट

के 20 मन जेवर, 200 मन सोना, 2000 मन चॉदी, इसके सिवाय हिन्दुस्तान पर 16 हमले और करके अपार धन ले गया। वह मृत्यु के समय धन का ढेर बनाकर उस पर सोया और बच्चे की तरह रोने लगा। हाय! इसमे से एक भी कोडी मेरे साथ नही चलेगी। यह तृष्णा की अग्नि बाहर की अग्नि से भी अधिक जबरदस्त व घातक है। सारा ससार इस आग मे जल रहा है।

मकडी मेहनत करके जाल बनाती है और झाडू देने वाली बहिन एक क्षण मे नष्ट कर देती है। इसी प्रकार तृष्णावान् व्यक्ति धन के लिए मेहनत करता है। पर वह उसके उपभोग मे नहीं आता। मम्मण सेठ ने रात–दिन एक करके, लूखा–सूखा खाकर, गरमी, सदी, वर्षा सभी को सहन करते हुए धन एकत्रित किया, पर उसने अपने जीवन मे नाममात्र भी सुख उपलब्ध नही किया।

अधा व्यक्ति कहता है कि जगत् अधकारमय है किन्तु यह नही विचारता कि मैं खुद अधा हूँ। इसी तरह लोग कहते है कि दुनिया मे सुख नहीं है। किन्तु यह नहीं समझते कि हमे सतोष नही है। तुरत सुख पाने के इच्छुक व्यक्तियो को सतोष धारण करना चाहिए।

कहा भी है–

संतोषी सदा सुखी, दुःखी है तृष्णावान्।
चाहे तो गीता पढो, चाहे पढो कुरान।।

भगवान् ऋषभदेव ने दीक्षा की भावना से भरत को राज्य दिया व शेष 99 पुत्रो को अपनी–अपनी योग्यता के अनुसार राज्य दिया। भरत महाराज ने एक बार सभी भाइयो के पास सदेश भिजवाया कि तुम सभी को मेरे नेतृत्व मे रहना है व राज्य का सचालन मेरी आज्ञा के अनुसार ही करना है। तब बाहुबली के सिवाय 98 भाइयो ने सोचा कि हम राज्य के लिए युद्ध कर सकते है किन्तु हमे जिसने राज्य दिया है उनसे एक बार सलाह तो ले ले कि हमे क्या करना चाहिये? ऐसा सोचकर भगवान् ऋषभदेव के चरणो मे पहुँचे और अर्ज करने लगे– भगवन्! आपके द्वारा दिया हुआ राज्य भाई भरत मॉग रहा है। अत आप कहो तो हम उसे वापस दे देवे या आप कहो तो हम युद्ध कर लेवे या फिर आपके द्वारा दिया राज्य पुन आपके चरणो मे समर्पित कर देवे। भगवान् ने फरमाया कि तुम्हे कैसा राज्य दिया? 98 पुत्रो ने कहा– आपने जो राज्य दिया वही, और कौन–सा राज्य हमे मालूम नहीं। भगवान्–वह तो मिट्टी का राज्य है, नश्वर है। तुम तो वह राज्य ग्रहण करो जिस राज्य को भरत जैसे हजारो चक्रवर्ती भी आ जावे तो भी छीन न सके अपितु उन्हे झुकना ही पडे। उस राज्य को प्राप्त करके तुम राजा ही नहीं अपितु महाराजा कहलाओगे। 98 पुत्र– भगवन्! तो फिर हमे तो वही शाश्वत राज्य चाहिये। भगवान्– तो फिर तुम बाहरी तृष्णा को छोड दो। 98 पुत्रो ने बाहरी राज्य को छोडकर भगवान् से प्रेरणा पाकर सयम अगीकार कर लिया और शीघ्र

शाश्वत राज्य को पाने उत्कृष्ट सयम का पालन करने लगे। भरत भी उन भाइयो के चरणो मे आकर झुक गए। 98 पुत्रो ने सतोषरूपी सुखमय राज्य को तत्काल ही प्राप्त कर लिया था।

शाश्वत सुख को पाने हेतु हमे तृष्णा पर ब्रेक लगाना ही होगा। गोल एडी के बल पर व्यक्ति चल नहीं सकता। चलने के लिए पजे को जमीन पर दबाना ही होगा। ठीक वैसी ही ससार की ये गोल इच्छाएँ कि कभी यह चाहिए, कभी वो चाहिये– इन पर ब्रेक लगाना ही होगा।

इच्छाओ को दबाने से ही गोल लोक के अन्दर होने वाला परिभ्रमण रुक सकेगा।



मान की चट्टान - विनय का प्रस्थान

माणो विणय नासणो

अर्थात् आत्मा मे मान का प्रादुर्भाव होते ही आत्मा के सहजिक गुण विनय का नाश हो जाता है।

अभिमानी व्यक्ति आदरणीय पुरुषो का आदर नही करता, सम्माननीय पुरुषो का सम्मान नहीं करता। यहाँ तक कि पचमहाव्रतधारी पूज्य पुरुषो के चरणो मे वदन करने के लिए गये और अगर महाराज ने अन्य तरफ ध्यान होने से दया पालो नहीं कहा तो वहाँ भी मान–फण उठाकर खडा हो जाता है और दूसरे दिन से स्थानक मे आना छोड देते है। क्रोध बिच्छू के डक के समान है तो मान साँप के काटने के समान और ज्यादा भयकर व खतरनाक है। समाज मे लाखो रुपयो का दान देने वाले मिल सकते है। मास–मासखमण की तपस्या करने वाले मिल सकते है। भर–जवानी मे शीलव्रत का पालन करने वाले मिल सकते हैं। घर, परिवार, धन आदि का त्याग करने वाले मिल सकते है। किन्तु ऐसे उच्च कोटि के पुरुष भी मान से अछूते रहे हो–ऐसा देखने मे कम आता है। महापुरुषो के मुँह से भी यह सुना व देखा जाता है कि यह शिष्य मेरा, यह मेरे श्रावक, मेरे चातुर्मास मे इतनी तपस्याएँ हो रही है। इतने शास्त्र याद कर लिये है। मै ज्ञान मे बडा हूँ। मै दीक्षा मे बडा हूँ आदि।

अपार शक्ति, बल के धनी बाहुबलीजी ने मन मे विरक्त भावना जागते ही दीक्षा अगीकार की। जाने लगे प्रभु चरणो मे किन्तु ध्यान आया कि प्रभु चरणो मे मेरे से पूर्व दीक्षित मेरे से छोटे 98 भ्राता भी हैं। वहाँ जाने पर उनके चरणो मे झुकना पडेगा। अत पहले कठोर साधना करके घनघाति कर्मो की निर्जरा के फलस्वरूप केवलज्ञान–केवलदर्शन प्राप्त करके ही प्रभु चरणो मे जाऊँगा ताकि छोटे भाइयो के चरणो मे झुकना न पडे। ऐसे सकल्प के साथ पहुँचे भयकर जगल मे और अनशन तप के साथ ध्यान–साधना मे हिमानी की भाँति अचलता के साथ लीन हो गए। कहते है कि उन्होने ध्यान–साधना मे अपने आप को इतना निष्कप बना लिया कि उनके शरीर पर वल्लियाँ चढ गयीं। पक्षियो ने घोसले तक बना लिये। इतनी अचल, अडोल, कठोरतम साधना के बावजूद भी केवलज्ञान, केवलदर्शन प्रकट नहीं हुआ। तब बहिने

ब्राह्मी व सुन्दरी के ये शब्द--

वीरा म्हारा गजथकी हेठा उतरो
गज चढ्या केवल नहीं पासी रे।।

सुनते ही बाहुबलीजी की चितनधारा ने मोड खाया। अरे! मै कहाँ मान के हाथी पर बैठा हूँ। सोचा--मेरे भाई दीक्षा मे बडे है। उन्हे वदना करने मे मुझे कोई विचार नही करना चाहिये। यह मान--कषाय आत्मा की साधना मे बाधक होता है। अत जाता हूँ, अभी जाता हूँ और प्रभु के साथ सभी मेरे भाइयो को भी वदन करता हूँ। ऐसा सकल्प जैसे ही मन मे किया और कदम बढाया या नही बढाया कि केवलज्ञान प्रकट हो गया। उनका अन्तरग छोटे भाइयो के चरणो मे झुक गया था। मान दूर हो गया था। मानरूपी बाधक तत्त्व के दूर होते ही केवलज्ञान--दर्शनरूपी फल प्रकट हो गये।

वृक्षो मे भी जो वृक्ष नम्र होता है, उसी मे फल लगते है। अकडबाज वृक्ष तो ठूँठ की सज्ञा पाता है। आम जैसे मधुर फल नम्र वृक्ष मे ही लगते है। अपने से ऊपर वालो की तरफ देखिये। जगत मे एक से बढकर एक बलवान्, बुद्धिमान, ऐश्वर्यवाली, त्यागी, तपस्वी बैठे है। अगर उनकी ओर दृष्टिपात किया जाये तो अभिमान का नशा नही ठहर सकता।

दशार्णभद्र प्रभु वीर के दर्शन करने चतुरगिनी सेना के साथ बडे शाही ठाठ से जा रहा था। मन मे यह गर्व था कि पहले कोई भी राजा जिस ठाठ से नही गया, वैसे मैं जा रहा हू। अपूर्व है मेरा वैभव! स्वर्गपति इन्द्र ने अवधिज्ञान के माध्यम से जब दशार्णभद्र के अभिमान को जाना। तो सोचा--प्रभु के दर्शनार्थ जाते हुए अपने वैभव का अभिमान करना एक भक्त के लिए अच्छा नही है। अत दशार्णभद्र का मान भग करने हेतु तुरत ही अपनी देवत्व शक्ति के माध्यम से गगन मडल से 64000 हाथी प्रकट किए जो कि उत्तम विधि से आभूषणो आदि से सुसज्जित थे। प्रत्येक हाथी कैलाश पर्वत के समान ऊँचाई मे दिखाई दे रहा था। प्रत्येक हाथी के 500--500 सूँड थीं। एक--एक सूँड मे आठ--आठ तीखे, लम्बे, श्वेत गजदत थे। एक--एक गजदत पर एक सौ आठ बावडी दिखाई दे रही थी। एक--एक बावडी मे 108 कमल 108 पँखुडियो के साथ खिलते हुए शोभायमान हो रहे थे। और प्रत्येक पँखुडी पर देव--देवी गण मन मुग्ध करने वाले बत्तीस--बत्तीस प्रकार के नाटक कर रहे थे।

इस प्रकार के इन्द्र के वैभव को अपने वैभव के समक्ष देखकर दशार्णभद्र राजा सूर्य के सामने टिमटिमाते दीपकवत् अपने वैभव को अनुभव करने लगे। किन्तु सोच रहे है कि इन्द्र के महान् वैभव के समान यदि कोई ऊँचा वैभव है तो वह त्याग का ही है। मुझे अब वही त्याग का वैभव अपनाना चाहिए। दशार्णभद्र ने तुरत विरक्ति भाव को अपनाकर सयम ग्रहण कर लिया। अत

उसी समय इन्द्र भी दशार्णभद्र के चरणो मे झुक गया और उनके त्यागरूपी वैभव की भूरि–भूरि प्रशसा करने लगा।

कहा भी है–

जब मै था तब हरि नहीं अब हरि मै नाहि।
प्रेम गली अती सॉकरी ता मे दो न समाहि।।

अभिमान अल्पज्ञानी हलके मनुष्यो के अन्दर ही होता है। अत्मिक ज्ञान प्राप्त होने पर अभिमान टिकता नहीं है। उच्च जाति के कीमती घोडे से पूछा गया कि तुम्हारे जैसा कीमती अन्य कोई घोडा है? तो प्रत्युत्तर मे हण–हणी शब्द करता है अर्थात् है–है–है। मेरे जैसे बहुत हैं। किन्तु गधे से पूछा जाये तो वह भुक्–भुक् करता है। अर्थात् पृथ्वी पर मै ही हूँ।

जापान के सेनापति के फोटो बाजार मे बिकते थे। सेनापति को पता लगते ही उसने सारे फोटो खरीद कर जला दिए और दुकानदार को समझाया कि मेरे फोटो नहीं बेचना है क्योकि जहॉ महापुरुषो के फोटो लगे रहते है वहा यह फोटो लगा दिया जायेगा तो मेरा फोटो लज्जित होगा। किन्तु इसी स्थान पर आपके फोटो बिकते हो तो ? पर आप जानते है, वृक्ष के मूल को खुला रखने पर उसका पतन ही होता है। वैसे ही अपने गुरुत्व को प्रकट करने से मनुष्य का पतन ही होता है। वृक्ष की जड पर मनोबद मिट्टी डाल देने पर भी वह प्रगति कर सकती है। इसी प्रकार मनुष्य की योग्यता स्वत ही प्रकट हो जाती है।

उच्च कोटि के फल अपने रस एव तत्त्वो को ढककर रखते हैं जैसे नारगी, केला, अनार। और निम्न कोटि के फल अपने तत्त्वो को खुला रखते है जैसे गाजर, मूला, आलू, आदि। मानव का स्वभाव भी ज्यादातर प्रदर्शन का बना हुआ है। वह अपने छोटे–बडे कार्यो को लोगो के बीच प्रदर्शित करता हुआ फिरता है। धन, सपत्ति, यौवन, अधिकार आदि के अभिमान मे उन्मत्त बनकर अपने से कमजोर व्यक्तियो का तिरस्कार करता है। पर यह नहीं समझता कि आखिर अन्य के समक्ष मेरे पास है ही क्या?

यूनान मे एक जमीदार रहता था। उसे अपनी धन–सपत्ति और जागीरी का बडा गर्व था। वह एक बार महात्मा सुकरात के पास पहुँचा और उनके सामने भी अपना बखान करने लगा। तभी महात्माजी ने विश्व का एक मानचित्र निकाला और पूछने लगे इस नक्शे मे तुम्हारा यूनान देश कहॉ पर है। जमीदार ने शीघ्र अपना यूनान देश बता दिया। फिर महात्मा ने पूछा– इस यूनान देश मे आपका एन्टार्टिका प्रान्त कहॉ पर है? जमींदार ने उस यूनान की छोटी–सी जगह मे मुश्किल से अपने एन्टार्टिका प्रान्त को ढूॅढकर अगुली लगाकर बताया कि यह मेरा एन्टार्टिका प्रान्त है। तब महात्मा ने कहा– अच्छा! अब यह बताओ कि इस एर्न्टोटिका प्रान्त मे तुम्हारी जागीरी कहॉ पर है? जमीदार ने कहा– इस नक्शे के अन्दर मै अपनी जागीरी केसे

दिखा सकता हूँ? तब महात्मा बोले– जब तुम अपनी जागीरी को इस नक्शे मे नही बता सकते तो फिर इतना गर्व किस बात पर करते हो? जब तुम्हारी जागीरी के लिए इस नक्शे मे एक बिदु भी नहीं रखा गया तब इस समूचे विश्व की कल्पना तो करो कि तुम्हारी जागीरी इसके अन्दर क्या है? और तुम्हारा अस्तित्व क्या है? जागीरदार महात्मा के समझाने से समझ गया व अभिमान को त्याग दिया।

यह ठीक है कि आपने अपने जीवनकाल मे पुरुषार्थ किया और मकान खरीद लिया। किराये के मकान से घर के मकान मे आ गये। अत पूर्व से ज्यादा अब आनद बढ गया कि मै मकान–मालिक बन चुका हूँ। पहले आप किसी की दुकान पर मुनीम के रूप मे काम करते थे। पर अब घर की दुकान खोल ली। उससे आपका आनद और बढ गया। पहले आप सभी को जानते थे, आपको कोई नही जानता था किन्तु आज आपका विकास इतना हो गया कि आप को सभी जानते है पर आप किसी को नही जानते। इस प्रकार पुण्योदय से आप निरन्तर विकास कर रहे है। किन्तु इस विकास मे समतोल अवस्था न रखकर गर्व की अवस्था मे आ रहे है तो यह गर्व आपके जीवन के सहजिक गुण–विनय, सत्य, सरलता आदि को ले डूबेगा। अत समय रहते सावधान होना है। सत्सग, स्वाध्याय आदि के माध्यम से ज्ञान प्राप्त करके अभिमान को मिटा देना है।

अभिमान एक आरपीन है कि बडे पुरुषार्थ से विकास करने वाले व्यक्ति भी अभिमानरूपी आरपीन का वह मोटा सिरा आते ही अटक जाते है और आगे बढ नहीं पाते।

आदमी अहम् भाव के कारण अपने आपको बहुत बडा मान बैठता है और अन्य को छोटा मान लेता है लेकिन इस प्रकार के झूठे घमड के परिणाम भयकर रूप से सामने आते है। अरब के रेतीले मैदान मे एक अमीर व्यक्ति अपने नौकर के साथ ऊँट पर बैठकर चिलचिलाती धूप मे जा रहा था। अमीर अपनी पूरी व्यवस्था के साथ मे था। नौकर अमीर पर छत्र तानकर बेठा था व साथ मे पखा भी चला रहा था ताकि गरमी का एहसास ही नहीं होवे और चले जा रहे है। अमीर ने अपनी अमीरता के अभिमान मे आकर बोल दिया कि अरे! इस चिलचिलाती धूप मे पैदल चलकर क्या मरेगा? फकीर ने कहा– मरेगा तो अमीर मरेगा, फकीर नहीं मरेगा। ऊँट आगे बढ गया। कुछ देर बाद ही अनायास तूफान आया। उस तीव्र महावायु के कारण अमीर व नोकर सभल नही पाये और गिर गये नीचे और ऊँट भी गिर गया। तीनो ने तडफ–तडफ कर प्राण भी दे दिये। तभी फकीर अपनी मस्ती से चलता आया और देखा कि अमीर मर गया है। ओ हो! अमीर के अहकार ने मेरे भाई को बेमौत मार डाला।

यह अहकार व्यक्ति के सामने मौत जैसा खतरा भी पैदा कर देता है। अहकारी व्यक्ति किसी भी कार्य मे सफलता हासिल नहीं कर सकता है तथा प्राप्त किये गए अधिकार भी हाथ से निकलते हुये नजर आते है, प्रतिष्ठा गिरती हुयी नजर आती है। निरभिमानी व्यक्ति के जीवन मे विनय, विवेक का पानी टिक सकता है। सरस, मीठे ज्ञान के फल उसमे लग सकते हैं। वे फल अनेकानेक गुणो के मिठास से भर सकते हैं जैसे काली मिट्टी मे पानी गिरने पर गन्ने जैसे मधुर रसीले फल भी पैदा हो जाते हैं पर रेतीली जमीन मे मीठे फल वाले पौधे व वृक्ष नहीं होते क्योकि उसमे कोमलता नहीं अपितु कर्कशता है। अत वर्तमान जीवन मे ही सुख पाने हेतु अभिमानरूपी जहरीले सर्प से हमेशा डरते रहे और निरभिमानिता रूपी अमृत का पान करते हुए सुख को प्राप्त करे। जीवन "निमम्मे निरहकारे" निर्मोही व निरहकारी बने। ऐसा जीवन ही बोधप्रद है। ऐसा जीवन ही कृतकृत्य है। ऐसा जीवन ही सफल है।



सुवासित जीवन

असखयं जीवियं मा पमायए

अर्थात् जीवन असस्कृत है। अत प्रमाद मत करो।

जगत मे चैतन्य व जड हर द्रव्य के विकास हेतु पहले उन्हे सस्कारित होना जरूरी है। असस्कृत चैतन्य या जड कोई भी द्रव्य हो, उनका कोई महत्त्व नही। मानव को उदरपूर्ति हेतु सस्कारित रोटी की ही आवश्यकता होती है। असस्कारित कच्चा आटा या दाल पेट को भरने मे सक्षम नहीं। सस्कारित रोटी व दाल से ही पेट भर सकता है।

असस्कारित सोने के बिस्कुट को पहनकर कोई नहीं घूमता। गले मे चैन, हार आदि आभूषण पहनने के लिए उन्हे स्वर्णकार के द्वारा सस्कारित करवाना ही पडता है। उचित ढग से आभूषण सस्कारित–तैयार होने पर ही वे पहने जा सकते है।

असस्कारित रुई के द्वारा शरीर को नही ढॅका जा सकता। शरीर ढॅकने के लिए विधिपूर्वक सस्कारित हुए कपडे की ही आवश्यकता होती है। असस्कारित काली मिट्टी का भी कोई महत्त्व नही है। महत्त्व है–कुभकार के हाथो मे जाकर सस्कारित हुए घडे का, जो अपने अन्दर पानी टिकाने मे समर्थ हो सकता है। वैसे ही जगत मे सस्कारित जीवन का ही महत्त्व है। हर माता–पिता की यह ख्वाहिश रहती है कि उनके बच्चे सुसभ्य, शिक्षित व सस्कारवान् हो। उन्हे अपेक्षा रहती है कि बच्चा घर मे आने वाले सभी लोगो पर प्रभाव डालने वाला हो।

किसी भी परिवार मे बच्चे का आगमन उस परिवार को खुशियो से सराबोर कर देता है। किन्तु सस्कारहीन बच्चे उनके मॉ–बाप को वहुत पीडा पहुॅचाते है जिसे वे खुले तौर पर प्रकट भी नही करना चाहते हैं। शुरू–शुरू मे तो माता–पिता इस कडवे सच को मानने तैयार भी नहीं होते। ऐसे मे माता–पिता को चाहिये कि बच्चो को सुसस्कारो से सुसस्कारित करे।

सुसस्कारो से सस्कारित भाई–बहिन परिवार मे स्वय भी आराम से रह सकते है और अन्य के प्रति भी सद्व्यवहार करने मे सक्षम हो सकते हें। ओर ऐसा सस्कारित जीवन समाज मे भी अपने सद्व्यवहार की छाप छोडे बिना नही रह सकता।

उन सस्कारो का बीजारोपण बचपन से ही प्रारभ होता है। जैन धर्म के अनुसार तो गर्भ से ही सस्कार प्रारभ हो जाते हैं। बच्चा गर्भ मे आने के 48 मिनिट बाद ही सस्कारो को पकडना प्रारभ कर देता है। क्योकि 48 मिनिट मे ही गर्भस्थ शिशु का शरीर व इन्द्रियॉ तैयार हो जाते है। यहॉ तक कि सोचने–समझने की शक्ति रखने वाला मन भी तैयार हो जाता है। अत शास्त्रकार बोलते है– उस समय माता–पिता के विचार व आचरण शुद्ध व सात्त्विक होने चाहिएँ, क्योकि उनके आचरण का पूरा असर बच्चे पर पडता है। इसका प्रमाण है–अभिमन्यु के द्वारा गर्भ मे ही व्यूह–भेदन की विधि सीख जाना। अभिमन्यु जब गर्भ मे था तब अर्जुन अपनी पत्नी को व्यूह–भेदन की विधि समझा रहा था। गर्भस्थ बच्चा भी सुन रहा था। किन्तु थोडी देर मे व्यूह–भेदन की प्रक्रिया सुनते–सुनते ही माता को नीद आ जाने से गर्भस्थ बच्चे को भी नीद आ गयी। और बच्चा व्यूह से बाहर निकलने की विधि नहीं सुन सका। अत अभिमन्यु ने बडी कुशलता के साथ व्यूह–भेदन तो किया, वीरता के साथ शत्रुओ से लडा भी किन्तु पुन निकलना नहीं आता था। अत वह वही समाप्त हो गया। भगवती सूत्र मे यहॉ तक बताया है कि गर्भस्थ बच्चा तथारूप श्रमण माहण के मुखारविद से एक भी आर्य वचन सुनकर धर्म पर श्रद्धा–प्रेम बढने से व शुद्ध ध्यान, शुद्ध लेश्या, शुद्ध अध्यवसाय जाग्रत होने पर यदि उसी मे काल कर लेवे तो स्वर्ग मे भी चला जाता है व अशुद्ध लेश्या, अशुद्ध अध्यवसाय मे काल करे तो नरक मे भी चला जाता है। यह सब–कुछ बताने का मतलब है कि गर्भ मे रहा हुआ बच्चा माता–पिता के आचरण को केच करता है। अत बच्चो को नैतिक, चारित्रवान बनाने, माता–पिता को बच्चे के गर्भ मे रहने के समय तक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये तथा ब्रह्मचर्य का पालन न करने से अधूरी सतान गिर जाती है क्योकि अब्रह्म का सेवन करके बच्चा अन्दर टिक सके, उस शक्ति को ही खत्म कर देते है।

बालक का जीवन धातु के रस जैसा होता है। माता–पिता का जीवनरूपी सॉचा जिस आकार का होगा। उसी आकार मे बालक का जीवन रस भी परिणत हो जायेगा। यदि सामने देवमूर्ति का सॉचा होगा तो वैसा और पशु आकृति का सॉचा होगा तो वैसा ही बनेगा।

एक जेबकतरे युवक के मन मे शादी करने की चाह जगी। पर शादी करे किसके साथ? सोचा किसी लडकी को यह चौर्य कर्म पसद नहीं होगा तो हमेशा ही घर मे अशाति बनी रहेगी। इससे तो अच्छा यह रहेगा कि कोई लडकी भी ऐसे ही विचारो वाली मिल जावे तो जिन्दगी ठीक चलेगी। इसी की खोज थी। एक बार युवक ट्रेन मे बैठा था। उसकी नजर एक सुन्दर होशियार लडकी पर पडी जो बडी कुशलता से लेडिज के पहने हुये गहने काट रही थी। ऐसी कुशलता कि पास मे बैठे हुये किसी को जरा–सा

एहसास तक नहीं हो रहा था। युवक उसे देख बडा खुश हुआ। अगले स्टेशन पर जब वह लडकी ट्रेन से बाहर निकली तो वह युवक भी ट्रेन से उतर कर बाहर आ गया और उस लडकी से बडा खुश होकर उसके कार्य हेतु अभिवादन करते हुए बोलने लगा– तुम्हारी हस्त–कुशलता पर मै बहुत खुश हूँ। मै भी जेबकतरा ही हूँ। काफी समय से मै ऐसी सुन्दरी की तलाश मे था। मै तुमसे शादी करना चाहता हू। लडकी बोली–हॉ! मै भी ऐसे ही युवक की तलाश मे थी ताकि जिन्दगी आराम से चल सके। दोनो शादी के बधन मे बँध गए।

शादी के बाद उनके एक पुत्र हुआ। पुत्र सुन्दर था किन्तु एक अजीब बात थी कि बच्चे की जन्मते ही मुट्ठी बद देखी गयी। लाख प्रयत्न करने पर भी मुट्ठी खुली नही। आखिर मनोवैज्ञानिक डाक्टर के पास पहुँचे। डाक्टर ने बच्चे के माता–पिता से कई बाते पूछी। उसी सिलसिले मे यह भी पूछा कि आप दोनो क्या काम करते है? व्यापार क्या है? आदि। बच्चे के हित की दृष्टि से उन्होने डाक्टर को सही–सही बता दिया। तब मनोवैज्ञानिक ने तुरन्त अपने गले मे पडी सोने की चैन को निकाला और बच्चे की तरफ किया। बच्चे को जैसे ही चैन नजर आयी, वह मुट्ठी खोलकर उसे पकडने लगा। बच्चे के द्वारा मुट्ठी खोलते ही हाथ से अँगूठी नीचे गिरी। अँगूठी उठाकर देखा तो प्रसूति के समय जो नर्स पास मे थी, उसी का नाम उस पर लिखा था। यह माता–पिता के सस्कारो का प्रभाव है कि जन्मता बच्चा भी ऐसे कार्यो मे इन्टरेस्ट रख रहा है। अत गर्भ से माता–पिता को अपने कार्य–कलापो पर पूरा ध्यान रखना चाहिये ताकि बच्चो का जीवन सस्कारो से सुवासित बन सके।

देखा जाता है कि कोमल वस्तुओ पर दूसरो का प्रभाव जल्दी पडता है। कोमल डालियो को माली चाहे जैसे मोड सकता है। मिट्टी के कच्चे घडे को कुम्भकार चाहे जैसी आकृति दे सकता है। सफेद कपडो पर चाहे जैसा रग चढाया जा सकता है। माता–पिता भी चाहे जैसी सतान बना सकते हैं।

महारानी मदालसा अपने बच्चो को जन्म के साथ ही सुन्दर सस्कार देती थी और पालने मे झूलते हुए बच्चे को लोरी भी आध्यात्मिक ही सुनाती थी। वह लोरी निम्न थी–

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि, संसार माया परिवर्जितोऽसि।
संसार स्वप्नं त्यज मोहनिद्रा, मदालसा वाक्यमुवाच पुत्रम्।।

अर्थात् हे पुत्र! तुम शुद्ध हो, बुद्ध हो, निरजन हो। इस ससार की माया से तुम्हे दूर होना है। यह ससार स्वप्न के समान है। अत सासारिक मोह को, हे बालक, तुम्हे तोडना है। ऐसे सस्कार निरन्तर देने के फलस्वरूप सात–सात पुत्र योगी महात्मा बन गए।

माता–पिता को बच्चो के प्रति अपने कर्तव्यो को समझकर पूर्ण सजगता

के साथ उन कर्तव्यो का पालन करना चाहिये ताकि बच्चे सुसस्कारित बने। परन्तु आज के माता–पिता अपने बच्चे को सिर्फ उपदेश ही देते है कि ऐसे करो, वैसे करो, इस काम को मत करो, यह गदी चीज है, यह बुरी बात है। मतलब बच्चो पर "मत", "न", "नहीं" जैसे शब्दो की बौछार कर देते है। परन्तु वे खुद नकारात्मक रास्ते पर चलने के लिए जी–जान लगाये रहते हैं। जिससे बच्चो पर इन उपदेशो का प्रतिकूल असर पडता है। उदाहरणस्वरूप कोई माता–पिता अपने बच्चे को सिनेमा देखने के लिए मना करते है और वे खुद देखने चले जाते है। माता–पिता तो समझते है कि बेटा इतनी देर तो पढेगा लेकिन यह नहीं जानते कि बेटे का ध्यान किताब पर नहीं, सिनेमा हॉल के परदे पर होगा। खुद माता–पिता घर मे टी वी देखते रहेगे और बच्चो से कहेगे तुम्हारी पढाई है। तुम पढाई करो। पर माता–पिता को नही मालूम कि बच्चे अपनी पढाई की पुस्तक मे कोमिक्स, मेगजिन्स छिपाकर पढ रहे है। इसी प्रकार माता–पिता स्वय आलीशान महल मे टी वी पर सीरीयल देख रहे है। तभी कोई व्यक्ति उस महानुभाव को खोजने आता है तो अपने बच्चे को कहते है कि कह दो आज घर पर नहीं है कल आएँगे। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो नन्हे मासूम मस्तिष्क को बजर बना देते है। अत बच्चे को उपदेश न देकर अपना प्रेक्टीकल उदाहरण ही दे तो बच्चे की उन्नति दिन–दूनी, रात–चौगुनी होगी।

विज्ञान के एक बहुत बडे पण्डित आइन्स्टाइन थे। उनको एक पत्र प्रतिनिधि ने पूछा–विज्ञानाचार्य! आप इतने बडे विद्वान है। क्या एक प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करेगे? विज्ञानाचार्य ने कहा–पूछो। उस व्यक्ति ने प्रश्न किया–ससार मे इतने दु ख है, इतनी अशान्ति है, क्या उसे दूर करने का भी कोई उपाय है? विज्ञानाचार्य बोले–हॉ, है! वह उपाय एक ही है कि अच्छे मनुष्य पैदा किये जाएँ। आइसटीन साधारण नही, बहुत बडे विज्ञानाचार्य थे, फिर भी उन्होने यह नही कहा कि विज्ञान के अमुक आविष्कार से सुख व शाति मिलेगी। क्योकि विज्ञान के जितने भी आविष्कार हुए हैं उनसे अब तक शाति नही अपितु अशाति ही बढी है। अत सुख पाने हेतु अच्छे सस्कारित मनुष्यो की आवश्यकता है।

विलियन कापर ने लिखा है कि हमारे सबसे महत्त्वपूर्ण वर्ष हमारे प्रारभिक वर्ष होते है यानी बचपन ही वह अवस्था है जो व्यक्ति का निर्माण करती है। जीवन की इस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अवस्था के प्रति आज के माता–पिता को जागरूक रहना बहुत आवश्यक है। उन्हे अपने स्वय के जीवन को पहले सही बनाना होगा। अगर आप स्वय झूठ बोलते हैं तो बच्चो पर वे सस्कार पडने ही पडने है।

एक धर्मनिष्ठ सेठानी जो हमेशा स्थानक मे प्रार्थना–प्रवचन व दोपहर

ज्ञान–चर्चा मे आती तो और सतो महासतियो के मुखारविन्द से जिनवाणी को श्रवण कर सभी के समक्ष प्रसन्नता प्रकट करती। वह घर पर बच्चो को भी सत्यता, सरलता, मृदुता आदि सद्गुणो से आपूरित करने हरिश्चन्द्र, राम, कृष्ण, महावीर की कहानिया सुनाया करती ताकि बच्चे सत्यवादी, नैतिक, चारित्रवान् बने। एक नौकरानी सतोष उस घर मे हमेशा झाडू–पोचा आदि करने आती। सेठानी हमेशा उसे कहती–बहिन! तुम्हे किसी भी वस्तु की आवश्यकता हो तो बोल दिया करो। तुम तो बहुत सकोच करती हो। मेरे घर मे सकोच करने जैसा कुछ भी नहीं है। किन्तु वह नौकरानी नैतिकता के साथ जीने वाली थी। अत कभी कुछ मॉगती ही नहीं। एक बार झोपडी मे सवेरे–सवेरे छोटे बेटे के लिए बधी वाले से लिया हुआ आधा ग्लास दूध रखा था। एक तरफ से बिल्ली आयी और दूध को ढोल दिया और ऑगन पर गिरे दूध को पीकर भाग गयी। इधर बच्चा दूध के लिये रोने लगा। मॉ सतोष बच्चे को चुप करने लगी। किन्तु बच्चे की हठ दूध के लिए पूरी थी। बच्चे का रोना बद नहीं होने से मॉ का दिल खिन्न हो गया और सोचा, मेरी सेठानी, जो हमेशा कहा करती है कि जो चाहिए वो मेरे से कह दिया करो। वह बहुत भली है। जाऊॅ उसके यहॉ और बच्चे के लिए थोडा–सा दूध लेके आ जाऊ। ऐसा सोच, सेठानी के घर मे प्रवेश किया। आज बडी धीरे–धीरे घर मे प्रवेश कर रही है। सेठानी ने कहा–आज क्या बात है? इतनी धीरे–धीरे क्यो आ रही हो? बहिन सतोष ने बोला कि माताजी, बच्चा रो रहा है। उसके लिए थोडे–से दूध की आवश्यकता है। सेठानी ने बोला–हॉ बहिन! जरूर–जरूर। किन्तु बहिन सयोग की बात है कि आज अभी तक नौकर दूध लाया ही नहीं और न रात का दूध बचा है। तभी सेठानी का एक पोता पास मे खडा था उसने जल्दी से बोला–दादीजी, नौकर ने अभी तो दूध लाके दिया था और आपने वह दूध फ्रीज मे रखा था। सेठानी ने कहा–हॉ! हॉ! मेरे तो भूलने की आदत ही बहुत है। इधर रखा और इधर भूल गयी। बहिन, ले जाओ दूध। सेठानी ने आधा ग्लास दूध डाल दिया। नौकरानी दूध लेकर जा रही है। जेसे ही नौकरानी मुख्य गेट से बाहर हुई कि सेठानी ने उस पोते के जोर से चॉटा मारा और कहने लगी– तुम्हे बीच मे बोलने की कहॉ आवश्यकता पड गयी? क्यो बोला बीच मे कि दूध फ्रीज मे पडा है? बच्चा बोलता है–दादीजी! आप ही ने तो हरिश्चन्द्र की कहानी सुनाते हुए कहा था कि सदा सत्य बोलना चाहिए। मैने अभी सत्य ही तो बोला था। सेठानी ने उसके वापस बोलने पर एक चॉटा और जमा दिया। इस प्रकार पालक वर्ग चाहते अवश्य हैं–बच्चे सत्यवादी, चारित्रवान्, विनयवान् बने पर वे स्वय अपने जीवन को देखे कि वे स्वय सत्यवादी हैं या नहीं चारित्रवान् व विनयवान् है या नहीं?

एक बार एक मोहल्ले मे छोटे–छोटे भाई–बहिन लड रहे थे। आपस मे

गालियॉ भी बके जा रहे थे। लोगो ने कहा—रे तुम लडो मत। तब उन दोनो ने कहा—हम लड कहॉ रहे हैं। हम तो मम्मी पापा की एक्टिग का रिहर्सल कर रहे है। इस प्रकार बच्चो पर माता—पिता के प्रेक्टीकल जीवन के सु या कु सस्कार पडते हुए चले जाते हैं। पालक वर्ग के जीवन मे रही हुई बुराइयो की दुर्बलता बच्चो के जीवन को खराब कर डालती है। आज के पालक वर्ग अपने स्वार्थ मे पडकर बच्चो के प्रति उपेक्षा कर रहे है और अपने कर्तव्यो से दूर होते हुए चले जा रहे है। बच्चो को ड्राइवर व नौकरो की गोद मे खिलाने के लिए दिये जा रहे है। इसमे अपना बडप्पन व फैशन समझ रहे है। किन्तु यह पता नहीं कि गलत वायुमडल का असर बच्चो पर कितना ज्यादा पडता है।

जोधपुर के महाराजा यशवतसिहजी युद्ध मे गये। युद्ध की भयकरता मे बच पाना मुश्किल जानकर सेना की एक छोटी टुकडी के साथ वापस लौटकर आ गये। महारानी को पता चला कि राजा युद्ध से भागकर आ रहे है तो उसने नगर के दरवाजे बद करवा दिये। यशवतसिहजी ने दरवाजा खोलने को कहा तो प्रत्युत्तर मिला कि यहॉ के राजा तो युद्ध मे गए हुए है। अभी नगर महारानी के हाथ मे है अत दरवाजा खोलने हेतु उनकी मनाही है। यशवतसिहजी बोले— मैं तुम्हारा राजा ही हूँ। दरवाजा खोल दो। फिर भी दरवाजा नहीं खुला। सात दिन बीत गये। आठवे दिन राजमाता को दया आ गयी, बोली—बेटा भूखा—प्यासा बाहर बैठा है। दरवाजा खोल दो। राजमाता के कहने से दरवाजा खोल दिया गया। महाराज महलो मे आये पर रानी मुँह फेर कर खडी हो गई। महाराज बोले— महारानी! तुम मेरा अनादर कर रही हो महारानी ने कहा— आप आदर—अनादर तो कुछ समझते ही नहीं हो। वरना युद्ध से वापस आते ही नहीं। यशवतसिहजी—तो क्या मै वहीं पर मर जाता? महारानी—मरना आप जानते ही कहॉ है। मरना जानते तो आते ही नही। तभी राजमाता ने कहा—बहू! सुनो, बेटा भूखा है। उसे पहले कुछ खिलाओ। बहू रसोईघर मे गई और हलुवा बनाने लगी। आटा सेकते हुए खुरपे की आवाज आने लगी। तब राजमाता ने कहा—बहू खुरपे की आवाज मत आने दो। बेटा युद्ध मे शस्त्रो की खट—खट आवाज से डरकर तो यहा पर आया है, फिर यहॉ भी खुरपे की खट्—खट् की आवाज से डर गया तो कहॉ जायेगा? बेटे ने जैसे ही यह सुना तो चमक गया। ओ—हो! मै इतना कायर हूँ! अपने स्थान से उठकर तुरत मॉ के चरणो मे गिर गया। मॉ ने कहा—बेटा! यह गलती तेरी नहीं, मेरी है। तेरे बचपन मे, महलो मे समय पर नहीं होने से दासी ने तुझे दूध पिलाया। यद्यपि मालूम पडते ही तेरे मुँह मैंने अगुली डालकर उलटी करवा दी फिर भी असर तो रह ही गया। जिसका परिणाम आज इस रूप मे उभर कर आया हे।

उस समय सस्कारो के प्रति कितनी जागरूकता थी? वह तो थोडा–सा दासी का दूध था। किन्तु आज किसका दूध पी रहे है? माताएँ अपने कर्तव्य से दूर हो रही है और बच्चो को भेड, बकरी, पाउडर आदि के दूध पिला रही है, तो फिर सस्कार भी तो वही आएँगे।

एक बार राम व लक्ष्मण दोनो ही चर्चा कर रहे थे। उस समय लक्ष्मणजी ने रामजी से पूछा कि "पुष्प दृष्ट्वा, फल दृष्ट्वा, दृष्ट्वा योषित योवनम् कस्य न चलति मन ।"

अर्थात् खिलते हुये फूल को देखकर, मीठे, रसदार फलो को देखकर व भर–यौवन को प्राप्त सुन्दरी को देखकर किसका मन चलित नहीं होता? तब श्रीराम ने उत्तर दिया– "पिता यस्य शुचिर्भूतो, माता यस्य पतिव्रता तस्य न चलति मन ।"

अर्थात् जिनके माता–पिता के विचार पवित्र है व चारित्र भी अच्छा है, उनकी सतान का मन चलित नहीं होता। बच्चो को सुधारने की इच्छा रखने वाले माता–पिताओ को पहले अपने–आपको सही बनाना होगा व अपनी कमजोरियो को दूर करना होगा। नहीं तो जिस मॉ की गोद मे बच्चा ऑख खोलता है उसी मॉ को वह बच्चा बडा होकर ऑख दिखाता है।

आज से 50 वर्ष पूर्व जितने धार्मिक सस्कारो की आवश्यकता नहीं थी उससे कई गुणा आज आवश्यकता बढ गयी है। आज के बच्चो को 24 तीर्थकरो के नाम याद नहीं होगे। पर 24 एक्टर के नाम पूछेगे तो फटा–फट बता देगे। पूर्व मे बिगडने हेतु बाह्य निमित्त इतने नही थे, न किसी तरह का कुविचार ही था। घर मे विद्यमान दादा–दादी आदि की धर्म–साधना का प्रभाव बच्चो पर स्वत ही पडता रहता था जिससे बच्चो मे जैनत्व निरन्तर विकसित होता रहता था। भगवान महावीर, महामति चन्दनबाला आदि महापुरुषो की जानकारी माता–पिता बच्चो को कहानियॉ सुनाकर बचपन मे ही दे देते थे। किन्तु आज के जमाने मे घर से तो धार्मिक सस्कार प्राप्त होने ही मुश्किल हो गए है। दादा–दादी, माता–पिता स्वय ही टी वी , विडियो के सामने बैठे रहते है तो बच्चो मे सस्कार आयेगे कहॉ से ? घरो मे आयी हुई उपन्यास, पत्र–पत्रिकाएँ बच्चो के स्कूली अध्ययन व विकास मे बाधक बने हुएँ है।

एक बार हमने एक बच्चे से पूछा–तुम बडे होकर क्या बनोगे ? तो वह जल्दी से बोला कि मै तो डाकू बनूँगा। इसी प्रकार एक छोटी लडकी ने बोला– मै शकरजी के गले मे सर्प बनूँगी और अन्याय–अत्याचार करने वाले को डस लूगी। फिर उसे समझाया कि सर्प योनि अच्छी हे या मानव योनि आदि। तब वह कहने लगी मै महावीर बनूँगी। ये हैं टेलीविजन के संस्कार।

अच्छे संस्कार प्रयत्नपूर्वक डाले जाते हैं। उस प्रकार का माहाल भी

बनाना पडता है। जैसे गेहूँ आदि धान्य की खेती करने के लिए पहले खेत को साफ करना होता है, सिचायी आदि भी करनी होती है, समय–समय पर पूरी देख–भाल करनी होती है। पर आज की स्थिति बडी विचित्र बन गयी है। अच्छे सस्कारो हेतु किसी प्रकार के प्रयत्न नहीं किए जा रहे है।

सस्कार वह पौष्टिक तथा शक्तिशाली टॉनिक है जो बच्चो को स्वावलम्बी बनाता है तथा जीवन को पवित्र निर्मल बनाता है। अत बच्चो के जीवन को उज्ज्वल बनाने के लिए सत्सग मे लाना भी जरूरी है ताकि अच्छे वातावरण मे सस्कार भी अच्छे प्राप्त करवाये जा सके। सुसस्कारोमय सुवासित जीवन की निर्मिति के लिए खान–पान, रहन–सहन आदि सम्पूर्ण जीवनशैली पर पूरा ध्यान रखना जरूरी है। इस हेतु जरा भी प्रमाद करना उचित नहीं है।



परभव का बैंक

दाणं सील च तवो भावो, एवं चउव्विहो धम्मो,
सव्व जिणेहि भणिओ, तहा-दुहा सुअचरितेहि।।

(सप्तति रात स्थान प्रकरण, गाथा–96)

अर्थात् दान, शील, तप और भावना यह चार प्रकार का धर्म सभी तीर्थकरो ने कहा है तथा श्रुत–चारित्र के भेद से धर्म के दो प्रकार भी तीर्थकरो ने कहे है।

स्वर्ग मे उत्पन्न होने वाले देव से सर्वप्रथम यह प्रश्न जरूर पूछा जाता है कि "कि वा दच्चा, कि वा भुच्चा, कि वा किच्चा, कि वा समायरिता? अर्थात् आपने क्या दान दिया? क्या उपभोग किया? क्या कार्य किया अथवा क्या आचरण किया जिसके फलस्वरूप आप महात्रऋद्धिवत देव या इन्द्र बने है। मतलब यह है कि देवलोक मे उत्पन्न होने वाले देव से सर्वप्रथम दान के विषय मे ही प्रश्न पूछा जाता है। अन्य प्रश्न बाद मे पूछे जाते है। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि जीवन मे दान का कितना महत्त्व है?

तीर्थकर दीक्षा ग्रहण करने से पूर्व एक वर्ष तक प्रतिदिन एक करोड आठ लाख सुवर्ण मोहरो का दान करते है। किसान अनाज पाने के लिए पहले अपने हाथो से खेत की मिट्टी मे अनाज डालता है तभी उसे प्राप्त होता है। पक्षी पिच्छ को छोड देता है, फिर नये–नये आ जाते है। वृक्ष शरद ऋतु मे पत्ते फेकता है तब प्रकृति नव पल्लव समर्पण कर देती है। कुएँ मे से जितना पानी निकाला जाता है उतना ही बढता है। अर्थात् देने से हजार–लाख गुणा धन बढता है।

सागर किनारे एक करोडपति सेठ सुरेशचन्द्र अपनी गाडी को दूर खडी करके नाइट ड्रेस मे घूम रहा था। तभी एक दूसरा रमेशचन्द्र सेठ आया। उसने गाडी से उतरते ही उस भाई को सागर के एकदम किनारे–किनारे घूमते हुए देखा। सोचा– लगता है यह भाई आत्महत्या की फिराक मे हे। अत इसे बचाने हेतु इसकी कुछ मदद करनी चाहिए। ऐसा सोचकर जल्दी–जल्दी सागर के उसी किनारे की तरफ जाकर उस व्यक्ति के पास गया ओर जल्दी–जल्दी अपनी जेव से रुपये निकाले ओर उसके हाथो मे थमाते हुए बोला– यह लो ये रुपये। आत्महत्या करने की जरूरत नहीं ह। ओर रुपया

की आवश्यकता हो या नौकरी की आवश्यकता हो तो यह लो मेरा विजिटिग कार्ड। इस एडरस पर आना, मै तुम्हारा अवश्य सहयोग करूँगा। ऐसा कहते हुए जल्दी मे होने से शीघ्र ही वापस तेज कदमो से चला गया।

सुरेशचन्द्र यकायक ही यह सब–कुछ देखकर आश्चर्य मे पड गया कि यह क्या हो गया? न तो मै अभावग्रस्त हूँ और न ही मै आत्महत्या करने के लिए सागर–किनारे घूम रहा हूँ। अत मुझे इन रुपयो व विजिटिग कार्ड की आवश्यकता भी नहीं है। मैं उसे कुछ वापस उत्तर दूँ उससे पहले तो वह गाडी मे बैठकर जा भी चुका है। यह सब–कुछ सोचते हुए वह घर मे पहुँचा और सेठ रमेशचन्द्र का विजिटिग कार्ड व दिए गए रुपये अपनी टेबल पर लगे कॉच के नीचे रख दिये। प्रतिदिन सवेरे चेयर पर बैठते ही वे रुपये व विजिटिग कार्ड नजर आते। प्रतिदिन पुन–पुन उन्हे देखने से उसकी भी दान की भावना बढने लगी। एक दिन सवेरे–सवेरे जैसे ही सुरेशचन्द्रजी उस टेबल के पास बैठकर पेपर हाथ मे उठाते है, पेपर के मुख्य पृष्ठ पर ही रमेशचन्द्रजी के नाम के साथ व्यापार मे लम्बे घाटे की बात भी लिखी हुई थी। उस फेक्ट्री के एडरस को व सेठ रमेशचन्द्र के नाम को पढते ही वह चौक गया। तुरत उठा और गाडी मे बैठकर उसके घर पहुँचा। घर के बाहर भीड खडी है। लाओ–लाओ की आवाजे आ रही है। पुलिस भीड को भगाने मे लगी है। उसी मध्य मे यह व्यक्ति वहाँ पहुँचा और गेट पर खडे पुलिस से बोलता है–मुझे सेठ से मिलना है। पुलिस ने कहा–नही, अभी मिल नहीं सकते। तब वह बोलता है कि मै सेठ से लेने हेतु नही आया हूँ अपितु देने आया हूँ। पुलिस भी आश्चर्यचकित हुई कि ऐसे विपत्ति के समय मे यह देने वाला कौन फरिश्ता आया है? उसके साथ पुलिस भी घर मे गई। सेठ के कमरे मे पहुँचे। सेठ कोने मे मुँह किये हुए अपनी इज्जत को रो रहा था। तभी सुरेशचन्द्रजी धीरे–से मीठे स्वर मे बोलते है– रमेशचन्द्रजी, रमेशचन्द्रजी ! रमेशचन्द्रजी ने जैसे ही उसके सामने देखा, वह बोलता है–पहचाना मेरे को? उसने कहा–हाँ! मैंने तुम्हे सागर–किनारे देखा था। किन्तु अभी मेरी वह स्थिति नहीं है कि तुम्हे नौकरी या कुछ सहयोग दे सकूँ। सुरेशचन्द्रजी ने कहा–भाई, मुझे किसी प्रकार के सहयोग की आवश्यकता नही है। और न ही मैं उस समय भी अभावग्रस्त था। किन्तु आपके द्वारा दिये गए पैसे व विजिटिग कार्ड मुझे हमेशा ही दान देने की प्रेरणा करते रहते थे। आज मै पेपर देखकर यहाँ पर पहुँचा हूँ। आप मुझे बताइये कि आपके कितने लाख का घाटा हुआ है ?

तब रमेशचन्द्रजी ने कहा कि तुम सहयोग करके कितनाक करोगे? घाटा बहुत लम्बा हुआ है। वह बोलता है– आप बताओ तो सही कितना हुआ है? तब धीरे–से बोला– पैतीस लाख का। सुरेशचन्द्र सेठ ने तुरत 35 लाख का चैक काटकर हाथ मे पकडा दिया व साथ मे अपना विजिटिग कार्ड भी दे

दिया और कहा कि आप मेरी इन्डस्ट्री पर आना। आपको पार्टनर बना लेगे और साथ–साथ काम करेगे। इतना कहते हुए सुरेशचन्द्र सेठ तुरत चला गया। रमेशचन्द्रजी सोचने लगे, मैने तो इन्हे दिया ही क्या है? पर इनकी उदारता कितनी ज्यादा है। आखिर जो भी मॉगने वाले थे, सभी को चुकाया और सुरेशचन्द्रजी के साथ पार्टनरशिप मे काम करना प्रारभ किया। कुछ ही दिनो मे पुण्यवानी फिर चमक उठी और बहुत आगे बढ गये। रमेशचन्द्रजी के द्वारा दिया गया दान भूमि मे डाले गए बीज की तरह कितना अधिक पल्लवित हुआ।

कहा भी है–

ब्याजे द्विगुणवित्तं, व्यापारे च चतुर्गुणं,
क्षेत्रे शतगुणं वित्तं, दानेऽनन्त गुणं भवेत्।।

अर्थात् पैसा ब्याज मे देने से दुगुणा हो जाता है व व्यापार मे चौगुना हो जाता है तथा खेत मे डाला हुआ अनाज सौ गुणा हो जाता है किन्तु दान मे दिया हुआ तो अनत गुणा लाभ देने वाला होता है।

दान परलोक की वह बैक है जिसमे जमा कराया हुआ पैसा परलोक मे आपको सुरक्षित मिल जाता है। यहॉ का धन, अन्न, वस्त्र आदि मनुष्य के साथ परलोक मे नही जाता किन्तु शुद्ध अध्यवसायो के साथ किसी का सहयोग किया जाता है तो पुण्य के रूप मे परलोक मे साथ जाता है। वहॉ पुण्य के बदले उसे धन–सम्पत्ति–वैभव प्राप्त हो जाता है। दान देने से सपत्ति मे कभी भी कमी नही आती है। कबीरदासजी ने भी कहा है–

चिडी चोच भर ले गयी, नदी न घटियो नीर,
दान दियॉ धन ना घटे, कह गये दास कबीर।

शालिभद्र के घर हमेशा 32 पेटियॉ देवलोक से उतरती थीं। घर मे अपार वैभव था। वह सब–कुछ दान के प्रताप से ही प्राप्त हुआ था।

एक बार नदी व तालाब मे चर्चा चल रही थी। तालाव ने नदी से कहा कि तू बडी मूर्खा है– तू अपनी सपत्ति समुद्र को क्यो दे देती है? तू उसको मत दे। उसे जितनी भी सपत्ति दो वह कृतघ्न खारा ही रहेगा तो फिर तुम्हारे द्वारा देने से क्या लाभ? मैं तो कभी भी देता ही नहीं। तालाव की इस वात के उत्तर मे नदी ने बोला कि भाई! मेरा तो देने का काम हे। में फल की इच्छा नही रखती। कुछ ही दिनो के वाद तालाव सूखकर कीचड रूप हो गया ओर देने वाली नदी निरन्तर बहती ही रही।

कहा भी है–

पानी वाढो नाव में, घर में वाढो दाम,
दोऊ हाथ उलीचिये, यह सज्जन का काम।

बहते हुए पानी को यदि रोक दिया जाये तो उसके सड जाने का भय

है। नाखून को यदि नही काटा जाये तो उसके सड जाने का भय है– वैद्य के अनुसार रोग बढने की सभावना रहती है।

घर मे गाय खडी है। प्रतिदिन दूध देती है। पर कोई सोचे कि आठ दिन बाद मेरे यहॉ फक्शन है, उस दिन ज्यादा मात्रा मे दूध की आवश्यकता रहेगी। अत आठ दिन तक गाय को नहीं दूहकरके कार्यक्रम वाले दिन इकट्ठा ही दुह लेगे। तो क्या उस दिन गाय का दूध उन्हे मिल जायेगा? नही, बिल्कुल भी नहीं मिलेगा। आम की गुठली को सेककर खा गये तो वह गुठली समाप्त हो जाएगी। अगर उस गुठली का उपभोग न कर योग्य स्थान पर बो दिया जाए तो उससे हजारो–लाखो आम प्राप्त हो सकते है।

बीकानेर मे मालूजी की दृष्टि हमेशा गरीब, असहाय लोगो पर रहती। जिस प्रकार रोगी डाक्टर को ढूँढता है उसी प्रकार जो दानवीर श्रावक होते है वे दान लेने वाले को ढूँढते है। मालूजी प्रवचन मे जाते तो प्रवचन के बाद उनकी दृष्टि ऐसे लोगो पर ही जमती। वे उनके पास जाते। बडे प्रेम से धीरे–से बोलते कि मेरे घर पर छाछ बनती है, आप अवश्य लेने के लिए बच्चो को भेज देना। बच्चे जब छाछ लेने जाते तो गुप्त रूप से रुपये आदि छाछ के साथ बर्तन मे डाल देते। लोग वापस देने जाते तो कहते–यह तुम्हारा ही है। इसी प्रकार अनेक तरह से गुप्त रूप से गरीबो का सहयोग करते थे।

धन, माणक, मोती आदि स्वर्णभस्म के समान है जिनका यथायोग्य सदुपयोग किया जाए तो लाभदायक सिद्ध होते हैं और दुरूपयोग किया जाये तो हानिकारक सिद्ध होते है। शास्त्रीय परपरा रही है कि पुत्र–जन्म आदि हर खुशी के समय मे दान देना। यह अपने पुण्य को आगे बढाने का तरीका है।

पुराने जमाने मे बच्चे गुरुकुल मे पढते थे। जब वे विद्याध्ययन कर पुन गृहस्थी मे जाने लगते तब उनके गुरु उन्हे अतिम उपदेश देते कि "श्रद्धया देय अश्रद्धया देय, भिया देय, छिया देय"। अर्थात् तुम गृहस्थ जीवन मे सामर्थ्य के अनुसार अवश्य देना। सामर्थ्य नहीं हो तो भी देना, परलोक के डर से देना, नहीं तो लज्जा से तो जरूर देना।

जबलपुर मे एक गरीब महिला गेहूँ आदि पीसकर अपनी आजीविका निर्वाह करती। एक बार प्रवचन आदि मे जब सुना कि धर्म ध्यान हेतु स्थान देने वाले को बहुत ज्यादा लाभ होता है। यह धर्मदान है। वह बात उस महिला के अन्तर तक बैठ गयी। उसने अधिक काम करना प्रारभ किया और अन्य खर्चे मे से कटौती करके बचाना प्रारभ किया। उसके दिमाग मे धुन सवार हो गयी कि मुझे धर्मस्थान बनाना ही बनाना। आखिर धीरे–धीरे एक दिन उतना पैसा सचय कर लिया और धर्मस्थानक बनवा ही दिया। वह स्थान आज भी जबलपुर की सुरम्य घाटियो पर स्थित है। उसका नाम है– पीसनहारी का स्थानक।

आज जहाँ नाम हो रहा है वहाँ लाखो रुपयो का दान हो जाएगा। कोई व्यक्ति लाख रुपये दान देकर दानवीर कहाता है तो दूसरा करोड रुपये का दान करके "महादानवीर"। कलयुगी कर्ण की पदवी के लिये परिश्रम करता है। ऐसा व्यक्ति दानी नही किन्तु पदवी की भीख माँगने वाला महाभिखारी है।

वैसे दान देना साधारण कार्य नही है। लोग पैसे–पैसे के लिये मरते है। पचास–सौ रुपये के लिए तूफान खडा कर देते है। कितना भी पैसा पास मे हो, करोडपति भी हो किन्तु उसे और ज्यादा सग्रह करने की इच्छा रहती है। फिर भी जो दान देते है वह बहुत बडे साहस का काम है। आसक्ति का त्याग होता है तभी दान दिया जाता है।

स्थानाग सूत्र मे श्रावक के तीन मनोरथ आए है। उनमे से पहला मनोरथ परिग्रह–त्याग को महान् निर्जरा का कारण बताया है।

एक साधु ने किसी से पूछा–तोप का गोला अधिक से अधिक कितनी दूर जा सकता है? उस व्यक्ति ने उत्तर दिया–बन्दूक की गोली हजार हाथ दूर तक और तोप का गोला चार माईल दूर जा सकता है। तब साधु ने बताया कि अन्नदान का गोला तो स्वर्ग तक भी पहुँच जाता है।

आज तो देने की वृत्ति ही समाप्त होती जा रही है। एक स्थान पर यज्ञ हो रहा था। एक छोटा–सा बच्चा भी वहाँ पर आया। एक आदमी ने उसके हाथ मे दो पेडे दिये और कहा– ये पेडे यज्ञ मे डाल दो और मुँह से बोलो–स्वाहा! बच्चे ने दोनो पेडे मुँह मे डाल लिये और मुँह से बोला–आ–हा! इस प्रकार व्यक्ति दान से दूर हो रहा है। इसलिए ठीक ही कहा है–

पप्पे से परचो घणो, ददो दिल से दूर,
लल्ले से लव लागी घणी, ननो खडो हजूर।

सभी व्यक्ति दान देने मे कजूसी करते जा रहे है। यहाँ तक कि फटे–पुराने कपडो को भी किसी गरीब को न देकर बर्तन वाले को देकर बर्तन ले रहे है। शाम को बचा हुआ आटा फ्रीज मे रखकर दूसरे दिन रोटी बनाकर खा रहे है।

कभी एक रोटी भी किसी को दान देते है तो वह भी किसी को दिखाकर देने की भावना रखते है। पर ऐसा दान उतना लाभदायक नहीं होता। गुप्त दान अनत पुण्यलाभ दिलाने वाला होता है। दान देने से पुण्यबध होता है। आपने सुना ही होगा कि भगवान महावीर जीव नयसार को अपने परिवार से ही सस्कार प्राप्त थे कि किसी को खिलाये बिना नहीं खाना, तो उस जगल मे भी अतिथि का इतजार करते हुये अनायास ही सत महापुरुष मिल गये और सुपात्र मे दान देने से समकित रत्न की प्राप्ति की तथा भवभ्रमण को सीमित किया। इसी प्रकार महासती चन्दनबाला ने पारणा करने से पूर्व प्रभु स्मरण

व अतिथि को याद किया अत प्रभु महावीर के पारणे का स्वर्ण अवसर भी चन्दनबाला को प्राप्त हो गया। तथा आज जो सेठ साहूकार बने हैं सो वह भी किसके प्रताप से? यह सब पूर्वचरित–पुण्य का ही परिणाम है। अगर आप इस सत्य को सदा ध्यान मे रखेगे और उसका समाचरण करते रहेगे तो जीवन बहुत उच्च बन जायेगा।



शक्ति का स्रोत

तवेसु उत्तम ब्रह्मचेर

(सूत्रकृताग सूत्र 6)

अर्थात् तपो मे उत्तम तप ब्रह्मचर्य है। ब्रह्म अर्थात् आत्मा, चर्या अर्थात् विचरण करना।

आत्मा मे ही रमण करना अर्थात् आत्मा को आत्मिक गुणो मे ही रमण कराना। आत्मा के अतिरिक्त जितने भी पर पदार्थ है उनमे रमण न करने देना, उनकी ओर न जाने देना ब्रह्मचर्य कहलाता है।

ब्रह्मचर्य वह जहाज है जो भवसागर से तिराकर उस किनारे तक पहुँचाने मे सक्षम है। मुक्तिनगर मे प्रवेश करने के लिए आत्मा को शरीर के सहयोग की पूर्णरूपेण आवश्यकता होती है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र तप की साधनाएँ शरीर के माध्यम से होती है। शरीर को स्वस्थ रखने हेतु ब्रह्मचर्य सजीवनी बूटी का काम करता है। वह शरीर को बलवान्, सुन्दर, तेजस्वी बनाये रखता है। जीवन मे ओज को भरने वाला होता है। जिसके कारण व्यक्ति शीघ्र अपने साध्य को प्राप्त कर लेता है। मत्र–तत्र की सिद्धि करने वाले भी सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। उसके बाद ही मंत्रजाप के माध्यम से सिद्धि प्राप्त करते है। यानी ब्रह्मचर्य हर क्षेत्र मे, हर कार्य मे सफलता दिलाने वाला होता है।

ब्रह्मचर्य की महिमा अपार है। सुभद्रा महासती ने ब्रह्मचर्य के प्रभाव से ही कुएँ से कच्चे सूत के धागे से बँधी हुयी चलनी मे पानी निकाल लिया था। और वह पानी छीटते ही दरवाजे खुल गये थे। ब्रह्मचर्य के ही प्रभाव से सुदर्शन सेठ के शूली का सिहासन बन गया था। सीताजी के लिये अग्नि का पानी बन गया था। प्रश्न व्याकरण सूत्र मे भी ब्रह्मचर्य की महिमा दिखलायी है –

जम्बू! एतो य ब्रह्मचेरं तव नियम-नाण
दंसण-चरितं-सम्मतं विणय-मूलं।
यम नियम गुणप्पहाण जुत्तं हिमवतमहंत
तेयमंतं पसत्थं गम्भीरथिमियमज्झं।

अर्थात् हे जम्बू! ब्रह्मचर्य तप, नियम, ज्ञान, दर्शन, चारित्र सम्यक्त्व ओर

विनय का मूल है। यम और नियमरूप प्रधान गुणो से युक्त है। हिमवान् पर्वत से भी महान् तेजस्वी है। ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करने से मनुष्य का अन्त करण प्रशस्त, गभीर और स्थिर हो जाता है।

ब्रह्मचर्य का पालन साधु वर्ग तीन करण तीन योग से नवबाड की सावधानीसहित परिपूर्ण तौर पर करते है। किन्तु गृहस्थ वर्ग पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करने मे समर्थ नहीं होते है। अत वे देश ब्रह्मचर्य का पालन करते है। अपनी विवाहिता स्त्री के अतिरिक्त समस्त स्त्रियो को माता, भगिनी और पुत्री के समान समझना देश ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य का पालन करना गृहस्थ का आभूषण है।

जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पालन नही करते है वे अपने सत्त्व को खो देते है। एक आम की गुठली मे लाखो आम पैदा करने की शक्ति है पर उस आम की गुठली को अगर कोई सेककर खा जाता है तो थोडे स्वाद के पीछे गुठली की शक्ति को ही खत्म कर देता है। वह गुठली फिर विकसित नहीं हो सकती है। ठीक उसी प्रकार मानव अपनी जीवनीशक्ति को विषय–भोग की भट्टी मे जला देता है तो वह भी शक्तिहीन होता हुआ नजर आता है।

ब्रह्मचर्य व्रत के पालक दयानद सरस्वती के बल को देखने हेतु सम्राट के द्वारा भेजे गए दो मल्ल नदी पर आये थे। वे दोनो दयानद सरस्वती से कहने लगे कि हम तुम्हारा बल–पौरुष देखने के लिए तुम्हारे साथ लडना चाहते हैं। दयानद सरस्वती बोले–भाई! कुश्ती लडने से कही तुम्हारी हड्डी–पसली न टूट जावे। अत कुश्ती से पहले तुम एक काम करो। मेरे द्वारा निचोडा हुआ यह टावेल पडा है, इसमे से पानी निकाल दो। वे दोनो मल्ल मिलकर के भी उस टावेल मे से एक बूँद भी पानी नहीं निकाल सके और कहने लगे–महात्मन्! इस टावेल मे पानी ही नही है तो हम कैसे निकाल सकते है? तभी दयानद सरस्वती ने उनके हाथ से टावेल को लेकर निचोडा तो बहुत पानी निकल आया। वे दोनो आश्चर्यान्वित दृष्टि से देखते ही रह गये। यह सब बल ब्रह्मचर्य का ही था।

मन, वचन, काया से शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करने वालो के बल की बराबरी कोई कर नही सकता। शीलवान् पुरुष जगत् मे सबसे महान् पुरूष तीर्थंकर के बराबर बल को प्राप्त कर सकता है।

जिस समय कृष्णजी अपने महलो मे बैठे हुये थे और अचानक ही पचायन शख की आवाज व धनुष्टकार की आवाज सुनाई दी। श्रीकृष्ण एकदम चौंक गए। यह क्या? जिस शख को वासुदेव ही बजा सकते है, जिस धनुष को वासुदेव ही उठा सकते है, उस शख को आज किसने बजाया है व उस धनुष को किसने उठाया है? क्या इस राज्य मे मेरा विद्रोह करने वाला पैदा हो गया है? खोज की जाये। श्रीकृष्ण का आदेश पाते ही राज्य कर्मचारियो ने खोज

की तो पता चला कि यह तो अरिष्टनेमि है। श्रीकृष्ण ने उनके बल को देखने के लिए एक बार उन्हे अपने पास बुलाया और अपनी एक भुजा फैलाकर खडे हो गए और कहा कि मेरी भुजा को झुकाओ। अरिष्टनेमि ने तुरत श्रीकृष्ण की भुजा को झुका दिया। उसके बाद अरिष्टनेमि ने अपनी भुजा को फैलाया और श्रीकृष्ण से कहा कि आप मेरी भुजा को झुकाइये। श्रीकृष्ण ने एक हाथ से बहुत दम लगा लिया पर जरा भी नही झुका सके, फिर दोनो हाथो से भुजा को झुकाने की कोशिश की, फिर भी नही झुका सके। यहॉ तक कि नेमिजी की भुजा पर दोनो हाथो से लटक गये फिर भी भुजा को इच मात्र भी नही हिला सके। ऐसा बल नेमिजी का देखकर श्रीकृष्ण चितित हो गये। यह कभी भी मेरा राज्य छीन सकता है। अत सबसे पहले इसकी शक्ति को डाऊन करना जरूरी है। शक्ति ज्यादा से ज्यादा किससे क्षीण हो सकती है? इस हेतु उन्होने उपाय खोजा कि नेमिजी की शादी करवा दी जाये। अब्रह्म के सेवन से शक्ति जरूर कमजोर हो जाएगी। श्रीकृष्ण को बलभद्र ने समझाया कि ये नेमिजी तो बाईसवे तीर्थकर बनेगे। इनसे तुम्हे डरने की आवश्यकता नही है। फिर भी श्रीकृष्ण के मन मे शाति नही आई और उनके बल को कम करने, अखड ब्रह्मचर्य व्रत को तोडने का प्रयास होने लगा। जैसे–तैसे नेमिजी को शादी के लिए तैयार किया। यह बात अलग है कि तोरण पर जाकर भी नेमिजी ने शादी नही की और दीक्षा ग्रहण कर ली। किन्तु इस उदाहरण से यह सिद्ध हो जाता है कि अब्रह्म के सेवन से वीर्य अवश्य क्षीण होता है। और वीर्य के क्षीण होने से शरीर मे निर्बलता आती ही है।

हनुमानजी अति बलशाली थे तो इस ब्रह्मचर्य के ही प्रताप से। माता अजना ने 12 वर्ष तक अखड ब्रह्मचर्य का पालन किया था। लम्बे समय तक ब्रह्मचर्य का पालन करने से ही ऐसे बलशाली सपूत की प्राप्ति की।

आज के माता–पिता आत्मा के ओज ब्रह्मचर्य की ओर समुचितरूपेण ध्यान नहीं देते है। अत उनकी सताने भी निर्बल होती है और उनके स्वय के भी बुढापा शीघ्र आ जाता है। बच्चो की नस्ल भी मजबूत नही वन पाती। शरीर निर्बल, निस्तेज व रुग्णता से युक्त निर्मित होता है।

धम्मपद नामक ग्रन्थ मे लिखा है –

अचरित्वा ब्रह्मचर्य, अलद्धा योत्वने धनम्,
सन्ति चापा तिखीणा व पुराणानि अनुत्थुनम्।

अर्थात् जिन्होने ब्रह्मचर्य का पालन नहीं किया और जिन्होने जवानी मे धन का उपार्जन नही किया वे टूटे हुये धनुषो के समान पडे रहते हैं। और अपने पहले के समय को याद किया करते है।

वास्तव मे विषयभोग मानव के जीवन को बर्बाद करने वाले है। हवा मे चित्र लिखना, पानी मे लकीर खींचना व विजली को हाथ से पकडना जेसे

असभव है वैसे ही भोगो मे सुख असभव है।

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती ने सिर्फ 100 वर्ष ही राज्य का उपभोग किया किन्तु उसके परिणामस्वरूप सातवीं नारकी मे चले गये। इसी प्रकार रावण, मणिरथ आदि वडे–बडे राजा–महाराजा ने काम–भोगरूपी भट्टी मे अपनी इज्जत, प्रतिष्ठा को जला कर अपने आप को समाप्त कर दिया। भौरा लकडी को छेद सकता है किन्तु पुष्पो को नही। पुष्प की सुवास मे मुग्ध होकर मर जाता है। उसी प्रकार मनुष्य बडे–बडे युद्धो मे विजय प्राप्त कर सकता है। किन्तु विषयभोगो पर विजय प्राप्त करना कठिन है। ये विषयभोग दुर्गति मे ले जाने वाले होते है।

उत्तराध्ययन सूत्र के नवे अध्ययन मे कहा है–

सल्ल कामा, विष कामा, कामा आसीविषोवमा,
कामे भोए पत्थेमाणा, अकामा जन्ति दोग्गइ।

अर्थात् काम–भोग शल्य के समान है, काम–भोग विष के समान है, काम–भोग दृष्टिविष सॉप के समान है। काम–भोग की अभिलाषा करने वाले काम–भोग न भोगने पर भी दुर्गति मे चले जाते है।

बडे–बडे महात्मा भी विषयभोग के चक्कर मे फॅसते हुए देखे व सुने जाते है।

एक बार एक आश्रम के शान्त वातावरण मे गुरुजी शिष्यो को शास्त्र पढा रहे थे। पढाते हुए एक वाक्य का उच्चारण किया– **ब्रह्मचर्य दुक्करं, दुक्करं, दुक्कर।** यह वाक्य पढते ही गुरुजी दूसरे ही क्षण बोले कि यह वाक्य तो गलत छप गया लगता है। ब्रह्मचर्य का पालन करना कठिन कहॉ है? अपन तो आराम से उसका पालन कर रहे है। शिष्यो ने भी कहा– हॉ गुरुजी, ब्रह्मचर्य के पालन मे कोई कठिनाई नही है। तब गुरुजी ने कहा–तुम अपनी–अपनी पुस्तको मे इस वाक्य को सुधार कर लिखलो कि **ब्रह्मचर्य सुक्कर, सुक्करं, सुक्करं।** सभी शिष्यो ने वैसा ही लिख लिया और याद भी कर लिया।

एक दिन एक लडकी नदी तैरकर अपने ननिहाल को जा रही थी। अनायास ही तूफान आया। अत पानी का तेज बहाव होने से वह नदी के अन्य किनारे पर चली गयी। किनारे पर जाकर देखा आसपास मे कोई गॉव तो दिखाई नही दे रहा है। पगडडी देख कुछ आगे बढी तो दूर से मकान जैसा कुछ दिखाई दे रहा था। उसने अपने कदम उसी ओर बढा दिये । सोचा–सध्या का समय है। रात्रि तो व्यतीत करना ही है। और कही जाने का अब समय नहीं रहा है। अत वह शीघ्र आश्रम के दरवाजे के पास पहुँची। देखा अन्दर महात्मा लोग बैठे है। उन्हे देखकर उसे बहुत शाति मिली कि सही जगह है। यहॉ मेरी सुरक्षा आराम से हो सकती है। महात्मा को अपनी वात वताने जैसे ही वह अन्दर जाने लगी कि शिष्यो ने उस लडकी को रोक दिया कि अन्दर

नही आ सकते। लडकी दरवाजे के पास ही रुक गयी और वही से महात्मा को अपनी बात बता दी और रात्रि मे यही एक तरफ जगह देने की मॉग की। गुरुजी ने उस पर अनुकपा करके शीघ्र ही कहा कि इस आश्रम के बाहर एक छोटा मदिर है। उस मदिर के दरवाजा भी है। उसमे तुम रात्रि विश्राम कर लो। ध्यान रखना, दरवाजा खुला न रह जाये। अन्दर की सॉकल जरूर लगा देना। जगली क्षेत्र है। युवती बडी खुश हुयी और महात्मा को बाहर से ही प्रणाम करती हुयी वह उस मदिर मे चली गयी। कुछ समय तक माला, भजन आदि के माध्यम से प्रभुभक्ति करके मदिर का दरवाजा बद करके आराम से सो गयी।

रात्रि मे महात्माजी की नीद खुली। हमेशा की तरह रात्रि 12 बजे का ध्यान किया। किन्तु ध्यान मे मन नही लग रहा है। मन खेचकर लगाने की कोशिश कर रहे है किन्तु वह मन उस लडकी मे ही भाग रहा है। फिर भी लोकलज्जा व शिष्यो की शर्म से पुन सो गये। किन्तु नीद नही आ रही है। पुन–पुन सोना, बैठना हो रहा है। करवटे बदल रहे है। सोचते है कितना अच्छा मौका था किन्तु मैने ही उस लडकी को दरवाजे की सॉकल लगाने का बोल दिया। अब क्या हो सकता है? दरवाजा खटखटाऊँ तो शिष्यो की नीद खुल सकती है। बेचैन हो रहे है। फिर सोचा–देखूँ तो सही, दरवाजा शायद भूल से खुला ही रह गया हो तो। गुरुजी धीरे–से पट्टे पर से उतरे। दबे पॉवो से गए दरवाजे के पास। धीरे–से हाथ से दरवाजे को दबाया किन्तु दरवाजा बन्द था। निराश होकर पुन लौटकर पट्टे पर बैठ गए। फिर याद आया कि मदिर के ऊपर एक बडा खड्डा था। उस खड्डे से अदर जा सकता हूँ। तुरत पट्टे से उठे और मदिर पर चढकर अपने दोनो पैर खड्डे मे डाल दिए। कमरे मे उतरने की तैयारी थी कि– मोटी कमर खड्डे मे फॅस गयी।

महात्माजी कामान्ध बने हुए थे। अत यह सोच भी नही पाये कि खड्डा छोटा है या बडा। कहा भी है–

दिवा न पश्यति मूकः काको नक्तं न पश्यति,
अपूर्व कोऽपि कामान्ध दिवा नक्तं न पश्यति।

अर्थात् उल्लू दिन मे नही देखता है और कौआ रात्रि मे नहीं देखता है। किन्तु कामान्ध व्यक्ति रात–दिन, उचित–अनुचित, हित–अहित कुछ भी विचार नही कर पाता। अपनी सारी बुद्धि खो देता है। अव महात्माजी घवरा गये। अब न ऊपर की ओर जा सकते है और न नीचे की ओर जा सकते है। सवेरे पॉच बजे शिष्य उठे। देखा–गुरुजी पट्टे पर नहीं है। कुछ देर इतजार किया। किसी काम से बाहर गये होगे वो आ जाएँगे। किन्तु आधा घटा वीत जाने पर नही आए तो गुरुजी की तलाश मे शिष्य बाहर निकले। चारो ओर देखने लगे। बहुत देर तक भी गुरुजी नहीं दिखे तो सभी शिष्य अनुमान लगान

लगे कि आज तो गुरुजी को किसी जगली जानवर ने खा लिया है। शिष्य उदास होकर पुन आश्रम की ओर लौटने लगे। तूफान की तरह हवा तेजी से चल रही थी। मदिर पर ध्वजा के पास मे चोटी के काले बाल फहराते हुए दिखाई दिये। सोचा यह काला–काला क्या? कुछ कदम आगे बढते ही गुरुजी का चेहरा नजर आ गया। तभी जोर से बरसात भी प्रारभ हो गयी। ओले पड रहे है। शिष्यो को आश्चर्य हुआ– गुरुजी यहाँ कैसे हैं? यह कैसी साधना? पास मे जाकर देखा तो गुरुजी तो फॅसे हुए हे। शिष्य ऊपर चढे और गुरुजी को खेचकर बाहर निकाला। गुरुजी लहूलुहान हो गए। शर्म के मारे जमीन मे गडे जा रहे थे। शिष्यो के पूछने पर सही–सही बात बता दी। शिष्यो के समक्ष आलोचना प्रायश्चित्त कर शुद्धीकरण कर लिया और निर्देश दिया– शिष्यो! शास्त्र मे मैने "ब्रह्मचर्य दुक्कर" वाले पाठ को गलत बताकर "ब्रह्मचर्य सुक्कर" लिखवाया था और वही तुमने याद भी कर लिया था। आज उसका प्रायश्चित्त करता हूँ। उस पाठ को पुन सही करो।

वास्तव मे ब्रह्मचर्य का पालन करना घोर दुष्कर है। बडे–वडे योगी महात्माओ को भी ब्रह्मचर्य के पालन मे कभी–कभी कठिनाइयाँ पैदा हो जाती है। मन बहुत कच्चा है इसीलिए भगवान् महावीर स्वामी ने ब्रह्मचर्य की सुरक्षा हेतु नवबाड बतायी है जिसका सभी साधको को सजगता से पालन करना चाहिये। यह मन कच्चा है। कहा भी है–

चलो चलो सब कोई कहे, पहुँचे विरला कोय,
एक कनक दूजी कामनी, दुर्गम घाटी दोय।

इसलिए पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करने के इच्छुक साधको के लिए दशवैकालिक सूत्र मे यहाँ तक कहा है–

हत्थ पाय पलिच्छिन्नं, कन्न नास विगप्पिअं,
अविवास सय नारिं, बभयारि विवज्जए।

अर्थात् टूटे हुए हाथ–पैर वाली और कटे हुए कान वाली सौ वर्ष की बुढिया का सग भी ब्रह्मचारी के लिए वर्जनीय है।

जैसे आग के पास रहा हुआ घी पिघल जाता है उसी प्रकार विजातीय ससर्ग से चित्त विकृत होकर विचलित हो सकता है।

इलायचीकुमार नटवी के नाटक को देखने गया। देखने मात्र से ही इलायचीकुमार का मन चलित हो गया और अपनी करोडो की सम्पत्ति व माता–पिता आदि सभी पारिवारिक जनो को छोडकर के नटवी पाने की अभिलाषा से नट मडली के साथ हो गया। विषयभोग की इच्छा से सर्दी, गरमी, भूख, प्यास, ताडना, वर्जना सब कुछ सहन करने को तेयार हो गया। धिक्कार है कामभोगो को।

ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए व्यक्ति को अपने खान–पान, रहन–सहन

आदि सम्पूर्ण व्यावहारिक जीवन मे परिवर्तन लाना चाहिए। शृगार आदि को त्यागकर दृष्टि को निर्मल बनाना चाहिए।

भगवती सूत्र मे आया है– एक बार के अब्रह्म सेवन से दो लाख से नौ लाख तक सन्नी पचेन्द्रिय जीवो की हिसा होती है। इसके अलावा समूर्च्छिम जीवो की तो गिनती ही नही। विषय देखने मे माखन पिण्ड है। किन्तु वास्तव मे है चूना ही जो खानेवालो की ऑते काट देता है। इस प्रकार से विषयभोग के दारुण दु ख देने वाले विपाक को जानकरके भी यदि काम–भोगो से दूर नही होते है तो इससे बढकर क्या अल्पज्ञता होगी?



स्वच्छ चिंतन - महकता जीवन

यस्मात् क्रिया प्रतिफलन्ति न भावशून्या.

अर्थात् भाव के बिना केवल शरीर से की जाने वाली क्रियाएँ निष्फल साबित होती है।

जैन शास्त्रो मे धर्म के मुख्य चार रूप—दान, शील, तप, भावना बताये है। इन चारो मे से भावना को अन्त मे स्थान दिया गया हे क्योकि दान, शील, तप का प्रतिफल भी भावना के अनुसार ही मिलता है। "यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी" जिसकी जैसी भावना होती है उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है।

भावना के आधार पर ही सुख व दु ख का सृजन होता है। सोच यदि सही हो तो व्यक्ति अभावग्रस्त, विपन्न अवस्था मे भी सुखी रहेगा और सोच यदि गलत हो तो वैभव के झूले मे बैठा हुआ भी दु खी बन जायेगा। फारसी मे एक विद्वान ने यही बात इस प्रकार से कही है—

दिल चूँ गरिफ्त, वाशद मातम सरारत्त आलिम।
वारॉ कि दिल शगुफ्ता, मालम लहॉ शगुफ्ता।

यदि किसी मनुष्य के दिल के भाव खराब है तो उसे सभी दु खी दिखायी देते है। किन्तु यदि भाव अच्छे हैं तो सभी सुखी दिखाई देते हे।

तीन व्यक्ति गॉव के बाहर कुएँ के पास बैठे हुए थे। तीनो चितित व दु खी दिखाई दे रहे थे। एक सज्जन उस तरफ आया। उसने उन तीनो को देखकर बोला—क्या बात है? तुम्हे कोई परेशानी या दु ख है? तव पहले व्यक्ति ने कहा— मेरे पास धन है पर सतान नहीं है अत दु खी वना हुआ चितित बना रहता हूँ कि सपत्ति का उपभोग करने वाला व मेरे नाम को चलाने वाला मेरे पीछे कोई भी नही है। दूसरे व्यक्ति ने कहा— मेरे सतान तो सात हैं, पर सातो ही पागल है। इससे बडा दु ख व्यक्ति के लिए क्या हो सकता है? तीसरे व्यक्ति ने कहा— मेरे पास न तो धन है और न सतान ही। अत मै तो बडा दु खी हूँ।

सज्जन व्यक्ति ने उन तीनो की बात सुनकर तत्काल उत्तर देना ठीक नही समझा और कहा— यहॉ से 25 मील दूर पर एक आश्रम हे। वहॉ पर एक पहुँचे हुए सिद्ध योगी रहते हे। उनकी शरण मे जाने से अवश्य ही तुम्हारा दु ख दूर होगा। तीनो व्यक्ति अपने—अपने दु ख को मिटाने की अभिलाषा

लेकर, रास्ते का पाथेय साथ मे लेकर उन महायोगी के चरणो मे पहुँचने हेतु अपने गॉव से निकले। लगभग पॉच मील चलने पर भोजन–पानी करने हेतु व थकान मिटाने हेतु एक कुएँ के पास वृक्ष की छाया मे बैठे। तीनो ने भोजन प्रारभ किया। तभी पहले व्यक्ति ने कहा कि– मै अन्य के बच्चो को देखता हूँ तो बडा दु खी होता हूँ। दूसरे ने कहा कि मै तो अपने बच्चो को ही देख कर ऑसू डालता रहता हूँ। तीसरे ने कहा– मै तो अन्य के बच्चे व धन सभी को देखकर महादु खी होता हूँ।

तीनो ने भोजन किया, ठडा पानी पीया और महात्मा के चरणो मे पहुँचने हेतु वहॉ से आगे बढे। चलते हुए पुन प्यास लगने पर एक कुएँ के पास पहुँचे और वही वृक्ष के नीचे विश्राम करने के लिए बैठ गए। तीनो आपस मे वार्तालाप कर ही रहे थे कि पहले व्यक्ति ने एकदम कहा कि– अरे! मै तो बडा सुखी हूँ क्योकि मेरे पागल सतान नही है। तभी दूसरा व्यक्ति बोला– ऐसे तो मै और ज्यादा सुखी हूँ कि मै कम से कम बॉझ तो नहीं हूँ। तीसरा व्यक्ति बोला– मै तो तुम दोनो से ज्यादा सुखी हूँ कि मेरे धन नही है तो सेलटेक्स और इकमटेक्स का झगडा नही है व दो नम्बर की बहियॉ रखने की आवश्यकता भी नही है तथा पागल या अच्छी कोई भी सतान नही है तो अच्छा है कि मेरे पर बधन भी नही है। मै आराम से कही भी आ–जा सकता हूँ।

इस प्रकार जैसे ही तीनो व्यक्तियो के विचारो मे परिवर्तन आया तो वे सुखी हो गये और सभी के चेहरो पर प्रसन्नता छा गई। अब वे महात्मा के पास न जाकर पुन अपने घर की ओर लौट गये।

अगर व्यक्ति की सोचने की शक्ति सही नहीं है तो वह अपने ही गलत विचारो से पद–पद पर खेदित होता हुआ नजर आता है। दुनियावी लोग हर किसी को बातो आदि के माध्यम से छेडते रहते है पर उस स्थान पर सामने वाले की सोच सही है तब तो उस पर उन बातो का कोई असर नहीं होता किन्तु जरा भी गलत सोच हुई तो व्यक्ति को भयकर रूप से दु खी होते हुए जरा भी देर न लगेगी।

एक पति–पत्नी ने अपने सतान न होने से एक लडकी को गोद ले लिया। लडकी को गोद लेने के एक वर्ष बाद ही उनके स्वय के भी लडकी हो गई। वे दोनो लडकियॉ साथ–साथ मे खेलती थी। आस–पास मे रहने वाली महिलाएँ जब–तब उन दोनो लडकियो के सामने कहा करती थी कि यह लडकी तो गोद की है और यह लडकी उनकी स्वय की हे। वे दोनो बच्चियॉ उन बातो को कई बार सुनती पर वे अपने खेल मे मस्त रहतीं। एक बार एक महिला उस गोद वाली बच्ची को बार–बार छेडते हुए कहने लगी कि– तू तो गोद मे लाई हुई है, तेरे मम्मी–पापा तो दूसरे है, आदि–आदि। उस बच्ची ने

उस समय तुरत ही जवाब दिया कि मुझे गोद लेके आये उससे यह बात पक्की है कि मै तो बहुत अच्छी हूँ तभी तो लाखो मे से छॉटकर मुझे पसद करके लेकर आये है और यह मेरी वहिन तो जैसी उन्हे मिल गई है वैसी उन्हे रखना ही है।

ऐसा जवाब सुनते ही महिलाओ का मुँह बद हो गया। बच्ची की सोच सही होने से उसकी प्रसन्नता–खुशी कोई छीन न सका।

सही सोच व्यक्ति को वर्तमान मे तुरत ही सुखी बना देती है तथा भविष्य मे भी उसे सुख मिलता ही है। मोक्ष तक पहुँचने के लिये शुद्ध भावना ही सही माध्यम है। अन्य–अन्य धर्माचरण हेतु तो धन भी खर्च करना पड सकता हे, कुछ कष्ट भी उठाना पड सकता है किन्तु विचारो की शुद्धि के लिये न तो कुछ खर्च करना पडता है और न ही जरा भी कष्ट उठाना पडता है और न ही स्थान–विशेष को देखना पडता है। कहावत है–

मन चगा तो कठौती मे गगा

उस रैदास चमार को बिना गगा–स्नान किये ही घर मे बैठे–बैठे चमडे के जूते बनाते हुये ही गगा देवी के दर्शन हो गये, घर बैठे ही भक्तो की गिनती मे प्रथम स्थान मिला।

मरुदेवी माता ने गृहस्थ वेष मे हाथी पर बैठे हुए ही शुद्ध भावना से केवलज्ञान व मोक्ष को प्राप्त कर लिया। भरत चक्रवर्ती ने भावना शुद्धि से कॉच के महल मे भी केवलज्ञान प्राप्त किया। इसी प्रकार शुभ व अशुभ भावना से पशु भी स्वर्ग व नरक के अधिकारी बने है। बलभद्र मुनि की सेवा मे रहने वाला हरिण आहार बहराने की उत्कृष्ट भावना से काल करके पॉचवे देवलोक मे, चण्डकौशिक सर्प दया की सुन्दर भावना से ओतप्रोत होकर आठवे देवलोक मे, नन्दन मणियार का जीव मेढक के भव मे भगवान् के दर्शनो की शुभ भावना से प्रथम देवलोक मे गया व तन्दुल मत्स्य हिसात्मक अशुभ भावना से नरक मे चला गया। कहा भी है– **मन एव मनुष्याणा कारण वन्ध मोक्षयोः।** अर्थात् मन ही मनुष्यो के बधन और मोक्ष का कारण हे। एक पश्चिमी विद्वान ने कहा है– "As you think so shall you be " अर्थात् तुम्हारे जैसे विचार होगे वैसे ही तुम बनोगे। मनुष्य अपने विचारो का ही प्रतिबिम्ब है। जैसे विचार होगे वैसा ही जीवन निर्माण भी होगा। वास्तव मे विचारो के अनुसार ही चारो गति मे जीव जाता है। मन ही शरीर का सचालक है।

विचारो का प्रभाव इस जीवन पर भी पूरी तरह पडता है। जैसे– किसी हृष्ट–पुष्ट व स्वस्थ आदमी को बार–बार यह कहा जाय कि आप वहुत दुवले हो रहे है, आपके शरीर मे रोग बैठ गया है आदि। इन सभी विचारो से वह व्यक्ति जरूर दुर्बल व रोगी हो जायेगा। आजकल ज्यादातर बीमारियॉ विचारो से, टेशन से ही हो रही है।

विचारो का प्रभाव पशु जगत व जड जगत पर भी अवश्य पडतां है।

बसरा के हसन एक बार राबिया से मिलने के लिये पहुँचे। राबिया के चारो ओर विविध प्रकार के जानवर बैठे हुए आनद–क्रीडा कर रहे थे। हसन के पास मे आते ही वे सभी पशु–पक्षी वहाँ से भाग गये। ऐसा देखकर हसन को बडा आश्चर्य हुआ। उसने राबिया से पूछा– ये पशु–पक्षी मेरे आते ही भाग क्यो गये? राबिया ने कहा– लगता है, आप मास खाते है, इसीलिये पशु–पक्षी आपसे भयभीत होकर भाग गये है। मै केवल रूखी–सूखी रोटी खाती हूँ। मेरे मन मे इन पशुओ के प्रति प्यार है, जिससे ये मेरे से भयभीत नही होते है।

इसी प्रकार वैज्ञानिको ने अपने विचारो का प्रभाव जड जगत पर भी पूरा जमाया है। गोदरेज की अलमारी तक को भी खिसका दिया। आज के युग मे सकल्प शक्ति से सफल चिकित्साएँ की जा रही है।

आज व्यक्ति बाहर से सज रहा है और अन्दर से रो रहा है। हँसना चाह रहा है पर हँस नही पा रहा है क्योकि वह धर्म को ऊपरी–ऊपरी तौर पर ही कर रहा है, अन्दर मे नही रमा पा रहा है। आन्तरिक विचार शुद्ध नही हो रहे है, जैसे एसिड। जलन अदर मे हो रही है, प्यास अदर मे लग रही है, ऐसी स्थिति मे ऊपर से लेप किये जा रहे है, अन्दर मे कुछ भी नही ले रहे है तो एसिड शान्त नही होने वाली है। प्यास लगी है तो पानी अन्दर मे डालना ही पडेगा किन्तु व्यक्ति उस बात को नही समझ रहा है और ऊपरी–ऊपरी तौर पर धर्म–ध्यान, त्याग–तपस्या कर रहा है किन्तु अन्तरग मे ईर्ष्या, कपट, मोह, राग, द्वेष की जलन उठ रही है। उसे शान्त करने बाहरी साधना के साथ–साथ भावना शुद्धि पर भी ध्यान देना होगा। एक उर्दू कवि ने कहा है–

गिरते है जब खयाल तो, गिरता है आदमी।
जिसने इसे संभाल लिया, वो सभल गया आदमी।

अदर के विचारो के अनुसार ही गतिविधि होती है। कार–ड्राईवर का अन्तरग सही है तो गाडी ट्राफिक मे से भी आराम से निकाल लेगा। अगर शराब के नशे मे है तो बिना भीड के भी किसी वृक्ष, दीवाल आदि से टकरा जायेगा। अत अन्तरग विचारो का सबसे पहले ध्यान, स्वाध्याय, सत्सग आदि के माध्यम से सशोधन करना होगा।

किसी के द्वारा गाली देने पर यही सोचे कि उस व्यक्ति के मुँह मे जो गाली की गदगी भरी हुई थी वह बाहर आ गई है, अत उसका मुँह उतने अशो मे शुद्ध हो गया है। उसके द्वारा बुरा कहने या सोचने से आप बुरे नही हो जाओगे। बुरे विचार करने से सामने वाले का कुछ बुरा होने वाला नहीं है। बुरा–भला तो उसके भाग्य पर निर्भर है। किन्तु तुम अपने बुरे विचारो से अपना अहित जरूर कर लोगे।

आप चाहो कि दूसरे की सम्पत्ति का विनाश हो जाये पर तुम्हारे चाहने मात्र से न तो किसी की सम्पत्ति आज तक विनष्ट हुई है और न होती ही है और न होगी। ऐसी स्थिति मे बुरे विचार आपके आत्मगुणो के घातक है अत अप्रशस्त विचारो का त्याग कर प्रशस्त विचारो मे रमण करना चाहिए। सत–महापुरुष ज्ञान–दर्शन–चारित्र की आराधना मन को वश मे करने के लिये ही करते है। जब मन सध जाता है तो सिद्धि स्वत ही प्राप्त हो जाती हे। उत्तराध्ययन सूत्र मे आया है–

एगे जिए जिया पच, पच जिए जिया दस।
दसहा हु जिणित्ताण, सव्व सत्तु जिणामह।।

अर्थात् हे मुने! एक मन को जीत लेने पर पॉचो इन्द्रियो पर विजय प्राप्त हो जाती है, और पॉचो इन्द्रियो पर विजय प्राप्त कर लेने पर मन, पॉचो इन्द्रियॉ और क्रोध, मान, माया, लोभ, यह दशो जीत लिये जाते है और इन दश को जीत लेने पर सभी शत्रु जीत लिये जाते हैं। अर्थात् मन को जीत लेने पर मोक्ष अवश्यमेव प्राप्त होता ही है।



करो तप - कभी न बनो संतप्त

भवकोडिय सचिय कम्म, तवसा निज्जरिज्ज।

अर्थात् करोडो भवो मे सचित किये हुए कर्मो को तपस्या जलाकर भस्म कर देती है।

पूर्ण रूप से आत्मविकास की प्रकर्षता को प्राप्त करने के लिये तप करना अनिवार्य है। जैसे–एक छोटे–से बीज को विकास करने हेतु सर्वप्रथम भूमि के अदर की गरमी मे तपस्या करनी जरूरी है। तपने पर ही वह वीज अकुरित, प्रस्फुटित, पल्लवित, पुष्पित, विकसित हो सकता है। किसान भी तपता है तभी धान्य प्राप्त कर सकता है। अनादिकाल से स्वर्ण को अपने साथ लगे मैल से दूर होने के लिये अग्नि मे तपना ही पडता है तभी प्योर (असली) स्वर्ण की चमक को प्राप्त हो सकता है। व्यापारी धन–प्राप्ति हेतु सुबह से शाम तक अपनी दुकान पर टिक कर बैठता है, तपता है तभी धन की प्राप्ति कर सकता है। विद्यार्थी मन, वचन, काया को एकाग्र करके, गरमी–सर्दी की परवाह किये बिना, सुविधाओ की ओर ध्यान न देते हुये पढता है तभी विद्या की प्राप्ति कर सकता है। कहा भी है **विद्यार्थी को सुख नहीं, सुख है तो विद्या नहीं।** वैसे ही साधक को भी चरम विकासरूप मोक्षरूपी साध्य की प्राप्ति हेतु कठिनतम तप को जीवन मे अपनाना ही पडता है।

तीर्थकर भगवतो ने आत्मशुद्धि के अनेक मार्ग खोजे, उनमे से तप का मार्ग भी महत्त्वपूर्ण है। मनुस्मृति मे कहा है– **तपसा किल्विषं हन्ति।** अर्थात् तप से पापो का नाश होता है। भगवती सूत्र मे कहा है– **तवेण जीवे वोदाणं।** अर्थात् तप करने से पूर्वकर्मो का क्षय होता है।

जैसे जगल को जलाने मे दावानल प्रवल है, दावानल को शान्त करने मे मेघ शक्तिशाली है और मेघ को छिन्न–भिन्न करने मे वायु सक्षम होती है उसी प्रकार कर्मो को चकनाचूर करने मे तपश्चर्या सवलतम माध्यम है।

तप के माध्यम से बिखरी हुई सारी आत्मिक शक्ति एकत्रित हो जाती है। एक विशेष प्रकार का कॉच आता है। उसके माध्यम से विखरी हुई सूर्य कि किरणो को एक सीमा तक एकत्रित करके किसी कपडे या कागज–विशेष को भी जलाया जा सकता है। पुराने जमाने मे वीडी, सिगरेट पीने वाले वसा कॉच अपने पास रखते थे। ठीक इसी प्रकार आत्मा की शक्ति पॉच इन्द्रियो

व मन की चचल अवस्थाओ मे विकीर्ण हो रही है अत आत्मा अपनी सामान्य अवस्था से आगे नही बढ पा रही है अपितु पर–पदार्थो के आकर्षण मे अपनी शक्ति को खर्च करते हुये नीचे की ओर दबती जा रही है। अत आत्मिक विकास हेतु आत्मा से निरन्तर बाहर निकल रही आत्मिक शक्ति को एकत्रित करने के लिये तप रूपी कॉच के माध्यम को हाथ मे लेना ही पडेगा। तप के माध्यम से बिखरी हुई आत्मिक शक्ति केन्द्रित होने पर आत्मा मे रहा हुआ अनादिकालीन कचरा भी आराम से जलाया जा सकता है। जिससे सुवर्ण की तरह आत्मा मे पूर्ण रूप से निखार आ सकता है और शीघ्र ही उच्चतम अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है। महर्षि मनु ने कहा है– तपस्या के द्वारा तापस तीन लोको का साक्षात् अवलोकन करते है।

तप के सामने दिशाशूल, राहु–केतु आदि ग्रहो का जोर नही चलता। तपस्वी जनो के समक्ष दैविक शक्ति भी परास्त हो जाती है। द्वारिका नगरी मे जब तक आयम्बिल तप होता रहा तब तक द्वैपायन देव की शक्ति भी चल नहीं सकी। शास्त्रो को पढते समय भी अमुक–अमुक प्रकार की तपस्या करना चाहिए– ऐसा विधान है। तथा शास्त्रो के कोई–कोई पाठ तो ऐसे है कि बिना तपस्या के पढ ही नही सकते क्योकि तपस्या न करने से दैविक उपद्रव की सभावनाएँ रहती हैं। तप रूपी शस्त्र के समक्ष किसी का जोर नही चल सकता। वे तपस्वी के समक्ष दास की तरह बनकर उनके चरणो मे झुक जाते है। तपस्वी किसी साधना मे असफल नही हो सकता है। तपस्वियो के शब्द कोष मे असफलता नामक शब्द ही नही रहता है।

छ खड के अधिपति चक्रवर्ती के पास मे 14 रत्न होते है। उन रत्नो मे ऐसी–ऐसी शक्ति होती है कि 48 कोस मे जहॉ सेना का पडाव पडता है वहॉ चर्म रत्न के प्रभाव से चबूतरा बन जाता है व छत्र रत्न के प्रभाव से छत्र बन जाता है, दड रत्न के प्रभाव से विषम भूमि सम बन जाती है व गुफाओ के दरवाजे भी खोल देते है। अगर गगा, सिधु जैसी महानदियो को पार करना हो तो चर्म रत्न के प्रभाव से नावे भी तैयार होकर सेना को नदियॉ पार करवा देती हैं। इस प्रकार सारे रत्न विशेषताओ को लिये हुए होते हैं। एक–एक रत्न मे एक–एक हजार देव अधिष्ठित होते है। इस प्रकार चक्रवर्ती के पास सेना, अस्त्र–शस्त्र और अपूर्व शारीरिक बल होने पर भी युद्ध मे जाने से पूर्व व मध्य मे तेले की तपस्या करते ही है। इससे मालूम होता हे कि तेले की तपस्या का बल चक्रवर्ती के बल व दैविक बल से भी अधिक होता है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति मे जहा भरत महाराज की ऋद्धि का वर्णन किया गया है वहॉ यह सूत्र भी आता है कि **पुव्व कड तप संयम प्रभवा।** अर्थात् यह ऋद्धि पूर्वकृत तप–सयम के प्रभाव से ही प्राप्त हुई है। अत हर क्षेत्र मे अन्तराय रूपी कर्म–दीवाल को हटाने यानी सफलता प्राप्त करने के मध्य मे आने वाले

अवरोधक तत्त्वो को हटाने हेतु तप कामयाब होता है। तप करने से कर्म जलते है और कर्म जल जाएँगे तो अवरोधक तत्त्व स्वत ही दूर हो जाएँगे ओर अपने-अपने क्षेत्र मे सफलता अवश्य प्राप्त होगी। वैदिक ग्रन्थो मे भी कहा है- **सर्व तत् तपसा लभ्यं।** अर्थात् तपस्या से सब-कुछ प्राप्त होता है। भगवान महावीर स्वामी ने नदन मुनि के भव मे एक लाख वर्ष तक मास-मासखमण की तपस्या करके पूर्वकृत कर्मो का क्षय करते हुये तीर्थकर गोत्र का उपार्जन किया। आवश्यक सूत्र की टीका मे आचार्य मलयगिरी ने बताया है -

तापयति अष्ट प्रकारं कर्म इति तपः।

जो आठ प्रकार के कर्मो को तपाता हो, उन्हे भस्मसात् कर डालने मे समर्थ हो, उसे कहते है तप।

वासनाओ पर विजय पाने हेतु तपस्या एक सरलतम उपाय है। जगली घोडे जब पकडे जाते है तब उनके ऊधम का कोई पार नही रहता। उनकी उस उच्छृखलता को कम करने के लिये उन्हे दो-तीन दिन तक भूखा रखा जाता है। तब कही जाकर वे काबू मे आते है। इसी प्रकार इद्रिय रूपी घोडो को काबू मे करने के लिये तपस्या ही एक समर्थ साधन है। जैसे जब भाई-बहिन उपवास, बेला आदि तपस्या करते है उस समय इन्द्रियॉ शिथिल हो जाती है अत बाहर के शब्द, वर्ण, गध, रस, स्पर्श आदि विषयो की ओर नही जाती। उस समय मे आत्मा के विषय मे चितन करने का मौका मिलता है। आत्मा अपने-आप मे रमण करने लगती है। उस समय आत्मा की आवाज सुनने का सुनहरा अवसर भी प्राप्त होता है। विषयेच्छा तो भागती हुई नजर आती है। कहा भी है -

काम रूपी सर्प कीलन, मंत्र ये परधान है।
विघन धन तम हरण को, तप सूर्य के उपमान है।

अर्थात् कालबोलिये जहरीले काले नाग को वश मे करने मे समर्थ हो सकते है परन्तु विषय-वासना रूपी नाग को वश मे करना अत्यत कठिन है। इसके लिए तपस्या ही एकमात्र सर्वश्रेष्ठ साधन है।

एक श्रीमत के एकाएक बेटा था। योग्य वय होने पर उसकी शादी कर दी गई। सयोग से लडकी उनके इच्छानुरूप ही मिली। सेठानी तो अपने पुत्र को छोटी अवस्था मे छोडकर ही मर गई थी। पुत्रवधू प्रतिदिन ससुर व पति को खिलाकर ही भोजन करती थी।

एक बार श्रीमत-पुत्र ने धन कमाने हेतु विदेश जाने का सोचा। पिता व पत्नी से पूछकर परदेश चला गया। परदेश गये हुए काफी वर्ष बीत गये थे। पत्नी इतजार करते-करते थक गई। इन्द्रियो सबधी काम-गुणो को जीतना भी मुश्किल हो रहा था। मन बहुत कच्चा है। अन्तरग मे विषय-वासना की आग भडक उठी। उसे शान्त करना बहू के लिये अशक्य-सा हो रहा था।

बहू सोचने लगी, कब तक मै सती वनकर बैठी रहूँगी और घर के काम करती रहूँगी। इस बात को सीधे ही तो ससुर के सामने प्रकट कर नही सकती अत एक दिन ससुर के सामने कहने लगी– मै कब तक गधी की तरह से सारे कामो को करती रहूँगी। एक नौकर रख लीजिए।

ससुरजी बहुत बुद्धिमान थे। वे इस बात को सुनते ही सब–कुछ समझ गये और बहू को मृदुता के साथ बोले– हा, बहू। मै किसी भले आदमी की तलाश करूँगा। दूसरे दिन सबेरे भोजन का समय होते ही बहू ने ससुरजी को भोजन हेतु बुलवाया तो ससुरजी बोले– मेरे तो आज उपवास है। वहू के नियम था– सुसर को खिलाये बिना नहीं खाना अत ससुर के उपवास होने से बहू ने भी खाना नहीं खाया। बहू के भी उपवास हो गया। दूसरे दिन फिर वहू ने ससुरजी को पारणे पर बुलवाया किन्तु ससुरजी बोले–मेरे तो आज बेला है। बहू ने भी पारणा न करके ससुरजी के साथ बेला कर लिया। तीसरे दिन ससुरजी ने बहू से सुबह–सुबह ही कहलवा दिया कि बहू, तुम पारणा कर लो। मैं तो आज तेला करूगा। किन्तु बहू ससुरजी के पहले भोजन करना नहीं चाहती अत उसने भी तेला कर लिया। चौथे दिन तो बहू एकदम शिथिल हो गई। चलना–फिरना भी मुश्किल हो रहा है, चक्कर आ रहे है, घवराहट हो रही है। बहू ने ससुरजी को चौथे दिन पारणे पर बुलवाया किन्तु ससुरजी बोलते है–अभी एक भला आदमी नौकरी करने आया है, उससे बातचीत करके आता हू। तब बहू ने कहलवाया अब मुझे नौकर की आवश्यकता नहीं है। आप जल्दी पारणा करने के लिए पधारिये।

तीन दिन के तेले रूपी मत्र से वासना रूपी जहर उतर गया और सोचने लगी, मेरे ससुर के प्रताप से मेरी कुत्सित भावनाएँ गायब हो गई, नहीं तो मेरा कितना–क्या पतन हो जाता? मै अनर्थ कर बैठती। कैसे–क्या होता? उन सव बातो की कल्पना करते हुये बहू अन्दर से एकदम कॉप–सी गई और सकल्प कर लिया– आगे–से मेरे मन मे ऐसा विचार कभी नहीं आयेगा। वास्तव मे जब तक व्यक्ति इन्द्रियो का पोषण करता रहता है, अच्छा खाना–पीना, पहनना–ओढना, देखना आदि करता रहता है तब तक वे इन्द्रिया वासनाओ की तरफ ही आत्मा को ले जाती है। इसीलिये साधक के लिये तपस्या करने का भी विधान है।

ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये शास्त्रो मे बताया है कि ब्रह्मचारी को प्रतिदिन गरिष्ठ आहार नही करना चाहिए आदि। उत्तराध्ययन सूत्र के 26 वे अध्ययन की पैतीसवी गाथा मे आहार छोडने के छ कारणो मे से एक कारण यह भी बताया है कि ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिये आहार त्याग देवे।

जिस समय सुन्दरी के रूप पर भरत आसक्त होने लगा तो सुन्दरी ने

लम्बे समय तक आयम्बिल करके अपने शरीर को सुखा डाला। जिससे भरत की आसक्ति स्वत ही छूट गई।

स्वास्थ्य के लिये भी तपस्या जरूरी है। आज प्राकृतिक चिकित्सक रोगी को उपवास करवाके रोग मिटा रहे है। नौ दिन के उपवास से वात रोग, दस दिन के उपवास से पित्त का रोग व बारह दिन के उपवास से कफ का रोग नष्ट हो जाता है। यह उपचार प्राय सफल होता है। तपस्या करने वाले कई जने बोलते है कि जब से हम एकान्ततप आदि करने लगे है तब से हमारा शरीर एकदम ठीक हो गया है, कचन जैसी काया हो गई है।

भोजराजा की सभा मे वाग्मह नामक वैद्य था। एक बार अश्विनीकुमार ने उससे पूछा कि ऐसी कौनसी दवा है जो न पृथ्वी मे होती है और न आकाश मे पैदा होती है, न पानी मे पैदा होती है और न बाजार मे मिलती है। वैद्यराजजी ने उत्तर दिया– **लंघन परमौषधम्**। अर्थात् उपवास ही परम औषधि है। इस प्रकार विधिवत तप करने वाला कभी भी सतप्त नहीं बनता।

तप शब्द को उलट देने पर 'पत' बनता है। पत का अर्थ होता है– इज्जत। अगर निरन्तर खाते रहे तो श्वास लेना भी मुश्किल हो जायेगा। डॉक्टर के पास पहुँचना पडेगा और पेट दिखाकर इज्जत खोनी पडेगी। अत इज्जत रखना है तो तप करना चाहिए। भगवान् महावीर ने आत्मा की इज्जत बनाने हेतु साढे बारह वर्ष मे ग्यारह महीने उन्नीस दिन को छोडकर वाकी सारा तपस्या मे ही लगाया।

तपस्या सिर्फ निर्जरा हेतु होनी चाहिये। उसके साथ कोई भी इहलोकिक, पारलौकिक कामना नही जुडी हुई होनी चाहिए ताकि पूर्वसचित सारे कर्मो की निर्जरा करके शाश्वत अवस्था को प्राप्त करने मे सक्षम बन सके।

धूप पानी को सुखा देती है,
गरमी शीत को भगा देती है।
वैसे ही तपस्या रूपी अग्नि,
कर्म-कचरे को जला देती है।।



मर्यादा

मर्यादा मे रहने से प्रभु की प्राप्ति शीघ्र ही हो सकती है।

नदी का पानी दो किनारो की मर्यादा मे बहता है। अत अपने लक्षित समुद्र मे जाकर मिल जाता है। अगर कही से किनारा टूटा हुआ है, जिससे नदी का कुछ पानी बाहर आ जावे और किसी खड्डे विशेष मे भर जावे तो वह पानी तो समुद्र तक नही पहुँच सकता है अपितु एक–दो दिन मे उस पानी मे कीडे पड जाते है, जिसे पशु भी पीना पसद नही करते। ठीक उसी प्रकार से आत्मा को यदि परमात्मा रूपी समुद्र मे मिलना है तो नियम–उपनियम की मर्यादा मे रहना ही होगा।

आम की गुठली का विकास भी मर्यादा मे रहकर ही हो सकता है। जहाँ कही आम का अकुर फूट कर कुछ बढने लगता है और उसके विज्ञाता की दृष्टि उस पर पड जाती है तो वह उस पौधे को उखाड कर सही स्थान पर लगा देते है। कभी मान लीजिये सडक के किनारे आम का पौधा लगा दिया हो तो उसके चारो ओर सरियो की या ईटो की या कॉटो की बाड लगाना होता है, नही तो रास्ते मे चलते हुए पशु उस पौधे को नष्ट कर देगे। ठीक उसी प्रकार चैतन्य रूपी बीज को विकसित करने केवलज्ञान, केवलदर्शन रूपी फल को प्राप्त करने तथा आत्मिक विकास करने के लिए नियम–उपनियम रूपी बाड की आवश्यकता होती है। अपनी स्वय की सुरक्षा के लिए भी चार–दीवारी मकान की मर्यादा मे रहना होता है।

कपडे भी मर्यादा से ही पहनते है। पूरा थान लेकर अपने शरीर पर कोई भी नहीं लपेटता। तीन–चार मीटर कपडा लेकर टेलर के पास जाते है। वह आपके सामने ही नये कपडे पर कैची चला देता है, फिर भी आपको दु ख नहीं होता है, क्योकि आप कपडे को मर्यादा से पहनना चाहते है। इसी प्रकार हर क्षेत्र मे मर्यादा की आवश्यकता होती है। व्रत, नियम, त्याग आदि को जीवन मे अपनाने की आवश्यकता होती है। कहा भी जाता है –

बिना ब्रेक की गाडी लक्ष्य तक नहीं पहुँचा सकती,
बिना पाटो के रेलगाडी चल नहीं सकती,
ठीक वैसे ही मर्यादा रहित क्रियाएँ,
सुख रूपी सपत्ति को प्राप्त करवा नहीं सकती।

आज व्यक्ति को त्याग–प्रत्याख्यान आदि ग्रहण करना बिलकुल पसद नही है। त्याग का नाम तो एकदम खारा जहर लगता है। किन्तु यह सभी जानते है कि सच्चे मोती समुद्र के खारे पानी मे ही मिलते है, कुएँ के मीठे पानी मे नही।

भगवान् महावीर का फरमाना है, जब आपका काम पाव दूध, चार किलो पानी, सेर आटे से चल सकता है तो आप उससे आगे क्यो बढते हो? खाने को सब्जी दो या चार चाहिएँ किन्तु दुनिया–भर की वनस्पति की क्रिया आपको लग रही है। इस भूमडल पर वनस्पतियाँ तो बहुत है। लोकप्रकाश पुस्तक मे 18 भार वनस्पति का वर्णन आया है। एक भार का अर्थ है– तीन अरब, 81 करोड, 17 लाख, 22 हजार 970 मन का एक भार होता है। किसी स्थान पर 381121170 मन का एक भार भी बताया है। ऐसी 18 भार वनस्पति इस जगत् मे मानी गई है। उनमे से चार भार पुष्प की जाति, आठ भार फल की जाति, 6 भार वल्ली की जाति होती है। यानी इतने–इतने प्रकार के फूल, फल, वल्लियाँ आदि होते हैं अथवा चार भार कटु, दो भार तिक्त, तीन भार मिष्ट, एक भार क्षार, दो भार कषायेली, एक भार विषैली, दो भार विष–रहित वनस्पति होती है अथवा छ भार कँटीली, चार भाग सुगधी, आठ भार गधरहित, छ भार पुष्प–फल वाली वनस्पति होती है।

भगवान् महावीर फरमाते है– बिना मर्यादा बाँधे इन सब वनस्पतियो की क्रिया लगती है अर्थात् उनको उपयोग मे लिये बिना ही उनका पाप अपनी आत्मा के साथ आ रहा है। यह कैसे? इस विषय को समझाने हेतु समता विभूति आचार्य श्री नानालालजी म सा एक दृष्टान्त फरमाया करते थे कि– जैसे किसी बडे हॉल मे कई देशो के लोग इकट्ठे होकर मीटिग कर रहे है। वहाँ पर अचानक एक व्यक्ति आया और बोलता है– मै किसी एक व्यक्ति को मारूँगा। ऐसा बोलते ही हॉल मे बैठे सभी जने भयभीत हो गये कि पता नही किसको मारेगा? सभी सोच रहे है– हो सकता है मेरा नबर आ जावे। तभी वह व्यक्ति आगे बोलता है कि मै भारतदेश के एक व्यक्ति को मारूँगा। ऐसा बोलते ही भारत के अलावा अन्य देश के लोग सभी शात हो गये। भारत के जितने भी व्यक्ति थे वे भयभीत हो रहे थे। तभी उस व्यक्ति ने बोला कि– भारत मे भी राजस्थान के व्यक्ति को ही मारूँगा। ऐसा कहते ही राजस्थान के अलावा और सभी प्रान्तो के व्यक्ति शात हो गये। किन्तु राजस्थान के भी जो दो–तीन व्यक्ति थे वे भयभीत हो रहे थे। तभी उसने कहा– राजस्थान के अमुक गाँव के अमुक व्यक्ति को ही मारूँगा। ऐसी स्थिति मे उस सभागत एक व्यक्ति क अलावा सभी शाति के साथ बैठे हैं। उसी तरह से इस भूमडल पर वनस्पतियाँ बहुत है। अगर आपने वनस्पति के नाम नहीं खोले कि मेरे लिये यह–यह वनस्पति खुली हैं, बाकी के त्याग हैं। ऐसी स्थिति मे लाखो

करोडो जाति की सारी वनस्पतियो के जीव आपसे भयभीत हो रहे है। अगर आप मर्यादा कर लेते है तो बाकी सभी जीवो को आपकी ओर से अभयदान प्राप्त हो जायेगा अर्थात् आपसे भय खत्म हो जायेगा। यहॉ वनस्पति का तो एक उदाहरण दिया गया है। इसी प्रकार हर प्रकार के जीवयुक्त पानी, अग्नि, वायु आदि के विषय मे भी समझना चाहिए। छोटी–छोटी मर्यादाऍ भी व्यावहारिक जीवन को सुधारने वाली होती है व आध्यात्मिक जीवन को उन्नत बनाने वाली होती हैं व वर्तमान मे भी सुख प्रदान करने वाली होती है। जीवन मे समता का सर्जन करने वाली व विषमता का विसर्जन करने वाली होती है। आजकल घरो मे सब्जी आदि मे जरा भी नमक कम–ज्यादा हो गया तो महाभारत मच जाता है। कई भाई–बहिन थालियॉ फेक देते है, पत्नी को मारने दौडते है। एक भाई को तो सब्जी मे कम नमक होने से इतना क्रोध आया कि अति सुदर, सुशील पत्नी का नाक ही काट लिया। उसके बाद तो उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ किन्तु अब क्या हो सकता है? अगर यह छोटी–सी मर्यादा की होती कि जैसा भी थाली मे आयेगा वैसा खा लूॅगा–प्रतिक्रया नही करूॅगा तो उसके साथ वैसी नौबत नही आती। मर्यादा से आगे बढने पर जिन्दगी को भी खतरा हो जाता है।

कोणिक सम्राट भगवान् महावीर के परम भक्त थे। वे एक बार भगवान् से पूछ बैठे– भगवन्! मै यहॉ से मरकर कहॉ जाऊॅगा? भगवन् ने फरमाया– छट्ठी नरक मे। भक्त कोणिक बोला– है, मै आपका भक्त होकर छठी नरक मे जाऊॅगा! तो भगवन्, छट्ठी नरक मे और कौन जाता है? भगवन् ने फरमाया–चक्रवर्ती की श्रीदेवी भी छट्ठी नरक मे जाती है। कोणिक ने कहा– चक्रवर्ती कौन–सी नारकी मे जाता है? भगवान् ने फरमाया–चक्रवर्ती सातवीं नारकी मे जाता है। कोणिक–मै सातवीं नारकी मे क्यो नहीं जा सकता? भगवान्– तुम चक्रवर्ती नही हो इसलिये। कोणिक– मेरे पास भी बहुत बडी चतुरगिणी सेना है, अस्त्र–शस्त्र की भी कमी नही है, फिर मैं क्यो नही चक्रवर्ती बन सकता? भगवान्–तुम्हारे पास चौदह रत्न नही हैं। कोणिक, अभिमान मे आकर– प्रभो! चौदह रत्न भी तैयार कर लूॅगा और मे आपको चक्रवर्ती बनकर बताऊॅगा।

कोणिक अपने महलो मे पहुॅचा। नकली चोदह रत्न तेयार करवाये गये और दिग्विजय हेतु निकल पडा– चतुरगिणी सेना के साथ। स्थान–स्थान पर लोग हॅसते हुए एक–दूसरे से कह रहे है कि देखो–देखो चक्ररत्न को इन्हे हाथ मे उठाकर ले जाना पड रहा है। असली चक्ररत्न तो आकाश मे स्वत ही चलता है। सभी के अपमान को झेलता हुआ स्थान–स्थान पर युद्ध करता हुआ कोणिक तमिस्रागुफा तक पहुॅच ही गया। गुफा के बद दरवाजे को खोलने नकली दडरत्न का प्रयोग किया। देव ने मना किया–तेरहवॉ चक्रवर्ती

नही बन सकता। फिर भी नहीं माना। अभिमान मे आकर दरवाजे पर दडरत्न को मारा तो एकदम आग निकल आई। उस आग ने कोणिक को जलाकर राख कर दिया। तेरहवॉ चक्रवर्ती बनने की अभिलाषा दुराशा मात्र ही रही।

चक्रवर्ती बारह ही होते है किन्तु इस मर्यादा का उल्लघन करके 13वॉ चक्रवर्ती बनने गये तो जिदगी को खतरा ही उठाना पडा। अत हर प्राणी को मर्यादा मे रहना ही उपयुक्त है। जैन धर्म मे जन्म लेकर भी यदि जैनत्त्व का पालन नही किया और जैनत्व की मर्यादा का उल्लघन किया तो उसका प्रतिफल गलत ही मिलेगा।

एक बार एक जैन युवक एक बडी कपनी मे नौकरी के लिये गया। वहॉ उसका इटरव्यू लिया गया। इटरव्यू लेने वाले ने सीधे ही एक प्रश्न पूछा कि क्या तुम सिगरेट पीते हो? उसने कहा–हॉ, पीता हूॅ। यह कपनी तो अजैनी की है अत सिगरेट आदि पीएँ तो भी कोई बात नही–ऐसा सोचकर जल्दी से उत्तर तो दे दिया–हॉ, सिगरेट पीता हू। किन्तु इन्टरव्यू लेने वाले ने तुरत बोला– तब आपको नौकरी नही मिलेगी क्योकि जब आप जैनी होकर भी अपने धर्म के वफादार नही हो, तो हमारी कपनी के वफादार कैसे होओगे? यह है अमर्यादित जीवन जीने का परिणाम।

मर्यादा से ज्यादा आपने घर मे धन एकत्रित किया तो सरकार छापा मारेगी। मर्यादा से आगे बढकर निर्दोष पचेन्द्रिय जीवो की हिसा की तो सरकार आपको छोडेगी नही। मर्यादा तोडकर बाजार मे किसी लडकी के साथ छेडछाड की तो जूते खाने पडते है। मर्यादा से अधिक खाया तो डॉक्टर के पास जाना पडेगा– पेट बताकर इज्जत खोनी पडेगी। पेट कोन बताता है? कुत्ता रोटी के छोटे–से टुकडे के लिये अपना पेट बताने लगता है। मर्यादा मे नही रहने वाली अवारी गाय की कोई कीमत नही। वह गली मे, मार्केट मे जहॉ भी मुँह डालती है, उसे लकडी की मार मिलती है किन्तु मर्यादा मे रहने वाली गाय तो घर के खूँटे से बॅधी रहती है, अपने मालिक के वधन मे रहती है, उसे सुबह–शाम समय–समय पर हरा घास, पानी आदि खाने–पीने को मिल जाता है। पारिवारिक मर्यादा टूटने से परिवार के भी टुकडे–टुकडे हो रहे है। अत मानव को अपने मानवीय धर्म अहिसा, सत्य, धर्म की मर्यादा मे रहना चाहिए।

डाकू बकचूल ने मरते दम तक कौए के मास को नहीं खाने वाला नियम पालन किया। प्रतिफलरूप वारहवे देवलोक मे गये। किन्तु आज छोटे–छोटे नियमो भी छूट रखते है तथा छूट भी कैसी रखते हे– गॉव–परगॉव छूट, साजे–मॉदे छूट। यानी गॉव मे रहे तो भी छूट व परगॉव जावे तो भी छूट। साजे यानी स्वास्थ्य ठीक रहे तो भी छूट व मॉदे यानी स्वास्थ्य ठीक नहीं रहे तो भी छूट। ऐसी स्थिति मे फिर सौगन किसके हुए? त्याग का पालन गांव,

परगाव, महोत्सव आदि सभी स्थानो पर यथाशक्य होना ही चाहिए क्योकि पूरे वर्ष पढे और परीक्षा का समय आते ही पेन–कॉपी छोडके बैठ जावे तो परीक्षा दिये बिना पास कैसे होओगे?

भगवान् के चरणो मे देवता भी मर्यादा से ही आते है। विना मर्यादा के तो आ ही नहीं सकते क्योकि देवो के विमान एक लाख योजन के भी होते हैं। अगर वे अपने उस बडे विमान से ही नीचे आना चाहे तो आ नहीं सकते। क्योकि जबूद्वीप भी एक लाख योजन का होता है। वह विमान जबूद्वीप के ऊपर ढक्कन की तरह से हो जावेगा अत विमान का सकोच करके आते हैं। यानी विमान को वैक्रिय शक्ति से छोटा बनाके मर्यादा से आते है। तभी वे प्रभु–चरणो की उपासना भी कर सकते है। इसी प्रकार स्थानक मे प्रवेश करने के लिए भी तीर्थकर देवो ने मर्यादाएँ बताई है। पॉच अभिगम के साथ ही स्थानक मे प्रवेश करना होता है। घर से आरभ, समारभ आदि अन्यान्य विचारो को मर्यादित करके फिर आते है तभी वे सही रूप मे धर्म–ध्यान कर पाते है। अगर आरभ–समारभ, झूठ, चोरी, कपट आदि की भावना लेकर ही यहॉ तक पहुँचे तो फिर स्थानक मे आने पर भी धर्म–ध्यान का वह सुखद आनद नही मिल पायेगा।

विचार, उच्चार, आचार आदि सभी मर्यादा मे ही रहने चाहिऍ। मर्यादित त्यागमय जीवन जीने से ही यथेष्ट लाभ की सप्राप्ति होती है।

तीर्थकर देव के दीक्षा ग्रहण करने से पूर्व ही भावो मे तो सयम आ ही जाता है। भाव दीक्षा आने पर भी सावद्ययोग की प्रवृत्ति का प्रत्याख्यान जव तक नही हो जाता है तब तक मन पर्याय ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है अपितु जब पचमुष्टि लोचपूर्वक "सव्व सावज्जन जोग पच्चक्खामि" के पाठ का जैसे ही उच्चारण होता है वैसे ही मन पर्यव ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है।

यह है त्याग का, मर्यादा का महत्त्व। इस प्रकार मर्यादा का महत्त्व समझकर अपने जीवन को हर क्षेत्र मे मर्यादा के साथ जीया जावे तो वर्तमान मे ही सुख का साम्राज्य प्राप्त हो सकता है। जो वर्तमान मे सुखी हे वही भविष्य मे प्राप्त होने वाले सुख की कल्पना कर सकता है अत मर्यादापूर्वक जीवन जीते हुये अपना व्यावहारिक जीवन भी सुन्दर बनाऍ जिससे आध्यात्मिक जीवन मे भी अच्छी गति हो सके और नदी का समुद्र से मिलनवत् आत्मा का परमात्मा से मिलन हो सके।



वक्त बीत रहा है

समय गोयम मा पमायए

अर्थात् हे गौतम्! समय–मात्र भी प्रमाद मत करो।

लम्बे समय से जीव चार गति, चौरासी लाख जीवयोनि मे परिभ्रमण कर रहा है। कभी नरक के खड्डे मे सड–सड कर भूख, प्यास, सर्दी–गरमी आदि असह्य वेदना को वेदते हुये पडे रहे तो कभी गटर के कीडे बनकर गदगी मे फुदकते रहे तो कभी कीडी–मकोडी बनकर इधर–उधर रेगते रहे। तो कभी पशु वनकर डडो की मार खाते रहे, तो कभी देव बनकर भौतिक सुखो मे ही अपना जीवन बिताते रहे। कभी मनुष्य बन भी गये तो शूद्र कुलो मे जन्म लिये जहॉ धर्म के सस्कार प्राप्त हो ही नही सकते और कभी जैन कुलो मे भी जन्म लिया तो प्रमाद के वशीभूत होकर धर्मध्यान किया ही नहीं। अत चार गतियो मे परिभ्रमण करते ही रहे। अब बडी मुश्किल से अकाम निर्जरा करते–करते, भटकते–भटकते वर्तमान मे मनुष्य जन्म का जो समय प्राप्त हुआ है, उस अमूल्य समय को पाकर क्षणमात्र भी प्रमाद मत करो।

भगवान् ने मनुष्य भव के क्षणो को कितना महत्त्वपूर्ण बताया है। उत्तराध्ययन सूत्र मे बताया है –

दुम-पत्तए पडुरए जहा, निवडइ राइ-गणाण अच्चए।
एवं मणुयाण जीविय, समयं गोयम! मा पमायए।।

अर्थात् वृक्ष के ऊपर जो पत्ते पीले पडे गये है वे तो हवा का झोका आते ही नीचे गिर जाने वाले है वैसे ही यह मनुष्य जीवन भी कभी भी नष्ट हो सकता है अत समय–मात्र भी प्रमाद मत करो। वृक्ष का पत्ता तो फिर भी पककर पीला पडता है तब वह नीचे गिरता है किन्तु इस जीवन मे तो कुछ पता ही नही है कि बुढापा भी आयेगा या नही। जीवन का कोई भरोसा नही है। जिस दिन जीव ससार मे जन्म लेता है उसी दिन से मौत उसको ताकती रहती है और किसी भी समय झपट्टा मार बैठती है। देश का राष्ट्रपति, मत्री, डॉक्टर, वकील, करोडपति सेठ आदि किसी पर भी मृत्यु रहम नही करती है। किसी को यह पता नही है कि अभी है और दूसरे ही क्षण नही है। आये दिन एक्सीडेट, बीमारी के माध्यम से असमय ही मरने की अनेक खबरे पढी जाती व सुनाई देती है। फिर भी मनुष्य किसके भरोसे आराम से ऑख मीचकर नीद लेता रहता है।

भगवान् ने चार ज्ञान के धारक, चौदह पूर्व के पाठक, उत्कृष्ट सयम के पालनकर्ता, प्रतिसमय प्रभु चरणो की आराधना करने वाले गौतम स्वामी को भी प्रभु ने पुन–पुन समय–मात्र भी प्रमाद नही करने को कहा है। जब उन्हे भी प्रभु ने बार–बार समय को सार्थक करने की शिक्षा दी है तो हम और आप किस गिनती मे आते हैं? अपने को तो बहुत ज्यादा जाग्रत रहने की आवश्यकता है। किसी–किसी का कहना है कि कितना भी जाग्रत बने किन्तु इस पचम आरे मे तो मुक्ति है ही नही। ऐसा कहना एक सीमा तक ठीक है। इसी भव मे मुक्ति प्राप्त नही हो सकती किन्तु मुक्ति के समीप तो पहुँच ही सकते हे। तीर्थकर देव प्रभु महावीर ने फरमाया कि पचम आरे के अत मे भी एक साधु, एक साध्वी, एक श्रावक एव एक श्राविका एकाभवतारी बनेगे यानी एक भव करके मोक्ष मे जाएँगे। जहाँ पचम आरे के अत मे भी एकाभवतारी वन सकते है तो अभी बहुत श्रावक, श्राविका, साधु–साध्वी एकाभवतारी बन सकते हैं यानी मुक्ति के द्वार के पास तक पहुँच सकते है।

गाँव मे रहने वाला बच्चा पढने मे बहुत होशियार है, लेकिन उस गाँव मे बारहवी तक ही स्कूल है, उसके बाद शहर मे पढने के लिये जाना पडता है। ऐसी स्थिति मे बच्चे को बारहवीं तक तो गाँव मे ही पढना पडेगा। उसके बाद शहर मे कमरा लेकर के रहा जा सकता है और कॉलेज की पढाई की जा सकती है। अगर वह बच्चा कहे कि यहाँ कॉलेज नही है तो मै यहाँ पढूँ ही नही। मै तो अभी से शहर मे ही पढूँगा, तो उसे मूर्ख ही कह सकते है, समझदार नही। ठीक उसी प्रकार, जो यह कहते है कि पचम आरे मे मोक्ष नही है अत अभी साधना करने से फायदा ही क्या है? वे भी अज्ञता की ही कोटि मे आएँगे। पचम आरे मे बारहवी तक की पढाई कर लेगे तो एक देव भव के बाद प्राप्त होने वाले मनुष्य भव मे आपकी योग्यता के अनुसार शीघ्र ही कॉलेज का एडमिशन होकर सयम मे प्रवेश मिल जायेगा और मोक्ष मे प्रवेश हो जायेगा, अत पॉचवे आरे के क्षणो को भी व्यर्थ नही खोवे।

जैसे गाडी का समय सवेरे तीन बजे का है ओर घर से तीन बजे ही रवाना हो रहे है, ऐसी स्थिति मे आप स्टेशन पहुँचकर गाडी मे वेठेगे कव? कार ड्राइवर एक झोका लेने जितना भी प्रमाद करता है तो गाडी का एक्सीडेट होने की पूरी सभावना रहती है। युद्ध मे गया हुआ वीर जरा भी आलस्य करने लगे तो जीत भी हार–रूप मे परिवर्तित होने लगती है। व्यापारी व्यापार करते हुए पूरा सावधान न रहे ओर मुनीमो के भरोसे दुकाने छोडकर खुद आलसी बनकर घर मे सोया रहे तो उसको दिवालिया वनने मे देर न लगे। ठीक उसी प्रकार साधना करने के अमूल्य क्षणो को प्राप्त करके भी पमाद मे पडे रहे तो मानव भव से नीचे गिरकर नरक मे डूबने मे देर न लगेगी। अत **समयं गोयम मा पमायए** को जीवन मे पूर्ण रूप से स्थान देना चाहिए।

एक पल–भर भी प्रमाद करने का नही है। अगले भव की आयु का बध पता नही कब हो जाये। यद्यपि शास्त्रो मे लिखा है कि दो तिहाई भाग शेष रहने पर आयुवध होता है किन्तु अपने को यह कहॉ पता है कि अपनी कुल आयु कितनी है? और कब आयु का बध होगा? अत एक पल भी प्रमाद नही करे। शायद जिस पल आप क्रोध आदि कर रहे है, किसी की निदा, विकथा कर रहे है, लडाई–झगडे कर या करवा रहे है उसी समय अगले भव की आयु बध जावे। आयुबध के समय जैसे अध्यवसाय होगे वैसी ही गति का बध होगा। अत थोडा भी प्रमाद जिन्दगी को बदल देने वाला होता है। प्रमाद के कारण पुण्यपुंज खिलते खिलते भी पाप–कीचड मे चले जाते है।

दो जैन भाई अति गरीब थे। बडी मेहनत करने के बावजूद भी पेटपूर्ति जितना भी पैसा प्राप्त नही होता। बहुत दु खी थे। एक बार उन्होने सोचा कि अपना एक दोस्त था, वह परोपकारी, भला आदमी था। वह निश्चित ही देवलोक मे गया होगा। अपन दोनो तेले की तपस्या करके देव की आराधना करते है। दोनो पौषधशाला मे गये। तेले की तपस्या करके देव–आराधना की। तेले की अन्तिम रात्रि का अन्त होते–होते देव प्रकट हुआ और पूछा– आपने मुझे याद किया है? दोनो भाइयो ने कहा–हॉ, जी। देव–आपको क्या आवश्यकता है? भाई– हम निर्धनता से बहुत दु खी है। देवता ने कहा– अच्छा! ऐसी बात है तो मै तुम दोनो को रत्नद्वीप ले चलता हूँ, वहॉ पर तुम्हे जितने रत्न चाहिएँ, ले लेना। दोनो खुश हुये। देखते ही देखते वे दोनो सूर्योदय के कुछ क्षणो बाद ही रत्नवर द्वीप मे खडे थे। देव ने कहा–सूर्यास्त होते ही मै वापस आऊँगा तो तुम्हे लेकरके चला जाऊँगा। ऐसा कहते ही देव अन्तर्धान हो गया। दोनो भाइयो के चारो ओर रत्न ही रत्न पडे है। सोचा– यहॉ तो रत्न एकत्रित करने मे देर ही नही लगेगी। उन्होने जैसे ही सामने देखा कि एक बगीचा है। उसमे बहुत बडी कोठी नजर आ रही है। वे दोनो बगीचे मे गये। कोठी मे भी गये। पहली मजिल पर चढकर देखा–अन्य कमरो के साथ एक रसोईघर भी है। उसमे तरह–तरह की मिठाइयो के थाल पडे है तथा एक तरफ गरम–गरम उकाली, दूध, दलिया आदि हल्का भोजन भी पडा है। बडे भाई ने देखा, ऐसी मिठाइयॉ तो मैने कभी देखी ही नही। बहुत अच्छी है। खाओ आराम से। खूब पेट भरकर खाई। छोटे भाई ने दूध, उकाली, दलिया आदि हल्का भोजन ही किया कि कहीं प्रमाद न आ जाय। छोटे भाई ने बडे भाई को सही समझाया भी कि भारी खाना मत खाओ। इससे प्रमाद आयेगा, किन्तु माना ही नही। दोनो खा–पीकर नीचे आये तो बडा भाई कहने लगा– मै तो थोडी देर वृक्ष की छाया मे लगे तख्ते पर विश्राम करूँगा, उसके बाद आऊँगा। छोटा भाई बोलता है–आप पहले रत्न इकट्ठे कर लो, उसके बाद सो जाना किन्तु बडा भाई बोलता है–नही,

पेट भारी हो रहा है। मैं तो पहले सोऊँगा। बडा भाई बगीचे मे सो गया। छोटे भाई ने अपनी चादर मे पर्याप्त रत्न इकट्ठे कर लिये और उसी के सहारे सो गया। लगभग चार बजे छोटा भाई फिर बडे भाई के पास गया। आप अब तो उठकर रत्न अपनी चादर मे भर लो। बडे भाई को प्रमाद आ रहा था। उसने कहा–तू जैसे उम्र का छोटा है वैसे ही अक्ल का भी छोटा है। अरे! यहाँ तो रत्नो के ढेर पडे है। एक मिनिट लगता है रत्नो को चादर मे भरने मे। तू चला जा यहाँ से। अब मत आना नींद से उठाने के लिये, मै भी समझता हूँ। मेरा हित मुझे भी मालूम है। छोटा भाई चुपचाप वहाँ से खिसक गया और अपनी रत्नो की पोटली पर बैठ गया। सूर्यास्त होते ही देव आया और दोनो के हाथ पकड कर आकाश मार्ग से आगे बढने लगा। छोटे भाई के साथ उसकी रत्नो की पोटली है ही। पर बडा भाई चिल्लाने लगा–अरे! देव,दोस्त! थोडा–सा ठहर जाओ, मै एक मुट्ठी रत्न ले लूँ। एक सैकिण्ड, सिर्फ एक सैकिण्ड। लेकिन देव ने कहा– सूर्यास्त हो चुका है– मै अपने वचनो के अनुसार तुम्हे ले जा रहा हूँ। देखते–ही–देखते दोनो को पौषधशाला मे वहाँ लाकर छोड दिया। छोटा भाई सिर पर पोटली लिये जा रहा है। बडा भाई रोते–रोते घर जा रहा है। दोनो की पत्नियाँ घर के वाहर खडी इन्तजार कर रही हैं। छोटा भाई खुश हो रहा है। बडा भाई अति दु खी हो रहा है।

इसी प्रकार सूर्योदय के साथ ही भाग्यरूपी देव ने आपको आर्यक्षेत्र मे लाकर छोड दिया है। उन्होने शर्त रखी है कि उम्ररूपी सूर्य के अस्त होने से पूर्व क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि जितने भी रत्न एकत्रित करने हो, कर लो। सूर्यास्त होते ही तुम्हे लेने के लिये आ जाऊँगा। आप बडे भाई की तरह खाने पीने, घूमने–फिरने, ऐश–आराम आदि प्रमाद मे अपने अमूल्य क्षणो को नष्ट न कर देवे। ऐसा न हो कि कल करेगे, बाद मे करेगे। ऐसा करते हुए बडे भाई की तरह प्रमाद मे रहकर निर्धन के निर्धन ही न रह जाएँ जिससे इस लोक व परलोक मे परेशानियो का, दु खो का सामना करना पडे। प्रमादी व्यक्ति को रोना ही पडता है।

आपको छोटे भाई की तरह से जागरूक रहकर समय रहते युवावस्था मे ही रत्न एकत्रित कर लेना है ताकि किसी भी समय आयु रूपी डोर टूट जाय तो हमे पश्चात्ताप नहीं करना पडे। उन दोनो भाइयो को तो देव ने बारह घटे का निश्चित समय भी दिया था किन्तु आपकी आयु तो अनिश्चित है। बारह घटे का भी पता नही है। ऐसी स्थिति मे छोटे भाई से भी ज्यादा जागरूक रहने की आवश्यकता है। भगवान् ने जो शिक्षा गौतम स्वामी को दी है वह शिक्षा सभी के लिये है। परिवार मे कहा ननद को जाता है पर बहू भी समझ जाती है। जैसे कहावत है– "कहे धीयड सुन ए बहुअड।" तथा परिवार मे जैसा बडे करते हे वैसा ही छोटे भी अनुसरण करते हैं। अत

भगवान महावीर स्वामी ने गौतम स्वामी को जो शिक्षा दी है, वही अपने लिये भी है।

महाभारत युद्ध के समय श्रीकृष्ण अर्जुन को शिक्षा देते हैं–वही गीता बनी हुई है। वह गीता का उपदेश यद्यपि अर्जुन को दिया किन्तु वह उपदेश सिर्फ अर्जुन के लिए ही नही अपितु सभी के लिए है। उसी प्रकार भगवान महावीर ने गौतम स्वामी को उपदेश दिया किन्तु वह उपदेश हम सभी के लिए है।

प्रमाद के वशीभूत होकर समय खोने से किसी भी क्षेत्र मे सफलता नही मिल सकती है।





मत चूकिये - कुछ करिये

खण जाणहि पडिए

अर्थात् हे पडित पुरुष! क्षण को पहचानो।

भगवान् महावीर स्वामी ने क्षण को पहचानने के लिये फरमाया है। क्षण का अर्थ समय भी होता है व अवसर भी होता है। इस भौतिक दुनिया मे घडी आदि के माध्यम से समय का पूरा ध्यान रखा जाता है किन्तु समय के सदुपयोग का नही।

एक बार एक महिला ने अपने पति से कहा कि बेटे के स्कूल मे देरी हो रही है। मै उसका वेग तैयार कर रही हूँ व बूट, मोजे, ड्रेस आदि भी पहनानी है, अत गैस पर पडा दूध उफन जाय तो जरा ध्यान रखना। पति ने कहा–ठीक है। पत्नी बच्चे को तैयार करके दूध पिलाने हेतु जैसे ही गैस की तरफ देखती है तो देखा सारा दूध उफन गया। वह अपने पति से वोलती हे–आप सामने ही बैठे थे–दूध उफन गया किन्तु ध्यान नही रखा। पति ने बोला–बिल्कुल मेने ध्यान रखा है–दूध सात बजके, बारह मिनिट, तीन सैकिड पर उफना है। पत्नी ने सिर पर हाथ दे मारा। वाह! अच्छा ध्यान रखा।

आज के जमाने मे क्षण को इसी प्रकार से जानते है। बस, हाथ की कलाई मे घडी रखना और उसे पुन–पुन देखते रहना। घडी देखना ही एक उद्देश्य बना हुआ है किन्तु समय के अनुसार काम भी करना चाहिए। यह उद्देश्य नही है। एक–एक क्षण को पहचानने वाले ही अपने–अपने क्षेत्र मे कुछ काम कर सकते है। नीतिकारो ने कहा भी है– **क्षणश· कणशश्चेव, विद्यामर्थ च साधयेत्।** विद्यार्थी एक–एक क्षण का उपयोग करेगा तो ही वह कुछ पढ सकेगा। अगर वह सोचे कि अभी तो उठे है, आधी घटा वाद मजन, चाय आदि करना ही है। आधी घटे के इस मध्य के समय मे मेरा चित्त स्थिर रहने वाला नहीं है। मै इतने–से समय मे क्या पढ सकता हूँ! वाद मे जब इकट्ठा समय मिलेगा तभी पढ लूँगा। इसी तरह से दूध पीने के बाद फिर अव तो स्कूल जाने का समय हो रहा है, अभी क्या पढाई होगी। वेग विखर गया तो वापस जमाने मे देर लग जावेगी। इसी तरह से नही पढने की इच्छा वाले के समक्ष कोई–न–कोई बहाना आता ही रहता है और वह पढ नहीं पाता। जवकि पढने के इच्छुक विद्यार्थी एक–एक क्षण का सदुपयोग कर लेते हे। वे यह सोचते ह

कि अभी तो चाय–दूध मे देर है तब तक मेरे दो प्रश्न याद हो सकते है। चाय–दूध के बाद पुन थोडा–सा समय मिला और एक प्रश्न याद कर लिया। स्कूल मे जैसे ही पीरियड खाली मिला–होम वर्क कर लिया। पिताजी ने स्कूल से दुकान आने का बोला तो वहॉ भी खाली समय मे अपनी स्कूल की किताब पढ ली। कल जो स्कूल मे पाठ पढाने वाले है उसे एक दिन पहले ही पढ लिया तो शिक्षक के द्वारा पढाते समय ज्यादा अच्छा समझ मे आ जाता है। इस प्रकार कई बच्चे दुकान का काम भी सॅभाल लेते है या पिताजी के सहयोग के लिये दो–तीन घटे किसी के यहॉ नौकरी भी कर लेते है और समय मिलते ही अपनी पढाई भी कर लेते है। और समय को नही पहचानने वाले बच्चे सोने–बैठने मे, खेलने मे, टी वी देखने मे, लडाई–झगडे करने मे ही समय को खो देते है। वे किसी भी तरह से पढाई नही कर पाते। कोई–कोई तो एक–एक कक्षा मे पॉच–पॉच वर्ष फेल होते रहते है। अत विद्यार्थी को एक–एक की कीमत समझनी चाहिये।

एक–दो क्षण की कमी से भी कितने उठा–पटक हो जाते है।

आप जानते है कि धन्नाजी मोक्ष मे गये और शालिभद्र सर्वार्थसिद्ध विमान मे गये। ऐसा क्यो? जबकि दोनो की रत्नत्रय की साधना उत्कृष्ट थी। इसमे एक ही कारण था कि शालिभद्र को थोडी–सी उम्र और मिल जाती, वह भी सिर्फ सात लव जितनी। जैसे किसी ने एकदम सूखी घास का छोटा–सा पूला जलाया। उसे जलने मे थोडा–सा समय लगता है उसी प्रकार से इतने–से समय की आयु और अधिक होती तो वे भी सारे कर्म काटकर मोक्ष मे चले जाते क्योकि शालिभद्रजी के भी सयम–साधना तो निरन्तर गतिमान थी ही। थोडी–सी देर की आयु की कमी के कारण शाश्वत सुखरूप सर्वोतम लाभ से वचित रहना पडा। इस प्रकार से क्षण–क्षण की कीमत करने वाला तो महापडित ही कहलायेगा। सामान्य लोग तो बातो–बातो मे कितना ही समय व्यतीत कर देते है। वे अपने वर्तमान व भविष्य को किसी भी तरह सुखमय नहीं बना सकते।

जो व्यक्ति एक–एक क्षण की कीमत को समझेगा वही उन क्षणो के मध्य मे आने वाले महत्त्वपूर्ण क्षण को भी साध लेता है। प्रमादी व्यक्ति हर महत्त्वपूर्ण क्षण को खो देता है। उसके ज्वार की घूघरी ही बनती है। जबकि क्षण का सम्मान करने वालो के ज्वार के मोती बन जाते है।

केवलज्ञान रूपी मोती को प्राप्त करने का अवसर मनुष्य भव मे ही प्राप्त होता है। यदि इसे नही साधा तो चतुर्गतिरूप ससार मे परिभ्रमण चालू ही रहेगा। अरिष्टनेमि भगवान् शादी करने के लिये जा रहे थे। उस समय वरराजा बनकर, रथारूढ होकर जा रहे थे। व्यक्ति जिन्दगी मे एक ही बार वरराजा बनता है। वह भी थोडे–से समय के लिये, जब तक लडकी का हाथ

नहीं पकडा हो। लडकी का हाथ पकडते ही सभी जने बींद–बींदनी कहना प्रारभ कर देते है। किन्तु अरिष्टनेमि भगवान् वरराजा बनकर वरराजा ही रहे। वे तोरण पर जाकर भी अवसर के ज्ञाता बनकर समय पर सारथी से चिल्लाते हुये पशुओ के विषय मे प्रश्न पूछकर वरराजा ही बने रहे। किन्तु राजमती का हाथ नही पकडा। अरिष्टनेमि प्रभु जब एक–डेढ वर्ष की उम्र मे शिवादेवी मॉ की गोद मे खेल रहे थे तो उनका हाथी कभी मॉ के कदोरे पर, तो कभी हाथ मे पहने गजरे पर, तो कभी कान के कुण्डल पर, तो कभी हार पर जा रहा था। बच्चे ने खेलते–खेलते हार को खेचने की कोशिश की। मॉ ने कहा–बेटा! ये मोती का हार खेचने से टूट जायेगा। बेटा बोलता है–मॉ! मैं मोती की खेती करूँगा। मॉ ने बेटे के वचनो पर ध्यान नहीं दिया और भडार मे से कुछ अल्प मूल्य के मोती सोने के थाल मे भरकर ले आयी और बच्चे के सामने रख दिये। बच्चे ने रोते–रोते थाली को एक लात की मारी। थाली के सारे मोती बिखर गये–चौक मे। शिवादेवी मॉ ने बेटे को गोद मे उठाया और चुप करने लगी। और जैसे ही चौक की तरफ घूमी, दृश्य देखकर ऑखे चकाचौंध हो गई। साश्चर्य देखती ही रही। तीर्थकर जहॉ भी जन्म लेते है उस घर के आस–पास व नगर के आस–पास हजारो देवता सेवा मे रहते है। वे तीर्थकर के मुॅह से निकले शब्दो का भी पूरा सम्मान करते है। जैसे ही बच्चे के मुॅह से निकला कि मै मोती की खेती करूगा कि देवताओ ने शव्दो का सम्मान करते हुये चौक मे जहॉ–जहॉ भी मोती बिखरे वहॉ–वहॉ मोती के पौधे लगा दिये। हरे सोने के डठल, पत्ते तथा पीले सोने के फूल व मोती के झुमके लगे हुये है। शिवादेवी मॉ देख रही है–यह क्या? तब उसे याद आया–बेटे ने कहा था– मै मोती की खेती करूँगा। ओ हो! जैसे मोती दिये, वैसी ही खेती हुई। अब वह मॉ बेटे से कहती है– ले बेटा! यह हार के मोती! इन मोतियो से खेती कर ले। पर बेटा कहता है–माताजी! समय निकल गया है। कहा भी है –

अवसर का चूका मानव रोता है ऑख भर-भर।।टेर।।
रास्ते का चूका अंधा, धधे का चूका बंदा।
नौकरी से चूका नौकर रोता है ऑख भर-भर।।1।।
मृगया का चूका शिकारी, तेजी का चूका व्यापारी
दृष्टि का चूका नटवर, रोता है ऑख भर-भर।।2।।
मंडी का चूका ग्राहक, गाने से चूका गायक
सयम का चूका मुनिवर, रोता है ऑख भर-भर।।3।।

जीवन मे मोती की खेती करना है तो अवसर को साधना सीखो। स्कूल मे घटी लगते ही बच्चे खेल–कूद छोडकर तुरत ही अपनी–अपनी क्लास मे चले जाते है। उसी प्रकार अनतकाल से इस ससार मे खेल–कूद रहे हैं पर

अब **खण जाणहि पडिए** की घटी सुनकर जाग्रत बन जाइए। यह क्षण बडा बलशाली है। यह जड–चेतन हर द्रव्य मे परिवर्तन लाने मे सक्षम है। नयी वस्तु को पुरानी व पुरानी को नष्ट कर देता है। समय की गति को कोई भी बलशाली, बुद्धिशाली व्यक्ति भी रोक नही सकता। इस प्रकार निर्बाध गति से क्षण–क्षण मे हो रहे पौद्‌गलिक परिवर्तन को यदि जान लिया जाय तो वह वास्तव मे पडित कहलाने का अधिकारी हो सकता है। समय की गति के साथ होने वाले पौद्‌गलिक परिवर्तन के विज्ञाता के मन मे किसी भी वस्तु के प्रति राग–द्वेष की उत्पत्ति नही होगी। समय के साथ हुआ पौद्‌गलिक परिवर्तन एक को दु ख देता है तो दूसरे को सुख देता है– जैसे करोडपति सेठ को पुराना मकान, पुराना कपडा, ठडी रोटी आदि दु ख देते है जबकि गरीब को वे ही सुख देने वाले बनते है। पर क्षण को पहचानने वालो को वे नई या पुरानी वस्तुऍ सुखी–दु खी नही कर सकती।

इसी प्रकार क्षण के साथ मे जीव मे भी भारी परिवर्तन आता है। बच्चा हर क्षण युवा अवस्था की ओर गति करता है और युवा हर क्षण बुढापे की ओर गति करता है। क्षण को पहचानने वाला व्यक्ति युवावस्था का पूरा सदुपयोग विनय, सेवा, तपस्या, आत्मिक साधना आदि मे करता है। युवावस्था के समय विषय–वासना से निवृत्ति लेकर आत्मिक साधना मे प्रवृत्ति करने वाला महान् लाभ की प्राप्ति कर लेता है। युवावस्था के क्षण को चूक जाने वाले वृद्धावस्था मे साधना न होने से पश्चात्ताप ही करते है। जीवन मे उपस्थित होने वाले स्वर्णिम क्षणो को नही पहचाना तो वैसा ही होगा कि लक्ष्मी घर मे प्रकाश करने आई और आदमी हाथ–मुँह धोने के लिये चला गया। समय बीत जाने के बाद तो कुछ भी क्षण आने वाला नही है।

क्षण को पहचानिये कि अभी क्या समय चल रहा है। जैसे घर मे सास बीमार हो गई है। सेवा करना जरूरी है, उस समय भी बहू अपने वैमनस्य को लेकरके बैठी रहे और सास की सेवा न करे तो समाज मे उसकी इज्जत खराब होती ही है। अत ऐसा मौका आने पर सब–कुछ भूलकर सेवा मे लग ही जाना चाहिये।

घर मे देरानी–जेठानी दो है। जूठे बर्तनो का ढेर पडा है। बर्तन साफ करने वाली बाई किसी कारणवश आई नही है। ऐसी स्थिति मे बर्तन साफ करने जरूरी है पर दोनो ही मुँह छिपाकर अपने–अपने कमरे मे चली जाती है। जेठानी सोचे कि बर्तन साफ करने का काम छोटी का है, वही करेगी। और देरानी सोचे–मै तो करोडपति घर की हूँ। बहुत दहेज लेकर आई हूँ, अत ऐसा काम मै नही कर सकती। दोनो अपने–अपने कमरे मे डनलप के गद्दे पर सोई अवश्य है पर दोनो के दिमाग मे टेन्सन है, नीद किसी भी हालत मे आ नही सकती क्योकि दोनो को मालूम है कि बर्तन साफ करने एकदम जरूरी

है। पर दोनो एक–दूसरे का इन्तजार कर रही हे कि वो साफ करे। अगर ऐसे स्थान पर एक–दूसरे की न सोचकर बर्तन साफ करना जरूरी समझ कर उस अवसर को हाथ मे ले लेवे और बर्तन साफ कर ही लेवे तो बर्तन साफ करने मे समय तो कम ही लगेगा, पर खुशी अधिक बढ जायेगी, फिर नींद भी आराम से आयेगी। सास–ससुर की प्रशसा के पात्र बनेगे, अत ऐसे अवसरो को भी हाथ से नही जाने देवे और काम का अवसर आते ही काम के लिये तैयार रहे।

आप ऑफिस से आ रहे है। आते समय बाजार से गृहकार्य सबधी जो भी वस्तुएँ लानी है या बच्चो के लिये ही सही, अपने उपयोग से वस्तु ले आये तो पारिवारिक जन सभी खुश रहेगे। इसमे भी अलग से समय देने की जरूरत नही पडती और काम भी अच्छा हो जाता है।

गॉव मे सत–सतियॉजी आये हुये है तो सत्सग मे जाने का अवसर भी न चूके। क्योकि विचार, उच्चार, आचार को परिमार्जित करने के सुन्दर अवसर भी सत्सग मे ही प्राप्त होते है।

जिस किसी कार्य को करने का अवसर मिला है–उसे मनोयोगपूर्वक करे। समताभाव के साथ मनोयोगपूर्वक किया गया कैसा भी कार्य हो, कर्मो की निर्जरा कराने वाला होता है। घरो मे भोजन बनाते हुये भी त्रस जीवो की हिसा न हो जाय–ऐसा विवेक रखा जाय और पटका–झटका न करते हए समताभाव से कार्य किया जाय तो सात–आठ कर्मो की निर्जरा होने का भी प्रसग उपस्थित हो जाता है। साधू यदि किसी कार्य को मनोयोगपूर्वक नहीं करता है तो वहॉ भी कर्म–निर्जरा के स्थान पर कर्मबधन का प्रसग बन जाता हैं। जैसे–प्रतिलेखन किया जा रहा है पर मनोयोगपूर्वक व विधिपूर्वक नही किया जा रहा है तो सात–आठ कर्मो का बधन कराने वाला भी हो सकता है। अत जिस क्षण मे जो काम किया जा रहा है उसे मनोयोगपूर्वक करते हुए, उस अवसर का सम्मान किया जाय तो कर्मो की निर्जरा का प्रसग बन सकता है।

इस प्रकार क्षण को पहचानकर काम करने वाला ककर के बदले रत्न पा लेता हे, दड के बदले राज्य पा लेता है। कर्मबन्धन के बदले कर्ममुक्ति जैसे विशिष्ट लाभ को पा लेता है। अत बुद्धिमान्, ज्ञान्वान पुरुषो को चाहिये कि क्षण को अवश्य पहचाने और प्राप्त मनुष्य भव के क्षणो मे उत्कृष्ट साधना करके महावीर बनने का सौभाग्य प्राप्त करे।



एतबार मत करो उम्र का

जरा जाव न पीडेइ, वाहि जाव न वड्ढई।
जाव इदिया न हायत्ति, ताव धम्म समायरे।।

अर्थात् जब तक बुढापा न आ जाय, व्याधि शरीर को घेर न ले, इन्द्रियॉ हीन न हो जावे तब तक धर्म कर लेना चाहिये।

भगवान् महावीर स्वामी ने सप्राप्त मानव जीवन की सफलता के विषय मे गहराई से विचार करने हेतु इगित किया है। दुनिया मे रहे हुये सभी प्राणियो से सुन्दर सरचना वाला मानव शरीर अपने को प्राप्त हुआ है। सशक्त पॉचो इन्द्रियॉ प्राप्त हुई है। सोचने–समझने की शक्ति व सोच के अनुसार आचरण करने की शक्ति भी प्राप्त हुई है, अत प्रभु के वचनो पर हमे एकाग्र होकर विचार करना चाहिए। भगवान् ने फरमाया कि 'जरा जाव न पीडेइ'। अर्थात् बुढापा जब तक न आ जाय, उससे पहले–पहले धर्म–ध्यान कर लो, पर इसान एक बडी भूल करता हुआ नजर आ रहा है कि जब धर्म–ध्यान करना है उस समय तो नही कर रहा है और जिस जरा अवस्था का कोई भरोसा नही है उस समय धर्म–ध्यान करने का सोच रहे हैं। आज व्यक्ति की सोच उल्टी ही काम कर रही है। सोचते है कि युवावस्था मे तो दौड–भाग कर सकते है अत धन कमा लेना चाहिये व भोगो का भोग कर लेना चाहिए। किन्तु भगवान् महावीर, जो कि सर्वज्ञ–सर्वदर्शी थे, उन्होने दुनियावी भव्य आत्माओ पर कृपारस का वर्षण करते हुये जागृति का सदेश दिया कि जरा–बुढापा आने से पूर्व ही धर्माचरण कर लो, क्योकि बुढापा आने पर कमर–घुटने दु खने लगते है, जिससे एक सामायिक के समय तक भी ढग से बैठ पाना मुश्किल हो जाता है। ऑखो की रोशनी कम हो जाती है अत बिना किसी के सहारे से धर्मस्थानक भी नहीं पहुॅच पाते है। कानो से सुनना कम हो जाता है। अत स्थानक मे आकर भी बराबर कुछ सुन नही पाते। चलने–फिरने मे भी दिक्कत आने लगती है। स्मरणशक्ति कमजोर होने लगती है। ऐसी स्थिति मे धर्म–साधना हो पाना मुश्किल है। फिर क्यो बुढापे की आशा मे जवानी मे धर्म–ध्यान नही करे ?

नीतिकारो ने बुढापे के विषय मे कहा है–

गात्र सकुचित गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलि।

दृष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता वक्त्र च लालायते।।
वाक्यं नाद्रियते न बान्धव जनैर्भार्या न शुश्रूषते।
हा ! कष्टं पुरुषस्य जीर्ण वयसः पुत्रोऽप्य मित्रायते।।

अर्थात् बुढापे मे मनुष्य की दशा बडी बुरी हो जाती है। टेढे–मेढे पॉव पडने लगते हैं, मुह पोपला हो जाता है, ऑखो से दिखाई नहीं देता, बहरापन बढता चला जाता है और मुँह से लार टपकने लगती है। बूढा आदमी इतनी उपेक्षा का पात्र बन जाता है कि उसके भाई–बन्धु तक उसके वचनो की परवाह नहीं करते। अर्धागिनी कहलाने वाली पत्नी तक सेवा करना छोड देती है। हाय! बूढे आदमी के कष्टो का वर्णन कहॉ तक किया जाय? उसका पुत्र भी दुश्मन बन जाता है। कहा भी है–

बूढॉ ने भावे खिचडी रे मॉय घी की सुवास।
पर बहुवॉ घाले घाटडी रे, मॉय खाटी छाछ।

बुढापे की अवस्था बहुत बुरी होती है। घर के लोग छुआछूत करने लगते हैं। एक तरफ स्थान दे दिया जाता है। यहॉ तक कि बूढे–बूढी की भी पॉतियॉ हो जाती हैं। बूढा एक बेटे के पास तो बूढी दूसरे बेटे के पास। उन बूंढे–बूढी का बोलना भी किसी को पसद नहीं आता। उनकी अच्छी–से–अच्छी बात को भी कोई सुनना ही नहीं चाहता।

एक बार एक घर मे बुढिया माला फेर रही थी। बच्चे देख रहे थे और बाते कर रहे थे कि दादी जब माला फेरती है तब बोलती नहीं है– यह बहुत अच्छा काम है। मम्मीजी! दादी के लिये बहुत बडी माला बना दो ताकि खत्म होवे ही नहीं। यह स्थिति होती है घर मे बूढो की। छोटे–बडे सभी उपेक्षा करने लगते हैं। ऐसे अशान्त वातावरण मे, धर्म–साधना मे मन लग भी कैसे सकता है?

आपने जब बचपन व जवानी मे धर्म ध्यान नहीं किया है तो एकाएक बुढापे मे धर्म मे मन लग भी नही सकता है। एक गॉव मे एक बुढिया का स्वभाव जरा उग्र था। पुत्र ने मॉजी को कथा सुनाने हेतु पडित का इतजाम किया ताकि–घटे–दो घटे तो अच्छे निकले। पडितजी कथा सुनाने आये घर मे। मॉजी कथा सुनने बैठी। कथा प्रारभ की ही थी कि मॉजी पुत्रवधू से बोले कि देखो, सामने खिडकी मे से कुत्ता अन्दर आ रहा है। पडितजी ने आगे कथा प्रारभ की। पॉच मिनिट ही कथा आगे बढी होगी कि मॉजी फिर बीच मे बोल उठी कि देखो, रसोई मे बिल्ली घुस रही है। पडितजी ने कहा– मॉजी आप कथा सुनिये। फिर पॉच–दस मिनिट हुये कि मॉजी बोली–अरे! अरे! खूँटे से बछडा खुल गया है। इसी प्रकार दस मिनिट बाद फिर बोली कि ऊपर खीचा, राबोडी आदि सुखाए हुये है और कोओ के कॉव–कॉव की आवाज आ रही है– मैं तो कथा सुन रही हूँ। हॉ, पडितजी, आगे कथा सुनाओ। फिर

10 मिनिट बाद मॉजी द्वार पर खडे भिखारी पर चिल्लाने लगी—हटो, यहॉ से। यहॉ क्या तुम्हारे बाप की धरोहर पडी है, जो लेने आये हो।

पडितजी आखिर परेशान हो गये। दूसरे दिन से आये ही नही। कहने का मतलब यह है कि जो पहले धर्म—ध्यान नही करता वह बुढापे मे भी नही कर सकता। अत समय रहते ही धर्म—ध्यान करना प्रारभ कर देना चाहिए। जैसे इस भव मे दिया गया दान परभव मे काम आता है उसी प्रकार जवानी मे किया गया धर्म—ध्यान बुढापे मे काम आता है।

जवानी एक ऐसी चीज है जिसको सही मार्ग पर लगा दिया तो बहुत—कुछ सर्जनात्मक कार्य करने मे सक्षम हो सकती है और यदि विषय—भोग मे फॅस गये तो गलत रास्ता भी व्यक्ति पकड सकता है। कहा भी है—

भर जवानी पैसो पल्ले, राम चलावे तो रास्ते चाले।

अत जवानी से ही दान, शील, तप, भावना की आराधना करनी चाहिये। जवानी मे वह स्फूर्ति होती है कि व्यक्ति अपने दैनदिन कार्य के साथ धर्म भी आराम से कर सकता है। धर्म को यदि जीवन मे आधाररूप बना लिया जाय तो भारी से भारी विपत्ति भी टल सकती है। लोग सोचते है कि हम तो होशियार है, युवा है, हमारे सामने कोई बाधक तत्त्व उपस्थिति नही हो सकते, किन्तु इस भरोसे मत बैठे रहना। क्योकि व्यक्ति की होशियारी किसी काम मे नहीं आती। मुकद्दर ही काम आते है, अत मुकद्दर बनाने के लिये धर्म करना जरूरी है। जवानी मे दान आप अपनी इच्छानुसार दे सकेगे। बुढापे मे पुत्रो के सहारे हो जायेगे। एक बार एक बूढे के गले मे सिर्फ एक पॉच तोले की चैन थी। रुपये—पैसे तो पिता के हाथ मे रहे ही नही। समाज के लोग साता पूछने आये और सोचा इस अन्तिम अवस्था मे कुछ दान भी ले आये। बूढे से बोला नही जा रहा था अत समाज के लोगो के सामने चैन के हाथ लगाकर इशारा किया कि यह दान मे ले जाओ किन्तु पास मे बैठे बेटो ने कहा— क्या हुआ पिताजी? यह चैन चुभ रही है क्या? लाओ! मै अन्दर रख दूँ। बूढे की चैन उतारकर तिजोरी मे रख दी। देखिये, यह स्थिति है बुढापे की।

शील का पालन भी जवानी मे किया जाय तो बुढापे मे एकाएक कमजोर हालत बनेगी ही नहीं और शरीर की रौनक भी तथावत् बनी रहेगी। तपस्या भी युवावस्था मे जितनी आराम से हो सकती है उतनी बुढापे मे नहीं। सोचने—समझने की शक्ति भी युवावस्था मे अच्छी होती है, अत कैसी भी विपदामय स्थिति आ जाय, फिर भी अपनी सही सोच के अनुसार अपना रास्ता बना ही लेता है और दु खी नही होता है अत भावना भी शुद्ध बनी रह सकती है। बुढापे मे जब स्वय ही अशान्त होता है तो भावना शुद्ध बने रहने का प्रश्न ही उपस्थित नही होता।

अगर जवानी मे धर्म—ध्यान किया है तो बुढापे मे समताभाव भी रह सकता

है, धर्म–ध्यान करने घर छोडकर स्थानक मे रहना भी अच्छा लग सकता है। अगर स्थानक मे ही ज्यादा रहने लगे तो बेटे–पोते भी खुशी से टिफिन लेकर वहॉ पहुॅच सकते हैं। बेटे–बहुओ के द्वारा भी सम्मान बना रह सकता है। जिस प्रकार झूले को जितना दूर धक्का देते हैं वह उतना ही पास मे आता है उसी प्रकार आप परिवार से जितना दूर रहेगे उतने ही परिवार वाले आपका सम्मान करेगे। अत बुढापे से पूर्व युवावस्था मे धर्म–ध्यान नही करने की भयकर भूल मत करिये।

महाराज के द्वारा धर्म–ध्यान हेतु प्रेरित करने पर कई लोग यह कहते हुए मिलते हैं कि हॉ महाराज! 50–55 वर्ष बाद हम निवृत्ति ले लेगे, उसके बाद माला, सामायिक आदि करेगे।

क्या आपने 50–55 वर्ष का पट्टा लिखवा लिया है? यह सब महाराज को ठगने के तरीके है। धर्म–क्षेत्र को भी राजनीतिक क्षेत्र बना रखा है। महाराज के सामने झूठ बोलते हुए नजर आते हैं पर यह नहीं समझते कि हम किसके सामने झूठ बोल रहे हैं। कहा भी है– **अन्य स्थाने कृतं पाप धर्मस्थाने विमुच्यते। धर्मस्थाने कृतं पाप वज्र लेपो भविष्यति।** अर्थात् अन्य स्थान मे किया गया पाप धर्मस्थान मे आकर धर्म–साधना करने से छूट जाता है पर धर्मस्थान मे ही पाप कर रहे है तो वह वज्रलेप यानी निकाचित रूप से बॅध जायेगा।

आप महाराज के सामने झूठ बोलकर, उन्हे झूठे आश्वासन देकर अपनी पुण्यवानी को खो रहे है। यदि पुण्यवानी को नहीं खोना है अपितु आगे बढाना है तो धर्म को समय रहते युवावस्था मे ही अपनाना होगा। 50–55 वर्ष की आयु के भरोसे नहीं बैठना होगा। आज ससार मे मृत्यु के इतने अधिक कारण विद्यमान है कि व्यक्ति का जीवित रहना ही एक आश्चर्य बना हुआ है। बल्कि मर जाना कोई आश्चर्य नहीं है। फिर भी मानव अपने आपको शाश्वत, अजर–अमर समझकर भोग–विलासो मे अमूल्य क्षणो को बिता रहा है। शायद उसकी यह सोच होगी कि ससार के और सभी मनुष्यो का तो अत आ जायेगा, बस मै ही अनत काल तक जीऊँगा। इससे बढकर और व्यक्ति की क्या अज्ञानता हो सकती है?

अत भगवान् ने भव्य जीवो की अज्ञानता मिटाने के लिये, भव्यो की मोह–निद्रा तोडने के लिये स्पष्ट उद्घोष कर दिया कि **जरा जाव न पीडेइ।** यानी बुढापा जब तक शरीर को घेर न ले, जब तक व्याधियॉ शरीर मे प्रवेश न कर ले, जब तक शरीर जर्जरित न हो जाय, जब तक बुद्धि सठिया न जावे उससे पहले–पहले ही धर्म–ध्यान कर लो। बुढापा तो अर्धमृतक की ही अवस्था है, अत भगवान की वाणी की उपेक्षा मत कीजिए, उसे ठुकराइए मत। उन्होने अपने ऊपर महान् अनुकपा करके जीवनोपयोगी शिक्षाऍ दी हैं। एक

पिता भी अपने पुत्र को जितनी शिक्षाएँ नही दे सकता है उतनी उन्होने दी है, उसके बावजूद भी धृष्टता करने वाला मानव प्रत्येक श्वास को लेते हुए दु खी दिखाई देता है, अतएव धर्म का आश्रय लो और अपने वर्तमान जीवन को व भावी जीवन को सुखी बनाओ।



वाणी है जन कल्याणी

दिट्ठ मिय असदिद्धं, पडिपुन्न विअ जिय।
अयपिर मणुव्विग्ग, भासं निसिरे अत्तव।।

(दशवैकालिक सूत्र 8/48)

अर्थात् आत्मवान साधक दृष्ट, पुष्ट, परिमित, सदेहरहित, परिपूर्ण और स्पष्ट वाणी का प्रयोग करे किन्तु यह ध्यान मे रहे कि वह वाणी भी वाचालता से रहित तथा दूसरो को उद्विग्न करने वाली न हो।

ससार का प्रत्येक मानव शातिप्रिय है। अशाति किसी को भी अच्छी नहीं लगती और वह भी वर्तमान क्षण मे ही प्राप्त करना चाहता है। ऐसा नही कि क्रिया आज की और फल परलोक मे मिले। वह तो चाहता है कि तत्काल ही सुख–शाति प्राप्त हो जावे।

तुरत शाति चाहने वालो को सबसे पहले अपना व्यावहारिक जीवन सही बनाना होगा। मन, वचन, काया की प्रवृत्ति सही दिशा मे करनी होगी। घर–परिवार–समाज आदि मे जितने भी झगडे होते है। वे ज्यादातर बोलने से ही होते है। अत व्यावहारिक जीवन मे सर्वप्रथम यही सीखना जरूरी है कि बोलना कैसे चाहिये? बोलना अगर आ गया तो व्यक्ति जिन्दगी के किसी मोड पर कभी भी दु खी नही हो सकता।

भाषा के विषय मे अनेक धर्मगुरुओ ने विचार किया है और बहुत सावधानीपूर्वक, चिन्तन–मननपूर्वक तौल–तौल कर मीठा बोलने का कहा। कटुभाषी व्यक्तियो को उपालम्भ देते हुये किसी तत्त्वचितक ने कहा भी है–

जिव्हाया खडन नास्ति, तालुको नैव भिद्यते।
अक्षरस्य क्षयो नास्ति, वचने का दरिद्रता।

अर्थात् कोमल और प्रिय वचनो का उच्चारण करने पर जवान खडित नहीं होती, तालु का भेद नहीं होता, न ही आपके अन्तर मे भरे शब्दकोश मे से शब्दो की कमी होती है, फिर मीठा बोलने मे आप कजूसी क्यो रखते हो?

इस जिह्वा को खाने के लिये कोमल व मीठा चाहिए किन्तु बोलने मे कठोरता व कडवापन क्यो अपनाते हो?

एक उर्दू कवि ने कहा है–

कुदरत को नापसंद है, सख्ती जवान मे।
इसीलिये नहीं दी, हड्डी जवान मे।।

प्राय डॉक्टर, वैद्य मरीज के सामने बहुत मीठे बोलते है। जिससे आधी बीमारी तो ऐसे ही कम हो जाती है और शीघ्र ठीक होने का विश्वास उसके दिल मे उद्भूत हो जाता है।

जो व्यक्ति मीठा बोलता है वह रूप मे कैसा भी हो, उससे सभी बोलना चाहते है और वह व्यक्ति सभी को प्रिय लगता है। काले से गोरा होना तो किसी के हाथ की बात नही है पर मीठा बोलना तो अपने हाथ की बात है।

मीठे वचन वह वशीकरण मत्र है जिससे मनुष्य ही क्या, पशु–पक्षी भी वश मे हुए बिना नही रहते। पूँगी की मधुर आवाज से सर्प वश मे हो जाते है। श्रीकृष्ण बॉसुरी की मधुर आवाज से गायो को अपनी ओर आकर्षित कर लेते। दूर–दूर चरने के लिए गई हुई गाये भी उनकी बसुरी की आवाज सुनते ही तुरत एकत्रित हो जाती है।

मीठे स्वर निकालने वाली बसरी से श्रीकृष्ण को बडा प्रेम था। वे हर समय उस बसरी को अपने पास रखते थे। एक बार श्रीकृष्ण की प्रेमिका राधा को बसरी से ईर्ष्या हो गई और वह उससे पूछने बैठी–

तॅू काष्ठ की बॉसरी, मै पूछत हूँ आज।
क्या गुण ऐसा है भरा, जो चूमत है ब्रजराज।।

बॉसुरी का जवाब–

मिष्ट अमित स्वर है मेरा, होत खुशी समाज।
इस कारण सुन राधिका, मोय चूमत ब्रजराज।।

आपको बच्चो से काम करवाने हेतु भी मीठा बोलना पडता है। आदेशात्मक कडवे शब्दो की बौछार से तो एक नौकर भी काम नही करता। पूर्व जमाने मे लोग अपने सेवको को भी देवानुप्रिय कहकर पुकारते थे। नौकर को नौकर शब्द भी प्रियकर नही लगता। व्यक्ति चाहे जितना खराब क्यो न हो पर खराब शब्दो से सबोधन करना उसे अच्छा नही लगता है। जैसे कोई व्यक्ति चोरी करता है पर चोर शब्द से अपने–आपको पुकारने नहीं देगा। चाहे जितना व्यभिचार का सेवन करता हो पर व्यभिचारी सबोधन उसे अच्छा नही लगेगा। अत दशवैकालिक सूत्र मे बताया है–

तहेव काणं काणिति, पडगं पंडगिति वा।
वाहियं वावि रोगिति, तेणं चोरिति नो वाट।।

अर्थात् मनुष्य को चाहिये कि वह काने को काना, नपुसक को नपुसक, व्याधिग्रस्त को रोगी तथा चोर को चोर ना कहे।

एक बार घर मे एक बहू एक आख से कानी थी। उसके दो देवर थे। एक देवर आया और बोला काणी भाभी पानी पिलाओ, तो भाभी ने चट से कहा– "क्या तुम स्वय नही पी सकते हो? मेरे भी बहुत सारे काम है। सारे दिन घर का काम करते हुए भी क्या पानी पिलाने का काम भी मुझे ही करना

पडेगा?" तभी दूसरा देवर आया और उसने कहा कि राणी भाभी पानी पिलाओ, तो वही भाभी प्रेम से बोली– "हॉ देवरजी! बैठिये, गरमी का समय हे, आपको पानी क्या शरबत पिलाती हूँ।" यह है मीठा बोलने का चमत्कार।

घर मे वहू बीमार है। लगभग 15 दिन बीमारी के हो गये तो सास आने–जाने वालो से उसी के सामने कहने लगती है– "यह तो प्राय बीमार ही रहती है, रोगली है। इसके तो प्राय दवाइयॉ चलती ही रहती है।" ऐसे शब्दो को सुनकर बहू को कितना दर्द होगा। उसके दिल के दर्द को आप नहीं समझ पाते। बहू ऐसे तीखे वचनो को सुनकर, सोच–सोच कर टेन्सन से और ज्यादा बीमार हो जाती है। वह ठीक हो ही नहीं पाती। अत 'यह रोगली है' ऐसे शब्दो का भी प्रयोग न करे।

एक स्थान पर ऐसी ही घटना घटित हुई। एक परिवार मे दो भाई थे। छोटा भाई कमाऊ था। बडा भाई कमाता नहीं था। मॉ–बाप हमेशा उस बडे भाई को यह कहते रहते कि– तू ऐसे ही पडा रहता है। तेरे सिर्फ खाने का काम है– आदि–आदि और छोटे भाई की प्रशसा करते रहते। अकमाऊ को अकमाऊ कहना भी कितना गलत सिद्ध हुआ कि वह बडा भाई रात्रि मे उठा और सोये हुए छोटे भाई को चाकू से मार दिया। अत भाषा का विवेक होना बहुत जरूरी है।

जैन धर्मानुयायी लोग, जो कि निरन्तर प्रवचन सुनते रहते हैं, महाराज के सामने बडी–बडी बाते करते हैं, वे घर मे कैसे–कैसे मौके पर कैसे–कैसे शब्दो का प्रयोग करते है। नयी बहू शादी करके आयी और सयोग से कुछ दिनो बाद ही दुकान मे कुछ घाटा लग गया या घर मे चोरी हो गई तो बिचारी निर्दोष बहू को ताना कस देगे कि पगफेरा अच्छा नहीं हुआ लगता हे। ऐसे शब्द उस बहू के दिल को भेद देते है। किसी युवती के पति का एक्सीडेट हो गया तो सास अपनी बहू को मर्मभेदी वचन बोलते देर नहीं करती कि यह पिशाची मेरे बेटे को खा गई। यह कितनी अज्ञानता है, क्या कोई पत्नी अपने पति को मारना चाहेगी?

इस प्रकार अविवेकपूर्ण शब्दो के प्रयोग से घर को नरकमय बना देते हैं, फिर तो जिन्दगी जीना भी दूभर हो जाता है, अत सबसे पहले बोलना सीखिये।

जैन ग्रन्थो मे, श्रावक को कैसा वचन–व्यवहार करना चाहिये, इस विषय मे बताया है कि श्रावकजी थोडा बोले, आवश्यकता पडने पर बोले, मीठा बोले, अवसर के अनुसार बोले आदि। ज्यादा बोलने वाले की बात कोई भी सुनना पसद नहीं करता। घडी के घटे की आवाज सभी सुनना चाहते हैं किन्तु घडी की टिक–टिक की आवाज कोई भी सुनना नहीं चाहता। ज्यादा बजने वाले नूपुर को पैरो मे ही स्थान मिलता है। मोन रहने वाले हार को गले मे स्थान मिलता है। ज्यादा बोलने वाला स्थान–स्थान पर जूते खाता फिरता ह।

एक बार एक घर मे छोटे भाई की शादी थी। बडा भाई बहुत ज्यादा बोलता था अत पिताजी उसे बरात मे ले जाना नही चाह रहे थे। पिताजी ने उसे समझाया– बेटा! तुझे बरात मे नही चलना है क्योकि पीछे घर मे कोई पुरुष रहेगा नही। घर की सुरक्षा हेतु तुझे रहना बहुत जरूरी है। तेरे यहॉ रहने से मेरे को किसी बात की चिता नहीं रहेगी। बडे बेटे ने कहा– मै तो बरात मे जाऊँगा ही जाऊँगा। अगर घर की आपको ज्यादा ही चिता है तो आप रह जाइये। मै तो जाऊँगा ही। बहुत समझाने पर भी नही माना तब पिताजी ने उससे कहा–अगर चलना ही है तो एक बात का ध्यान रखना कि तेरे को वहॉ कुछ नहीं बोलना है। बडे पुत्र ने कहा–ठीक है पिताजी, मै कुछ भी नही बोलूँगा, पर चलूँगा जरूर। दूल्हा बराती–जनो से परिवृत्त होकर तोरण पर पहुँचा। वहा पर सासूजी ने आरती उतारी और नाक खीचने का समय आया किन्तु सास छोटे कद की थी। सभी देख रहे थे व मुस्करा रहे थे किन्तु दूल्हे के बडे भाई से रहा नही गया। वह तुरत बोल उठा–अरे व्याणजी! आपका हाथ घोडी पर बैठे जमाईजी तक नही पहुँच रहा है तो जमाईराज ने घरत्यॉ ही उतारी लो नी। ये अशुभ शब्द सुनते ही लडकी पक्ष वालो ने उसे जूतो की मारकर वहॉ से हटा दिया। व्यक्ति को विवेक होना चाहिये कि कहॉ क्या बोलना है। अगर 'राम नाम सत्त है' यह वाक्य शादी मे बोला जाय तो बोलने वाले की क्या स्थिति होगी?

कभी–कभी तो कई व्यक्ति बोलते–बोलते कई गालियॉ भी बोल जाते है। उन्हे पता ही नही चलता कि मै क्या बोल रहा हूँ। एक स्थान पर मुसलमान व हिन्दू पडोसी थे। मुसलमान के घर मे कोई फक्शन था अत हिन्दू के घर से थालिया आदि बर्तन ले गये। कार्यक्रम निपटने पर सारे बर्तन लौटा दिये पर एक थाली भूल से मुसलमान के घर पर ही रह गई थी। हिन्दू उस थाली को लेने उसके घर पर गया। देखा–मुसलमान उसी थाली मे मास खा रहा है। हिन्दू को यह देखकर बहुत गुस्सा आया और वह जोर–जोर से कहने लगा– 'तू मेरी थाली मे मास खा रहा है, याद रखना मै तेरी थाली के अन्दर विष्ठा खाऊँगा' कितना अविवेक बोलने का?

मानव की वाणी अमृतवर्षिणी भी है तो विषवर्षिणी भी है। कई महापुरुषो ने अपनी वाणी का सदुपयोग करके स्व–पर का कल्याण किया है। व्यक्ति के हृदय को नापने के लिए वचन एक प्रकार का थर्मामीटर है। बोली से पता लग जाता है कि यह किस जाति व कुल का है। व्यक्ति अपनी मधुर वाणी के द्वारा अनजान पराये व्यक्ति को भी अपना बना लेता है व प्रत्येक स्थान पर सम्माननीय स्थान को प्राप्त करता है किन्तु कटुभाषी व्यक्ति स्थान–स्थान पर निदा व अपमान का पात्र बनता है। कहा भी है–

जिह्वा मे अमृत बसे, विष भी तिसके पास।
इक बोले तो लाख ले, एके लाख विनास।।

द्रौपदी ने इतना ही कहा था कि अन्धे की सतान अधी होती है। अविवेकपूर्ण इतने–से वाक्य से महाभारत का युद्ध हुआ।

आध्यात्मिक क्षेत्र मे भाषा के सम्यक् प्रयोग पर अधिक बल दिया है। साधु के लिये तो भाषा समिति, भाषा गुप्ति व सत्य महाव्रत आदि तीन–तीन प्रकार से भाषा पर कट्रोल करने को कहा है। इसीलिये भाषा का विवेकपूर्वक प्रयोग करना जरूरी है। विवेकपूर्वक बोली गई जनकल्याणी भाषा हीरे–मोती की खान होती है। भाषा–विवेकी व्यक्ति हर परिस्थिति मे शाति से मीठे शब्दो का प्रयोग करके अपने को व अन्य को भी शात बनाये रखता है। परिवार मे ऐसा व्यक्ति आदर, सम्मान व प्रशसा का पात्र बनता है अत भाषा कहॉ, कैसी बोली जाय, इस बात का हमेशा विवेक रखे।



राग की फाग - द्वेष की आग

रागो य दोसो वि य कम्म बीय।

अर्थात् राग और द्वेष कर्म–बधन के मूल कारण है।

जैन दर्शन मे माना गया है कि जीव अनादिकाल से भवभ्रमण कर रहा है वह कर्म से युक्त होकर ही कर रहा है। कर्मरहित आत्मा भवभ्रमण नही कर सकता व कर्म की उत्पत्ति राग–द्वेष से ही होती है। राग–द्वेष हो और कर्मबधन न हो, ऐसा कभी नहीं हो सकता है क्योकि कारण के होने पर कार्य अवश्य होता है। इसके विपरीत यदि राग–द्वेष नही है तो कर्मबधन होगा ही नही। जितनी–जितनी मात्रा मे राग–देष होता है उतनी–उतनी मात्रा मे कर्म बधन होते हैं। राग–द्वेष की अग्नि मे सारा ससार निरन्तर जल रहा है। बाहरी अग्नि से तो बाहरी पदार्थ ही जलते है पर राग–द्वेष की अग्नि मे आत्मिक गुण जलकर भस्म हो जाते है। वह अग्नि तो एक ही जन्म मे मार सकती है किन्तु राग–द्वेष की अग्नि जन्म–जन्म मे आत्मा को जलाती रहती है।

ससारी आदमी के जीवन की हर प्रवृत्ति–निवृत्ति मे दो बाते अवश्य विद्यमान रहती है–वे है राग–द्वेष। राग–द्वेष मे से एक–न–एक तो व्यक्ति की छाती पर हरदम सवार रहता ही है।

राग–द्वेष के कारण व्यक्ति को दूसरो की वस्तु कितनी भी अच्छी हो, उसे पसद नहीं आयेगी। और अपनी वस्तु कितनी भी खराब हो, वही अच्छी लगेगी।

एक व्यक्ति कितनी भी हित वाली बात कहे तो भी द्वेष के कारण अच्छी नहीं लगती और जिसके प्रति हृदय मे राग है वह व्यक्ति कैसी भी बात कहे, चाहे उसमे अहित होना ही निहित है, फिर भी अच्छी लगेगी।

इस प्रकार राग–द्वेष के कारण व्यक्ति के स्वस्थ विचार भी अस्वस्थ, विकृत हो जाते है। जिन्दगी मे ये दोनो बाते निरन्तर चलती रहती है। राग–द्वेष से रहित क्षण तो जिन्दगी मे वर्षो–वर्षो के बाद भी मुश्किल से आता होगा। राग–द्वेष से हटकर मन, वचन, काया की शायद ही कोई प्रवृत्ति होती होगी। व्यक्ति किसी के साथ अप्रामाणिक व्यवहार करता है। किसी को धोखा देता है, मिलावट करता है, झूठ, चोरी करता है, हिसा करता है, गलत रास्ते पर जाता है– ये प्रवृत्तियॉ राग–द्वेष से प्रेरित होकर ही करता है।

मास खाने वाले लोगो को भी मालूम है कि शरीर मे एक कॉटा चुभने से भी कितना दर्द होता है पर मास रस के राग के कारण वे निर्दोष पशुओ पर छुरी चलाते हुए जरा भी नहीं अचकचाते। चोरी करने वालो को मालूम है, चोरी करते हुए पकडे जाने पर कितनी बुरी तरह से पिटाई होती है। एक बार हम पजाब क्षेत्र के सगरूर नगर मे गये। सगरूर मे, जहॉ एस एस जैन सभा स्थानक के बिल्कुल दीवाल से लगती हुई जेल है, वहॉ की छत पर हम किसी काम से गये, तो अचानक ही चिल्लाहट की आवाज आई, तो छत की दीवाल से उधर देखा, तो एक अपराधी की जोरदार पिटाई हो रही थी, जिसे देखकर दिल दहल गया। किन्तु चोरी करने वाले को चोरी का राग पैदा हो जाता है। अत कारावास का अतिकष्ट सहन करने पर भी वे उस चोरी–कर्म को नहीं छोड पाते। व्यक्ति सामायिक, पौषध करता है, शास्त्र पढता है, श्रावक नाम धराता है, फिर भी अन्दर मे छिपा राग उसे कुकर्म करने से रोक नहीं पाता। वह जानता भी है कि दुनिया मे इस कर्म से बदनामी होगी फिर भी उस राग के वशीभूत होकर अपने आपको रोक भी नहीं पाता। बाद मे भले ही कितना ही पश्चात्ताप करना पडे। किन्तु राग–द्वेष को नहीं छोड पाने के कारण व्यक्ति कर्मो का बधन भी करता है और अपनी गलत प्रवृत्तियो से वर्तमान जीवन को भी दु खी बना लेता है। व्यक्ति के मन मे यह राग बसा हुआ रहता है कि– यह मेरा घर है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरा परिवार है। इनसे राग होने से अन्य के साथ द्वेषात्मक प्रवृत्ति कर डालता है। वह अपने व अपने परिवार के लिये देशी घी गॉवो से मॉगता फिरेगा किन्तु अपनी दुकानो मे बेचने वाले घी के पीपो मे व अन्य वस्तुओ मे मिलावट करता रहेगा।

इस प्रकार अपने परिवार को मिलावटी वस्तुऍ खिलाना नहीं चाहता पर अन्य को मिलावटी वस्तुऍ बेचते हुए जरा भी सकोच नहीं करता।

यह राग की फाग प्रवृत्ति काल मे थोडी देर के लिये भले ही सुख दे देवे किन्तु प्रतिफल मे भारी दु ख प्राप्त कराने वाली होती है। राग–भाव के कारण ही लक्ष्मणजी की मृत्यु हुई। राम–लक्ष्मण के भातृ–प्रेम की इन्द्र द्वारा की गई प्रशसा को सुनकर कोई देव परीक्षा लेने के लिये नीचे उतर आया। जिस समय राम कही गये हुए थे, उसी समय उसने दैविक शक्ति से राम के रक्त सने कपडे बनाकर, लक्ष्मण को लाकर के दिये व बताया कि राम को जगली पशु खा गये है। ये कपडे मै लेकर आया हूँ। यह देख व सुनकर लक्ष्मण ने तुरत ही प्राण त्याग दिये थे।

राग का घेरा यद्यपि बहुत छोटा होता है पर द्वेष से ज्यादा खतरनाक होता है। व्यक्ति का राग अपनी पत्नी पर, बच्चो पर व ज्यादा हुआ तो अपने माता–पिता आदि परिवार पर। इसमे भी गहराई से विचार किया जाय तो

व्यक्ति को जितना अपने शरीर पर राग होता है उतना अपने परिवार पर भी नहीं होता है। एक बार बीरबल से बादशाह ने पूछा कि सबसे ज्यादा हमारा राग किस पर होता है? तब बीरबल ने बोला–अपने शरीर पर होता है? बादशाह ने कहा–वह कैसे? तब बीरबल ने कहा–समय पर बताऊँगा।

एक बार एक हौज मे बदरी को बच्चे सहित रस्सी से बॉध दिया और उसमे पप से पानी छोडने लगे। बदरी अपने बच्चे को ऊपर गोद मे लिये खडी हो रही है। जब देखा पानी निरतर भरता जा रहा है। गले तक पानी आने लग रहा है तो बच्चे को अपने सिर पर बिठा लिया किन्तु पानी निरन्तर आ रहा है। नाक तक आने लग रहा है, तो बन्दरी ने तुरत बच्चे को सिर से उतारा और पैरो के नीचे रखकर उस पर खडी हो गई। तब वहाँ उपस्थित बीरबल ने राजा को बताया– देखिये, बादशाह, इस बदरी को अपने बच्चे से भी अपना शरीर अधिक प्यारा है। सम्राट ने सच्चाई को स्वीकार कर लिया। मत्री ने तुरत हौज खाली करवा दिया और बदरी और बच्चे को बचा लिया।

इससे सिद्ध होता है कि व्यक्ति को अपना शरीर सबसे अधिक प्यारा होता है। इस प्रकार राग का घेराव कितना सकुचित है फिर भी भगवान् ने फरमाया है– **नेह पासा भयकरा**। अर्थात् राग का बधन भयकर होता है। सयमी वर्ग के पास मे दवाई आदि लेने हेतु नारियल की टोपसी होती है। उस टोपसी को बनाते समय काफी घिसकर उसे पतली कर लिया जाता है, फिर उस पर पेन्ट आदि भी कर दिया जाता है। उस टोपसी को पानी से भरकर पानी से भरे पातरे की सतह पर छोड दिया जाय तो वह टोपसी नीचे डूब जायेगी यानी पातरे की सतह पर चली जायेगी क्योकि उसमे नारियल के तेल की अव्यक्त रूप से चिकनास रही हुई होती है। उस चिकनाई से ही वह नीचे बैठ जाती है जबकि लकडी की बनी पातरी को पानी से भरकर पानी से भरे बडे पातरे की सतह पर छोड दिया जाय तो वह नीचे नहीं डूबती बल्कि ऊपर–ऊपर ही तैरती रहती है। क्योकि लकडी मे जरा भी चिकनाई नही होती है। इसी प्रकार जिसमे राग की चिकनाई होती है वह अवश्य ही नीचे की ओर ही जाता है।

सर्फ मे चिकनाई होती है अत मक्खी–मच्छर उसके झाग की ओर आकर्षित हो जाते है और उसमे गिरकर मर जाते है किन्तु सोडे मे चिकनाई नही होती अत उसमे मक्खी एकाएक आकर्षित ही नहीं होती, कभी गिर भी गई तो काफी देर तक भी मरती नहीं है, इस प्रकार स्पष्ट होता है कि जहाँ राग की चिकनाई होती है वहाँ दु ख है, मृत्यु है, जन्म–मरण है।

वीतराग बनने के लिये पहले राग को तोडना होगा। राग यदि टूट गया तो द्वेष तो स्वत ही खत्म हो जायेगा। राग की तरह ही द्वेष की अति भी भयानक होती है।

द्वेषी व्यक्ति किसी के उत्कर्ष को देख नहीं पाता, किसी की तारीफ को सुन नहीं सकता, कोई दान दे रहा है तो कहेगे दो नबर के पैसे हैं– क्या करेगा, कहीं तो लगाने ही पडेगे। कोई कहता है– यह तो अपना नाम करने के लिये दे रहा है, पर यह नहीं सोचते है कि पैसा हाथ मे से छूटना कितना मुश्किल है।

कोई ब्रह्मचर्य व्रत जवानी मे ग्रहण कर रहे हैं तो द्वेषी लोग कह उठते हैं–साहब इनके जीवन मे सच्चाई है ही नहीं। दुनिया को दिखाने के लिये ले लिया है–ये निभाने वाले नहीं हैं।

कोई तपस्या कर रहा है तो लोग कहेगे यह तो नाम करने के लिये व दुनिया मे अपनी प्रतिष्ठा जमाने के लिये कर रहा है। किसी की महाराज ने प्रशसा कर दी तो सुनने वाला उसकी 10 बुराई कर देगा– महाराज, आप क्या जानते हो, वह कैसा व्यक्ति है आदि? सीताजी की प्रशसा सहन नहीं होने से सीता जैसी उज्ज्वल चारित्रवती सती पर भी कलक लगा दिया जिससे उन्हे वनवास के दु ख भोगने पडे।

इस द्वेष–भाव ने दुनिया मे किसी महापुरुष तक को भी नहीं छोडा है। गजसुकुमार जैसे चरमशरीरी जीव को भी द्वेषी सोमिल ने नहीं छोडा और सिर पर जलते हुए अगारे रख दिये। इससे गजसुकुमार का कुछ नहीं बिगडा अपितु उन्हे तो मोक्ष प्राप्त हो गया। इसी प्रकार राम का द्वेषी रावण, श्रीकृष्ण का द्वेषी कस व पाडवो के द्वेषी कौरव हुये कितु उन द्वेष करने वाले सभी ने अपने सर्वनाश को ही आमत्रित किया, लाभ कुछ भी नहीं पाया। द्वेष करने वाला किसी की पुण्यवानी को नहीं घटा सकता अपितु अपने ही पुण्य को समाप्त कर देता है।

इस प्रकार राग और द्वेष दोनो ही भयकर हानिकारक है। कहा भी है–

लाख बात की बात इक, गुरुवर दीनी बताय।
जो तू चाहे परम पद, राग-द्वेष तज भाय।।

पूर्व मे जितने भी सघर्ष व युद्ध हुए है, वे सभी राग–द्वेष के कारण ही हुए है। वर्तमान मे भी परिवार, समाज, राष्ट्र मे जितने भी सघर्ष हो रहे हैं, वे सभी राग–द्वेष के कारण ही हो रहे है। जो वस्तु कभी अपनी नहीं बन सकती, उसे अपनी मानकर बैठ जाना कहॉ की बुद्धिमानी है? जब शरीर भी आपका नही है तो फिर अशन, वसन, भवन, धन आदि आपके कैसे हो सकते है? फिर क्यो राग–द्वेष मे फॅसा जाय? कहा भी है–

को दुक्खं पाविज्जा, कस्स य सुक्खेहिं विम्हओ हुज्जा।
को वा न लाभिज्ज मुक्खं, रागदोसा जइ न हुज्जा।।

अर्थात् यदि राग–द्वेष न हो तो ससार मे न कोई दु ख पाये और न कोई सुख पाकर विस्मित ही हो, प्रत्युत सब मुक्त हो जायॅ।

बच्चे को सभी चाहते है क्योकि बच्चे मे राग–द्वेष की अल्पता होती है। उसके विचारो मे अपना–बेगाना, अच्छा–बुरा कुछ नही होता। उसे भूख लग रही है तो थोडा–सा दूध चाहिये। उसकी प्राप्ति होने पर वह आराम से सो जाता है। फिर उस बच्चे को डनलप का गद्दा मिले या धूलभरी जमीन मिले। जैसा भी स्थान हो, बिना राग–द्वेष किये आराम से सो जाता है, अत बच्चा भले दुश्मन का भी हो, वह दुश्मन को भी प्यारा लगता है।

वीतराग भगवान् मे भी राग–द्वेष नही होता अत सभी भव्य आत्माएँ एक स्वर से उन्हे वदनीय व प्रात स्मरणीय मानती है।

उस राग–द्वेषरहित सुखमय अवस्था को प्राप्त करने अप्रशस्त सासारिक राग–द्वेष से हटकर प्रशस्त राग–द्वेष को ग्रहण करते हुए आगे बढना होगा। कहा भी है–

कटकात् कंटक मुद्धरेत्।

अर्थात् कॉटे से कॉटा निकाला जाता है। सयती वर्ग पैर मे लगे कॉटे को प्राय कॉटे से निकालते है। किन्तु वह निकालने वाला कॉटा एक विशिष्ट जाति का होता है। जो चमडी को कुरेदकर भी चमडी को नुकसान नही पहुँचाता। ठीक उसी प्रकार से अप्रशस्त राग–द्वेषरूपी कॉटे को निकालने के लिये प्रशस्त राग–द्वेष को पहले जीवन मे अपनाना होगा। अप्रशस्त राग, जैसे पॉच इन्द्रिय सबधी काम–भोगो के प्रति राग पैदा होना।

प्रशस्त राग, जैसे गौतम स्वामी का भगवान् महावीर स्वामी के प्रति था।

अप्रशस्त द्वेष, जैसे घृणा, तिरस्कारवश किसी का तिरस्कार करना, डॉटना, ताने मारना आदि।

प्रशस्त द्वेष, जैसे शिष्य को प्रशस्त मार्ग पर चलाने हेतु उसके द्वारा कृत असयमी क्रिया हेतु उपालभ देना।

अप्रशस्त राग–द्वेष पाप है तो प्रशस्त राग–द्वेष पुण्य है। अप्रशस्त राग–द्वेष ससार मे भटकाने वाले है तो प्रशस्त राग–द्वेष मुक्ति की ओर आगे बढाने वाले है।

यद्यपि प्रशस्त व अप्रशस्त दोनो प्रकार के राग–द्वेष वर्जनीय है किन्तु अप्रशस्त जहरीले कॉटे को निकालने के लिए प्रशस्त विशिष्ट जातीय कॉटे का प्रयोग करना पडता है। उसके बाद मुक्ति–मजिल के निकट पहुँचने पर दोनो को छोड देना होगा।

एक छोटे–से चने को अकुरित होने के लिए पहले उसे दो फाड मे विभक्त होना होता है। उसके बाद ही उन दोनो विभाग के मध्य से अकुर प्रस्फुटित होता है और अकुर आगे विकास करता हुआ पादप का रूप धारण करता है। ठीक उसी प्रकार से वीतराग अवस्थारूप विशाल अवस्था को प्राप्त करने,

पहले राग–द्वेष की दो फाड करना होगा, उसके बाद ही आगे विकास सभव है। एक आचार्य ने कहा भी है–

राग-द्वेषो यदि स्यातां, तपसा कि प्रयोजनम्।
राग-द्वेषो न च स्यातां, तपसा किं प्रयोजनम्।।

अर्थात् राग–द्वेष यदि है तो तपस्या करने से भी क्या प्रयोजन तथा यदि राग–द्वेष नहीं रहे यानी वीतराग बन गये तो फिर तपस्या करने से क्या प्रयोजन?

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तपस्या की साधना का उद्देश्य राग–द्वेष को क्षीण करना है किन्तु तपस्या की साधना करने पर भी राग–द्वेष क्षीण नहीं हुए तो फिर तपस्या करने से कोई फायदा नहीं है। जब तक राग–द्वेष की प्रबलतम गॉठ को नहीं तोडते तब तक चाहे कितनी भी तपस्या कर लेवे, साधना कर ले पर वह सुफल प्रदान करने वाली नहीं बनती।

एक बार बनारस के कुछ पण्डो ने विचार किया कि आज आश्विन मास की पूर्णिमा है, अत गगास्नान आज यहॉ पर नहीं अपितु तीर्थराज प्रयाग जाकर करेगे। ऐसा कार्यक्रम बनाकर वे सभी इकट्ठे हुए और भॉग पीकर नाव पर चढ गये। भॉग का नशा चढ गया था अत तट से बॅधे नाव के रस्से को खोलना भूल गये और वे डडा हिलाते रहे और नाव गगा की चचल लहरो पर थिरकती रही। रातभर वे इसी प्रकार मेहनत करते रहे पर नाव एक कदम भी आगे नहीं बढ पाई थी। वे सोच रहे है– क्या बात है, अभी तक प्रयाग तीर्थ पर हम नही पहुॅचे है। प्रयाग तीर्थ की इतजार मे सवेरा हो गया। तव तक नशा भी कुछ कम हो गया था। देखा–यह क्या हुआ? हम तो उसी बनारस के गगा के घाट पर ही हैं। नाव पर चढे सभी पण्डो को वडा आश्चर्य हो रहा है। सभी एक–दूसरे का मुॅह देख रहे है कि यह क्या हो गया? जब बराबर खोज की गई तो पता चला कि नाव का लगर तो हमने खोला ही नहीं है, इसीलिये नाव आगे नहीं बढ सकी है। बिना लगर खोले तो एक रात क्या अनेको रात भी मेहनत करते रहे फिर भी नाव आगे नहीं बढ पायेगी। उसी तरह आत्मा के साथ जो राग–द्वेष के लगर बॅधे हुए हैं उन्हे खोले बिना आत्मा सामायिक, उपवास, पौषध, तपस्या, सयम आदि कितनी भी साधना कर लेवे मुक्ति–पथ पर एक कदम भी आगे नहीं बढ पाऍगे। इसीलिये तो कहा है कि जब तक राग–द्वेष के लगर नहीं काटे जायॅ तब तक तपस्या करने से भी क्या प्रयोजन? और जिनमे राग–द्वेष ही नहीं है उन्हे भी तपस्या आदि साधना करने का कोई प्रयोजन नही रह जाता। अत आत्मा का उत्थान करने की चाह हो तो सबसे पहले राग–द्वेष के भाव को दूर किया जाय।

जब ससार मे आपका कोई नहीं है व आप भी किसी के नहीं हें तो फिर

राग किस पर किया जाय? ऐसे चितन से राग–भाव मे अवश्य ही अल्पता आयेगी। राग कम हुआ तो द्वेष अवश्य ही कम हो जायेगा। राग–द्वेष जितनी मात्रा मे कम होगे उतनी मात्रा मे वर्तमान मे ही सुख प्राप्त होना प्रारभ हो जायेगा।



उफनती नदिया - बहती धार

सग एव मत सूत्रे नि शेषानर्थमन्दिरम्।

अर्थात् धर्मशास्त्रो मे सग (आसक्ति) को ही समस्त अनर्थो का घर माना है।

जीवन मे सभी दु ख आसक्तिभाव से ही उत्पन्न होते है। आसक्ति दु ख का कारण है तो अनासक्ति सुख का कारण है। आसक्ति ससार है तो अनासक्ति मोक्ष है।

एक बार एक बदर ने चने से भरी मटकी मे हाथ डाला। मटकी का मुँह छोटा था। बन्दर ने चने से भरी मुट्ठी बाहर निकालना चाहा किन्तु वह बीच मे ही अटक गई। ऐसी स्थिति मे बदर को मटकी से हाथ बाहर निकालना हो तो चने छोडने पडेगे। अगर चने की आसक्ति को नहीं छोडा तो वह अपना हाथ बाहर नही निकाल पायेगा और न ही चने भी उसे प्राप्त होगे। जब तक बदर की चने के प्रति आसक्ति रहेगी तब तक बदर दु खी बना रहेगा। अगर उसे सुखी होना है तो चने की आसक्ति को छोडना ही पडेगा। तभी वह इच्छानुसार अन्यत्र भी जा सकता है।

भँवरा कमल के फूल मे से आवश्यकतानुसार पराग लेता है तब तक तो ठीक है, किन्तु उसमे आसक्त होकर सूर्यास्त तक भी जब कमल को छोडता नहीं है तो सूर्यास्त होते ही उसमे बद हो जाता है और पशुओ का ग्रास बन जाता है।

आवश्यकता के अनुसार खाना ठीक है किन्तु उसमे आसक्त ही बन जाना व आवश्यकता से अधिक खाते ही रहना– यह दु ख का कारण है। डॉक्टर बोलता है आपको हार्ट की शिकायत है। नमक, घी, तेल आदि मत खाओ। डायबिटीज के रोगी को कहते है– मिठाई मत खाओ किन्तु आसक्ति रस नहीं छूटता है और अपथ्य का सेवन करते रहते हैं, तो रोगी को कभी–कभी मरणान्तक कष्ट भी उठाना पड जाता है। वैसे शारीरिक कष्ट तो उठाना ही पडता है।

एक बार एक सम्राट किसी व्यक्ति द्वारा समय पर किये गये कार्य पर बहुत खुश हुआ और इनामस्वरूप उससे कहा कि तुम सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक अपने पैरो से चलकर जितनी भूमि चल लोगे उतनी भूमि तुम्हे

दे दी जायेगी। वह व्यक्ति बहुत खुश हुआ और सूर्योदय के साथ वह चलना शुरू करता है और चलता ही रहता है। थोडे समय के लिये भी कही विश्राम नहीं करता। यहाँ तक कि भूख–प्यास से पीडित हो रहा है, घबरा रहा है फिर भी खाने–पीने मे समय चला जायेगा, अत पूरे दिन मे कुछ खाया–पीया भी नही और चलता ही जा रहा है। थकान से पैर लडखडा रहे है, मुँह मे झाग आ रहे है, शरीर की नस–नस दर्द कर रही है किन्तु आसक्ति है कि जितना ज्यादा चल लूँगा उतनी भूमि मेरी हो जायेगी। इस मेरी भूमि के चक्कर मे सूर्यास्त होते–होते इतना घबराया, इतना घबराया कि वह चलते–चलते गिर पडा, जबान सूखकर बाहर आ गई, प्राणपँखेरू ही उड गये।

अब वह जमीन की आसक्ति उसके किस काम आई? अगर उसके दिमाग मे आसक्ति नही होती अपितु अनासक्ति भावना के अनुसार जितना चला जाता उतना चल लेता और उतनी जमीन ले लेता तो उसके प्राण–त्याग की स्थिति नही आती।

वास्तव मे आसक्ति जहर का काम करती है तो अनासक्ति अमृत का काम करती है।

भरत चक्रवर्ती छ खड पर राज्य करते थे किन्तु फिर भी अन्तरग मे अनासक्त भाव मे ही रमण करते थे। जब 99 भाइयो ने दीक्षा अगीकार कर ली तो भरत को बहुत विचार आया कि मैने अपने भाइयो को राज्य–सुख से वचित किया है। मेरे भाई तो राज्य–आसक्ति को जीतकर शाश्वत राज्य को प्राप्त करने प्रभु के चरणो मे अलौकिक आनद का अनुभव कर रहे है। अरे! कौआ जैसा निकृष्ट जाति का पक्षी अकेला नही खाता। उसे कुछ मिल जाता है तो कॉव–कॉव करके अपनी जाति के अन्य कौओ को भी बुला लेता है और सभी के साथ खाता है, किन्तु मै कैसा पापी कि मेरे भाइयो को मैने राज्य छोडने हेतु विवश कर दिया। अरे! मै तो उस कौए से भी गया–बीता निकला। कैसी है मेरी आत्मा जो इस अनित्य राज्य पर भी आसक्त हो रही है! ऐसा सोचते हुए ऑखो मे ऑसू तक आ गये। इस प्रकार अनुताप करने से, आसक्ति के भाव कम होने से व अनासक्ति बढने से कम भार से हल्के होने शुरू हो गये। उसके बाद भी वे राज्य करते रहे किन्तु अनासक्ति भाव से ही करते रहे। इसीलिए तो उन्हे अनायास ही कॉच के महल मे केवलज्ञान प्राप्त हो गया।

आरिसा महल मे अचानक ही केवलज्ञान हो गया, ऐसा सुनकर व पढकर सभी को आश्चर्य हुए बिना नही रहता किन्तु इसके पीछे कारण उनकी अनासक्त भावना ही रही हुई है।

यद्यपि भरत चक्रवर्ती छ खण्डो के विशाल साम्राज्य पर एकछत्र राज्य करने वाले व हजारो देवो पर स्वामित्व करने वाले थे। उन्होने अपने चक्रवर्ती

जीवनकाल मे एक भी सामायिक नहीं की थी, तपस्या, पौषध आदि कुछ भी नहीं किया था किन्तु वे निरन्तर अनासक्त अवस्था मे ही जी रहे थे। भौतिक पदार्थो के बीच रहकर भी अपने आपको उनसे अलग समझ कर चल रहे थे। उनके मन मे सदा ये विचार रहे कि यह राज्य मेरा नहीं है, यह वेभव मेरा नहीं है, ये नवनिधियॉ, चौदह रत्न मेरे नही हैं, यह शरीर भी मेरा नहीं है आदि। निरन्तर ऐसी भावनाओ के अभ्यास से ही आरिसा महल मे अगुली से ॲगूठी गिरते ही विचार उत्पन्न हुआ कि अभी–अभी मेरी अगुली महान् कान्तिमान, महामूल्यवान, रत्नजटित मुद्रिका से जगमगा रही थी किन्तु मुद्रिका के गिरते ही मेरी यह अगुली शोभाशून्य हो गई। वास्तव मे मेरा सारा शरीर ही ऐसा है, इस प्रकार तो इस शरीर की बडी दयनीय स्थिति है। भरतजी उस मुद्रिका के निमित्त से अनासक्त भावो मे गहराई से उतर गये। फलस्वरूप बिना सयम लिये, आरिसा महल मे ही केवलज्ञान उत्पन्न हो गया और तुरत देवता के द्वारा लाई गई सयम की पोशाक पहन कर अपने महल से बाहर निकल गये।

यह है अनासक्ति का चमत्कार कि भरतजी को पहले केवलज्ञान प्राप्त हुआ, फिर महलो को व आभूषणो को छोडा।

आसक्ति का भी चमत्कार देखिये– ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती ने सिर्फ 600 वर्ष ही राज्य किया फिर भी अति आसक्ति के कारण मरकर सातवीं नरक मे चले गये।

नदन मणियार की आसक्ति अपने द्वारा बनाई गई वापिका मे गाढरूप से होने से वह मनुष्य से मेढक बन गया। अत आप आवश्यकतानुसार सारा काम करते हुए भी आसक्ति मत कीजिये। नन्दन मणियार ने वावडी बनाई। वहॉ तक ठीक है किन्तु उस पर आसक्ति होना गलत हुआ। इसी प्रकार आपको मकान, धन, वस्त्र आदि जीवनोपयोगी वस्तुओ की आवश्यकता है तो उस रूप से पूर्ति करना ठीक है किन्तु आसक्ति करना गलत है।

आसक्ति भयकर दु खो को आमत्रित करती है। जैसे मार्केट मे रात्रि के समय अनायास आग लग गई है और आपकी दुकान भी वहीं थी। आपके घर पर फोन से सूचना पहुॅची कि खिलौना मार्केट मे आग लग गई हे। सुनते ही आपको भयकर दु ख होगा। आप शीघ्र मार्केट की ओर वढ गये। देखा आग दूसरी दुकानो मे लगी है। आपकी दुकान तक आग पहुॅचे तब तक आग कावू मे आ चुकी थी। अब तो आपकी खुशी इतनी ज्यादा वढ गई कि उस खुशी मे पेडे बॉटे गये, मिठाई बॉटी गई। इसका मतलव यह तो नहीं कि दुकाने जली ही नही। दुकाने तो जली ही थीं पर उन दुकानो के प्रति आपकी आसक्ति नहीं थी, अत कोई गम नहीं है। आपकी दुकान वच गई–इसकी वहुत खुशी है क्योकि आपकी आसक्ति आपकी दुकान के प्रति है।

बच्चा बीमार हो जाता है तब उसकी माँ पूरी–पूरी रात नही सोती किन्तु सास बीमार हो जाती है तो बहू को जगना मुश्किल हो जाता है, क्योकि सास के प्रति बहू की आसक्ति नही है। अत आराम की नीद लेती है और बच्चे के प्रति आसक्ति है, अत नींद नही आती है।

व्यक्ति कर्तव्य को भूलकर आसक्ति और अनासक्ति मे उलझकर सुखी व दुखी होता रहता है।

किराये के मकान मे कुछ भी होता रहे, उसकी व्यक्ति को परवाह नही रहती पर घर के मकान मे कोई कीली भी ठोक दे तो भी व्यक्ति को इतना दुख होता है कि जैसे खुद के शरीर पर ही किसी ने कील ठोकी है।

पराये का बेटा मर जाय तो रोना नही आयेगा। स्वय का बेटा मर गया तो रोये बिना नही रहा जायेगा। यह है आसक्ति का दुष्परिणाम।

आसक्ति को हटाने के लिये निर्वेद भाव– वैराग्य भाव को दिल मे जाग्रत करना जरूरी है। अगर व्यक्ति के मन मे यह भाव जाग्रत हो जावे कि **अणिच्चे जीव लोगम्मि किं पसज्जसि।** इस ससार मे सब–कुछ परिवर्तनशील है, अनित्य है। ऐसे इस अनित्य लोक मे राचने जैसा कुछ भी नही है। अत किस पर आसक्ति की जावे? आसक्ति के कारण ही तो व्यक्ति एक पोरसी भी नहीं कर सकता है। किन्तु जब निर्वेद भाव– विरक्त भाव जाग्रत हो जाते है तब व्यक्ति महीने की तपस्या भी आराम से कर लेता है जिसे अपने खुद के घर मे थोडे–से अँधेरे मे भी डर लगता था वह स्थानक के घोर अँधेरे मे भी आराम से रह लेता है। वह रात्रि के अधकार मे बैठकर घटो आत्म–साधना कर लेता है। जिसे जूते पहनकर भी थोडा पैदल चलना मुश्किल लगता था वह नगे पाँव पच्चीसो किलोमीटर की यात्रा खुशी–खुशी एक दिन मे तय कर लेता है। पहले एक पैसा भी हाथ से छूटता नही था, पर वह सारी सपत्ति को तृणवत् समझकर श्रावकपना या साधुपना अगीकार कर लेता है। फिर दीक्षा लेने के बाद रास्ते मे स्वर्णहार भी दिख जाय तो भी उसकी ओर कोई आकर्षण मन मे नही जगता। यह है वैराग्य के द्वारा आसक्ति से अनासक्ति मे प्रवेश करने का सुप्रतिफल। इसीलिए कहा है– **एगंत सुही मुणी वियरागी।** अर्थात् मुनि वीतरागी होने से एकान्त सुखी होता है।

नमि राजर्षि को जैसे ही विरक्ति हुई और इन्द्र ने परीक्षा के लिये मिथिला नगरी को साक्षात् जलती हुई दिखा दिया, फिर भी उनके मुँह से क्या शब्द फूटते है कि **मिहिलाए डज्झमाणीए, न मे डज्झइ किंचणं।** मिथिला जल रही है पर मेरा उसमे कुछ भी नहीं जल रहा है। कैसी थी उनकी अनासक्त भावना। दलाली करने वाले दलाल मे अनासक्त भावना रहती है। चाहे किसी के प्रोफिट या लॉस हो उसे चिता नहीं रहती, क्योकि उसे तो अपनी दलाली मिलनी ही है। दलाल अनासक्त भावना मे सुखी बना रहता है।

जीवनगत समस्त दु खो से छुटकारा पाने के लिये आसक्ति से दूर होकर अनासक्त भावना मे रमण करना चाहिये।

आप शहद की मक्खीवत् पर–पदार्थो मे व विषय–भोगो मे आसक्त बनकर अपने जीवन को उसी मे बरबाद न करके दु खो को बुलावा मत दीजिए अपितु मिश्री की मक्खीवत् बनिये ताकि समय पर पदार्थ का उपभोग भी कर लिया व जब चाहा तब उसकी आसक्ति से दूर भी हो गये।

अनासक्ति हमेशा सुख ही दिलाती है। अत अनासक्त बनकर हर क्षण सुख पाइये।



ममता के बंधन - बढाये भव क्रंदन

मुच्छा परिग्गहो वुत्तो नायपुत्ते ण ताइणा। (दशवैकालिक)

अर्थात् ज्ञात पुत्र भगवान् महावीर स्वामी ने मूर्च्छा को ही परिग्रह कहा है।

परिग्रह का शाब्दिक व्युत्पत्ति अर्थ है– "परिसमन्तात् गृह्यते इति परिग्रह ।" अर्थात् वस्तु को चारो ओर से ग्रहण करना, गहराई से वस्तु को पकडना। अर्थात् वस्तु पर मूर्च्छा, आसक्ति, ममता होना परिग्रह है। जगत मे रहने वाला कोई भी व्यक्ति, चाहे ससारी हो या साधु हो, आवश्यकताओ का पूर्णत त्याग कोई भी नही कर सकता है। यहाँ तक कि दिगम्बर साधु को भी पाटा, घास–फूस, कमण्डल, मोर–पिच्छी, ग्रन्थ आदि की तो आवश्यकता रहती ही है। आहार–पानी व शिष्य–शिष्याओ को भी स्वीकार करना पडता है और शरीर तो सभी के पास होता ही है। शरीर को स्वस्थ एव निरन्तर आध्यात्मिक साधना मे लीन रखने के लिये आत्मिक साधना करने वाले उच्च कोटि के श्रमण वर्ग को भी कुछ साधनो की आवश्यकता रहती ही है। अगर शरीर, पाट–पाटला, वस्त्र आदि ग्रहण करना मात्र ही परिग्रह हो तो फिर कोई भी व्यक्ति अपरिग्रह की साधना कर ही नही सकता, अत तत्त्वार्थ सूत्र मे पडित उमास्वाति ने भी कहा है– **मूर्च्छा परिग्रहः।** अर्थात् मूर्च्छा भाव ही परिग्रह है। अमूर्च्छा अपरिग्रह है। मूर्च्छा भाव के कारण भिखारी भी परिग्रही हो सकता है और अमूर्च्छा के कारण श्रीसम्पन्न श्रीमन्त भी अपरिग्रही हो सकता है, यदि वह श्रीमन्त अनाथ, असहाय, रोगी, भूख पीडितो आदि जरूरत मन्दो मे अपनी सपत्ति का सदुपयोग करे।

आज व्यक्ति की आवश्यकताएँ भी एक सीमा से अधिक बढी हुई है– विशाल कोठी, सुविधाजनक कमरे, टी.वी, वीडियो, वी सी आर, मोबाइल फोन, गाडी आदि। सर्दी से बचने हीटर, गीजर आदि। गरमी से बचने के लिये कूलर, ए सी, फ्रीज आदि। आधुनिक युग मे ऐसी अनेक आवश्यकताए बढ गई है। इस सग्रह वृत्ति के कारण अनेक लोग दो समय का भोजन भी प्राप्त नहीं कर पाते। दाने–दाने के लिए तरसते रहते है। फुटपाथो पर भूखे ही सो जाते है। यह परिग्रह स्व–पर दोनो को महान् दु खो के गर्त मे धक्का देने वाला है। अगर दु खो से बचना है तो सग्रह वृत्ति को व आवश्यकताओ को कम करते हुए ममता के बधन को तोडना होगा।

सग्रह वृत्ति के कारण विषमताएँ बढी हुई है। कोई व्यक्ति आवश्यकता से अधिक अन्न, वस्त्र, मकान आदि सग्रह करके रख लेते हैं तो कोई अभावग्रस्त होकर उन वस्तुओ से वचित ही रह जाते हैं। किसी घर मे हमेशा नयी–नयी वैरायटीज बन रही हैं, माल–मसाले उडाये जा रहे हे, होटलो पर जा रहे है अन्न–भडारो मे अन्न सडने से बाहर फेका जा रहा है, तो कोई दाने–दाने के लिये मुहताज बना फिरता है।

किसी घर के सदस्य पचासो ड्रेसे अपने पहनने के लिये बनवा रहे है। सर्दी के कपडे अलग, गरमी के कपडे अलग व बरसात के कपडे अलग पहने जा रहे है। सर्दी मे स्वेटर, शॉल भी मेचिग रखे जा रहे हैं और सैकडो ड्रेसे आलमारियो मे ऐसे ही पडी हुई हैं, तो दूसरी ओर भयकर ठड मे भी वे गरीव बच्चे नगे बदन घूम रहे है।

कोई नित नई कोठियॉ बना रहे हैं, अनेक मकानो का सग्रह कर रहे है, खाली मकानो पर ताले लगा रहे हैं, गगनचुम्बी महलो की सुगन्धित सेज पर पहर दिन चढे वहॉ तक खर्राटे ले रहे हैं, तो दूसरी ओर वे गरीब, भाई, बहिन, बच्चे भयकर सर्दी मे भी नगे बदन, नगी जमीन पर तारो की छत के नीचे सो रहे हैं।

रेल के डिब्बे मे एक आदमी चार आदमी की जगह रोकता है, वह राक्षस समझा जाता है, उसी प्रकार एक मनुष्य सौ मनुष्यो के उपयोग मे आने वाली सपत्ति को ले बैठता है, उसे क्या कहना होगा? उन सग्रह–वृत्ति वाले धनवानो को गरीबो का कुछ खयाल ही नहीं है। वे धन–सग्रह मे ही अपना बडप्पन समझते हैं किन्तु ज्ञानियो की दृष्टि मे बडप्पन धन सग्रह मे नहीं अपितु विसर्जन मे है। धन को पकडना गरीबी का लक्षण है। धन को छोडना मालिकीपन का लक्षण है, क्योकि वस्तु को छोडना, वस्तु का सदुपयोग करना– यह सकेत करता है कि धन, वस्तु आपसे नीची है, आपकी मालकियत उस पर है। अगर आप धन को पकडके ही रखते है और धन को छोड नहीं सकते तो फिर समझिये कि धन आपके ऊपर हावी है, धन मालिक है और आप उसके दास हैं। फुटबाल को इधर–उधर फेकने मे ही आनद आता है। यदि इधर से किसी ने फेका और उधर से कोई आदमी पकडकर बैठ जाय तो मजा नहीं आता। इसी प्रकार धन का मजा भी इधर से उधर फेकने मे ही आता है।

महान् विजयी सिकन्दर मृत्यु के समय अपनी सारी सम्पत्ति को एकत्रित करके उस पर अश्रुपात करने लगा कि "जिस सम्पत्ति के लिये मैंने युद्ध किये, अनेक माताओ को पुत्रविहीन किया, कई सौभाग्यवती स्त्रियो का सिदूर छीन लिया पर क्या इसमे से एक कौडी भी मेरे साथ जाने वाली है?" नहीं।

इस सत्य को जीवन के अन्तिम क्षणो मे समझकर दुनिया को अपना चितन प्रदान करने हेतु लोगो को सकेत दिया कि मेरे दोनो हाथ कफन से बाहर रखना ताकि सभी को मालूम पडे कि जो मूर्खता सग्रह करने की मैंने

की है, वह अन्य न करे। जब खाली हाथो ही जाना है तो फिर क्यो अति सग्रह किया जाय? कारू के नवाब के पास इतना धन था कि सत्तर (70) ऊँटो पर खजानो की चाबियाँ लादी जाती थीं और एक चाबी से सत्तर ताले खुलते थे। पर साथ मे क्या ले गया?

ईसा महात्मा से एक धनवान ने कहा कि हमे स्वर्ग दिलाइये। ईसा ने कहा– तुम तिजोरी की कुँजी फेक दो। सेठ ने इन्कार कर दिया तो ईशू बोले– सुई की नोक से ऊँट तो निकल सकता है किन्तु धन पर मूर्च्छा रखने वाले को स्वर्ग नही मिल सकता।

सीता के हरण मे व् लका के नाश मे स्वर्ण ही निमित्त कारण बना था। एक विद्वान रेनोल्ड्स ने कहा है– "Less coin, Less care " अर्थात् जितना कम धन होगा उतनी ही कम चिन्ता होगी। आज व्यक्ति धन को ही परमात्मा व मोक्ष समझ बैठा है और उसी मे मूर्च्छित व बेहोश हो रहा है। सग्रह मे ही स्वर्ग दिखाई दे रहा है। धन को ध्येय, साध्य व लक्ष्य समझ बैठा है। धन हेतु ही जी व मर रहा है। धन एकत्रित करने के लिये जिदगी को मशीन व फेक्ट्री बना लिया है।

मम्मण सेठ ने धन को ही ध्येय बना लिया था और अपनी सारी जिदगी उसी के पीछे लगा दी थी। ठडी, गरमी, वर्षा, भूख–प्यास सब–कुछ सहन करके धन का सग्रह किया। मम्मण का धन न उसके स्वय के लिये था, न दूसरो के उपयोग के लिये था अपितु मम्मण खुद धन के लिये था।

धन हेतु यह कैसी मदहोशी, जो अपने–आपको धन मे ही खोते जा रहे है! व्यक्ति की ऐसी सोच ही बन गई है कि धन के बिना सुख है ही नहीं। किन्तु जितनी अधिक मात्रा मे जिसके पास धन है, उतनी अधिक मात्रा मे उसके साथ चिन्ता, भय, दु ख लगा हुआ है। कहा भी है **जहॅ संपत्ति तहॅ विपत्ति।**

सपत्ति के पीछे सेलटेक्स, इन्कमटेक्स, छापे, चोरी आदि हर तरह का भय लगा रहता है। यहॉ तक कि धनवान व्यक्ति के साथ मृत्यु के खतरे भी लगे रहते है।

मामूली मक्खी व शहद वाली मक्खी, साधारण भॅवर व शहद वाला भॅवर, साधारण कीडा व रेशम का कीडा, मामूली मछली व मोती वाली मछली, साधारण मृग और कस्तूरी वाला मृग– इनमे से जो शहद, रेशम, मोती, कस्तूरी आदि सम्पत्ति वाले है उनको मरणान्तक कष्ट उठाना पडता है।

धन के कारण भाई–भाई मे, पिता–पुत्र मे, पति–पत्नी मे बैर स्थापित हो जाता है। धन व्यक्ति को डकैती, तस्करी, हिसा, झूठ, चोरी आदि दुष्कर्मो मे प्रवृत्ति करवाता है। स्त्रियो को वेश्यावृत्ति तक करने हेतु प्रवृत्त कर देता है। इस प्रकार परिग्रह सभी पापो की व सभी दु खो की जड है। किसी ने कहा–

महाराज! पहले मैं नमक की थैलियाँ बेचता तब बडे सुख की नींद लेता था पर अब करोडपति बनकर चैन से सोने की तो क्या, लेटरिन जाने की भी फुरसत नहीं रही।

परिग्रह के तीन भेद बतलाये गये हैं– **चित्तमंतमचित्तं वा**। अर्थात्– सचित्त, अचित्त, मिश्र, परिग्रह। 1 सचित्त परिग्रह – भैंस, गाय, नौकर, चाकर, कुत्ता, हाथी, घोडे आदि। 2 अचित्त परिग्रह – सोना, चॉदी, जवाहरात, तॉबा, पीतल, लोहा, मकान, फर्नीचर, फेक्ट्री आदि। 3 मिश्र परिग्रह – स्वर्णाभूषण पहनी हुई स्त्रियॉ, पुरुष, आभूषणो से सजे घोडे। इसी प्रकार स्थानाग सूत्र मे तीन प्रकार के परिग्रह बतलाये हैं–**तिविहे परिग्गहे पण्णत्ते तंजहा- कम्म परिग्गहे, सरीर परिग्गहे, बाहिर भड मत्त परिग्गहे।** अर्थात् परिग्रह तीन प्रकार का होता है– 1 कर्म परिग्रह 2 शरीर परिग्रह 3 भण्डोपकरण परिग्रह।

सासारिक जितने भी प्राणी है उनके साथ कर्मो का सबध है ही। चाहे आचार्य, उपाध्याय, साधु, सत भी क्यो न हो पर ससार मे जो भी हैं, सभी के साथ कर्म लगे हुए ही है। तेरहवे गुणस्थानवर्ती केवलज्ञानी आत्मा के भी बध अवश्य होता है। चाहे पहले समय मे बध और दूसरे समय मे छूट भी जावे, फिर भी बध अवश्य होता है। और जो आत्मा कर्मयुक्त है वह शरीरयुक्त है ही। चाहे एक गति से दूसरी गति मे जा रहा हो तब भी तैजस शरीर व कार्मण शरीर तो साथ मे रहता ही है। और जो शरीरसहित है उसको भण्डोपकरण की, उपधि की भी आवश्यकता पडती ही है। कोई भी शरीरधारी मनुष्य भण्डोपकरण की आवश्यकताओ से अलग नहीं हो सकता है।

भगवान ने जब शरीर व कर्म को भी परिग्रह बताया है तो अपरिग्रह की साधना कैसे हो? क्योकि श्रमण वर्ग के पास भी वस्त्र, पात्र, ओघा आदि उपकरण तो होते ही हैं। अत भगवान ने पास मे उपकरण, वस्तु आदि होने या न होने को परिग्रह नही बताया, अपितु परिग्रह उसे बताया कि किसी भी छोटी से छोटी वस्तु पर ममताभाव रखना। जैसे कोई वस्तु आपके पास मे सग्रह कर रखी हुई है और मौका ऐसा आ गया कि वह दूसरो के काम मे आ सकती है और दूसरो ने मॉग भी ली है फिर भी उन्हे मना कर देना परिग्रह है। ऐसी स्थिति मे एक शास्त्र की पुस्तक, एक छोटा–सा कपडा या टूटा चम्मच आदि तुच्छ वस्तु भी परिग्रह बन सकती है। किन्तु आपके पास कैसी भी मूल्यवान या सामान्य वस्तु है पर आपकी ममता उस पर नहीं है तो वह परिग्रह नही कहलायेगा। मैंने कहीं पढा है कि एक फ्रेच यात्री जब पहली बार एस्किमो ध्रुवीय देशो मे गया, उसने बताया कि एस्किमो देश बहुत गरीब व गरीब से गरीब है किन्तु मै बोलता हू कि उनसे ज्यादा सम्पन्न कोई दूसरा मिलना भी मुश्किल है। वह फ्रेच बताता है कि मैं किसी के घर मे ठहरा। मैं तो फ्रेच आदत का था, मुझे कुछ पता नहीं था कि यहॉ का रिवाज क्या है?

उस परिवार के व्यक्ति से मैने ऐसे ही कह दिया कि तुम्हारे जूते बहुत खूबसूरत है। ऐसा मेरे द्वारा कहते ही उसने तत्काल मुझे जूते भेट कर दिये जबकि उसके पास दूसरी जोडी भी नहीं थी। बर्फीली जगह है, नगे पैर चलना जीवन को जोखिम मे डालना है, लेकिन उसने वे जूते दे ही दिये। मैं दो–चार दिन तक हैरानी मे पडता रहा, जिसके भी सामने यह बात मुँह से निकल जावे कि यह चीज बडी अच्छी है, वही तत्काल भेट कर देते। तब मुझे वहाँ का हिसाब पता चला कि एस्किम का मानना है कि जो भी वस्तु किसी को पसन्द आ गई तो वह उसकी हो गई। मैने पूछा– आपकी मान्यता ऐसी क्यो है? इसका कारण क्या है? तब उस एस्किमो वृद्ध ने बताया कि इसके दो कारण है– एक तो कोई भी वस्तु किसी की अपनी तो होती ही नहीं है। दूसरा कारण है– जो वस्तु जिसके पास है, उसके लिये तो अब वह व्यर्थ हो गई है। मै वहाँ के एस्किमो से बडा प्रभावित हुआ और कह सकता हूँ कि उनके जैसे धनवान अन्य कोई नहीं हो सकते। वास्तव मे ऊपर से कितना भी धन हो पर मन की गरीबी है तो वह गरीब ही है। किन्तु एस्किमो ऊपर से गरीब है किन्तु मन से गरीब नही होने से, दातारी अधिक होने से वे सबसे ज्यादा समृद्धिशाली हैं। वे थोडी वस्तु के भी मालिक हैं, पर मौका आने पर किसी को देकर अपनी मालकियत को बनाये रखते है। मौका आने पर भी नही दिया तो वस्तु की मालकियत आप पर हो जायेगी और आप उस वस्तु के दास हो जाएँगे। अगर आपको मालिक बनना है तो भीतर की पकडन को कम करना होगा।

आरिसा महल मे जब भरत चक्रवर्ती गये थे उस समय उनके शरीर पर परिग्रह अवश्य था किन्तु मन पर नहीं था, अममत्व भावना मे जी रहे थे। इसीलिये आभूषणो को, राज्य को, अन्त पुर को, महलो को छोडने से पूर्व ही केवलज्ञान हो गया। भरतजी तो छ खड पर राज्य करने वाले थे, उनके पास पूरी पृथ्वी का परिग्रह था, पर मन पर परिग्रह नहीं था। किन्तु आज जितना परिग्रह पास मे नही होता उतना मन मे होता है।

राजा जनक के मन मे परिग्रह नहीं था, अत वे घर मे रहकर भी अपरिग्रह की साधना कर रहे थे और महलो को जलते हुए देखकर भी जरा भी विचलित नही हुये थे। देह पर उनकी ममता नहीं थी इसीलिए तो उनको विदेह भी कहा जाता था।

मूर्च्छा भाव से कितनी हानि होती है–एक सेठ के पास बहुत धन था पर था बहुत कजूस। उसे घूमने, फिरने, अच्छा खाने–पीने, पहनने या अच्छे मकान मे रहने आदि का कुछ भी शौक नहीं था। अगर शौक था तो सिर्फ एकमात्र कभी–कभी तिजोरी मे से हीरे–जवाहरात आदि सारी सपत्ति बाहर निकालना और उसके ढेर को देखकर हर्षित होना। एक बार छुट्टी का दिन था। सेठजी ऊपर अपने कमरे को बद करके बडी तिजोरी खोलकर धन का

ढेर करके देख रहे थे। इधर भोजन का समय होने से पुत्रवधू ने बच्चे को ऊपर भेजा कि जाओ, दादाजी को बुला लाओ। बच्चा ऊपर आया और दरवाजा बजाया। सेठजी धन मे ही खोये हुए थे अत भोजन का समय भूल गये। रात–दिन क्या है, इतना भी भूल गये और जोरदार भयभीत हो गये कि कहीं कोई चोर–डाकू घर मे प्रविष्ट न हो गये हो, अत जल्दी–जल्दी सारा धन तिजोरी मे भरने लगे। साथ ही धडकन भी बढी हुई थी। सेठजी धन की मूर्च्छा मे होश खो चुके थे। तिजोरी बहुत बडी थी अत वे स्वय भी धन के साथ तिजोरी मे बैठ गये थे और जल्दी–जल्दी तिजोरी का दरवाजा बद किया। दरवाजा बद करते ही तिजोरी अन्दर से लोक हो गयी। थोडी देर बच्चे ने दरवाजे को बजाया। वापस कोई प्रत्युत्तर न आने से बच्चा नीचे चला गया। इधर सेठजी तिजोरी मे बैठे है, घबराहट आने लगी। दरवाजा खोलना चाहते हैं पर खुल नहीं रहा है। इधर पुत्रवधू ने आधी घटा और इतजार किया कि सेठजी अब आ जाएँगे, अब आ जाएँगे। फिर भी नहीं आये तो पुत्रवधू स्वय ऊपर गई और दरवाजा बजाने लगी पर अन्दर से कोई जवाब नहीं आया। इतने मे सेठजी का बेटा भी आ गया था। वह भी ऊपर पहुँचा। छोटे–छोटे खड्डो से कमरे मे झाँका पर कुछ भी दिखाई नहीं दिया। श्रेष्ठि पुत्र ने खाती को बुलाया। दरवाजा निकलवाकर अन्दर गये तो देखा कोई भी नहीं है। फिर देखा तिजोरी के ताले खुले पडे है। तिजोरी को खोला तो तिजोरी के दरवाजे के साथ ही साथ सेठजी की लाश भी लुढक गयी। जड धन के साथ वे स्वय भी जड अवस्था को प्राप्त हो गये। यह कैसा परिग्रह? यह कैसी मूर्च्छा भाव की स्थिति जो व्यक्ति को जिदा भी नहीं रहने देती? सेठजी के पास मे धन था, इतने मात्र से परेशानी नहीं आती किन्तु सेठजी का धन के साथ गहरा ममत्वभाव था अत परेशानी को झेलना पडा। अत जड वस्तुओ के प्रति मूर्च्छाभाव को हटाना आवश्यक है।

श्रमण वर्ग को भगवान् ने अकिचन– अपरिग्रही कहा है जबकि उनके पास भण्डोपकरण आदि उपधि होती है फिर भी उनका ममत्व उन पर नहीं होता है, अत अकिचन कहा है। इसी प्रकार प्रमाणोपेत कपडा रखते हुए भी भगवान् ने श्रमण वर्ग को अचेलक कहा है। इन सब बातो से स्पष्ट हो जाता है कि मूर्च्छा ही परिग्रह है। अमूर्च्छा अपरिग्रह है।

आनद श्रावक ने घर मे रहकर ही परिग्रह की मर्यादा बॉध ली थी। जबसे सत्सन्निधि मे आया तभी से अपने पास मे जितनी सपत्ति है उससे ज्यादा रखने का त्याग कर दिया। उसके उपरात जो भी उसके पास पेसा होता था वह सभी गरीबो मे दान कर देता था। व्रत लेने से पूर्व दूध बेचता था किन्तु मर्यादा बॉधते ही अपने घर मे जो दूध काम मे आवे वह ठीक, बाकी दूध को गरीबो मे वितरित कर देता। यह हुई उनके परिग्रह की मर्यादा। ममत्व को

दूर किया आनद श्रावक ने। इसी से वे घर मे रहते हुये ही एकाभवतारी बन गये।

आज परिग्रह की मर्यादा तो कई जने करते है पर जितना अपने पास मे है उससे अधिक की मर्यादा करते हैं। लाख है तो करोड की मर्यादा करते है पर ऐसा भी देखने मे आया कि अमुक व्यक्ति के पास हजार रुपये भी नहीं थे पर उन्होने पचास लाख की मर्यादा कर ली। मर्यादा करते ही वह व्यक्ति जो वर्षो से हजारपति भी नही बन पा रहा था, वह पचास लाख की मर्यादा को पार कर गया। किन्तु इतना होने पर भी पैसा हाथ से नहीं छूटता और गालियॉ निकालने लगते हैं कि मुझे मेरे नाम से 50 लाख से ज्यादा नहीं रखना है अत पत्नी के नाम पर, पुत्र के नाम पर, पुत्री के नाम पर कर देते है पर मर्यादा से अधिक धन को दान मे देकर अपना ममत्व नही हटाते। फिर भी सरकार का छापा पड गया तो आपके सामने ही सब–कुछ चला जाता है। इससे तो अच्छा है कि पहले ही परिग्रह की मर्यादा को बॉधकर बाकी की सपत्ति से दान–धर्म की आराधना करके अपनी सपत्ति पर मालकियत बनाये रखी जा सकती है।

अगर आपको सच्चा सुख व शाति प्राप्त करने है तो परिग्रह के विग्रह को त्यागना ही होगा। अपरिग्रह व्रत को महाव्रतो मे भी रखा है तो श्रावक के पालन करने हेतु अणुव्रतो मे भी रखा गया है तथा मध्यम के 22 तीर्थकरो के समय के भाई–बहिन जो कि ऋजु व प्राज्ञ थे उनके लिये यद्यपि चार महाव्रत ही रखे गये कितु परिग्रह महाव्रत तो उनके लिये भी रखा गया है और स्त्री को भी परिग्रह मे गिना गया। इस प्रकार परिग्रह तो सभी के लिये वर्जनीय ही है। अपरिग्रह व्रत के पालन के लिए भगवान् ने फरमाया है कि मनोज्ञ शब्द, वर्ण, गध, रस, स्पर्श पर राग नहीं करे व अमनोज्ञ शब्द, रूप, गध, रस, स्पर्श पर द्वेष नही करे।

इस प्रकार ममत्वविहीन प्रवृत्ति होने पर ही आत्मानद मे रमण हो सकता है। अपरिग्रह व्रत का पालन करने वाले को वर्तमान क्षण मे ही शाति प्राप्त हो जाती है।



एक सशक्त कदम - परोपकार

परोपकार सुकृतैक मूलं, परोपकार कमला दुकूल।
परोपकार· प्रभुता-विधाता, परोपकार· शिव सौख्य दाता।।

अर्थात् परोपकार पुण्य का मूल है और परोपकार ही लक्ष्मी को शोभित करने वाला दुकूल है, परोपकार प्रभुता का विधाता है। परोपकार ही कल्याण और सुख को देने वाला है।

अनत काल से आत्मा का अस्तित्व शरीर के साथ बना हुआ है किन्तु एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय आदि योनियो मे आत्मा विकास नहीं कर सकती। विकास के लिए मनुष्य योनि ही सर्वश्रेष्ठ है। मनुष्य मे विकास हेतु सर्वप्रथम परोपकार का गुण होना जरूरी है। परोपकार गुण के आधार पर अन्य गुण शीघ्रता से विकसित हो जाते है। जिससे हर क्षेत्र मे व्यक्ति विकास करता हुआ चला जाता है।

जिस प्रकार रसीला, अच्छा बीज उपजाऊ भूमि मे ही डाला जाता है, वहीं उसका विकास सभव है। ठीक उसी प्रकार परोपकार के गुण से जिसकी हृदयरूपी जमीन कोमल बन गई हो उसमे क्षमा, मार्दव आदि गुण शीघ्र ही विकसित हो सकते है।

दुनिया मे जितने भी महापुरुष हुए है उन सभी के अन्दर परोपकार का गुण अवश्य था। वे किसी स्वार्थ के वशीभूत होकर परोपकार के क्षेत्र मे प्रवृत्ति नहीं करते थे अपितु परोपकार की सहजिक वृत्ति के आधार पर आगे बढते हुए चले जाते थे। श्रीकृष्ण बूढे को ईट उठाते हुए देखकर सहज परोपकार की वृत्ति से हाथी से नीचे उतरकर उसके पास गये ओर ईट को उठाकर परोपकार का कार्य किया। वे चाहते तो अन्य किसी को आदेश देकर भी कार्य करवा सकते थे या कुछ जागीरी भी दे सकते थे पर महापुरुषो का जीवन अन्य के सहारे नही अपितु अपने–आपके सहारे चलता हे। उन्होंने स्वय के हाथो से सहयोग किया था।

सुभाषचन्द्र बोस के बचपन की घटना है–बालक सुभाष सभी बच्चो के साथ स्कूल जाता था तथा साथ मे आधी छुट्टी मे नाश्ता करने के लिए माँ के द्वारा दिया गया टिफिन साथ मे लेकर जाता था। एक बार आधी छुट्टी मे सभी बच्चे अपना टिफिन करने के लिये बैठे ही थे तभी एक बुढिया की

आवाज आई— बेटा बहुत दिनो से भूखी हूँ। सुभाष के कानो से आवाज टकराते ही उसने बुढिया की तरफ देखा। बुढिया कहने लगी—बेटा! सच बोलती हूँ, बहुत दिनो से मुझे खाने को नहीं मिला है। बालक सुभाष तुरत उठा और अपने टिफिन को लेकर उस बुढिया के पास पहुँचा। सारा टिफिन बुढिया के बर्तन मे खाली कर दिया और कहा— माँ, तुम हमेशा इस समय यहाँ आया करना। मै तुम्हे खाना अवश्य दूँगा। बच्चे को लग रहा था जैसे भारत माता स्वय ही बाँहे फैलाये खडी हो। सुभाष प्रतिदिन अपना टिफिन उस बूढी माँ को दे देता था। एक दिन दोपहर मे माँ को नहीं देखा तो पता चला कि वह तो मर गई है। बालक रोने लग गया। टिफिन मे से एक दाना भी नही खाया और ज्यो का त्यो टिफिन घर पर लेके आ गया तो माँ ने पूछा—बेटा! क्या बात है? उदास क्यो हो रहे हो? क्या स्वास्थ्य ठीक नहीं है? यह टिफिन ऐसा का ऐसा क्यो लेके आ गये हो? सुभाष ने कहा— माताजी, आपकी तरह ही मेरे एक माँ और थी, वो आज मर गई है, इसलिये ।

उस छोटे बच्चे मे परोपकार का गुण सहज रूप से विद्यमान था। उस बालक ने बचपन मे ही समाज—सेवा की बच्चो की टोली भी तैयार की थी और उन बच्चो के साथ वे स्वय सेवा करते थे। इस प्रकार व्यक्ति अपने सहजिक गुणो से ही आगे बढता है।

भगवान् महावीर स्वामी ने नयसार के भव मे अपने सहजिक गुण से ही अतिथि साधु को दान दिया था जिससे समकित की प्राप्ति करके भव परम्परा को सीमित किया था।

एकेन्द्रिय कहलाने वाले जीव भी मानवो पर कितना उपकार करते है! पृथ्वी अपने पेट पर कुदाली चलाकर कुआँ खोदने वाले को भी पानी प्रदान करती है। हल चलाने वाले को एक दाने के बदले अनेक दाने प्रदान करती है। पानी सभी जीवो को शीतलता प्रदान करता है, तृषा मिटाता है। अग्नि भोजन पकाती है, चोरो से रक्षा करती है, रास्ते मे चलने वालो को ठोकरो से बचाती है। वायु—सभी जीवो को जीवत्व प्रदान करती है। वनस्पति जगत् को खाद्य सामग्री प्राप्त कराती है, लकडी देती है आदि। पशु—पक्षी भी मनुष्य पर उपकार करते है। पूर्व जमाने मे कबूतर जैसा पक्षी भी लेटर पहुचा देता था। गाय—भैस आदि पशु भी मानव पर दूध आदि से अनेक प्रकार के उपकार करते है। पशु मरने के बाद भी अपने अनेक अवयवो के माध्यम से मानव का उपकार करते है।

किन्तु सशक्त पाँच इन्द्रियाँ पाने वाला, बौद्धिक शक्ति का भण्डार कहलाने वाला, इच्छानुसार कर गुजरने वाला मानव ससारगत उन—उन जीवो पर क्या उपकार करता है? उनका ऋण उतारने के लिए आपके मन मे क्या विचार है? मान लीजिए ऋण देने वाला व्यक्ति आपसे ऋण वसूल करना न

चाहे तो आप साहूकारो का क्या कर्तव्य है कि आप वापस न देकर उसे हडप जाने की इच्छा करे? कोई दीन, दु खी, अभावग्रस्त व्यक्ति आपके दर पर मॉगने आ जावे तो आप उसे हटाते हुये क्या बोलते हैं कि क्या यहॉ पर तुम्हारे बाप की धरोहर पडी है, जो मॉगने के लिये आ गये? ऐसा कहने वालो से अगर वायु, पानी आदि भी ऐसा बोल देवे तो क्या होगा?

विक्रम राजा, जिनका सवत् चलता है वह भी, प्रजा को एक टाइम भी भोजन नहीं दे सका। कर्ण राजा हमेशा सो स्वर्ण मुद्राऍ दान मे देता था किन्तु समग्र हिन्दुस्तान को वह भी नहीं जिमा सका। मुगल बादशाह को चॉदी–सोने के जवाहरात के सिवाय कुछ भी नजर नहीं आता था। वह सिर्फ दिल्ली की जनता को भी नहीं जिमा सका। विक्टोरिया के पाटवी कुँवर प्रिन्स ऑफ वेल्स के लग्न के समय बम्बई को भी नहीं जिमा सका। जिसके अधीन दुनिया का दूसरा भाग था ऐसा सप्तम एडवर्ड गद्दी पर बैठा तब पॉच लाख मनुष्यो को उसने जिमाया कितु पूरी लदन को तो वह भी नहीं जिमा सका, किन्तु पृथ्वी सारे ससार को खाद्य सामग्री देती है। पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति भी सारे ससारगत मनुष्यो का उपकार करते है। इनका उपकार तो अनोखा ही होता है। कहा भी है–

पिबन्ति नद्य. स्वयमेव नाम्ब , स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः।
नादन्ति सम्यं खलु वारिवारा., परोपकाराय सता विभूतय·।।

अर्थात् नदियॉ स्वय जल नहीं पीतीं, और वृक्ष स्वय फल नहीं खाते, मेघ भी स्वय अन्न नहीं खाते वैसे ही सज्जनो की विभूति परोपकार के लिए ही होती है।

नदी, वृक्ष व गाय जैसे भी जब हमारा इतना उपकार करते हैं तो ससार मे सर्वश्रेष्ठ कहलाने का दावा करने वाले मनुष्यो को कितना क्या करना चाहिये? सज्जन पुरुष तो हर क्षण परोपकार के लिए तैयार रहते हैं। वे अपनी श्रेष्ठता परोपकार मे ही मानते है।

स्वर्गीय आचार्य श्री नानालालजी म सा बचपन से ही परोपकारी थे। छोटी अवस्था थी, खडे थे गॉव के चौराहे पर अपने दोस्तो के साथ। उसी समय उनकी दृष्टि एक बुढिया पर पडी। उसके हाथ मे सहारे के लिये लकडी है। सिर पर पानी का घडा है, चला नहीं जा रहा है। फिर भी जैसे–तैसे धीरे–धीरे आगे कदम बढा रही है। बालक उस बुढिया को देखते ही तुरत उस बुढिया के पास पहुँच गया और बुढिया से कहने लगा–दादीजी, आप यह पानी का घडा मुझे दे दो। बुढिया कहने लगी कि भाई एक तरफ रह, मेरे घडे को हाथ मत लगा। किन्तु बालक कहने लगा–दादीजी, मैं आपके पानी के घडे को आपके घर तक पहुँचा दूँगा, आप मुझे दे दीजिए। बुढिया जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकती, वैसे शब्द उसे आज सुनने को मिले।

वह सोचने लगी– यह कौन फरिश्ता आया है? बालक ने घडा तुरत अपने सिर पर ले लिया और बुढिया के साथ धीरे–धीरे चलने लगा। बुढिया की झोपडी मे घडा रखकर बालक ने कहा– दादीजी, कल से आप कुएँ पर पानी लेने मत जाना। मै हमेशा ही आपके घर पानी का घडा लाके रख दूँगा और वैसा ही किया भी सही। वही बालक आगे चलकर जन–जन का वदनीय बन गया। उन्होने अपने आचार्य जीवनकाल मे एक लाख से ऊपर बलाई जाति के दुर्व्यसनी लोगो को व्यसनमुक्त करके उन पर महान् उपकार किया। सैकडो भव्यात्माओ को सयम दान देकर महान् उपकार किया। वे प्रतिसमय उपकार की भावनाओ से ओतप्रोत रहते थे इसीलिए वे विश्व की विरल विभूति कहलाये व समताविभूति के रूप मे प्रसिद्ध हुए।

परोपकार महापुरुषो के जीवन का एक सहजिक गुण होता है और वे सहज रूप मे ही उन परोपकार के कार्यो को सम्पन्न कर लेते है।

एक बार एक बुढिया सडक के किनारे बैठी रो रही थी। रास्ते मे से अनेको व्यक्ति आ रहे है और जा रहे है। वे सभी एक दृष्टि डालते और आगे बढ जाते। किसी की बला से कोई रोये, जीए या मरे किसे परवाह? ससार की यही रीति है, सभी को अपनी–अपनी पडी है। कहा भी है–

किस-किसको रोइये, किस-किस को सोचिये?
आराम बडी चीज है, मुँह ढककरके सोइये।।

किन्तु दुनिया मे सभी एक सरीखे नहीं होते है। अभी भी भारतीय सस्कृति जीवित है, परोपकार की भावनाएँ तारतम्यता के साथ ही सही, पर बनी हुई अवश्य है।

उसी समय एक व्यक्ति उधर से निकल रहा था, उससे बुढिया का रोना देखा नही गया और तुरत उस बुढिया के पास पहुँचा और पूछने लगा– क्या हुआ? आप क्यो रो रही हो? बुढिया देखने लग गई कि यह कौन व्यक्ति बोल रहा है? आज तक मुझे इस ढग से पूछने वाला कोई नही मिला। दु ख की जिन्दगी जीते–जीते मै तो बूढी हो गई। आज पहली बार किसी के मुँह से ये मधुर शब्द सुनने को मिल रहे हैं। वह उस व्यक्ति के समक्ष रोते–रोते कहने लगी–बेटा! बूढी हू, देख ही रहे हो, शरीर जर्जर हो गया है। एक यहूदी के यहा गुलामी करती हूँ। दिनभर इस शरीर से जितना सभव है, उतना कार्य करती हू। गालिया और कभी–कभी कोडे भी खाने पडते हैं। तब कहीं जाकर के इस पापी पेट मे दो रूखी–सूखी रोटियॉ पडती है। आज मालिक ने बाजार से आटा लाने भेजा था। मै आटा लेके आ रही हूँ पर आटे की पोटली इतनी भारी है कि मेरे से उठ ही नहीं रही थी, गर्दन टेढी होने लग गई और यहॉ आते–आते आखिर नीचे गिर गई। अब मैं इसे कैसे उठाके जाऊँ? समय पर नही पहुँचती हूँ तो मालिक के द्वारा कोडे खाने पडेगे। अब भाई, तुम ही

वताओ कि मैं रोऊँ नहीं तो क्या करूँ? कौन है मेरे दु ख को समझने वाला? खुदा भी तो नहीं देखता। वह भाई कहने लगा– नहीं–नहीं, अम्मा ऐसा मत बोलो। खुदा तो सभी को देखता हे। चलो, मै तुम्हारी पोटली यथास्थान पहुँचा देता हूँ। उस राहगीर ने पोटली अपने सिर पर उठा ली। बुढिया को ऐसा लग रहा था जैसे आज कोई भगवान ही मिल गये हो। दोनो साथ–साथ उस घर पर पहुँचे। मालिक ने मुख्य द्वार से अन्दर घुसते हुए बुढिया के साथ उस व्यक्ति को देखा तो एकदम भौचक्के रह गये। उसने पहचान लिया उस व्यक्ति को। अहो! हजरत मुहम्मद पैगम्बर स्वय उसके घर पहुँचे है ओर बुढिया की पोटली उठाए हुये। वह मालिक पानी–पानी हो गया ओर मुहम्मद साहब के पैरो मे गिर गया व प्रतिज्ञा की कि भविष्य मे कभी भी किसी नोकर के साथ ऐसा कटु व्यवहार नहीं करूँगा। उसका हृदय मूलत ही परिवर्तित हो गया और जीवन–व्यवहार भी बदल गया।

इस प्रकार स्वाभाविक रूप से व्यक्ति मे रही हुई परोपकार की भावनाएँ अन्य व्यक्ति के जीवन को भी वदल देती है। तुलसीदासजी ने कहा हे–

परहित वस जिनके मन मॉही।
तिन्ह कहँ जग दुर्लभ कछु नॉही।।

परोपकारी व्यक्ति के लिये दुनिया मे कुछ भी असभव नही है। हिन्दू सिद्धात मे लिखा है– 'वह वृथा नही जाता जो अपना धन, अपना तन, अपना मन, अपना वचन दूसरो की भलाई मे लगाता है।'

जो व्यक्ति परोपकार नही करता उसकी जिन्दगी इस पृथ्वी पर सिर्फ भार रूप है। परोपकार रहित जीवन से तो एक तृण भी श्रेष्ठ है जिसे पशु खाकर अपना पेट तो भर लेता है तथा हारा हुआ सैनिक अपने मुँह मे तिनका दबा लेता है तो फिर सामने वाले के प्रहार से बचकर सुरक्षित हो जाता हे। उस छोटे–से तिनके से मानव की सुरक्षा तक भी हो जाती थी पर आपके द्वारा आज तक किसी की सुरक्षा हुई है या नहीं? परोपकार मे अपना समय लगाया हे या नही?

एक श्रीमत एक महात्मा को अपना भव्य भवन दिखाने के लिये लेकर गया। श्रीमत ने ऊपर–नीचे सभी जगह घूम–घूमकर, एक–एक कमरा खोलकर सारा भवन दिखाया। श्रीमत व महात्मा पुन नीचे आ गये। श्रीमत ने महात्मा से पूछा– भवन कैसा लगा? महात्मा ने उस अभिमानी श्रीमत के चेहरे पर थूक दिया। सेठ क्रोध मे आ गया ओर बोला– जल्दी वताओ, मेरे मुँह पर क्यूँ थूका? महात्माजी ने कहा– यह सारा भवन थूक के तुल्य निरर्थक है क्योकि तुमने परमार्थ के लिए कुछ नहीं किया है।

जिस व्यक्ति का परोपकार के लिये पैर आगे नही बढा ह वह पगु ह।

आपको यह दुर्लभ मानव जन्म मिला है, इससे भरपूर परोपकार करे व अन्य के दु ख–दर्द को दूर करें। उन्हे शाति पहुँचाकर स्वय भी शाति का अनुभव करने से न चूके। इसी मे मनुष्य शरीर प्राप्त करने की सार्थकता है। यही सुखमय ससार का बीज है।



सरलता की सेज - दुःख से परहेज

ऋजुता

माय मज्जव भावेण (दशवेकालिक सूत्र 8/39)

अर्थात् सरलता से माया–कपट को जीते।

प्रत्येक भव्य आत्मा अखड सुख–शाति का भव्य स्थान प्राप्त करना चाहती है। उस स्थान तक पहुँचने के लिये आज व्यक्ति को रास्ता भी एकदम सीधा–सरल चाहिये ताकि कठिन साधना के चक्कर मे न पडना पडे। इस हेतु भगवान् महावीर स्वामी ने फरमाया है कि सीधे–सरल रास्ते पर शीघ्रता से बढने के लिये पहले स्वय को भी सरल बनाओ। जिस व्यक्ति मे सरलता होती है वह सीधे–सरल धर्म के पथ पर शीघ्रता से आगे बढकर परमात्म पद को प्राप्त कर सकता है। महाभारत मे आया है– "सरलता ही धर्म है व कपट ही अधर्म है। सरल मनुष्य ही धर्मात्मा बन सकते है।" सरलता आत्मा का निजी गुण है। आत्मा तो सदा–सदा से सरल, सहज, निर्विकार ही है किन्तु इस कपट भाव ने आत्मा को विकारयुक्त बना दिया है अत वह ससार मे विभिन्न शारीरिक परिवेश मे घूमती हुई दिखाई देती है। कपट करने वाला व्यक्ति ज्यादातर पशु–पक्षी की योनि मे ही जन्म लेता है। खैर, कपट के कारण ऊपर का रूप कैसा भी मिला हो किन्तु अन्दर मे बैठी हुई आत्मा तो सरल ही है। जैसे गन्ना टेढा, गॉठ–गठीला हो सकता है किन्तु रस नहीं। दीपक टेढा–मेढा विभिन्न आकार–प्रकार वाला हो सकता है, पर ज्योति टेढी–मेढी नहीं होती। लकडी टेढी–मेढी हो सकती है पर अग्नि नहीं होती है। नदी टेढी–मेढी हो सकती है पर उसमे रहा हुआ पानी टेढा नहीं होता। ऐसे ही शरीर पशु या मनुष्य का हो सकता है व लम्बा, छोटा, मोटा पतला, हो सकता है पर आत्मा तो सरल, निर्विकार ही होती है।

उस सरल आत्मा को अपने स्वाभाविक रूप मे लाने के लिए जीवन भी सरल ही बनाना होगा। सरलता वह प्रकाश है जिसके प्रकाश मे हम सब–कुछ स्पष्ट देख सकते हैं, जैसे बालक। बालक के मन, वचन, काया की प्रवृत्ति एकदम सरल होती है। उसकी सोच राग–द्वेष से रहित होती है। उसकी तुतलाती भाषा मे भी सरलता ही झलकती है। अत हर व्यक्ति उसकी तुतलाती भाषा को सुनना चाहता है, उससे बात करना चाहता है। बच्चे की

कायिक क्रिया भी वक्रता से रहित होती है। बच्चे का थोडा–सा घुमाव भी नृत्य के समान प्रतीत होता है।

बालक मे कितनी सरलता होती है, इस बात को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा रहा है। एक पति–पत्नी अपने बेडरूम मे तीन वर्षीय छोटे बेटे के साथ बैठे हुए टी वी पर सीरियल देख रहे थे। तभी घटी की आवाज सुनाई दी। पति–पत्नी टी वी के सामने से उठना नही चाह रहे थे अत उस बच्चे को उसके डैडी कहने लगे कि तुम इस खिडकी के पास जाकर बोल दो कि– मेरे डैडी घर पर नही है। बच्चे ने सरलता से कहा कि अच्छा जाता हूँ। वह तुरत खिडकी के पास पहुँचा और घर से बाहर खडे भाई को कहने लगा कि मेरे डैडी ने कहा है कि डैडी घर पर नही है।

ऐसी सरलता के कारण ही बच्चे को भगवान् का दूसरा रूप माना जाता है।

श्रीमान् गोपालकृष्ण गोखले भी बहुत सरल थे। एक दिन उनके मास्टर ने गणित के कुछ सवाल करने के लिये दिये। सवाल बहुत कठिन थे अत गोपालकृष्ण गोखले ने किसी की सहायता ली और सवाल सही ढग से कर लिए। दूसरे दिन अध्यापक ने सभी विद्यार्थियो की कापियॉ जॉची। उनमे से सबसे ज्यादा अच्छी कॉपी गोपालकृष्ण गोखले की देखकर वे बहुत खुश हुए और उसकी पीठ थपथपाते हुए उसकी सबके सामने प्रशसा करने लगे तब गोपालकृष्ण खडे–खडे एकदम रोने लग गये। मास्टर ने रोने का कारण पूछा तब सरल हृदय गोपालकृष्ण ने सही–सही बात सरलता के साथ सभी विद्यार्थियो के समक्ष मास्टरजी को बता दी। मास्टर गोपाल की सरलता पर बहुत खुश हुए और अति प्रसन्न होकर उसे इनाम भी दिया।

वे अपनी सरलता व सत्यता के आधार पर एक दिन देश के महान् नेता बन गये।

अवसर्पिणी काल के पहले, दूसरे, तीसरे आरे मे युगलिया काल चलता है। वे युगलिया बहुत सरल होते है। उनमे किसी तरह का कपट–झपट नही होता है। उस समय हर चाह को मिटाने वाले कल्पवृक्ष होते है पर उनमे वह सग्रह वृत्ति व इच्छाएँ भी इतनी तीव्र नहीं होतीं जिनके पीछे कपट करना पडे। वे अति सरल होते है अत उनकी गति देवलोक की ही होती है। जबकि वे किसी व्रत–विशेष का पालन नहीं करते फिर भी एकमात्र सरलता के कारण देवलोक मे ही जाते हैं। किन्तु जैसे–जेसे कपट बढा, वैसे–वैसे राज्य–व्यवस्था व दण्ड–व्यवस्था भी करनी पडी। वर्तमान युग तक तो कपट अति मात्रा मे बढ गया है। इस कपट के कारण एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का विश्वास करने के लिये तैयार नहीं है। अगर कोई सत्य बात कहे तो भी लगता है– इसमे भी कोई राज है। सगा भाई भी अपने भाई को कोई सलाह दे तो लगता है

कि नहीं, यह मुझे गलत ही कह रहा है। अत मित्र से जाकर पूछेगा, उससे सलाह लेगा। आजकल तो सगे माता–पिता की बात भी अच्छी नहीं लगती। उनके विषय मे भी यही सोचते हे कि ये तो दूसरे वेटे को सही वात कहेगे। मेरे साथ तो कपटपूर्वक ही वोलेगे। पर यह पक्का है कि कपटपूर्ण जीवन से लक्ष्य की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती। सरलता के विना अपने द्वारा कृत दोषो की आलोचना भी बरावर नहीं कर सकता। प्रायश्चित्त की पहली शर्त हे कि व्यक्ति वच्चे जेसा सरल होकर गुरु के समक्ष आलोचना करे। वच्चे की तरह गुरु के समक्ष सब–कुछ कह देवे तो प्रायश्चित्त भी कम आता है व आत्मशुद्धि भी पूर्ण तोर पर हो जाती है। कहा भी हे– **सोही उज्जूय भूयस्स।** अर्थात् शुद्धि उसी की होती है जो सरल होता है। आत्मकल्याण साधने का सरलतम उपाय सरलता ही हे अत सरलता से कपट पर विजय प्राप्त करना हे।

सरलता के गुण से मन, वचन, काया की सरलता प्राप्त करते हैं। साथ ही अविसवादी प्रवृत्ति भी प्रदान करते हैं। मन मे सरलता आने पर व्यक्ति अनेक दु खो से बच जाता हे। जिसके मन मे सरलता होती है उसकी सोच भी सही होती है। हर बात को सही ढग से ही पकडता हे। उसकी सोच मे यह आता ही नही है कि सामने वाला गलत भी वोल सकता है। वह अपने समान ही अन्य को भी सरल ही समझता है। जेसे वच्चे के मन मे मॉ व चाची दोनो के प्रति समान भावनाऍ होती है अत उसे दोनो ही प्यार करते हैं। वैसे ही सरलमना व्यक्ति को सभी प्रेमभरी निगाहो से ही देखते हे। वे अपने विचारो से कभी दु खी नहीं होते। सरल व्यक्तित्व वाले मानव के वचन भी सरलता से सयुक्त होते हे। वह हर वात का जवाव सीधा–सरल देता हे। उसे किसी भी तरह से कुछ भी कह दो किन्तु वह उसका जवाव सीधा ही देगा। क्यो और क्या व लुकाव–छिपाव तो उसके जीवन मे होता ही नहीं हे। उसकी हर प्रवृत्ति दूसरो के हितसाधन मे ही होती हे।

सरल व्यक्ति जिन्दगी के हर मोड पर सुखी ही रहता है। उसका अन्तरग सही होने से जीवन मे होने वाली बात का आभास भी पूर्व मे हो जाता है।

एक वुढिया अपनी बेटी को ससुराल छोडने हेतु जा रही थी। दोनो जगल मे चल रहे थे। उसी रास्ते मे एक ऊॅटवाला मिल गया। वुढिया ने पूछा– तुम इसी दिशा मे जा रहे हो तो मेरी बेटी थक गई हे, इसे थोडी देर दिठा लो, आगे छोड देना। ऊॅटवाले ने मना कर दिया। ऊॅटवाला कुछ आगे गया ही होगा कि उसके मन मे विचार आया कि मे मना नहीं करता तो कितना अच्छा होता। लडकी सुसराल जा रही थी अत उसके पास कुछ धन भी होगा। पोटली मै ले सकता था ओर जवान लडकी भी मेरे साथ रहती। जगल मे मुझ कोन पकडने वाला था? मोका चूक गया। खेर अव भी वुढिया को वोल देता

हूँ। वह रुका और बुढिया के आने पर बोलने लगा कि मॉजी, मैने मना करके आपका दिल दुखाया, इसका मुझे दु ख हो रहा है। मैं अब बिठाने को तैयार हूँ। कितु बुढिया ने कहा–नही, अब नही बिठाना मुझे। ऊँटवाला– अब क्यो नहीं बिठाना आपको? बुढिया–बेटा! तेरे को कह गया, वो मेरे को भी कह गया। ऊँटवाले के मन मे गलत विचार आते ही सरलमना बुढिया को पता लग गया। जिससे आने वाले कष्टो से मॉ–बेटी बच गई। बुढिया भद्रिक सरल परिणामी होने से उसे पता लग गया था। कहावत है–

भोले के भगवान होते हैं।

धन के लोभी व्यक्ति मे भी सरलता नही टिक पाती। लोभी व्यक्ति लोभ और लाभ की दौड मे दो नबर का धधा करता है। आज तो लगता है कपट के बिना व्यापार ही नहीं चल सकता। कितना ही असत्य बोलकर, कपट करके तिजोरी को धन से भरते है। और तो और, धार्मिक क्षेत्र मे भी कपट करके जहॉ भी जगह मिली पैसा गबन करने मे पीछे नही रहते है।

सरलता के अभाव मे अनेक समस्याऍ खडी होती ही रहती है। कुटिल व्यक्ति के शत्रु भी बहुत होते है। लुकाव, छिपाव, ठगाई, धूर्तता, कुटिलता के साथ मित्रता ठहर नही पाती। जहॉ कुटिलता, ठगाई, धूर्तता आदि नहीं है, सरलता है वहा शत्रुता का प्रवेश भी नही है। वहॉ सिर्फ प्रेम की धार ही बहती है। कहा भी है–

सन्धते सरला सूचि, वक्रा छेदाय कर्तरी।

अर्थात् सुई सरल होती है इसलिए दो को आपस मे जोडती है और कैची टेढी–मेढी होती है अत वह काटकर एक को दो करती है।

वास्तव मे सरलता दो मन को जोडने का काम करती है जबकि कपट दो मन को तोडने का काम करता है।

हर व्यक्ति हर क्षेत्र मे सरलता ही चाहता है, सरल बात, सरल व्यवहार ही पसद करता है। कपटपूर्ण व्यवहार कोई भी पसद नहीं करता, अत कपटरूपी शत्रु को सरलता से जीतना जरूरी है।

खेत मे जैसा बीज बोते हैं वैसा ही फल प्राप्त होता है, वैसे ही यदि आपकी आत्मा मे सरलता है तो मुक्ति महल भी सरलता से प्राप्त हो जाता है।



देशी घी - जी भर पी

गुणिसु प्रमोदं

अर्थात् गुण व गुणीजनो के प्रति प्रमोद भाव रखा जाय।

यह जीवन एक यात्रा है। जिसे हर पथिक अपने–अपने ढग से संपन्न करता है। एक व्यक्ति गुणो की सुगध से अपने आपको परिपूर्ण करते हुए व अन्य के लिये भी परोपकार, सेवा, विनय आदि गुणो की सुगध को बिखेरते हुए, स्वय प्रसन्नतापूर्वक जीवन जीते हुए व अन्य को भी अपने व्यवहार से प्रसन्न करते हुए सुखपूर्वक अपनी यात्रा को पूर्ण कर लेता है। दूसरे व्यक्ति अपने आप मे अवगुणो की दुर्गध को भरते हुए अपने सपर्क मे आने वालो को भी ईर्ष्या, राग, द्वेष, कलह आदि दुर्गुणो की दुर्गध से वासित करते हुए स्वय भी दुख पूर्ण जीवन जीते हुए व अन्य को अपने घृणित व्यवहार से दु खी करते हुए अपनी यात्रा को परिपूर्ण करते है। इस प्रकार जीवन यात्रा सभी सपन्न करते हैं लेकिन एक व्यक्ति के द्वारा जीवन यात्रा संपन्न करने के बाद भी उसका नाम, यश, प्रतिष्ठा, कीर्ति विकीर्ण होती रहती है तो दूसरे के लिए कहते हैं– अच्छा हुआ मरा तो। जिदा रहकर सारे परिवार के मध्य मे, समाज मे विष घोलता था। अब परिवार वाले बेचारे सुख से रहेगे।

दोनो प्रकार के जीवन मे से गुणो के गुलदस्ते वाला जीवन, जो स्वय को भी प्रसन्न रखता है व अन्य को भी अपने गुणो की सुगध से प्रसन्न कर देता है–यही श्रेष्ठ लगता है।

श्रेष्ठ जीवन को जीने के लिए व्यक्ति को सबसे पहले गुणानुरागी बनना होगा। व्यक्ति मे अगर गुणदृष्टि होगी तो गुण ही गुण दिखाई देगे। तथा अवगुणग्राही दृष्टि होगी तो अवगुण ही अवगुण दिखाई देगे।

पूर्व जमाने के अन्दर विद्यार्थियो की योग्यताओ की परीक्षा करके ही ज्ञान दिया जाता था। कौरवो और पाडवो के विद्यागुरु ने भी उनकी परीक्षा करनी चाही। गुरुजी ने दुर्योधन से कहा कि तुम इस गॉव मे जाओ ओर जितने भी गुणवान हैं सबकी गिनती करके आओ। दुर्योधन आकर गुरुजी से कहने लगा कि इस गॉव मे तो एक भी गुणवान व्यक्ति नहीं है। मेरे को एक पडित मिला पर वह बडा अभिमानी था। उसे अपने ज्ञान का अति घमड था। एक सेठ मिला, उदार भी था, कई सस्थाओ मे उसने दान भी दिया किन्तु उसने नाम

की भूख बहुत ज्यादा मात्रा मे थी। एक साधू मिला पर वह प्रमादी था। इस प्रकार राजा, रक, सेठ, कृपण, त्यागी, भोगी, महात्मा आदि कोई भी व्यक्ति अच्छा नही मिला। गुरुजी ने कहा– ठीक है। दूसरे दिन गुरुजी ने युधिष्ठिर से कहा कि तुम इस गॉव मे जाओ और कितने व्यक्ति अवगुणी है उसकी गिनती करके आओ। युधिष्ठिर तुरत गुरुजी की आज्ञा अहोभाव से स्वीकार करता हुआ गॉव मे गया और गॉव के लोगो से मिलता हुआ शाम को वापस गुरुजी के पास आया और कहने लगा– गुरुजी, मेरे को तो एक भी व्यक्ति अवगुणी मिला ही नही है। मै गलत से गलत बदमाशो की बस्ती मे गया पर वहॉ भी अवगुणी नही मिला। नीच से नीच व्यक्ति मे भी गुण दिखाई दे रहे थे। हिसक, कसाई, वेश्या, जुआरी, मासाहारी, अत्याचारी आदि मे भी अपने कृत्य के प्रति पश्चात्ताप दिखाई दे रहा था और आगे से ऐसा काम नहीं करने की शुभ भावनाऍ दिखाई दे रही थी। गुरुजी के द्वारा की गई परीक्षा मे युधिष्ठिर ज्ञान ग्रहण के योग्य पात्र दिखाई दिया।

युधिष्ठिर की तरह ही गुणानुरागी की दृष्टि भी होती है। वे राजहस की तरह से मोती चुगने मे रहते है। दुष्ट से दुष्ट व्यक्ति मे भी गुण खोज लेते है।

वास्तव मे प्रत्येक वस्तु मे कुछ न कुछ अच्छाई होती ही है। बकरी की मीगणी जैसी तुच्छ वस्तु मे गुलाब जैसी सुवास व पोषक तत्त्व रहा हुआ है। गोबर जैसी वस्तु मे भी ईख जैसी मिठास रही हुई है। इसी प्रकार हर चैतन्य आत्मा मे गुण रहे हुये है। किन्तु उन्हे पहचानने की आवश्यकता है। किसी भी व्यक्ति मे एकान्त दोष ही हो ऐसी बात नही है, उसमे कुछ न कुछ गुण तो रहता ही है। शास्त्रो मे सबसे निम्न कोटि के व्यक्ति को मिथ्यात्वी कहा है पर उस मिथ्यात्व के आगे भी गुणस्थान लगाया है। अर्थात् मिथ्यात्वी मे भी कोई न कोई गुण अवश्य होता है। जैसे सूर्य बादलो से ढक जाय फिर भी दिन मे रात दिखाई नही देती है। वह दिन मे ही दिखाई देता है। सूर्य पूर्ण रूप से बादलो से आच्छादित नही होता। ठीक उसी प्रकार कोई भी चैतन्य आत्मा पूर्ण रूप से अवगुणी नहीं होता। दार्शनिक एमर्सन का कहना है कि– Every man I meet is my superior in some way In that I learn of him अर्थात् प्रत्येक मनुष्य, जिससे मै मिलता हूँ, किसी न किसी रीति से मुझसे श्रेष्ठ होता है। इसलिये मै उससे कुछ शिक्षा लेता हूँ। वास्तव मे ऐसा गुणानुरागी व्यक्ति ही युधिष्ठिरवत् विद्या प्राप्त करने का अधिकारी हो सकता है। हस पानी मिले दूध मे से अपने ग्रहण करने योग्य दूध को ग्रहण कर लेता है और पानी को छोड देता है। उसी प्रकार गुणानुरागी व्यक्ति दूधरूपी गुणो को ग्रहण कर लेता है और अवगुणरूपी पानी को छोड देता है। चतुर शिल्पकार पत्थर मे से, पत्थर के टुकडो मे से देवी–देवताओ की भी मूर्ति निकाल देते है। इसी प्रकार गुणग्राहक दृष्टि गुणो को ही ग्रहण करती है।

अन्य अवगुणो की ओर दृष्टि जाती ही नही है।

श्रीकृष्ण गुणग्राहक थे अत उनकी गुणग्राहकता की प्रशसा फेलते–फेलते स्वर्ग तक भी पहुँच गई। एक बार इन्द्र महाराज ने देवो की सभा मे श्रीकृष्ण के इस गुण की प्रशसा की। प्रशसा सुनने वाले देवो मे से एक देव की इच्छा हुई कि श्रीकृष्ण की परीक्षा करके देखना चाहिए कि वे वास्तव मे केसे गुणग्राहक है? ऐसा सोचकर वह देव स्वर्ग से नीचे आया और वह ऐसे अवसर पर द्वारिका पहुँचा जब कृष्णजी सेनासहित भगवान अरिष्टनेमि के दर्शनार्थ जा रहे थे। जिस मार्ग से कृष्णजी जाने वाले थे, उसी मार्ग मे देव ने एक मृतक कुत्ते का रूप बनाया। वह रास्ते मे एक ओर पडा रहा। कृष्ण महाराज की सेना उधर से निकली तो कुत्ते के पास पहुँचकर उसकी बदबू से घबरा उठी। अत्यन्त भयानक दुर्गध उसमे से निकल रही थी, उसे सहन करना कठिन था। सैनिक अपना–अपना नाक बद करके और मुँह को भी बद करके जल्दी–जल्दी आगे बढ रहे थे।

श्रीकृष्ण ने उन सभी को देखकर पूछा कि यह क्या हो रहा है? सेनिक जल्दी–जल्दी आगे क्यो बढ रहे है? तब किसी ने बताया कि आगे एक काले रग का मृत कुत्ता पडा है। उसके शरीर मे से तेज दुर्गध आ रही है। वह किसी को सहन नही हो रही है। अत सैनिक जल्दी–जल्दी जा रहे हे।

श्रीकृष्ण की सवारी जैसे ही उस स्थान तक पहुँची और नजर पडी उस कुत्ते पर। श्रीकृष्ण उसे देखते ही कहने लगे कि–ओ हो! इसकी श्वेत दत–पॅक्ति कितनी सुशोभित हो रही है? ऐसा लग रहा है मानो नीलम के पात्र मे हीरे जडे हो।

श्रीकृष्ण के मुँह से ऐसे प्रशसायुक्त वचनो को सुन कर देव अवाक् रह गया। सोचने लगा कि मैंने इतना घृणास्पद रूप बनाया था कि जिसमे से कोई अच्छाई चुन सके, वह किसी साधारण व्यक्ति के बस की बात नहीं थी। फिर भी श्रीकृष्ण ने मेरी सारी घृणास्पद शारीरिक शक्ति की उपेक्षा करके धवल दत–पॅक्ति की ओर ध्यान दिया।

ऐसे गुणग्राही व्यक्ति ही महान् पुरुष बन सकते है। जिसकी जैसी दृष्टि होती है उसे वैसी ही सृष्टि दिखाई देती है। जेसे किसी व्यक्ति ने किसी सस्था मे दान दिया या दीन, हीन, अनाथ, असहाय का सहयोग किया, तो जो गुणग्राही सज्जन व्यक्ति है, वे कहेगे कि यह व्यक्ति बहुत उदारहृदयी है खुले हाथो से परोपकार मे धन खर्च करता हे। प्राप्त सपत्ति का सदुपयोग कर रहा है, किन्तु जो अवगुणप्रेमी होते है वे कहते हे– क्या हे दो नम्बर का पैसा हे, अत खर्च कर रहा है या कहेगे– यह बहुत उडाऊ प्रकृति का ह। पूर्वजो की कमाई को इधर–उधर खर्च करके बाबा बनने की तयारी कर रहा है। अभी पता नही चलता, पैसे खत्म हो जाऍगे, उस समय पता चलेगा।

अर्थात् जो जैसा होता है, उसे दुनिया भी वैसी ही दिखाई देती है और वैसी ही प्रतिक्रिया भी करता है।

एक बार एक ऊँट जगल मे जा रहा था। रास्ते मे सियार मिला। सियार ने कहा—ऊँट मामा! आप कहाँ जा रहे हो? ऊँट—सारी दुनिया टेढी—मेढी है, बेकार है, अत मैं यहॉ से जा रहा हूँ। सियार—दुनिया टेढी—मेढी कैसे है? मुझे समझ मे नही आया है। जरा स्पष्टता से बताइये। ऊँट— भाई सियार! देखो, मैने हाथी को देखा, उसका शरीर लम्बा—चौडा, बलिष्ठ है किन्तु वह लटकती हुई सूँड एकदम टेढी है। रास्ते मे मैने सॉप को देखा। वह सॉप भी टेढा—मेढा दिखाई दिया। कुत्ते की पूँछ एकदम टेढी बनी हुई है। गाय, भैस, बैल के सींग टेढे है। इस प्रकार यह सारी दुनिया ही टेढी है। ऊँट के मुँह से ऐसा सुनकर सियार मुस्कराता हुआ बोला कि भाई तुम जरा अपने आपको भी तो देख लो। और तो सभी एक—दो जगह से टेढे होगे किन्तु तुम स्वय तो अठारह जगह से टेढे हो। इस प्रकार व्यक्ति की जैसी दृष्टि होती है वैसा ही देखता है और कभी—कभी तो वैसा ही बन जाता है। एक लडका एक भाई की टेढी चाल की बहुत नकल निकालता था। बार—बार नकल निकालने से कालान्तर मे वह वैसा ही बन गया।

कुत्ते को कॉच के महल मे कुत्ते ही दिखाई देते है और सही कुत्ते समझकर वह उनसे लडने लगता है। इसी प्रकार अवगुणी व्यक्ति को हर व्यक्ति मे अवगुण ही दिखाई देते है। मक्खी स्वच्छ जगह को छोडकर गदी जगह पर बैठती है। शरीर पूरा स्वच्छ हो, पर मक्खी फोडे पर ही जाकर बैठती है। चीटी सगमरमर के बने सुदर फर्श मे भी छिद्र ही देखती है, ढूँढती है। स्वच्छ आकाश मे उडते हुए गिद्ध पक्षी की दृष्टि मास के टुकडे पर ही रहती है। गधा स्वच्छ जमीन को छोडकर कचरे की बनी उकरडी पर ही लोटता है। गोशालक ने भगवान् महावीर जैसे अप्रमत्तता के साथ स्वच्छ जीवन जीने वालो मे भी दोषो को चुन लिया। वह लोगो के सामने कहने लगा कि देखो! भगवान् महावीर पहले अकेले रहते थे, अकेले ही विचरते थे, आत्मा को लक्ष्य बनाकर तप और ध्यान किया करते थे, पर अव तो बिल्कुल वदल गये है। वे जहा भी जाते हैं, चेले—चेली मूँडते फिरते हैं। हजारो चेले चेली बना लिये। उनके अनुसार लगता है चेले—चेली बिना मोक्ष संभव ही नहीं है। अगर चेले—चेली से ही मोक्ष सभव है तो फिर साढे बारह वर्ष अकेले ही क्यो रहे? इतना समय बेकार क्यो किया? अगर अकेले रहने मे मोक्ष की ओर गति थी तो फिर अब बहुतो मे क्यो रहने लगे? यह तो एक नाटक खेलने वाली वात हुई आदि। वास्तव मे कूँजडा हीरे का मूल्य नहीं जान सकता, अति गरीव व्यक्ति घी का स्वाद नहीं जान सकता। भीलनी मोतियो को छोडकर चिरमियॉ चुगने मे ही लगी रहती है। मॉ सौत के वच्चे में अवगुण ही देखती रहती है

और उस बच्चे के विषय मे अपने पति के पास शिकायत करती ही रहती है। कहा भी है–

गुणा गुणज्ञेसु गुणा भवन्ति।
ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः।।

अर्थात् जो गुणो की परख करना जानते है वही गुणो को ठीक–ठीक पहचान सकते है। निर्गुणी के लिये तो गुण भी अवगुण बन जाते है। अवगुण दृष्टि वाला व्यक्ति इस भव मे भी दु खी होता है व परभव की गति भी बिगाड लेता है। अत जीवन–यात्रा अच्छे ढग से सपन्न करने के लिए जहाँ से भी गुण मिले, वहीं से गुण इकट्ठे कर लिये जाएँ ताकि एक–एक गुण करके एक दिन परमात्मा जितने गुण एकत्रित हो जाएँ, आत्मा के सारे प्रदेश अनेक–अनेक गुणो से भर जाएँ। आत्मा मे जितनी–जितनी मात्रा मे गुण बढते जायेगे उतनी–उतनी मात्रा मे परमात्मा के स्वरूप को प्राप्त करने की योग्यता बढती चली जायेगी।

महापुरुषो के नाम गुणो के आधार पर ही चलते है। आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने से भीष्म पितामह का नाम व रामभक्त हनुमान का नाम, सत्य की कसौटी पर पूरा उतरने से हरिश्चद्र का नाम, उदारता, करुणा आदि के पीछे श्रीराम, श्रीकृष्ण के नाम आते है। इसी प्रकार 'जीओ और जीने दो' के गुण के पीछे भगवान महावीर का नाम आता है। समता गुण से हुक्मगच्छीय आचार्य नानेश प्रसिद्ध हुए।

वस्तुत दुनिया मे जो भी जयतियाँ, तिथियाँ आदि मनाई जाती है वे सभी गुणवान् महापुरुषो की मनाई जाती हैं। महापुरुष अपने गुणो की सौरभ से स्वय का जीवन सुवासित करते हुए दुनिया को भी वह सौरभ लुटाते हुए चले जाते है और उन गुणो की सौरभ को दुनिया सदियो तक ग्रहण करती रहती हे। कहा भी है–

गुणा. पूजास्थान गुणि न च लिग न च वयः।

अर्थात् गुणियो के गुण ही पूजा के स्थान होते हे। व्यक्ति की वेशभूषा या उम्र पूजनीय नहीं होती। गुणो को ग्रहण करने के लिये गुणियो के प्रति मन मे हमेशा बहुत प्रमोदभाव हाना चाहिये। जैसे गाय अपने बछडे को जितना प्यार करती है उससे भी ज्यादा गुणवानो के प्रति प्यार हो तो आपके जीवन मे गुणो के आने मे देर नहीं लगेगी। गुणानुरागी की तरफ गुण स्वत आकर्षित होते है। चित्रकार एक सुन्दर चित्र का निर्माण करने के लिए अनेक व्यक्तियो को देखता है। जिसकी नाक सुन्दर होती है, तो उसकी नाक का निर्माण अपने चित्र मे करता है, जिसकी ऑख सुदर होती हे, उसकी ऑख का निर्माण चित्र मे कर देता है। इस प्रकार चित्रकार अपने चित्र मे सुन्दर से सुन्दर अगोपाग का निर्माण करता है। जिससे हर व्यक्ति उस सुदर चित्र की ओर आकर्षित

हुए बिना नही रहता। वैसे ही महापुरुषो के अनेको गुणो से सयुक्त जीवन के प्रति हर मानव आकर्षित हुए बिना नही रहता। कहा भी है–

यदि सन्ति गुणाः पुंसा विकसन्ति एव ते स्वयं।
न हि कस्तूरि कामोदः शपथेन विभाव्यते।।

अर्थात् अगर मनुष्य मे गुण है तो वे स्वत ही प्रकट हो जाते है। कस्तूरी मे सुगध है–ऐसा बतलाने के लिये किसी की शपथ खाने की आवश्यकता नहीं है।

इसी प्रकार महापुरुषो के गुणो की सौरभ स्वत ही विकीर्ण होती हुई चली जाती है। उसे विकीर्ण करने हेतु अलग से किसी प्रयास की जरूरत नहीं पडती। गुणवान व्यक्ति यह नही सोचते कि हमारी कोई प्रशसा करेगा तो ही हम अच्छा काम करेगे। वे तो अपने ढग से निरन्तर अच्छा काम करते ही चले जाते है और अपनी जीवन–यात्रा को बहुत अच्छे ढग से सपन्न कर लेते है। अत इस सुदुर्लभता से प्राप्त मनुष्य जीवन मे ससार के सभी महापुरुषो के आदर्शमय जीवन–गुणो को एकत्रित करे और अपना जीवन भी आदर्श बनाने हेतु सजगता के साथ निरन्तर पुरुषार्थ करे।

आत्मा की पुष्टता हेतु गुणरूपी देशी घी को ग्रहण करना जरूरी है।



अशुचिमय देह - मत कर नेह

असुइं असुइ संभवं। (उत्त 19–13)

अर्थात् शरीर अशुचि से भरा हुआ है। मल, मूत्र, मास, हड्डी, खून आदि घृणित पदार्थो से बना हुआ है। इसी प्रकार अशुचिमय कारणो से ही घृणित और निदनीय मैथुन से ही अब्रह्मचर्यमय क्रिया से ही इसकी उत्पत्ति हुई है।

प्रत्येक ससारी आत्मा जड द्रव्यो से मिश्रित अवस्था मे हे। आत्मा शुद्ध है तो शरीर अशुद्ध है। मनुष्य और पशु–पक्षी को प्राप्त ओदारिक शरीर तो भयकर अशुद्ध पदार्थो से आपूरित है। जिस समय जीव गर्भ मे आता है, उस समय उत्पत्ति के प्रथम समय मे ही अति गध वाले, अनेक कीडो के समूह से व्याप्त निकृष्टतम समझे जाने वाले तत्त्व रज और वीर्य का आहार करता है और उसी से अपने शरीर का निर्माण करता हे और ऐसी ही मास, रुधिर से भरी हुई एक प्रकार की थैली से लिपटा रहता है। कहॉ तो रुधिर की एक बूँद व्यक्ति को अपने शरीर पर क्या, कपडे पर भी पसन्द नहीं है जबकि नौ–नौ महीने तक उस गदगी से आपूरित थैली मे रहना पडता है। देवता ऐसी गदी जगह पर आने से घबराते हैं। उन्हे पहली घवराहट तो इस वात की होती है कि मुझे ऐसे अशुचिमय गर्भ के स्थान मे निवास करना पडेगा तथा दूसरी घबराहट इस बात की होती है कि मै उन अशुचिमय, घृणित रज ओर वीर्य का आहार कैसे करूॅगा? कहॉ तो वे अमृत के समान रसमय वैक्रिय पुद्गलो का आहार कर रहे थे और कहॉ ये गदगीभरे पुद्गल। जिन निरर्थक पुद्गलो को स्त्री शरीर बाहर फेकता था उन्हीं पुद्गलो से यह शरीर बनने लग जाता है। उन्हीं से नाक, कान, ऑख, हाथ और पेर आदि अगोपाग तैयार होते है। यह सब सोचते हुये ही व्यक्ति को घृणा आने लगती है।

यह शरीर अति घृणित पुद्गलो से ही बना है और ऐसे ही गदे पुद्गलो का ही अक्षय भडार है। इस मोटे–ताजे दिखने वाले शरीर के अन्दर आठ सेर खून, चार सेर चर्बी, दो सेर मस्तिष्क मज्जा, आठ सेर मूत्र, दो सेर विष्ठा, आधा सेर सेडा, पाव सेर वीर्य भरा हुआ है। बाकी हड्डियो का वजन है। ऐसे इन सारे घृणित पुद्गलो पर एक पतली–सी चमडी का कवर है। जैसे पलस लेटरिन के हौज पर संगमरमर के पत्थर लगाकर ऊपर से सुन्दर बना दिया जाता है किन्तु अन्दर मे वही गदगी भरी रहती है और ऐसी बदबू आती है कि वहॉ खडा रहना भी मुश्किल हो जाता है। वैसे ही जो सुदर–सुदर

चमकती हुई चमडी ऊपर से दिखती है, उसमें फ्लस लेटरिनवत् ही सारी गदगी भरी रहती है। कहा भी है—

यदि नामस्य कायस्य यदन्तस्तद् बहिर्भवेत्।
दण्डमादाय लोकेऽयं शुनः काकश्च वारयेत्।।

अर्थात् अगर बाहर की चमडी हटा दी जाय तो स्थिति ऐसी आयेगी कि हर समय कुत्ते और कौए को हटाने के लिए हाथ मे डडा लेके ही बैठना पडेगा।

एक मिट्टी का घडा, जो अशुचि से भरा हुआ है और उसमे से अशुचि ही झर रही है, ऐसा घडा भीतर से भी अपवित्र होता है और बाहर से भी अपवित्र होता है। इसी प्रकार यह शरीर भीतर से मास, रक्त, मेद, शुक्र आदि गदगी से परिपूरित है और शरीर के कान, नाक और नौ द्वारो से निरंतर गदगी बाहर आती रहती है। तथा रोमकूपो से भी निरंतर गदगी का स्राव प्रवाहित हो रहा है।

मानव बढिया सी ड्रेस पहनकर अकडता है। हर किसी स्थान पर बैठना पसद नही करता कि मेरे कपडे धूल से गदे हो जाएँगे। एक दाग भी कपडे पर नहीं लगाना चाहता। छोटा बच्चा चाहे कितना भी रो रहा हो, पर वह अपनी गोद मे इस डर से नहीं उठाता कि मेरे कपडे गंदे हो जाएँगे। किन्तु यह पता नही कि शरीर के रोमकूपो मे से निरन्तर गंदगी बाहर आ रही है और वह कपडे को गदा बना रही है। ऐसे गदे पदार्थ इस शरीर मे भरे हैं जिनकी एक बूँद भी कपडे पर लग जाय तो जैन धर्मानुयायी शास्त्र का स्वाध्याय नहीं करते, माला नहीं फेरते। आलकारिक शब्दो मे बनी भगवान् की स्तुति नहीं करते। हिन्दू समाज पूजा–पाठ नहीं करता। मुसलमान लोग नमाज नहीं पढते।

ऐसे अपवित्र पदार्थो से बने शरीर को कितना भी साफ करो, वह साफ होने वाला नहीं है। स्याही की टिकिया को दूध से धोया जाय तो भी स्याही की टिकिया शुद्ध नही होती अपितु दूध ही गंदा हो जाता है। उसी प्रकार शरीर को पानी से धोने से शरीर साफ नहीं होता अपितु वह पानी शरीर के संसर्ग से और ज्यादा गदा हो जाता है। इस गदे शरीर पर बढिया से बढिया साबुन रगड लो व मनोबद पानी से शरीर को रगड–रगड कर धो लो फिर भी शरीर रचमात्र भी साफ नहीं हो सकता। इस सुन्दर शरीर के सम्पर्क मात्र से ही वस्तुएँ गदी हो जाती है। जिस कपडे को सवेरे पहना हे वह शाम को खोलकर अपने भाई को पहनने दो, तो वह नहीं पहनेगा बल्कि अपना अपमान समझेगा। जिस गहने को जेठानी ने पहले पहन लिया है उस गहने को देवरानी को पहनने दिया तो वह उतनी खुश नहीं होती जितनी नया गहना पहनकर खुश होती है।

बादाम, इलायची, केशर आदि के बने हुए दूध से भरे गिलास को यदि आपने अपने होठ तक लगा लिया और मेहमान से कहो कि आप पी लीजिये

तो वह मेहमान उस दूध को पीना बिल्कुल पसद नहीं करेगा।

आज का युवा वर्ग जिस सुदर शरीर वाली युवती को प्राप्त करने के लाखो प्रयत्न करता है, यहॉ तक कि अपनी जाति, कुल व पूर्वजो की प्रतिष्ठा को भूलकर अपनी इज्जत को भी दॉव पर लगा देता है, ऐसी सुदर युवती के गले से नीचे उतरे दूध को तुरत वापस निकाल कर युवक को पीने हेतु दिया जाय तो वह कदापि नहीं पीयेगा बल्कि घृणा की दृष्टि से देखेगा। यह शरीर कितना घृणात्मक और वीभत्स है, इसे हम शास्त्रीय उदाहरण से भी स्पष्ट समझ सकते हैं –

मल्लीकुमारी के जीव के प्रति उसके पूर्व–साथियो का जो अनुराग का सबध था, वह विभिन्न निमित्त पाकर जाग्रत हो गया और सयोगवश छहो राजा एक ही साथ उससे विवाह करने को दल–बल के साथ मिथिला नगरी जा पहुॅचे। उधर मल्लीकुमारी ने अवधिज्ञान के साथ जन्म लिया था। अवधिज्ञान के प्रयोग से उन्होने अपने छहो साथियो की अवस्थिति जान ली थी। भविष्य मे होने वाली घटना भी उन्हे विदित हो गई थी अतएव उसके प्रतिकार के लिए उन्होने निम्न प्रकार तैयारी की–

मल्लीकुमारी ने हूबहू अपनी जैसी एक प्रतिमा का निर्माण करवाया। अदर से वह पोली थी और उसके मस्तक मे एक बडा–सा छिद्र था। इस प्रतिमा को देखकर कोई नहीं कह सकता था कि यह मल्ली नहीं, मल्ली की प्रतिमा है। मल्लीकुमारी जो भोजन–पान करती उसका एक पिड मस्तक के छेद मे से प्रतिमा मे डाल देती थी। वह भोजन–पानी प्रतिमा के भीतर जाकर सडता रहा और उसमे अत्यन्त अनिष्ट दुर्गंध उत्पन्न होती। किन्तु ढक्कन होने से दुर्गंध वहीं की वहीं दबी रहती थी। जहॉ प्रतिमा अवस्थित थी, उसके इर्द–गिर्द मल्ली ने जालीदार गृहो का भी निर्माण करवाया था। उन गृहो मे बैठकर प्रतिमा को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता था, किन्तु उन गृहो मे बैठने वाले एक–दूसरे को नहीं देख सकते थे।

जब छहो राजा मल्लीकुमारी का वरण करने के लिए एक साथ मिथिला पहुॅचे तो राजा कुभ बहुत असमजस मे पड गए। कुभ राजा ने छहो की मॅगनी अस्वीकार कर दी थी जिससे वे छहो मिलकर राजा कुभ से युद्ध करने के लिए तत्पर थे। छहो ने एक साथ चढाई की।

राजा कुभ पराजित हो गए। वे गहरी चिन्ता मे निमग्न थे। जब मल्ली उन्हे प्रणाम करने गई तो उन्हे चिन्तित पाया। चिन्ता का कारण जानने के बाद मल्ली ने अपने पिता से कहा– 'आप चिन्ता त्यागिए और प्रत्येक राजा के पास गुप्त रूप से दूत भेज कर कहला दीजिए कि आपको ही मल्लीकुमारी दी जाएगी। आप गुप्त रूप से सध्या समय राजमहल मे आ जाइए। उन सब को जालीदार गृहो मे अलग–अलग ठहरा दीजिए।'

कुभ राजा ने ऐसा ही किया। छहो राजा मल्लीकुमारी का वरण करने की लालसा से गर्भगृहो मे आ पहुँचे। प्रभात होने पर सबने मल्ली की प्रतिमा को देखा और समझ लिया कि यही कुमारी मल्ली है। सब उसी की ओर अनिमेष दृष्टि से देखने लगे। तब मल्लीकुमारी वहाँ पहुँची और प्रतिमा के मस्तक के छिद्र को उघाड दिया। छिद्र को उघाडते ही उसमे से दुर्गंध निकली, वह असह्य हो गई। सभी राजा उससे घबरा उठे। सबने अपनी–अपनी नाक दबाई और मुँह बिगाड लिया। विषयासक्त राजाओ को उद्‌बुद्ध करने का यही उपयुक्त अवसर था। मल्लीकुमारी ने नाक–मुँह बिगाडने का कारण पूछा। सभी का एक ही उत्तर था– असह्य बदबू!

तब राजकुमारी ने राजाओ से कहा–देवानुप्रियो! इस प्रतिमा मे भोजन–पानी का एक–एक पिण्ड डालने का ऐसा अनिष्ट एव अमनोज्ञ परिणाम हुआ तो इस औदारिक शरीर का परिणाम कितना अशुभ, अनिष्ट और अमनोज्ञ होगा! यह शरीर तो मल, मूत्र, मास, रुधिर आदि की थैली है। इसके प्रत्येक द्वार से गदे पदार्थ झरते रहते है। सडना–गलना इसका स्वभाव है। इस पर से चमडी की चादर हटा दी जाए तो यह शरीर कितना सुन्दर प्रतीत होगा? यह चीलो–कौओ का भक्ष्य बन जाएगा, इसका असली वीभत्स रूप प्रकट हो जाएगा। तो मल मूत्र की इस थैली पर आप क्यो मोहित हो रहे है?

इस प्रकार सबोधित करके मल्लीकुमारी ने पूर्वजन्मो का वृत्तान्त उन्हे कह सुनाया। उन छहो राजाओ को पूर्ववृत्तान्त को सुनकर जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। सब सबुद्ध हो गए। समग्र वातावरण मे अनुराग के स्थान पर विराग छा गया।

इस शरीर के लिए कहा है– **शरीर व्याधि मंदिर।** अर्थात् यह शरीर अनेक व्याधियो का मदिर है। कहते हैं कि इस शरीर मे साढे तीन करोड रोम होते है और प्रत्येक रोम के मूल मे पौने दो रोग छिपे रहते हैं। इस प्रकार साढे पॉच करोड से भी अधिक रोग इस शरीर मे छिपे हुए है। व्यक्ति की पुण्यवानी है तब तक तो ठीक। नही तो जरा से निमित्त से भी वे छिपे रोग उभरकर अति शीघ्र सामने आ जाते है। धूप मे चलने से हैजा, सर्दी मे बुखार, खॉसी आदि। कोई भी निमित्त नही मिले और पापकर्मो का उदय है तो अचानक ही गॉठ उठ जाती है। चेकप करवाने पर वह केसर की निकल जाती है ओर गभीर रोग से व्यक्ति घिर जाता हे।

सनत्‌कुमार चक्रवर्ती का शरीर अत्यधिक सुदर था, देवता भी जिनकी तारीफ करते थे। उस तारीफ को सुनकर एक देव सनत्‌कुमार को देखने आया था, वृद्ध शरीर के परिवेश मे जूतो की पोटली कधे पर लेकर के। राजमहल के बाहर आकर द्वारपाल से वोला–मै वहुत दूर से सम्राट के रूप की प्रशसा सुनकर आ रहा हूँ। चलते–चलते इतनी जूतियॉ घिस गई हे। म अभी दर्शन करना चाहता हूँ। द्वारपाल ने अन्दर जाकर सम्राट को सारी वात

बता दी। सम्राट ने आगत व्यक्ति की प्रबल जिज्ञासा को समझकर एक बार उस समय आने की आज्ञा दे दी। वह वृद्ध अन्दर गया। उस समय सम्राट स्नान करके आये ही थे, अत बदन खुला था। देव शरीर की चमक को देखते ही कहने लगा– अहो रूप। अहो रूप। सम्राट ने कहा– अभी क्या देखते हो? जब मैं सभा मैं आऊँ तब देखना। सम्राट सजधज कर अच्छे आभूषण पहनकर सभा मे गए और देखा उस बूढे की ओर, यह बताने के लिए कि मैं कितना सुदर लग रहा हूँ। पर देव ने सिर हिला दिया। सम्राट ने खुश नहीं होने का कारण पूछा। देव ने कहा– पहले कुछ और बात थी और अब कुछ और ही है। सम्राट ने कहा–ऐसा क्यो? देवता ने कहा– अब आपके शरीर मे भयकर 16 महारोगो की एक साथ उत्पत्ति हो गई है। अगर आपको विश्वास न हो तो एक पीकदानी मे थूक कर देख लीजिए। जैसे ही राजा ने थूका तो देखा कि उस थूक मे कीडे कुलबुला रहे थे। राजा को महत् आश्चर्य हुआ। ऐसा परिवर्तन शरीर का देखकर उन्हे वैराग्य आ गया और दीक्षा ग्रहण कर ली। इससे स्पष्ट होता है कि शरीर मे भयकर बीमारियॉ छिपी हुई हैं। फिर भी अपने इस शरीर की बनावट के विषय मे अज्ञानी बने रहना आदमी के लिये शर्मनाक है। जैसे ही पुण्य की कमी व पाप का उदय होता है और बीमारियॉ उद्भूत हो जाती है।

इस प्रकार घिनौने, अशुचि पुद्गलो से परिपूरित इस शरीर की कोई कीमत नहीं है। जब तक इसमे चैतन्य आत्मा विराजमान है तब तक तो ठीक है किन्तु जैसे ही आत्मा शरीर को छोडकर चली जाती है उसके बाद इस शरीर मे से भयकर दुर्गंध फूटने लगती है। परिवार वाले उस मृत, दुर्गंधमय शरीर को घर मे थोडी देर भी रखना पसद नहीं करते। शीघ्रता से जला देते हैं। पशु का शरीर तो मृत्यु के बाद भी काम आता है पर मनुष्य का शरीर किसी भी काम मे नहीं आता है। यद्यपि यह शरीर मल–मूत्र का पिटारा है फिर भी इसमे ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप रत्नत्रय तैयार करने की क्षमता रही हुई है जिनके सहयोग से सर्व कर्मशत्रुओ पर विजय प्राप्त करके अनत सुख के साम्राज्य को प्राप्त किया जा सकता है। जैसे समुद्र खारे पानी से भरा रहता है तथा उसमे गिरने वाले ककर, लकडी, पत्थर आदि सामग्री भी खारे बन जाते हैं। मानवो के लिए वह पानी पीने हेतु काम नहीं आता है किन्तु नकाम खारे पानी से भरे समुद्र मे मोती बनाने की सामर्थ्य होती है। ठीक उसी प्रकार मानव के शरीर से ही मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। चार गति, चौरासी लाख जीवयोनि मे एक मनुष्य योनि ही ऐसी है जिसमे कर्मो से मुक्त होने का पुरुषार्थ किया जा सकता है, अत इस प्राप्त शरीर से लाभ उठाना चाहिए। शरीर की ऊपरी सुन्दरता पर मोहित न होकर, शरीर की सेवा तक ही न अटककर आत्मसाधना मे लग जाना ही ज्यादा उपयुक्त है।



ताश का महल

इमं शरीर अणिच्चं (उत्त सूत्र 18/23)

अर्थात् यह शरीर अनित्य है, न मालूम किस क्षण नष्ट हो जाने वाला है।

ससार मे जितने भी दृश्यमान पदार्थ है, वे भी अनित्य, अध्रुव हैं, क्षणभगुर है। जिस प्रकार सायकाल का प्रकाश व आकाश मे चमकने वाली बिजली का प्रकाश थोडे समय के लिये ही रहता है उसी प्रकार धन, तन आदि सभी वस्तुएँ अस्थिर है। किसी भी क्षण नष्ट हो सकती है तन और धन दोनो मे से आपके अति नजदीक तन है और धन से तन अधिक प्रिय स्वाभाविक रूप से होता है। वह शरीर कैसा है इस विषय मे कहा गया है– **शीर्यते इति शरीरम्।** अर्थात् जो प्रतिक्षण शीर्ण होता जाता है उसे शरीर कहते है। जड पुद्गलो से बने शरीर का स्वभाव प्रतिक्षण परिवर्तित होने का है। वैज्ञानिक लोग भी कहते है कि लगभग सात वर्ष मे शरीर के समस्त परमाणु पलट जाते है।

यह शरीर कॉच की शीशी, कच्चा घडा व ताश के महलवत् कच्चा व कमजोर है। कॉच की शीशी को कितना भी सॅभालकर रखे पर वह एक दिन फूटने वाली है। कच्चे घडे को थोडी–सी ठेस लगते ही शीघ्र फूट जाता हे। उसी प्रकार इस शरीर को नष्ट होने मे देर नहीं लगती। शरीर मे परिवर्तन तो प्रतिपल ही होता रहता है। इसीलिए तो बचपन से जवानी व बुढापा आदि अवस्थाऍ प्राय सभी के शरीर मे निर्मित होती हैं। परिवर्तन होते–होते ही कभी भी शरीर नष्ट हो जाता है। कुछ पता नहीं चलता कि इस जीवन का अन्त कब है? वुढापे मे अन्त है या जवानी मे या बचपन मे हे? कभी भी, किसी भी समय जीवन का अन्त हो सकता है। कोई–कोई तो गर्भावस्था मे ही जीवन का अन्त कर लेते हैं। देवताओ की व योवन उत्तम महापुरूषो की उम्र अनपवर्तनीय होती है यानी बीच मे टूटने वाली नहीं होती है, फिर भी उनका शरीर भी नष्ट अवश्य होता हे। कहा भी हे– **यद् दृष्ट तत् नष्टं**। अर्थात् जो–जो दृश्यमान वस्तु है वह–वह नष्ट अवश्य होती हे।

शरीर चाहे तीर्थकर या पट्खडाधिपति चक्रवर्ती का ही क्यो न हो, पर वह एक दिन अवश्य नष्ट होगा।

एक धनवान व्यक्ति मृत्यु–शैया पर सोया हुआ अन्तिम श्वासे गिन रहा

था। बीमारी के कारण शक्ति प्राय क्षीण हो गई थी। बोला नही जा रहा था। सोच रहा था– थोडे–से श्वास और बढ जायँ व थोडी–सी बोलने की शक्ति आ जाय तो मैं अपने पुत्रो को यह बता दूँ कि धन घर मे किस जगह गडा हुआ है। अपनी कुछ श्वास और बढ जाय इसके लिये वह हजारो रुपये डॉक्टरो को देने हेतु तैयार है, पर उस अपार धन से कुछ श्वास भी बढ नहीं सकते। एक उर्दू विचारक ने लिखा है–

कौन-सा झोका बुझा देगा किसे मालूम है।
जिन्दगी एक शमअ रोशन है, हवा के सामने।।

अर्थात् यह जिन्दगी एक जलती हुई मोमबत्ती के समान है। पता नहीं, किस हवा के झोके से बुझ सकती है।

कोई व्यक्ति बीमारी के झोके से अकाल मे ही अपनी जिन्दगी की लौ को बुझा देता है। तो कोई एक्सीडेंट आदि से अपनी लौ को बुझा देता है। इसी प्रकार जरा भी खान–पान की गडबड, सर्दी, गरमी के वायुमडल का असर भी बाहर से मजबूत दिखने वाले शरीर को ले डूबता है। कैसी स्थिति है इस अनित्य शरीर की। यह शरीर लकडियो के मकानवत् अस्थियो का ढॉचा है, इसमे शिराओ का जाल है। पता नहीं किस समय कौन–सी नस खराव हो जाय व टूट जाय, कोई भरोसा नहीं है। यह जीवन एक निरन्तर वहती हुई सरिता के समान अस्थिर है। चलता–चलता श्वास कभी भी रुक सकता है।

एक बार प्रभु ऋषभदेव समवसरण मे विराजमान थे। बारह प्रकार की परिषद देशना सुनने बैठी हुई थी। भरत चक्रवर्ती भी देशना सुन रहे थे। उनके मन मे विचार आया कि धन्य है प्रभु ऋषभदेवजी को व सभी सत महापुरुषो को व श्रावक–श्राविकाओ को। सभी अनेको प्रकार के त्याग–प्रत्याख्यान, त्याग–तपस्या आदि से अपने प्राप्त मानवभव के समय को सार्थक वना रहे हैं। इस भव, परभव को सुधारने मे लगे हुए हैं पर मेरा क्या होगा? कहते हें– राजेश्वरी, नारकेश्वरी! ऐसा सोचते हुए भरत का मन आकुल–व्याकुल वन रहा था। ससार के चक्र मे घूमना पडेगा। ऐसा सोचते हुए घबराहट पैदा हो गई और तुरत खडे होकर भगवान् से पूछने लगे कि भगवन्! इस ससार मे फॅसे हुए मेरे जैसे व्यक्ति का क्या होगा? कब तक मै इस ससार–सागर मे गोते खाता रहूँगा?

भगवान् ने भरत से कहा– हे भरत! तुम अब इस ससार मे परिभ्रमण करने वाले नहीं हो। तुम तो चरमशरीरी जीव हो। भरत को आत्मिक प्रसन्नता हुई। पर समवसरण मे सभी तरह के श्रोता थे। एक भाई को यह बात अच्छी नहीं लगी। भगवान् के समक्ष तो कुछ बोल नहीं सका किन्तु गॉव मे जाकर लोगो को कहने लगा– अरे! आज तुम भगवान् की देशना सुनने नहीं गये। लोगो ने कहा–क्यो, आज कोई विशेष बात थी? सुनार– अरे! आज तो मोक्ष की सीटें

रिजर्वेशन के टिकिट भगवान् दे रहे थे। गॉव के श्रेष्ठी गण– किस–किस को टिकिट मिले? सुनार– अरे ! किसको मिले? भगवान् के बेटे भरत को ही। जो छ खड पर एकछत्र राज्य कर रहे है। जिनके बहुत बडा अन्त पुर है। एक समय के चौके मे लाख मन नमक लगता है। इतना आरभ–समारंभ जिनके चौके मे होता है, छ खड को जीतने के लिये बडे–बडे युद्ध लडने पडे होगे। राजसत्ता का सुख भोगने हेतु क्या नहीं करना पडता? ऐसे नरकगामी व्यक्ति को भी मोक्ष की सीट दे दी गई है। यह सरासर पक्षपात नहीं तो क्या है? साधारण लोगो के दिमाग मे बात फिट हो गई। कहने लगे– बात बिल्कुल ठीक है। इतने–इतने धर्मात्मा साधु–साध्वी, श्रावक–श्राविका बैठे हैं, उन्हे किसी को मोक्ष की सीट न देकर एक चक्रवर्ती के लिये मोक्ष की घोषणा भगवान ने कैसे कर दी?

स्थान–स्थान पर ऐसी चर्चाएँ होने लगीं। भरत चक्रवर्ती के गुप्तचरो को भी यह बात मालूम हुई। उन्होने चक्रवर्ती को जाकर बताया। भरतजी ने सोचा मेरे लिए कुछ भी कहे किन्तु भगवान् के लिए गलत बात फैलाई जा रही है। यह ठीक नहीं है। इस सुनार को शिक्षा देनी चाहिए। भरतजी ने राजसेवकों को भेजकर सुनार को बुलाया और उससे पूछा कि तुमने ऐसी–ऐसी बात गॉव के लोगो के सामने की है क्या? चक्रवर्ती के समक्ष सुनार धूजने लग गया था। अत उसने एक ही बार मे हॉ कर ली। भरतजी ने एक तेल का कटोरा मॅगाकर तेल से लबालब भर दिया। सुनार के हाथो मे वह कटोरा पकडाकर आदेश दिया कि इस कटोरे को लेकर जाओ और पूरे गॉव मे घूमकर आओ। ध्यार रहे, इस कटोरे मे से एक भी तेल की बूँद नीचे नहीं गिरने पावे। अगर तेल की एक भी बूँद नीचे गिर गई तो ये मेरे सैनिक नगी तलवार लिये तुम्हारे साथ मे है, अत ये तुम्हारा सिर उसी समय काट देगे।

भरत चक्रवर्ती की आज्ञा पाकर सुनार उस कटोरे को लेकर धीरे–धीरे वहॉ से चला। पूरे नगर मे चौराहे–चौराहे पर नाटक हो रहे हैं, बाजे बज रहे हैं, खेल–तमाशे हो रहे हैं, पर स्वर्णकार का ध्यान बस एकमात्र तेल के कटोरे की तरफ ही है। उसने पूरे नगर मे घूमकर भी लबालब भरे तेल के कटोरे मे से एक बूँद भी नीचे नहीं गिरने दी और चक्रवर्ती के पास पहुँच गया। भरतजी ने पूछा– भाई! तुम पूरे नगर मे घूमकर आ गये हो। जरा यह बताओ कि रास्ते मे तुमने क्या–क्या देखा? स्वर्णकार– राजन्! मेरे को रास्ते मे कुछ नहीं दीखा। मुझे तो सिर्फ यह तेल का कटोरा ही नजर आ रहा था। मेरा सम्पूर्ण ध्यान इस ओर था कि कहीं तेल के कटोरे मे से एक बूँद भी नीचे न गिर जावे। भरतजी– अब तो तुम समझ गये होओगे। स्वर्णकार– हॉ, मै मौत से बच गया हूँ। भरतजी–भाई! तुम्हारे सामने मौत का भूत था, अत तुम्हारा ध्यान रास्ते मे हो रहे रग–राग, नाटक, खेल आदि की तरफ नहीं गया। इसी

प्रकार मेरे ऊपर भी कच्चे धागे से बॅधी तलवार निरन्तर लटक रही है। पता नहीं किस समय वह मेरी गर्दन पर गिर जाय, इसका पता नहीं है। शरीर, धन, सम्पत्ति, परिवार--सभी कुछ दृश्यमान जगत् अनित्य है। न जाने किस समय ये अपने से छूट सकते हैं अत मैं हमेशा क्षणभगुरता का चितन करता हुआ अपनी आत्मा की ओर ध्यान रखता हू।

भरतजी छ खड पर राज्य करते हुए भी आत्मस्थ रहते थे अत भगवान् ऋषभदेव ने भरत को चरमशरीरी बताया। प्रतिफलस्वरूप गले का हार बाद मे खोलना पडा। पहले केवलज्ञान प्राप्त हो गया। महल बाद मे छोडा, पहले चार कर्म को क्षय कर लिया। भगवान् महावीर स्वामी ने फरमाया है--

कुसग्गे जह ओसविदुए, थोव चिट्ठई लम्बमाणए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयमं मा पमायए।।

अर्थात् यह जीवन कुश के अग्रभाग पर स्थित जलबिदु के समान है। अनायास ही मरणधर्मा पवन के एक झोके के लगते ही धराशायी हो सकता है। अजली मे भरा हुआ पानी धीरे-धीरे, थोडा-थोडा, रिसते-रिसते एक समय ऐसा आता है कि पूरा ही समाप्त हो जाता है। जिस गोरे--गोरे जवान शरीर पर मनुष्य इठलाता रहता है वह भी स्थाई रहने वाला नहीं है। जवानी तो उस पर्वतीय नदी के समान है। जिसमे वर्षा के कारण पूर आ जाता है और थोडी ही देर मे उतर जाता है। इसी तरह यह जवानी, यह सुन्दर कहलाने वाला शरीर थोडे ही समय टिकने वाला है। कहा भी है--

गोरो-गोरो गात देखि, काय को गुमान करे,
रंग तो पतंगा रंग, कल उडि जायगो।
धुऑ कैसी धुंध जैसे, दिन रात न लागे वार,
नदी के किनारे रूख, कैसे ही ठहरायगो।।
बोलता से बोलिये, न बोलिये गुमान कर,
यौवन गॅवाया पीछे, कोडी न लहायगो।
मानुष की गंदी देह, जीवित ही आवे काम,
मुआ बाद काग कुत्ता, स्यार हु न खायगो।।

कवि ने उक्त पद्य मे बताया है कि पतग पर थोडी धूल लगते ही उसका रग खराब हो जाता है वैसे ही तेरी जवानी का रग उडते भी देर न लगेगी। आकाश मे धुऍ के गोट-के-गोट उडते हैं, पर जैसे ही हवा चलती हे ओर वे सारे गायब हो जाते है, वैसे ही यह जवानी भी कुछ समय बाद ही गायब हो जाती है। नदी के किनारे खडा वृक्ष कभी भी नदी क प्रवाह क साथ बह सकता है। वह ज्यादा समय कायम नही रहता हे। वैसे ही जवानी भी स्थायी रहने वाली नहीं है। अत इस जवानी पर घमड नहीं करना चाहिए और इस जवानी का सदुपयोग आत्मिक उन्नति हेतु साधना मे करना चाहिये। आज

किसी युवक–युवती से कहा जाय कि आप धर्म–ध्यान कीजिए तो वे यही कहते है– महाराज ! बस, पचास–पचपन वर्ष बाद अवश्य करेगे। पर जब बुढापा आ जायेगा, जब शरीर अशक्त हो जायेगा, शरीर रोगो से घिर जायेगा, उस समय आप क्या धर्म–ध्यान कर लोगे? रोगो से ग्रस्त होने पर, व्यक्ति के पास कितना भी धन हो, शाही महल हो, मनोरजन व भोगोपभोग के साधन हो, हाजी, हाजी करने वाले नौकर हो। सब कुछ ठाट हो मगर स्वय मालिक खाट पर पडा हो, तो वह उन सबको देखकर झुरता है। उसे मार्मिक पीडा होती है कि बडी उत्साह व उमग से सप्राप्त किये गये भोगोपभोग की सामग्री को वह नहीं भोग पाता। इससे तो एक मजदूर भी ठीक होता है जो रोगरहित रहकर, आराम से खा–पीकर, सुख की नींद सोता है।

शरीर की तरह से धन भी अनित्य है। लक्ष्मी चचल ही होती है। आज का करोडपति, कल का रोडपति बन जाता है व आज का रोडपति कल का करोडपति बन जाता है। आये दिन पेपर मे पढने को मिलता है कि अमुक पार्टी फेल हो गई, अमुक भिखारी के लॉटरी खुल गई, आदि। पुण्य का उदय होता है तो धन कहीं से भी प्राप्त हो जाता है व पाप का उदय होता है तो आया हुआ धन भी वापस चला जाता है। धन एक स्थान पर कभी टिकता नही है।

सत्ताधीश मानव की सत्ता भी अनित्य है। कल कुर्सी पर कोई और बैठा है और आज कोई और ही बैठा है व भविष्य मे कोई और ही बैठेगा। अधिकार कभी किसी के पास स्थायी नहीं रहता है। कभी किसी के हाथ मे तो कभी किसी के हाथ मे चला जाता है।

परिवार भी अनित्य है। आज है और कल नहीं है। सगर चक्रवर्ती के साठ हजार पुत्र थे। सबसे बडे पुत्र का नाम था जन्हुकुमार। वह पाटवी राजकुमार बहुत ही विनम्र, आज्ञापालक, पितृभक्त था। उसके द्वारा किये गये प्रत्येक कार्य के प्रति सगर पूर्ण रूप से सतुष्ट रहते थे। एक बार सगर चक्रवर्ती ने अपने पुत्र को इच्छानुसार वर मागने हेतु कहा। जन्हुकुमार ने कहा– पिताजी, मेरी एक इच्छा है कि मै अपने सारे भाइयो के साथ आपश्री के चौदह रत्न व चतुरगिणी सेना आदि लेकर समस्त भूमडल का भ्रमण करूँ और वन, नदी, पर्वत आदि सभी कुछ देखूँ।

पिताजी ने अपने सुपुत्र को सहर्ष आज्ञा प्रदान कर दी। वे 60 हजार भाई भूमडल के परिभ्रमण को निकल गये। एक बार हिमवत पर्वत पर पहुँचे। वहाँ की हरियाली व उस वन मे रहे हुये विचित्र पशु–पक्षियो को, झरनो व गुफाओ को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। जन्हुकुमार ने सोचा, यह अनेक प्रकार की सपदाओ से सुशोभित पर्वत सुरक्षित रहना चाहिए। इस विचार के साथ उस वन के चारो ओर गहरी खाई खोदने का आदेश दडरत्न को दे दिया।

देवाधिष्ठित रत्न से खाई अतिशीघ्र खुद गई किन्तु खाई खोदते वक्त एक स्थान पर दडरत्न का प्रहार भूमि के नीचे ज्वलनप्रभ नामक नागराज के नागलोक तक महसूस होने लगा। तब उसने अपने अनुचर नागो को वस्तुस्थिति का पता लगाने भेजा। सही जानकारी मिलने पर जन्हुकुमार को सूचना दी गई कि आप ऐसा न करे। जन्हुकुमार ने उस बात को स्वीकार कर लिया। जितनी गहरी खाई खुद गई उससे आगे खोदने का मना कर दिया। फिर भी वन की सुरक्षा तो करनी ही है, ऐसा सोचकर उन्होने निर्णय लिया कि गगा का जल इस खाई मे भर दिया जाय। अपने द्वारा लिये निर्णय के अनुसार खाई को पानी से भर दिया। वह खाई का पानी रिस–रिसकर नागलोक मे जाने लगा। उससे नागराज ज्वलनप्रभ बहुत कुपित हुआ। उसने बहुत–से दृष्टिविष नागराजो को सगर चक्रवर्ती के पुत्रो को समाप्त करने भेज दिया। नागराज की आज्ञानुसार दृष्टिविषधर सर्पो ने तुरत ही जन्हुकुमार आदि साठ हजार कुमारो को अपने नेत्रो की विष से परिपूरित ज्वालाओ से भस्मीभूत कर दिया।

इस घटना को लेकर देव भी दु खित हो गये। यह घटना सगर चक्रवर्ती को अचानक कैसे बताई जाये? वे इस असह्य समाचार को कैसे सहन कर पायेगे? उस देव ने सगर चक्रवर्ती को वह समाचार तरकीब से बताने का सोचा और एक बुढिया का रूप बनाकर अपने कधे पर अपने पुत्र की लोंश लेकर जोर–जोर से रोती हुई सगर चक्रवर्ती के पास पहुँची और रोते–रोते कहने लगी कि हुजूर! मेरे एकाएक बेटे को सर्प ने काट खाया है। यही एकमात्र मेरे बुढापे का सहारा था। वह भी चला गया है, तो मैं किसके सहारे से जीवित रहूँगी? मेरा क्या होगा? राजन्! आप सक्षम हैं, मेरे पुत्र को जीवित कर दीजिये। मै आपका उपकार कभी नहीं भूलूँगी। सगर चक्रवर्ती– मॉजी! तुम आर्तध्यान करना छोडो, यह समस्त ससार अनित्य है। जो आता है, वह इस ससार से पुन जाता ही है। कबीरदासजी ने कहा भी है–

चलती चक्की देखकर, दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच मे, साबुत बचा न कोय।।

तुम्हारे पुत्र का आयुष्य इतना ही था। आयुष्य कर्म के आगे सभी को नतमस्तक होना पडता है। मृत्यु जिन्दगी का ध्रुव सत्य है। इस शाश्वत सत्य को स्वीकारना ही पडता है। अत तुम अपना रोना बद करो और हिम्मत धारण करो।

बुढिया ने रोना बद कर दिया और सम्राट से पूछने लगी कि क्या वास्तव मे ससार के प्रत्येक व्यक्ति के साथ ऐसा ही होता है। राजा– मैं बिल्कुल सत्य कह रहा हूँ। प्रत्येक शरीरधारी मनुष्य के साथ ऐसा ही होता है। फिर चाहे वे तीर्थकर ही क्यो न हो? बुढिया ने अपना देव रूप बनाकर कहा कि–राजन्!

बात कुछ ऐसी ही है। आपके साठ हजार बेटे हिमवत पर्वत के पास काल–कवलित हो गये है। राजन्– थूको तुम अपने मुँह से। ऐसी बात मुँह से बोलो ही नहीं। देव– मै आपको सारी घटना बताता हूँ, जिससे आपको विश्वास हो जायेगा। यह कहते हुए उसने आद्योपान्त सारी बात कही। अपने पुत्रो के साथ घटित घटना को सुनते ही सगर चक्रवर्ती मूर्च्छित होकर सिहासन से नीचे गिर पडे। सम्पूर्ण राज्य मे हाहाकार मच गया। सारा राज्य शोक–सागर मे डूब गया। महाराज का उपचार करवाया गया। करवाने पर चेतना पुन लौटी। सम्राट् को अपने पुत्रो के बिना राज्य, महल व जीवन सभी कुछ सूना–सूना लगने लगा। चितन बना, इस जीवन का स्वभाव ही बनना–बिगडना है। अतीत मे अनत बार बना व अनागत मे भी मुक्ति से पूर्व बनता रहेगा व मिटता रहेगा। ऐसे क्षणभंगुर, अनित्य जीवन के लिये विलाप करने से क्या मतलब? आर्तध्यान करने से गयी वस्तु वापिस आने की नहीं है। इस क्षणभगुर जगत के मध्य मे अब अपने अमूल्य समय को नहीं खोना चाहता। ससार से विरक्त हो गये। अपने पोते को राज्यभार सभलवा कर उत्कृष्ट भावो के साथ दीक्षित हो गये व समस्त कर्मो को क्षय करके सदा–सदा के लिये अनित्य जीवन से मुक्त हो गये।

रावण का व दुर्योधन का परिवार भी कितना विस्तृत, व्यापक था। वह भी ध्वस्त हो गया।

इस प्रकार दृश्यमान समस्त पदार्थो की अनित्यता जानकरके अनित्य शरीर से कुछ लाभ अवश्य उठावे। यह शरीररूपी झोपडियॉ कब तक बदलते रहेगे? आज मानव किराये का मकान बदलते–बदलते घबरा जाता है अत थोडा–बहुत भी पैसा प्राप्त होते ही सबसे पहले एक छोटा–मोटा घर का मकान बनवा लेना चाहता है ताकि बार–बार मकान बदलने न पडें। इस आत्मा ने आज तक अनत–अनत मकान बदल लिये है पर अभी तक मन मे गहराइयो के साथ घबराहट पैदा नहीं हुई है। नित्यस्वरूपी शाश्वत मकान को प्राप्त करने की इच्छा पैदा नही हुई है। इस अनित्य शरीर मे नित्य स्वभावी आत्मा विराजमान है। वह अनत–अनत शक्ति की स्वामी है। उन शक्तियो का सदुपयोग मानव जीवन मे ही हो सकता है। मानव ही सर्वोच्च स्थान को प्राप्त कर सकता है अत प्राप्त अनित्य मनुष्य शरीर से जितना काम ले सक उतना ले लेना चाहिये।

व्यापारी व्यापार मे तेजी आते ही अपना सब माल बेच देता है। जो अपने माल को समय पर नही निकालता है उसे मूर्ख समझा जाता है। वैसे ही इस अनित्य मानव शरीर से समय के साथ ज्यादा से ज्यादा लाभ कमा लेना चाहिए। छाछ मे से सारभूत तत्त्व मक्खन की प्राप्ति कर लेना चाहिये। तभी इस मानव जीवन को पाना सार्थक हो सकता है।



निर्धूम ज्योति

सम्मत्दसी न करेई पावं (आचाराग 3/2)

अर्थात् सम्यक्त्वधारी साधक पापकर्म नहीं करता।

शरीरधारी आत्मा अनादि काल से जन्म–मरण करती हुई चार गति व चौरासी लाख जीवयोनि मे घूम रही है किन्तु सम्यग्दृष्टि आत्मा को पुन –पुन जन्म–मरण करते हुए घबराहट आती है। जैसे घानी का बैल घानी के खभे के चारो तरफ निरन्तर आराम से घूमता रहता है जबकि किसी मानव विशेष को एक खभे के चारो ओर घूमने का बोल दिया जाय तो वह कुछ चक्कर निकालकर ही घबराहट व चक्कर के मारे नीचे गिर जायेगा। यहॉ हमे सोचना है कि बैल आराम से घूम रहा है और मानव नहीं घूम सकता है– इसका कारण क्या है? इसका कारण यही है कि बैल की दोनो ऑखो पर कसकर एक पट्टा बॅधा हुआ रहता है जबकि मानव की दोनो ऑखे खुली रहती हैं, अत मानव को बार–बार खभे के चारो ओर घूमते हुए चक्कर आने लगते हैं। उसी प्रकार सम्यक् दृष्टि आत्मा के ज्ञान–चक्षु खुले रहते है, अत चार गति मे निरन्तर घूमते हुए उसे घबराहट आती है, जन्म–मरण से शीघ्र छुटकारा चाहती है किन्तु जिनके ज्ञान–चक्षु पर मिथ्यात्व की पट्टी बंधी हुई है उन्हे इस संसार मे पुन –पुन चक्कर करते हुये घबराहट नहीं आती है।

सम्यक्दृष्टि इस ससार से निरन्तर छुटकारा पाना चाहता है अत वह हर कार्य को करते हुए पापकर्म बधन न हो, इसका भी पूरा ध्यान रखता है। उसके विचार भी अनासक्त भावना से युक्त परम निर्मल होते है। वे हर कार्य को करते हुये निरन्तर जाग्रत रहते हैं। कर्तव्य–अकर्तव्य का उन्हे पूरा विवेक होता है। वे अनतानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ से सर्वथा दूर रहते है। अत मिथ्यात्व का पाप तो उन्हे लगता ही नहीं है। सम्यक्दृष्टि किसी भी निरपराधी जीव को सताता नहीं है, उनकी हिंसा नहीं करता है, उन्हे नुकसान पहुॅचाने की चेष्टा भी नहीं करता है किन्तु अन्याय व अत्याचार का प्रतिकार करने मे पीछे नहीं रहता। कोई शत्रु आगे होकर मारने की चेष्टा करता है तो उस समय अपराधी को दण्ड देने मे कायरता भी नहीं दिखाता है। वह अपराधियो का हौसला बुलद हो– ऐसा नहीं चाहता है। जैसे एक अपराधी किसी की स्त्री के साथ उसी के सामने बलात्कार कर रहा है। उस समय

उस स्त्री का पति यदि ऐसा सोचने लगे कि मुझे क्या करना है? मेरे तो समभाव है। मै किसी को मारना नही चाहता और न ही गाली देना चाहता हूँ। ऐसा व्यक्ति धर्म का ढोगी है, कायर है, नपुसक है। उसने धर्म को सही ढग से समझा ही नही है, वह धर्म को बदनाम करने वाला है। राजा चेटक सम्यक्त्वी श्रावक था, फिर भी समय आने पर उन्होने अन्याय का डटकर विरोध किया था। युद्ध मे लाखो आदमी मारे गए थे, फिर भी चेटक राजा की सम्यक्त्व चली नही गई थी। भगवान् ने उन्हे दृढधर्मी श्रावक ही कहा है।

रावण सीता को उठाकर ले गया था। उस समय अगर राम चुपचाप बैठ जाते तो आप राम को कायर, नपुसक ही कहते। पर वे वीर थे, उन्होने अत्याचार का खुलकर विरोध किया और सीता को लका से लेकर अयोध्या लौटे थे।

सम्यक्दृष्टि के विचार सिर्फ अन्याय का विरोध करने के ही रहते है, न कि किसी की हिसा करने के रहते है। भरत चक्रवर्ती छ खड पर एकछत्र राज्य कर रहे थे। उनकी सेवा मे 16 हजार देवता प्रतिपल रहते थे। 14 रत्न व नव निधान जैसी अमूल्य निधियो के स्वामी थे। कहते है "राजेश्वरी नरकेश्वरी।' अर्थात् राज्य करने वाला नरक मे जाता है किन्तु भरत उस लम्बे-चौडे राज्य के मालिक होते हुए भी अनासक्त भावना मे ही जी रहे थे। वे हर समय यही विचार करते थे कि मैने राज्य की जिम्मेदारी ली है अतएव उसे निभा रहा हू, परन्तु यह छ खड का राज्य अलग है और मै अलग हू। यहॉ तक कि यह शरीर भी मेरे से अलग है तो यह राज्य मेरा कैसे हो सकता है? हर समय उनके विचार उन्नत रहते थे। अपनी आत्मजागृति के लिए उन्होने एक सेवक नियुक्त कर दिया था, जो हर समय भरत को यह स्मरण कराता रहता था कि 'हे भरत! चेत। इस संसार मे चारित्र ही सारभूत है।' भरत चक्रवर्ती चाहे सिहासन पर बैठे हो, चाहे अत पुर मे हो, सभी जगह उस सेवक के शब्द थोडी-थोडी देर बाद सुनाई देते रहते थे। उन शब्दो को सुनकर भरत चक्रवर्ती हमेशा जाग्रत रहते थे। उनके दिमाग मे हमेशा यही रहता था कि चारित्र धर्म ही सारभूत है, उसे अपनाना चाहिए, आदि। अगर इसी प्रकार से आपको भी कोई पुन-पुन प्रेरणा देने वाले साधु या श्रावक मिल जायॅ तो कहीं क्रोध तो नहीं करोगे? यह तो नहीं कहोगे कि हमेशा-हमेशा कहते हो तो अब तो मै आऊँगा ही नहीं तथा आपको अपनी आत्मा की चिता है तो आप करो, कुछ भी मत कहो। ऐसे व्यक्ति क्या आत्मा का उद्धार कर लेगे? कहॉ भरत चक्रवर्ती को खाते-पीते, सोते-उठते-बैठते वे ही शब्द सुनने को मिलते थे और भरत उन शब्दों को हमेशा अहोभाव के साथ ही सुनता और सोचता कि कही राज्य के कार्यो मे व्यस्त होकर मै अपने लक्ष्य को विस्मृत न कर दूँ। ऐसी अनासक्त भावना के कारण ही भरत चक्रवर्ती ने उस कॉच के महल मे भी केवलज्ञान प्राप्त कर लिया था।

सम्यक्दृष्टि ससार मे रहते हुए भी हमेशा जल–कमलवत् ससार से निर्लिप्त रहता है। जिस प्रकार धायमाता मालिक के बच्चे को खिलाती है, पिलाती है, स्नान करवाती है, हर प्रकार की परवरिश करती है। बच्चा भी अपनी माँ से बढकर धायमाता को ही चाहता है। उसी की गोद मे खेलने को उत्सुक रहता है। धायमाता भी अपना पूरा स्नेह उसे देती है। इतना सब–कुछ होने पर भी धायमाता अन्तरग मे समझती है कि यह बच्चा मेरा नहीं है, अत वह मेरेपन के आसक्तिजनक भावो से दूर रहती है।

कैशियर के हाथो मे लाखो रुपये आते है व जाते है किन्तु कैशियर यह अच्छी तरह से समझता है कि ये रुपये मेरे नहीं है।

सीपी खारे समुद्र मे रहते हुये भी उस समुद्र का खारा पानी नहीं पीती। ठीक उसी प्रकार से सम्यक्त्वी जीव ससार मे रहकर कर्तव्यभावपूर्वक गृहस्थ सबधी सारे कार्य करते हुये भी उनमे आसक्त नहीं होते। जैसे कैदी जेल मे रहता है, वहाँ पर बुनाई वगैरह सारे काम वहाँ के करता है, लेकिन वे कार्य आसक्ति के साथ न करता हुआ इसलिए करता है कि मै शीघ्र जेल से निकलकर मुक्त हो जाऊँ। उसी प्रकार सम्यक्दृष्टि भी गृहस्थ सबधी सारे कार्य इसलिए करता है कि मै अभी ससार मे हूँ, अत कर्तव्यभाव से करना है, पर वह उनमे आसक्त नहीं होता। आसक्ति का खारा पानी अपनी आत्मा मे नहीं घुसने देता। ससार के सारे कार्य करता हुआ भी अपनी आत्मा को कभी भी नहीं भूलता है। जैसे पतिव्रता नारी मेले मे अनेक सुदर पुरुषो को देखते हुए भी अपने पति को कभी नहीं भूलती है, वैसे ही सम्यग्दृष्टि, ज्ञानी जीव जड को जड समझते है। वे जड के माहौल मे अपनी आत्मा को कभी नहीं भूलते। बच्चे बरसात के मौसम मे भीगी मिट्टी को देखकर घर बनाने बैठ जाते है तथा उनका घर कोई तोड देवे तो रोने लगते है किन्तु समझदार बडे आदमी वैसा नहीं करते। उसी प्रकार अज्ञानी जीव बाहर के मकान, धन, वैभव आदि जड वस्तुओ को अपना समझते हैं और उनकी हानि व लाभ मे दु खित व हर्षित होते रहते है जबकि सम्यग्दृष्टि जीव लाभ और हानि मे सदैव समतोल अवस्था मे रहते है।

एक बार एक युवक एक महात्मा के पास पहुँचा और कहने लगा कि मुझे वर्तमान जीवन मे सुख की चाह है। वह कैसे प्राप्त हो? इस हेतु आप कोई राह बता दीजिये , महात्मा ने कहा–तुम पहले अमुक सेठ के पास तीन दिन रहकरके आओ। युवक सोचने लगा, महात्मा यह क्या बोल रहे हैं? मैं तो प्रश्न का उत्तर लेने के लिये आया हूँ और ये मुझे सेठ के पास भेज रहे हैं, पर उसकी पुन उत्तर देने की हिम्मत नहीं हुई। वह महात्मा के कहे अनुसार सेठ के पास चला गया और सेठ को बता दिया कि मुझे महात्मा ने भेजा है। सेठ ने कहा– बैठो। वह वहाँ सेठ के पास बैठ गया। सयोग की बात थी कि उसी

समय एक तार आया, उसमे लिखा था कि माल से भरे जहाज गुम हो गये है। मुनीम ने जैसे ही उस तार को पढा, वह एकदम दु खी हो गया। सेठ को बडे दु ख के साथ वह तार बताया। तार बताते–बताते ऑखो मे ऑसू तक आ गये किन्तु युवक देख रहा था कि सेठ के चेहरे पर कोई खिन्नता की रेखा नहीं है। उन्होने तार पढा और एक तरफ रख दिया और अपने चालू काम मे लग गये। युवक को विचार आया कि यह सेठ क्या पत्थर दिल है, जो इतना नुकसान होने पर भी सेठ पर कोई असर नही हो रहा है? एक दिन बाद पुन समाचार आये कि जहाज सुरक्षित रूप से स्थान पर पहुँच गया है। मुनीम उन समाचारो को पाकर बहुत खुश हुआ और बडी खुशी से उछलता हुआ सेठ के पास पहुँचा और कहने लगा कि जहाज यथास्थान पहुँच गया है। ऐसा सुनकर भी सेठ तो तथावत् ही है। उनके चेहरे पर कोई खुशी के भाव नहीं हैं। युवक पास मे बैठा हुआ सेठ की समतोल अवस्था को देख रहा है। युवक अब पूरी तरह समझ गया कि महात्मा ने मुझे यहॉ किसलिये भेजा है। उसे अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया और वह वहॉ से चला गया। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि हर समय समतोल अवस्था मे जीता है तो कर्मबधन होगा भी कैसे ? जैसे पॉव मे दवाइयो का लेप लगाकर व्यक्ति अगारे पर भी आराम से चल सकता है। दवाइयो का लेप होने से पॉव जलते नहीं हैं। वैसे ही मानव अपने जीवन मे सम्यक्त्व का लेप लगा लेवे व समतोल अवस्था ले आवे तो भगवान् के वचनो के अनुसार– **सम्मत्तदंसी न करेइ पावं** अर्थात् सम्यग्दृष्टि को कर्मो का बधन नहीं होगा। सम्यग्दर्शन वह निर्धूम ज्योति है जो जीवन मे रहे हुए अंधकार को प्रकाश मे बदल ही देती है व जीवन की गति को प्रगति के रूप मे बदल देती है। एक क्षणमात्र के लिये प्राप्त सम्यग्दर्शन अनंत–अनत जन्म–मरण को समाप्त कर देता है। जैसे रात्रि के घोर अंधकार मे विद्युत के चचल प्रकाश की मामूली रेखा क्षणभर के लिए ही लोक को आलोकित करती है किन्तु उससे यह तो सिद्ध हो गया कि अधकार से बढ कर एक प्रकार की शक्ति है, जिसे पाकर मनुष्य के जीवन की रजनी के अधकार को मिटाया जा सकता है, दूर किया जा सकता है। आध्यात्मिक क्षेत्र मे इसी दिव्य प्रकार को सम्यग्दर्शन कहते हैं। वह सम्यग्दर्शन जिस जीव को क्षणमात्र के लिए भी प्राप्त हो गया हो तो उसकी मुक्ति हुए बिना नहीं रहती। मोक्षगामी सभी भव्य आत्माओ को सम्यग्दर्शन प्राप्त करना ही होता है। उसके आधार के बिना कितनी भी क्रिया कर लो, मोक्ष प्राप्त होने वाला नहीं है।

जिसने अपने जीवन मे सम्यग्दर्शन को पा लिया तो समझ लो उसने सब–कुछ पा लिया है। जिसने सम्यग्दर्शन को नही पाया है तो समझलो उसने कुछ भी नहीं पाया है। इस जीव ने अनत बार स्वर्ग के सुख प्राप्त कर लिये तथा इस भूमण्डल पर अनत बार राज्य–सुख प्राप्त कर लिया पर

सम्यग्दर्शन को प्राप्त किये बिना जन्म–मरण का अत आज तक नहीं हो सका, इसीलिये सम्यग्दृष्टि देव भी मनुष्य जन्म ही चाहते हैं। उनकी चाह रहती है कि मेरा जन्म मनुष्य योनि मे किसी श्रावक के घर मे हो ताकि मुझे धर्म–ध्यान के क्षेत्र मे विकास करने का सहज ही मौका प्राप्त हो जाय। वह चाहता है कि श्रावक के पुत्र के रूप मे मेरा योग नहीं तो श्रावक के घर मे नौकर भी बन जाऊँ तो भी वैसे सस्कार मुझे मिलते रहेगे, वैसा योग मुझे मिल जायेगा। किन्तु अधार्मिक, मिथ्यात्वी धनिक कुल मे पैदा होना सम्यग्दृष्टि देव पसद नहीं करते क्योकि वे जानते है कि बाह्य वैभव को पाने से आत्मा को कुछ भी फायदा मिलने वाला नहीं है। सम्यग्दृष्टि जीव को कदाचित् बाह्य वैभव प्राप्त भी हो जाय तो भी वे उसमे अनुरक्त नहीं होते, उनका ध्यान हमेशा आत्मा के उत्थान की ओर ही रहता है।

अकबर बादशाह बीरबल की बुद्धिमानी से काफी प्रभावित थे। उन्हे बीरबल से बात करने मे बडा मजा आता था। एक बार बादशाह ने सोचा कि आज ऐसी बात करूँ कि बीरबल कुछ उत्तर भी न दे सके और उसे लज्जित भी होना पडे। ऐसा सोचकर बीरबल से कहा– अरे बीरबल! आज रात को मुझे एक अजीब स्वप्न आया। बीरबल ने कहा– सुनाइये, हुजूर। बादशाह ने कहा– देखो बीरबल, अपन दोनो कहीं घूमने जा रहे थे। रास्ते मे दो कुड देखे। एक तो गदगी से भरा हुआ गटर का कुड था और दूसरा अमृत का भरा हुआ था। दोनो कुड एकदम पास–पास मे थे यानी एक ही चौडी दीवाल बीच मे थी। अपन दोनो देखते हुए उन दोनो कुड के बीच की दीवाल के ऊपर से निकल रहे थे कि अनायास ही अपन दोनो गिर गये। मैं अमृत के कुड मे गिरा और तुम गदगी के कुड मे गिर गये और मेरी नींद खुल गई।

ऐसा सुनते ही सारे सभासद खिलखिलाकर हॅस पडे। कुछ मौलवी, जो बीरबल से ईर्ष्या करते थे, उनकी खुशी का तो आज कहना ही क्या! वे सोचने लगे– आज तो बादशाह ने बहुत अच्छा स्वप्न सुनाया है। उन्हे राजा के अमृत कुड मे गिरने की खुशी नहीं थी अपितु बीरबल के गदगी के कुड मे गिरने की अपार खुशी थी। तभी हॅसी के फव्वारो के बीच बात को सॅभालते हुये बीरवल ने कहा– हॉ हुजूर! मैंने भी बिल्कुल ऐसा ही स्वप्न देखा किन्तु मैंने थोडा–सा और आगे देखा है। बादशाह ने जिज्ञासा के स्वर मे प्रसन्नता के साथ कहा– अच्छा, बताओ, तुमने आगे क्या स्वप्न देखा? बीरबल ने कहा– हुजूर! अपन दोनो अपने–अपने कुड मे गिरे थे किन्तु मैंने देखा कि आप मेरे को चाट रहे थे और मै आपको चाट रहा था। यह सुनते ही सारी सभा खिलखिला उठी और बादशाह लज्जित हो गये और कुछ बोल नहीं पाये।

ससार मे सम्यग्दृष्टि जीव बीरबल के समान होते हैं जो कि ससार मे रहकर भी ससार के विष को ग्रहण न करके मात्र अमृत के अश को ही ग्रहण

करते है। अमृत ग्रहण करने की कला जिसे आ गई वह चाहे परिवार मे रहे, समाज मे रहे, व्यापारिक क्षेत्र मे रहे या किसी भी सोसायटी मे रहे, पर उस पर किसी भी प्रकार के विष का प्रभाव नहीं पडता है। किन्तु मिथ्यादृष्टि जीव बादशाह के समान होता है जो अमृत के कुड मे गिरकर भी गदगी को चाटता है। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि व मिथ्यादृष्टि मे बडा भारी अन्तर होता है। सम्यग्दृष्टि ससार के कीचड मे रहता हुआ भी कमल के समान खिलता रहता है और भोग के वातावरण मे रहते हुए भी त्याग और वैराग्य से उसका जीवन ओतप्रोत बना रहता है।

कई लोग कहते है कि हम मिथ्यात्वी से सम्यक्त्वी कैसे बन सकते है? यह तो बहुत मुश्किल काम है। जैसे मध्यप्रदेश–रायपुर मे रहा हुआ व्यक्ति सोचे कि मध्यप्रदेश का माल राजस्थान मे ले जाना है, पर कैसे ले जाया जाये? रायपुर से बीकानेर बहुत दूर है। पर इतनी घबराने की कोई बात नही है। मध्यप्रदेश की सीमा नीमच तक तो रायपुर से माल आराम से पहुँचा ही सकते हो। उसके बाद एक लकीर जितनी ही तो सीमा है, उसे टेक्स देकर पार कर सकते है। उसके बाद राजस्थान का माल राजस्थान मे आराम से जा सकता है। अत बीकानेर तक पहुँचाने हेतु घबराने की बात नहीं होती है। वैसे ही मिथ्यात्व से सम्यक्त्व मे प्रवेश करने हेतु जरा–सी दृष्टि को ही तो बदलने की जरूरत है। दृष्टि मे सक्यक् भाव लाने की आवश्यकता है। सम, सवेग, निर्वेद, अनुकम्पा, आस्था भाव जीवन मे प्रवेश करने पर जीवन मे समकित प्राप्त हो ही जायेगी।

सम्यक्त्व परमात्म दशा को प्राप्त करने का बीज है। यह मोक्ष महल की नीव है तथा आत्मा के उत्थान का श्रेष्ठ हेतु है। सम्यग्दृष्टि हर आगत विपत्ति को आराम से सहन कर लेता है।

सम्यग्दृष्टि जीव यदि नरक मे होता है तो भी मिथ्यादृष्टि देव की अपेक्षा सुखी ही रहता है क्योकि नरकगति मे गया हुआ सम्यग्दृष्टि जीव विचार करता है कि मुझे अपने कृत अशुभ कर्मो के द्वारा ही नरक गति मिली है। अगर यहॉ के कष्टो को मै समभावपूर्वक सहन न करके हाय–त्राय करके भोगूँगा तो आर्तध्यान, रौद्रध्यान के माध्यम से अधिक कर्मो का बधन कर लूँगा। जिससे पुन–पुन नरक मे आना पडेगा। व्यावहारिकता मे भी कहा जाता है कि व्यक्ति शरीर मे आई वेदना को समभावपूर्वक चुपचाप सहन कर लेता है तो उसकी वेदना ज्यादा होते हुये भी अल्प महसूस होती है। सम्यग्दृष्टि जीव अधिक से अधिक वेदना को भी समभावपूर्वक सहन कर लेते है। उनके अदर आकुल–व्याकुलता की स्थिति न होने से वे दु ख को दु खरूप से महसूस नहीं करते। इस कारण दु ख भी उनके लिए कर्मक्षय का साधन बन जाने के कारण सुखमय बन जाता है। इस बात को समझने के लिए एक उदाहरण दिया जा

रहा है– एक व्यक्ति ने भूल से दवा के बदले जहर पी लिया। घबराने पर डॉक्टर के पास पहुँचे। डॉक्टर को सारी हकीकत बता दी। डॉक्टर ने कहा– तुम ठीक हो सकते हो पर एक उल्टी होने की दवाई देता हूँ। तुम्हे उल्टी करने मे तकलीफ तो महसूस होगी पर तुम ठीक हो जाओगे। मरीज ने वमन की दवा लेने हेतु हॉ कर दी और उस दवा को ले भी लिया। अब उसे वमन करने मे बडी तकलीफ हो रही है, नाक व गला–दोनो से जहर बाहर आ रहा है। ऑते खिची जा रही है, असह्य कष्ट हो रहा है, फिर भी रोगी को अन्तरग मे खुशी हो रही है। सोच रहा है– जितनी कै होगी उतना ही मै जल्दी स्वस्थ हो जाऊँगा। अगर जहर पेट मे रह गया तो ज्यादा बीमार हो जाऊँगा या मर भी सकता हूँ। अत उल्टी करके भी खुश है, इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव भी असातावेदनीय कर्म का उदय होने पर यही सोचते है कि जहर बाहर निकल रहा है। अगर यह निकल गया तो मैं सुखी हो जाऊँगा। इसीलिए तो गजसुकुमाल व स्कन्दक मुनि ने हॅसते–हॅसते उन आये भयानक उपसर्गो को भी सहन कर लिया क्योकि वे समझते थे कि ये कर्म हमारे द्वारा ही किये हुए है, अत भोगने हमे ही होगे। दूसरे, कष्ट देने वाला तो निमित्त मात्र है। बिना हमारे कृतकर्म के दूसरा कष्ट दे ही नहीं सकता है। वे सम्यग्दृष्टि थे, अत हॅसते–हॅसते समभावपूर्वक निराकुलता के साथ सहन कर लिया और मोक्ष पा गये।

दृढधर्मी कार्तिक सेठ सम्यक्त्व में अति दृढ थे। एक ढोगी साधु के चरणो मे न झुकने से उस साधु ने राजा को कहकर उसे बुलाया और उसकी खुली पीठ पर गरम–गरम खीरयुक्त थाली रखकर भोजन किया। कार्तिक सेठ ने उस भयकर कष्ट को भी सहन कर लिया पर धर्म–ढोगी साधु के चरणो मे नहीं झुका। ऐसे–ऐसे दृढ सम्यक्त्वी भी इस ससार मे बहुत हो गये हैं किन्तु आज जरा–जरा–सी वेदना की उपशान्ति हेतु देव–देवियो के चरणो मे झुकते फिरते है। इसका कारण यही है कि वे प्रियधर्मी तो अवश्य है पर दृढधर्मी नहीं है। आपको धर्म अच्छा लगता है पर आप धर्म पर दृढ नहीं रह पाते हैं। पहले के श्रावक तो कठिन क्षणो मे भी अडिग रह गये और आप थोडी–थोडी–सी बात मे ही धर्म को खोने के लिये तैयार हो जाते हैं, जिनवाणी से विचलित हो जाते है। अत दृढधर्मी बनने के लिए सगति भी सम्यग्दृष्टि की ही करनी चाहिये ताकि सम्यक् मे दृढता प्राप्त होती चली जाये। एक सम्यक्त्वी हजारो सम्यक्त्वी बना सकता है और एक मिथ्यात्वी हजारो मिथ्यात्वी बना सकता है, अत मिथ्यात्वी की सगति से तो हमेशा दूर ही रहना चाहिए। आपको जैनधर्म के प्रति दृढ रहना चाहिए ताकि आपके जीवन से प्रेरणा लेकर अन्य भी समकिती बन सके। महान् क्रान्तिकारी आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा ने फरमाया है कि सम्पूर्ण लोक के जीवो के अभयदान से भी बढकर लाभ

एक जीव को सम्यक्त्वी बनाने मे है। अत आप स्वयं दृढधर्मी बने और अन्य को भी दृढधर्मी बनावे। दृढधर्मी के पास पाप कर्म नही आ सकते हैं इसीलिये तो भगवान् ने फरमाया है—

सम्मत दंसी न करेई पावं।



इन्द्रियों के वश - हुआ परवश

इदियाइ वसे काउ, अप्पाण उवसहरे। (उत्तरा 22/48)

अर्थात् पाच इन्द्रियो को वश मे कर अपनी आत्मा का उपसहार करना चाहिए। अर्थात् प्रमाद की ओर बढती हुई आत्मा को पीछे हटाकर धर्मपथ पर स्थिर करना चाहिये।

सशयी आत्माएँ निरन्तर चार गतिरूप ससार मे परिभ्रमण कर रही है। इसका मुख्य कारण है– इन्द्रिय–विषयो के प्रति दासता। आत्मा अपने अदर रहे हुये अखूट सुख के खजाने को नही पहचान कर क्षणिक सुख को प्राप्त करने मनोज्ञ शब्द, वर्ण, गध, रस, स्पर्श के आगे झुक जाती है और उन्हे ही सुख का खजाना समझती है और उन्हीं मे आसक्त होकर अपना पतन भी कर लेती है।

ससार मे अनत प्राणी हैं किन्तु सभी को पॉचो इन्द्रियॉ प्राप्त नहीं है। अनत मे से सिर्फ असख्यात प्राणियो को ही पॉच इन्द्रियॉ प्राप्त है। उनमे भी मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो अपने हित–अहित, उत्थान–पतन आदि के विषय मे विचार कर सकता है और वैसा आचरण भी कर सकता है। इन्द्रियॉ आत्मा को सुख भी दिला सकती है व दु ख भी दिला सकती है, आत्मा का उत्थान भी करवा सकती है व पतन भी करवा सकती है। आत्मा को कर्मो के बधन मे भी डाल सकती है व कर्मो से मुक्त भी करवा सकती है। पूर्ण इन्द्रियो वाला व्यक्ति ही कर्मो से मुक्त होने हेतु प्रयत्न कर सकता है। जितने भी सिद्ध पुरुष हुए है वे सभी अपनी इन्द्रियो का सदुपयोग करके, उन पर पूर्ण निग्रह करके, उनको आत्माभिमुख बनाके ही ससार से पार हुए है। तथा कई आत्माओ ने उन्ही इन्द्रियो का दुरुपयोग करके, उनके विषयो मे आसक्त होकर अपना खूब पतन करते हुये नरक व तिर्यच योनि का वरण किया। जैसे नदी का जल तो निर्मल ही होता है किन्तु आजकल नदियो के आसपास मे फैक्ट्रियो का निर्माण हो जाने से कई नदियो का पानी भी दूषित होता हुआ चला जा रहा है। उसी प्रकार इन्द्रियॉ तो अपने स्थान पर ठीक है। वे आत्मा को सही ज्ञान प्राप्त कराने मे सहायक भी है किन्तु उनमे राग–द्वेष का कचरा मिल जाने से वे इन्द्रियॉ आत्मा का पतन करवा देती है और नरक के कुड तक भी धकेल देती है। इस प्रकार स्वर्ग व नरक दोनो इन्द्रियॉ ही दिलाती हैं। यह कैसे सभव

है? अत पॉचो इन्द्रियो पर सक्षिप्त विचार प्रस्तुत किये जा रहे है।

1. श्रोत्रेन्द्रियः- श्रोत्रेन्द्रिय कान को कहते है। यद्यपि आज के वैज्ञानिक युग मे शब्द पकडने के रेडियो, टी वी , वीडियो, फोन आदि कई साधन है पर श्रोत्र के अभाव मे उन साधनो के माध्यम से पकडे हुये शब्दो को सुनेगा कौन? अत कान महत्त्वपूर्ण वस्तु है। उनका उपयोग भी महत्त्वपूर्ण कार्यो मे ही होना चाहिये। जैसे आप बडे गहने का उपयोग महत्त्वपूर्ण प्रसगो पर ही करते है। कान उनसे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है अत उनका उपयोग भी महत्त्वपूर्ण कार्यो मे ही होना चाहिए। किन्तु आज का मानव उन कानो का उपयोग अश्लील गाने, चुटकले तथा निदा–विकथा सुनने मे करते है, जिससे भयकर कर्मो का बधन होता है। भगवान् महावीर के जीव त्रिपृष्ठवासुदेव ने अपने शय्यापालक को आज्ञा दी थी कि मेरे को नीद आ जाने के बाद सारे राग–रग–गाने बद करवा देना। वासुदेव को कुछ समय बाद नीद आ गई पर शय्यापालक को वे मनमोहक गाने अच्छे लग रहे थे, अत सोचा थोडी देर और सुन लूँ, उसके बाद बद करवा दूँगा। उस थोडी देर–थोडी देर मे सवेरा हो गया और वासुदेव की नीद ही खुल गई। उन्हे शय्यापालक के द्वारा हुई गलती पर क्रोध आ गया और शय्यापालक के कानो मे गर्म–गर्म उबलता हुए शीशा डलवा दिया। यह थोडी–सी देर का मजा बहुत बडी सजा दिलवा गया। अत आप उस मजे मे न फँसे। इन कानो से निदा–विकथा सुनने का परिणाम भी बहुत बुरा होता है। आज उसी के कारण घर के टुकडे–टुकडे हो रहे है। परिवार मे ही आपसी विरोध व टकराव चल रहे है। यह तो इस भव मे ही अपने कृत्य का कटु फल मिल रहा है किन्तु परभव मे भी भयकर रूप से कर्मो का वेदन करना पडता है, अत श्रोत्रेन्द्रिय का दुरुपयोग न करके सदुपयोग करके, कर्म बन्धन न करते हुए कर्मो से मुक्त होने हेतु प्रवृत्ति करनी चाहिए। जो श्रोत्रेन्द्रिय बडी पुण्यवानी के बाद आपको प्राप्त हुई है उसका सदुपयोग जिनवाणी सुनने मे, दु खियो के दु ख को सुनने मे लगाना चाहिये।

2. चक्षुरिन्द्रियः- चक्षुरिन्द्रिय ऑख को कहते हैं। शरीर मे ऑख का बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऑख के बिना व्यक्ति के लिए सारी दुनिया अधकारमय है। वैज्ञानिको ने अणुवीक्षण यंत्र तैयार किये जिनके माध्यम से बीस हजार माइल दूर रखी वस्तु को भी आराम से देखा जा सकता है। ऑखो के सद्भाव मे ही उसका उपयोग है किन्तु ऑख के अभाव मे उसका कोई उपयोग नही हो सकता है, अत आख की कीमत उस दो करोड, आठ लाख रुपये से वने अणुवीक्षण यत्र से भी ज्यादा है। आप इसका दुरुपयोग न करे।

कवि सूरदासजी महात्मा के परिवेश मे भजन कर रहे थे। उस समय उनके पास एक नवयुवती आई। उसे देखकर सूरदासजी का मन विकृत हो गया था। नवयुवती महात्मा के दर्शन करके व भजनामृत का पान करके जब

चली गई थी उस समय सूरदासजी को विचार आया कि–ओ हो! ऑखो के कारण मेरी आत्मा मे किस प्रकार से विकृति घुस गई थी। ये नेत्र मेरी आत्मा का पतन कराने मे सहयोग कर रहे थे। मुझे ऐसे नेत्रो की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार सोचकर उन्होने लोहे की दो सलाइयॉ गर्म करके ऑखो मे डाल लीं। ऑखे समाप्त हो गई। फिर अपने–आप मे गहरे उतरकर प्रभु भजन करने मे लीन हो गये। इन ऑखो के सुख के लिये बढिया मकान, सुन्दर वेश–भूषा, गद्दे, सोफासेट, स्टेण्डर्ड कारे आदि वस्तुओ को बसाया जा रहा है और उन पर आसक्ति करके इस भव–परभव हेतु दु ख पैदा किया जा रहा है। लक्ष्मणजी का अपने नेत्रो पर कितना कन्ट्रोल था। जिस समय राम–लक्ष्मण दोनो सीता को लाने हेतु आगे बढ रहे थे। रास्ते मे सीता के द्वारा छोडे गये चिह्न रूप मे आभूषण स्थान–स्थान पर पडे थे। रामजी ने उठाकर देखा तो उन्हे मालूम हुआ कि ये आभूषण सीता के हो सकते है पर सीता के वियोग मे मन सही स्थिति मे न होने से वे निर्णय नहीं कर पा रहे थे कि ये गहने सीता के ही है। ऐसी स्थिति मे राम ने लक्ष्मणजी को वे गहने बताते हुये पूछा कि क्या ये गहने सीता के ही है ? तब लक्ष्मणजी ने कितना सुदर उत्तर दिया– वह इस प्रकार से है–

केयुर नैव जानामि, नैव जानामि कुण्डल।
नूपुरमेव जानामि, नित्य पादाभिर्वन्दनात्।।

अर्थात् मै सीताजी का हार, कुण्डल, चूडियॉ, कदौरा आदि कुछ भी आभूषण नही जानता हूँ, नही पहचानता हूँ। मै तो सिर्फ सिताजी के नूपुर को ही जानता हूँ क्योकि मै हमेशा सीताजी के चरणो मे प्रणाम करने के लिये पहुँचता था। देखिये, हमेशा सीता व राम के साथ रहते हुए भी लक्ष्मणजी ने अपनी ऑखो पर कितना सयम रखा था। इस प्रकार ऑख पर सयम रखना ही चाहिए ताकि आत्मा पतन होते हुए रुक जावे।

3 घ्राणेन्द्रिय.- घ्राणेन्द्रिय नाक को कहते है। नाक सुगध चाहता है। दुर्गध आते ही नाक को सिकोडने लगते है। नाक को मनोज्ञ विषय की प्राप्ति करवाने के लिये इत्र को प्राय हर मानव काम मे ले रहा है। उस एक औंस इत्र के लिये आठ हजार सात सौ रतल पुष्पो का विनाश किया जाता हे। उस इत्र को कपडो पर लगाते है व घर को भी सुगधित द्रव्यो से सुगधित किया जाता है। इस प्रकार मनोज्ञ गध पर राग व अमनोज्ञ गध पर द्वेष करके कर्मो का बधन कर लेते है।

4 रसनेन्द्रिय– रसनेन्द्रिय जिह्वा को कहते हैं। जिह्वा खाना व बोलना दो काम करती है। और दूसरी इन्द्रियॉ तो एक–एक काम ही करती है पर जिह्वा स्वाद लेने के साथ–साथ अच्छे–बुरे का निर्णय भी दे देती है। जिह्वा सिर्फ स्वाद लेने मे रहती है, वह यह नही सोचती कि मेरे स्वाद के कारण

शरीर को रोगो से पीडित होना पडेगा। आज मानव ने भोजन करने का उद्देश्य स्वाद ही बना लिया है। इसीलिये नित नये आइटम खाने की इच्छा रखता है। इसीलिए होटलो मे घूमता फिरता है। वहॉ पर अभक्ष्य का भी भक्षण कर लेता है। आज ज्यादातर रोग खाने के पीछे हो रहे है। शरीर के अनुसार नही खाने से पेट खराब हो रहे है। हर घर मे एक फेमिली डॉक्टर होता है। मानव दवाई ले सकता है पर खाने पर कन्ट्रोल नही कर सकता है। यहॉ तक कि आयम्बिल मे भी बीसो तरह की वस्तुऍ इस जिह्वा को चाहिऍ। सब्जी मे थोडा–सा नमक कम हो तो महाभारत मचा देते है। पुडरीक मुनि इस जिह्वा के स्वाद मे आसक्त होकर ही सयम से फिसल कर असयम मे प्रवृत्त हो गये थे। इस प्रकार जिह्वा की आसक्ति व्यक्ति को कितना नीचे गिरा देती है। यही जिह्वा बोलकर भी बिगाडा कर लेती है। आज मानव खाने पर फिर भी कट्रोल कर लेता है, पर बोलने पर कट्रोल नही कर सकता है। द्रौपदी के एक वाक्य से भी महाभारत मच गया था। अत सोच–विचारकर मधुर शब्दो का प्रयोग करते हुए जबान का सदुपयोग करना चाहिए।

5. स्पर्शनेन्द्रिय.- स्पर्शनेन्द्रिय सम्पूर्ण त्वचा को कहते है। त्वचा के द्वारा स्पर्श करने मे कठोरता, कोमलता तथा चिकनेपन या खुरदरेपन का आभास होता है। स्पर्श सुख के कारण बडे–बडे योगी भी विचलित हो जाते है और विलासी होकर पतन के गर्भ मे गिर जाते है। इस स्पर्श सुख के लिये हजारो कीडो से बनी सिल्क की साडियो का उपयोग किया जा रहा है और कर्म बधन किये जा रहे है।

ये पॉचो इन्द्रियॉ कितनी भी मात्रा मे अपने–अपने विषय का उपभोग करे पर उन्हे उस क्षणिक सुख के पीछे अपार दु ख प्राप्त होता है। अमेरिका सबसे ज्यादा धनाढ्य देश माना जाता है। वहॉ पर पॉचो इन्द्रियो के विषय–भोग के साधन ज्यादा–से–ज्यादा मात्रा मे उपलब्ध है। वे उनका खुलकर उपभोग भी करते है पर उस क्षणिक सुख के पीछे दु खो की लम्बी कतार है। वे अमेरिकी लोग सुखो को उपभोग करते–करते थक गये, मानसिक रोगी बन गये है। अगर विषय भोग ही सुख का कारण होता तो वे मानसिक रोगी क्यो बनते? आज सबसे ज्यादा मानसिक रोगी अमेरिका मे है और वे शान्ति प्राप्त करने भारत जैसे देशो मे भटक रहे है व साधु पुरुषो के पास जाकर सुख–शाति का मार्ग पूछ रहे है। अत सिद्ध है कि पॉचो इन्द्रियो के विषयो को प्राप्त करके भी व्यक्ति सुख प्राप्त नही कर पा रहा है। अपितु दु खी बन रहा है।

ये पॉचो इन्द्रियॉ आवागमन के चक्कर मे डालने वाली होती है अत उन पर निग्रह करना जरूरी है अर्थात् इन्द्रियो को वश मे रखना जरूरी है। कुभकार गधे को चलाता है न कि गधा कुभकार को। वैसे ही आत्मारूपी स्वामी को अपना स्वामीपना रखते हुये अपनी इन्द्रियो को अपने आदेशानुसार

चलाना चाहिए न कि इन्द्रियो के अनुसार अपनी आत्मा को चलाना चाहिए। इन्द्रियो को वश मे रखने का मतलब ही स्वर्ग है व इन्द्रियो के वश मे आत्मा का हो जाना नरक है। इन्द्रिय निग्रह ही मोक्ष का मार्ग है। अत इन्द्रिय–विषयो को निस्सार समझकर उन विषयो से इन्द्रियो को मोडना चाहिए व उन इन्द्रियो को भले काम करने मे लगाना चाहिए जिससे राग–द्वेष से बचा जाय।

एक सद्गृहस्थ को गृहस्थ मे रहते हुए भी इन्द्रियो का निग्रह करना चाहिए। इन्द्रियो का असयम व्यावहारिक जीवन को भी अस्त–व्यस्त कर देता है। भीतरी शक्तियॉ समाप्त हो जाती है। इन्द्रिय असयम के कारण ही पूर्व मे कई राजाओ ने अपने राज्य तक खो दिये। एक ओर तो दुश्मन हमला कर रहे है और दूसरी और शासक लोग महलो मे रॅगरेलियॉ करने मे लगे हुए है, ऐसी स्थिति मे कई बार हिन्दुस्तान को पराधीनता का मुॅह देखना पडा है, अत शासक चाहे परिवार का हो, समाज का हो या राष्ट्र का हो, उसको तो पहले इन्द्रियो पर सयम करना जरूरी है। अपने–आप पर सयम करने वाला ही अन्य पर भी सयम कर सकता है। इसी प्रकार आध्यात्मिक क्षेत्र मे इन्द्रियो का सयम करने वाला ही पूर्ण तौर से आत्मिक विकास कर सकता है।

इन्द्रिय निग्रह की बात सभी धर्मावलम्बी कहते ही है। इस विषय मे किसी भी धर्म विशेष मे मतभेद नही है। गीता मे भी कहा है– हे अर्जुन! तुझे आत्मा का कल्याण करना हो तो सबसे पहले इन्द्रियो का निग्रह कर। इन्द्रिय निग्रह से आत्मा की शक्ति स्वत ही उद्घाटित होती है।

राम और रावण का युद्ध जिस समय प्रारभ हुआ था, उस समय रावण ने सर्वप्रथम अपार शक्ति के धारक मेघनाद को लडने भेजा था। जैसे ही राम को मेघनाद दिखाई दिया तो श्रीराम पीछे हट गये और अपने भाई लक्ष्मण से बोले कि तुम ही मेघनाद से लडो। मै मेघनाद से लडने मे समर्थ नही हूॅ क्योकि मेघनाद ब्रह्मचारी है। बारह वर्षो से तप कर रहा है, अत उसमे शक्ति ज्यादा है। मै उसका सामना करने मे अपने आपको असमर्थ महसूस कर रहा हूॅ। तुमने पिछले चौदह वर्षो से स्त्री का मुॅह भी नहीं देखा है, एक तपस्वी व सयमी जैसा जीवन व्यतीत कर रहे हो। इसलिए तुम ही मेघनाद को हरा सकते हो। आखिर लक्ष्मण ने ही मेघनाद को हराया था। मेघनाद का दूसरा नाम इन्द्रजीत था। जिसका तात्पर्य इन्द्रियो पर विजय प्राप्त कर लेना था।

इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि जितनी–जितनी मात्रा मे इन्द्रियो पर निग्रह होगा उतनी–उतनी मात्रा मे आत्मा की शक्ति उजागर अवश्य होगी। अगर आत्मा की अनत शक्ति को पूर्ण रूप से उजागर करना है तो इन्द्रियो पर भी पूर्ण रूप से निग्रह करना ही होगा। तभी जन्म–मरण से छुटकारा प्राप्त हो सकेगा।



महावीर का अटल सिद्धांत

स्याद्वाद

स्याद्वाद जैन दर्शन का प्राण है। प्रतिक्षण शाति प्राप्त करने का मूल मत्र है।

व्यावहारिक व आध्यात्मिक दोनो क्षेत्रो मे निरन्तर निर्विघ्नता के साथ विकास करने हेतु स्याद्वाद एक प्रबल सहारा है। व्यावहारिक क्षेत्र मे भी स्याद्वाद के बिना कोई व्यवहार सभव नही है। यह सभी को मिलाने वाला है। इसके बिना किसी भी वस्तु का सच्चा स्वरूप नही जाना जा सकता है। स्याद्वाद सिद्धात की जितनी महिमा गाई जावे, उतनी कम है। क्योकि यह सिद्धात सुखी जीवन जीने की कला सिखाने मे पूर्णरूपेण समर्थ है। जिसने, जिस क्षण इस सिद्धात को समझ लिया वह उसी क्षण सुखी हो गया। स्याद्वाद अपने जीवन के लिये बहुत महत्त्वपूर्ण होते हुए, जैनदर्शन का प्राण होते हुए भी अभी तक जैनी उसे बराबर समझ नही पाये है।

इस सम्पूर्ण लोक मे छोटे–से–छोटे रजकण से लेकर बडे–से–बडे सुमेरु पर्वत की सभी वस्तुएँ अनत धर्मो से युक्त है। कहा भी है– अनत धर्मात्मकमेव तत्त्वम्। अर्थात् प्रत्येक पदार्थ मे अनत धर्म स्थित हैं।

वस्तु अनत धर्मात्मक है पर हमारी दृष्टि परिमित धर्मो को ही ग्रहण कर पाती है। जैसे आप रोटी को लीजिए। रोटी मे वर्ण भी है, गध भी है, रस भी है, स्पर्श भी है, बाह्य–सस्थान–आकार भी है, भूख मिटाने के गुण से युक्त भी है, पर ज्यादा खाने पर या रोगी के द्वारा खाने पर रोग भी पैदा कर सकती है। वह रोटी अमुक प्रकार के गेहूँ से बनी हुई है, अमुक क्षेत्र–विशेष के गेहूँ से अमुक क्षेत्र मे बनी हुई है। अमुक समय मे बनी हुई है– इस प्रकार अनेको धर्मो से युक्त रोटी होती है। हमारी बुद्धि मे उन सारे धर्मो को ग्रहण करने की शक्ति नही है। उन अनत धर्मो का ग्रहण तो अनत ज्ञानयुक्त अरिहत, सिद्ध प्रभु के द्वारा ही हो सकता है। अत वस्तु के किसी एक धर्म को ग्रहण करके आग्रह मत कीजिये कि यह ऐसा ही है अर्थात् यह रोटी रूपवान ही है या रसवान ही है। जिस रोटी के बहुत–से धर्म तो हमारी बुद्धि ग्रहण कर ही लेती है लेकिन अनेकानेक धर्मो को ग्रहण नहीं कर पाती। उनके लिये हमे सोचना चाहिए कि वे भी धर्म पदार्थ मे हो सकते है। उनकी उपेक्षा नहीं करनी

चाहिए। भगवान ने प्रत्येक पुद्गल मे अनत धर्म बताये हैं। अत 'ही' का प्रयोग न करके भी का प्रयोग करना चाहिये। जैसे इस रोटी मे रूप भी है, गध भी है आदि। 'भी' शब्द के अन्दर अन्य धर्म का भी अस्तित्व छिपा हुआ है। जैसे एक व्यक्ति के पास एक बच्चा आया। वह कहता है दादाजी। उसी बच्चे के पापा आकर कहते है– पापाजी तथा भतीजा कहता है काकाजी, भाणजा कहता है मामाजी। यहाँ अगर कोई कहे कि यह तो दादाजी ही है, पिताजी या मामाजी नही हो सकते– ऐसा कहना स्याद्वाद सिद्धान्त से विरुद्ध है। यहाँ पर स्याद्वाद सिद्धान्त का कहना है कि ये दादाजी भी है, मामाजी भी है आदि। दुनिया का सारा व्यवहार अपेक्षावाद पर टिका हुआ है। जैसे कनिष्ठा (चट्टी) अगुली की अपेक्षा अनामिका अगुली बडी है और मध्यमा अगुली की अपेक्षा अनामिका अगुली छोटी है, इस प्रकार छोटा–बडा, कम–ज्यादा आदि सारी बाते अपेक्षा भेद से ही होती हैं।

एक कुभकार था। उसके दो पुत्रियाँ थीं। एक पुत्री की शादी किसान के यहाँ पर की व दूसरी पुत्री की शादी कुभकार के यहाँ की। दोनो को ससुराल परिवार अच्छे मिले थे। दोनो अपने–अपने घर मे प्रसन्न थीं। एक बार पिताजी अपनी लडकियो से मिलने के लिए गये। वे पहले किसान के घर मे शादी की हुई लडकी से मिलने के लिये गये और उससे पूछा कि तुम ठीक तो हो? बेटी अपने पिताजी के प्रश्न के उत्तर मे बोली कि पिताजी और तो सब ठीक है किन्तु अभी खेती का समय आ जाने पर भी वर्षा नहीं हो रही है। अगर इस वर्ष वर्षा नहीं हुई तो बडी परेशानी सामने आ सकती है। यही चिता हमारे समक्ष उपस्थित हो रही है। आप प्रभु से प्रार्थना करे कि जल्दी से बरसात हो तो हम सुखी हो जाएँ। पिताजी ने कहा–ठीक है। वे अपनी बडी बेटी से मिलकर अपनी छोटी बेटी के घर मिलने गये ओर उससे भी कुशल–क्षेम पूछा। तब बेटी बोली कि– पिताजी और तो सब ठीक हे किन्तु वर्षा का मौसम है। आवाँ अभी पक रहा है। सारे बर्तन आवाँ मे डाले हुए हे। यदि वर्षा हो गई तो सारी मेहनत मिट्टी मे मिल जायेगी– यही चिता अभी सता रही है। आप हमेशा प्रभु भक्ति करते ही है अत आप प्रभु से यह प्रार्थना करे कि जब तक हमारा आवाँ पक न जाये तब तक वर्षा न हो।

कुभकार ने दोनो की बात सुनी और सोचने लगा कि मैं अब वर्षा होने हेतु प्रभु से प्रार्थना करूँ या वर्षा न होने हेतु प्रभु से प्रार्थना करूँ? दोनो पुत्रियो के हित मे अलग–अलग बाते है। दोनो बाते एकदम विरोधी हें, इस प्रकार सारा ससार अपनी–अपनी अपेक्षा से बात करता है। अगर अपेक्षा को समझ लिया जाय तो विरोध के बीच मे भी अविरोध रूप से जी सकते ह।

सोमिल ब्राह्मण ने भगवान् महावीर से पूछा कि आप एक ह या अनेक है? तब भगवान् ने उत्तर दिया– मै एक भी हूँ, दो भी हूँ ओर अनेक भी हूँ।

सोमिल– अहो भगवन्! इसका क्या कारण है? भगवान्–हे सोमिल! मै द्रव्य से एक हूँ, ज्ञान, दर्शन की अपेक्षा से दो हूँ। अनेक भूत, भावी पर्यायो की अपेक्षा से अनेक भी हूँ। अगर आप भीड मे खडे रहकर भी अपने आप मे ही रमण कर रहे हो और चितन कर रहे हो कि मै किसी का नही हूँ व मेरा भी कोई नही है तो आप अनेक के बीच मे भी एक ही हो किन्तु आप अकेले खडे होकर भी अगर आपका ध्यान और तरफ जा रहा है, घर–परिवार याद आ रहे है तो एक होकर भी अनेक हो। जैसे– प्रसन्नचद्र राजर्षि का एकान्त मे ध्यान मे खडे होकर भी बेटे की तरफ, राज्य की तरफ ध्यान चला गया था, अत एक होकर भी अनेक हो गये थे। इसी प्रकार प्रत्येक जड–चेतन पदार्थ नित्य भी है और अनित्य भी है। द्रव्य की अपेक्षा से नित्य व पर्याय की अपेक्षा से अनित्य होता है। जैसे स्वर्ण की चैन है। उसे तोडकर के कान के कुण्डल बना लीजिए। अत उस स्वर्ण का चैनरूप से विनाश कुण्डलरूप से उत्पत्ति तथा स्वर्णरूप से ध्रुव ही बना हुआ है अर्थात् स्वर्णरूप से नित्य व चैन, कुण्डल आदि पर्यायरूप से अनित्य है। इसी प्रकार चैतन्यरूप से नित्य तथा मनुष्य, तिर्यच आदि गति पर्याय रूप से व उपयोग पर्याय रूप से अनित्य होता है, अत ऐसा कभी मत कहो कि यह चैतन्य या जड विशेष नित्य ही है या अनित्य ही है। वस्तु का सर्वाङ्गीण दृष्टि से विचार करना चाहिए।

एक व्यक्ति ने किसी महापुरुष विशेष को देवपुरुष कहा तो क्या वह व्यक्ति सचमुच देव है? नही, उस व्यक्ति मे देवत्व के लक्षण हैं। उसका व्यवहार, आचरण आदि देव जैसा है, अत उस अपेक्षा से देवता कहना भी ठीक है। एक ही वस्तु को अलग–अलग देश मे अलग–अलग नाम से पुकारते है। जैसे राजस्थान मे लडकी को पुत्री कहते है, पजाब मे कुडिया कहते है तथा गुजरात मे डीकरी कहते है किन्तु वे सभी भाषाएँ देश–विशेष की अपेक्षा से सत्य है।

एक देश मे वर्तमान मे दिन है तो दूसरे देश मे रात है अत स्याद्वाद सिद्धान्त की अपेक्षा से एक ही समय को दिन व रात दोनो ही कह सकते है।

जैन शास्त्रो मे उत्सर्ग व अपवाद का वर्णन भी अपेक्षा से वर्णित हुआ है और दोनो को अपने–अपने स्थान पर शुद्ध माना गया है। जैसे उत्सर्ग मार्ग मे साधक को तीन करण, तीन योग से अहिसा का पालन करने हेतु कहा है किन्तु अपवाद मे विषम मार्ग मे चलते हुए कभी गिरने जैसी स्थिति हो तो लता–वृक्ष आदि हरित काय का सहारा भी लिया जा सकता है। एक तरफ तो हरी वनस्पति को छूने का भी निषेध है तो दूसरी ओर अपवाद मार्ग मे उसे छू भी सकता है।

उत्सर्ग मार्ग मे सत स्त्री को व सतियॉजी पुरुष को नहीं छू सकतीं किन्तु नदी व तालाब मे डूब रहे स्त्री–पुरुष को, सत–सती वर्ग को यदि तैरना आता है तो वे उन्हे पकड कर बाहर भी निकाल सकते हैं।

उत्सर्ग मार्ग मे आधाकर्मी आहार लेना बिल्कुल मना है किन्तु अपवाद मार्ग मे रोग आदि आने पर लिया भी जा सकता है। इस प्रकार जैन दर्शन मे स्याद्‌वाद सिद्धात का बहुत ही सुदर चित्रण किया है जिसको समझ कर व्यक्ति जीवन को भी बहुत सुदर तरीके से निर्वहन कर सकता है और वर्तमान क्षण मे ही सुख की प्राप्ति कर सकता है।

एक बार राजा और मत्री वन भ्रमण के लिये जा रहे थे। उन्होने शाम के समय एक महिला को देखा। जिसने जगल मे उसी दिन बच्चे को जन्म दिया था। वह अपने बच्चे को व सिर पर लकडी का भारा लिये अपने घर जा रही थी। उस दृश्य को देखकर राजा के मन मे विचार आया कि यह भी एक महिला जाति की है और मेरी रानियॉ भी महिलाऍ ही है पर यह महिला इतना काम कर सकती है और मेरे घर की रानियॉ कुछ भी नही कर सकती है। लगता है, वह अपनी शक्ति को गोपन करके आराम करती हैं। वे यह विचार करते हुये महलो मे पहुँचे और जाते ही सारे नौकरो की छुट्टी कर दी और रानियो को आदेश दिया कि तुम्हे ही सारा काम करना होगा। रानियॉ काम करने लगीं। कोई रानी झाड़ू निकाल रही है तो उसके हाथ मे झाड़ू पकडने से छाले हो गये, हाथ, कमर दु खने लग गए। कोई रसोई बना रही है तो अगुलियॉ जल गई। कोई सब्जी साफ कर रही थी तो हाथ कटने लग गए। सभी रानियॉ बडी हैरान हो गई और मत्री के सामने अपनी–अपनी बात कहने लगी और नौकरो को पुन रखवाने हेतु कहने लगी। तब मत्री ने पूछा कि किस दिन से नौकरो की छुट्टी की गई, तब रानियो ने बताया कि उस दिन से छुट्टी की गई तो मत्री समझ गया कि किस कारण से, किस विचार से नौकरो को छोडा गया है। पर राजा को एकाएक समझाना बहुत मुश्किल हे। अत मत्री ने बगीचे के माली को आदेश दिया कि बगीचे मे पानी का सिचन करना बद करो। माली ने मत्री के आदेश से बगीचे को सींचना बद कर दिया। दो–चार दिन मे ही बगीचे की रौनक खराब हो गई। मत्री राजा को साथ मे लेकर बगीचे मे गया। राजा ने बगीचे की हालत को देखकर मत्री से कहा– बुलाओ माली को, यह क्या हालत कर रखी है बगीचे की? मत्री ने कहा– राजन्! मैने ही हमेशा–हमेशा पानी सीचने का मना किया था। राजा–क्यो? मत्री–राजन्! क्या आपने जगल की रौनक को देखा नहीं कि जगल मे उन वृक्षो को, पौधो को कौन पानी पिलाता हे, फिर भी कितने हरे–भरे रहते हें। तो फिर यहॉ रोज–रोज पानी पिलाने की जरूरत क्या है? राजा–अरे मत्री! इतना भी नहीं समझते हो कि वे तो जॅगली पेड हें पर यह तो बगीचा हे। बगीचे मे तो पानी पिलाना ही पडता है, नहीं तो मुरझा जाऍगे। मत्री–राजन्! आप कहते है, वह बिल्कुल ठीक हे। वेसे ही जॅगली स्त्रियो व महलो की स्त्रियो मे तो काफी अन्तर होता है। दोनो के साथ एक जेसा व्यवहार कसे

उचित हो सकता है? राजा उस बात को तुरत समझ गये व तुरत महलो मे जाकर पुन सारे नौकरो को काम पर लगा दिया, इस प्रकार हर बात को अपेक्षा से समझना चाहिए ताकि परिवार, समाज, राष्ट्र आदि मे निरन्तर शाति बनी रहे। दुनिया मे हर धर्म को जोडने वाला भी स्याद्वाद सिद्धान्त ही है।

आप किसी भी छोटे–से–छोटे व्यक्ति की भी उपेक्षा मत कीजिये। वह छोटा व्यक्ति भी कभी काम मे आ सकता है। जैसे सिर, जो आपको ऊँचा दिखाई दे रहा है वह पैरो के बल पर ही ऊँचा है। अगर पैरो को हटा दिया जाय तो सिर नीचे गिर जायेगा ठीक वैसे ही छोटे व्यक्ति पैर के स्थान पर व बडे व्यक्ति सिर के स्थान पर है, पर बडे वर्ग की शोभा छोटे से ही है। तिनके के स्थान पर तिनका ही काम आता है। छोटी कील का जहाँ काम है वहाँ हथौडा काम नही कर सकता है, उसी प्रकार समाज मे, राष्ट्र मे सभी का अपना–अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसी प्रकार समाज मे वृद्धो का भी महत्त्व है व युवको का भी महत्त्व है। युवक भाग–दौड का व शक्ति का काम कर सकते है। वृद्ध अपने अनुभव दे सकते है।

एक बार राजा ने राज्यसभा मे बैठे हुए सभासदो से पूछा कि– मानलो अभी इसी सिहासन पर बैठे हुए मुझे कोई थप्पड मार दे तो तुम क्या करोगे? जवान सभी जोश मे आ गये और बोले– महाराज! हम उसकी गर्दन उडा देगे। हमारे रहते हुए आपको कौन थप्पड मार सकता है? किन्तु वृद्ध चुपचाप बैठे हुए थे। राजा की नजर उनकी ओर गई और बोले–तुम लोग चुपचाप क्यो बैठे हो? क्या तुम मुझे थप्पड मारने वालो की कुछ भी प्रतिक्रिया नहीं करोगे? तभी एक वृद्ध खडा होकर सभ्यता से बोला– हुजूर! हम उसे बहुत प्यार करेगे क्योकि इस राज्यसभा मे आपके थप्पड मारने वाला सिर्फ छोटे–से गोद मे खेलते हुए राजकुमार के अलावा कोई भी नही हो सकता है। राजा उस उत्तर को सुनकर बहुत खुश हुए और उस वृद्ध पुरुष को बहुत इनाम दिया। यानी वृद्ध का अनुभव अनूठा ही होता है, अत अपेक्षा से समाज मे वृद्ध पुरुषो की भी परम आवश्यकता होती है व शक्ति का काम करने के लिये जवान पुरुषो की भी आवश्यकता होती है।

यह अपेक्षा समझाने वाला स्याद्वाद ही है। जो दो विरोधी पक्षो को भी जोडने का काम करता है व हर विगडी बात को बनाने का अपूर्व काम भी यह करता है अत जैन दर्शन के प्राणरूप स्याद्वाद सिद्धात को समझना, जीवन की गहराइयो तक उतारना परम आवश्यक है।



पाना है तो खोइये

ससार मे प्रत्येक बुद्धिमान मनुष्य की आकाक्षा रहती है कि मै ससार के सर्वोच्च पद प्राप्त करूँ। जिस भी क्षेत्र मे पैर रखूँ वहीं सफल हो जाऊँ, जहॉ भी ठोकर मारूँ वही पर खजाना निकल आवे। मै जिस किसी व्यक्ति पर दृष्टि डालूँ वही मेरे इशारे को समझकर वैसा ही कार्य करने लग जावे। जहॉ भी जाकर के खडा होऊँ सभी मेरा आदर–सत्कार करे। ये सारी आकाक्षाएँ तभी पूर्ण हो सकती हैं जब पुण्यवानी आत्मा के साथ मे हो। तीर्थकर प्रभु जहॉ भी पधारते है उनकी पुण्यवानी से सीधे कॉटे स्वत ही उल्टे हो जाते है। जमीन मे रहे हुये गड्ढे या टीले आदि समभूमि भाग मे बदल जाते है। शीतकाल मे उष्ण व उष्णकाल मे शीत वाला सुहावना मौसम बन जाता है। भगवान् जहॉ भी पधारते है, उनके चारो ओर 25–25 योजन तक कोई रोग या उपद्रव नही होता है। पहले अगर कुछ हो रहा हो तो सब शात हो जाता है। दुष्काल नहीं पडता, वहॉ के लोग सभी तरह के भय से मुक्त रहते है। यह सब पुण्य का खेल है। पुण्य के कारण ही ऊर्ध्वगति होती है, अत पुण्यवान बनने हेतु पुण्यबध के नौ हेतुओ की आराधना करनी चाहिये। वे पुण्यबध के नौ हेतु इस प्रकार से है– 1 अन्न पुण्य 2 पान पुण्य 3 लयन पुण्य 4 शयन पुण्य 5 वस्त्र पुण्य 6 मन पुण्य 7 वचन पुण्य 8 काय पुण्य 9 नमस्कार पुण्य।

1. अन्न पुण्य:- अगर आपको पुण्योदय से पर्याप्त मात्रा मे अन्न, धन प्राप्त हुआ है तो उसका सदुपयोग करते हुए भूखे को भोजन करवाइए। सुपात्र को दान दीजिए। पहले किसी को खिलाके फिर खाओ। पूर्व जमाने मे लोग बाहर जगल जाते तब साथ मे गुड, रोटियॉ आदि ले जाते और रास्ते मे गाय, गोधे आदि को खिलाते हुए जाते–आते थे। पहले के श्रावको के द्वार पर कोई भी आता तो खाली कभी नही लौटता था, पर आज तो घर मे कमरे से अटेच ही लेटरिन बनी हुई है, अत कही बाहर जाने की जरूरत ही नहीं है। बिस्तर से उठते ही चाय चाहिए, ऐसी स्थिति मे किसको देने के लिये जावे व कौन–से अतिथि का इतजार करे। अतिथि को दुकान पर चाय–नाश्ता करवाके भेज दिया जाता है। घर के ऑगन मे तो उनकी जूठन पडती ही नहीं है। गाय, कुत्तो, भिखारी आदि को भी व्यक्ति देना नहीं चाहता। सयति वर्ग

गोचरी के लिये जाते है तो शहरी घरो के टिफिन खाली पडे रहते है। एक रोटी भी उसमे नही मिलती है। या फिर खा–पीके भोजन समाप्त हो जाता है। खाने के बाद जो आटा बच जाता है वह फ्रीज मे रखकर शाम को काम मे लेते है व शाम का सवेरे काम मे लेते है, पर देने की भावना नही होती है। पूर्व जमाने मे रात मे गीला आटा रखना अपशुकन माना जाता था व रोटी का डिब्बा भी खाली रहना अपशुकन माना जाता था। अत शाम को आटा व खाद्य सामग्री मे रोटी–सब्जी जो भी बचा है, सभी को समय रहते हुये गरीबो को दे देना चाहिए। बचा हुआ देने से भी महान् पुण्यवानी बॉधता है। आपको मालूम होगा, तीसरे देवलोक का इन्द्र सनत्कुमारेन्द्र एकाभवतारी है। वे वहॉ से निकलकर महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर, साधना करके मोक्ष मे जायेगे व वर्तमान मे बारह लाख विमानो के स्वामी है। इसके पीछे पूर्व की पुण्यवानी रही हुई है। पूर्वभव मे सनत्कुमार इस मनुष्यलोक मे चक्रवर्ती के भोजनालय का रसोइया था। एक बार चक्रवर्ती भोजन कर रहे थे, उन्हे उस दिन के भोजन मे बडा स्वाद आ रहा था। चक्रवर्ती बहुत खुश हुए और रसोइये से बोले कि वैसे तो तुम हमेशा ही भोजन अच्छा ही बनाते हो पर आज तो ज्यादा ही स्वाद आया है। आज लगता है तुमने अपनी सारी बुद्धि भोजन बनाने मे ही लगा दी है। आज स्वादिष्ट भोजन मे जिस कुशलता का परिचय दिया है। उससे मै अत्यत सतुष्ट व प्रसन्न हूँ। तुम जो चाहो, सो मॉग लो।

रसोइये ने कहा–महाराज! मुझे किसी जागीरी विशेष की चाह नही है व हीरे, मोती, माणिक आदि की भी चाह नही है। अगर आप कुछ देने का बोल ही रहे है तो मुझे एक आज्ञा फरमाइये कि इस रसोडे मे आपके जीमने के बाद जो भी बचा हुआ भोजन है, उससे मै किसी को भी जिमा सकूँ। चक्रवर्ती उसकी बात को सुनकर बहुत आश्चर्यचकित हुए। वे अब तक तो उसकी भोजन–कला पर ही खुश थे पर आज उन्हे उसके विलक्षण आत्मिक गुणो का भी पता चल गया कि यह कितने उदार व उच्च विचारो का स्वामी है। अत सम्राट ने उसकी इच्छा के मुताबिक वर दे दिया कि तुम तुम्हारी इच्छानुसार किसी को भी भोजन करवा सकते हो व दे भी सकते हो।

रसोइया बहुत खुश हुआ। चक्रवर्ती के रसोडे मे जहा सैकडो आदमियो का भोजन हमेशा बनता है वहॉ तो बहुत–कुछ बचता ही था। साधारण भोजनालय मे भी जहॉ बच ही जाता है वहॉ चक्रवर्ती के रसोडे का तो कहना ही क्या है? रसोइये ने नगर मे सूचना करवा दी कि जो भी भाई एकान्तर उपवास करते हो, उन्हे किसी भी वस्तु की आवश्यकता हो तो वे नि सकोच भाव से राजकीय रसोइये के पास आकर ले सकते हैं। अगर कोई यहॉ आकर नहीं लेना चाहे तो उसके घर भी सामग्री पहुँचाई जा सकती है। सयती वर्ग से भी निवेदन किया कि यहॉ शुद्ध, निर्दोष आहार व पथ्य सबधी आहार

भी मिलता है। जब भी आपको अनुकूल अवसर लगे तब पधार सकते है। यानी उस रसोइये ने श्रावक–श्राविका को भी आहार दान दिया व साधु–साध्वियो को भी आहार दान देकर महान् सुलाभ को प्राप्त करते हुए ससार परित किया व समकित रत्न की भी प्राप्ति की। वे सनत्कुमार इद्र मनुष्य बनकर अवश्य मोक्ष जाएँगे।

इसी प्रकार भगवान् महावीर के जीव नयसार ने अतिथि को दान देकर समकित रत्न प्राप्त किया था व भव भ्रमण परिमित किया था।

ऐसा है सुपात्र दान का अपूर्व लाभ। इसी प्रकार अनुकपा बुद्धि से किसी भी गरीब भाई को भोजन कराना, पशुओ को अन्न दान करना भी पुण्य बध का कारण है।

2. पान पुण्य - कभी–कभी अन्न से भी ज्यादा आवश्यकता प्राणियो को पानी की होती है। मैने मारवाड के गॉवो मे गरमी के समय उन गरीबो को देखा जिनके घर पानी का सचय करने के साधन नहीं हैं, वे एक–एक घडे पानी के लिये सेठो के द्वार पर चक्कर काटते फिरते हैं। जहॉ गरीबो की भी यह हालत हो जाती है वहॉ पर पशुओ की क्या स्थिति होगी? अत पशुओ के लिए पानी की व्यवस्था करना पुण्यबध का हेतु है। एक बार एक भाई ने मुझे बताया कि– जब मै परदेश कमाने के लिए प्रारभ मे घर से विदा हो रहा था उस समय मैने सकल्प लिया– एक प्याऊ बनाने हेतु। क्योकि मरुस्थल की भूमि पर भयकर गरमी पडने से प्याऊ का उपयोग ज्यादा जरूरी महसूस हुआ अत परोपकारार्थ वही सकल्प लिया। परोपकार की भावना के फलस्वरूप कुछ ही समय मे काफी धन कमाया और करोडपति बन गये। इसी प्रकार घर मे बर्तन धुला पानी भी नीचे न गिराते हुये अगर घडे मे भर लिया जाय तो पानी का सुपात्र दान भी लग जाता है। पर जरा–सी उपेक्षाबुद्धि व प्रमाद के कारण इस महान् लाभ से वचित रह जाते है।

3. लयन पुण्य - थके हुये व्यक्तियो को ठहरने का स्थान देना चाहिये। किन्तु आज तो मकान मे ठहरने का स्थान तो देना दूर रहा मगर मकान की छाया मे भी आराम से गरीबो को नहीं बैठने देते। उनकी सोच रहती है कि हमारे मकान की दीवाले खराब हो जाएँगी। पर भाई, इतने सकुचित विचार मत रखो। आप दूध–दही खाते हैं तो छाछ तो गरीबो को फ्री मे दे दो। आप बडी कोठी मे रहते हो तो कम से कम उसकी छाया मे तो गरीबो को भी विश्राम लेने दो।

श्रावक–श्राविका के धर्म–ध्यान हेतु स्थानक का दान करना, या सहयोग प्रदान करना भी महान् पुण्य बध का हेतु है क्योकि उस स्थान पर चतुर्विध सघ जो धर्म–ध्यान करता है उसका लाभ अपूर्व ही होता है। अन्न–दान से भी स्थान–दान का लाभ ज्यादा बताया है। अन्न–दान तो फिर भी कोई भी

कर सकते है पर स्थान–दान करना बहुत मुश्किल है, अत स्थान–दान बहुत महत्त्वपूर्ण है।

4. शयन पुण्यः- ठडी–गरमी से बचने हेतु, ओढने–बिछाने हेतु शय्या–चद्दर आदि का दान करना भी महान् पुण्य का हेतु है। सर्दी मे कई लोग फुटपाथ पर सोये रहते है। उनको ओढने हेतु कबल आदि की व्यवस्था करना।

5. वस्त्र पुण्यः- आप बढिया से बढिया वस्त्र पहनते है। थोडे दिन वस्त्र पहनकर थोडे पुराने होते ही उन कपडो से अरुचि पैदा हो जाती है। उन्हे पहनते ही नहीं है। ऐसे बेकार कपडो को गरीबो को दान देना चाहिए ताकि सहज मे ही वस्त्र का दान हो जाये पर आज मेरी बहने उन पुराने कपडो से बर्तन खरीद रही है। आपके घर मे बर्तनो की कोई कमी नहीं है, पर दान की प्रवृत्ति न होने से, सकुचित विचार होने से व्यक्ति पुराने कपडो का भी दान नहीं दे सकता है। इसी प्रकार घर मे यदि श्वेत वस्त्र पडे है तो आप सयती वर्ग को भी वस्त्र दान देकर महान लाभ की प्राप्ति कर सकते है।

6. मन पुण्यः- अगर आपके पास दान देने का कुछ नही है, परोपकार मे आप प्रवृत्ति नही कर सकते तो कम से कम मन की भावना तो शुद्ध रख सकते है। मन से हर व्यक्ति का भला सोचने से भी महान् पुण्य का लाभ होता है।

7. वचन पुण्यः- अगर आपको बोलने की शक्ति प्राप्त हुई है तो प्रभु का भजन करिये, अन्य को शाति प्राप्त हो, ऐसे वचनो का प्रयोग करिये। जिन वचनो से किसी का भला हो सके ऐसे वचनो का प्रयोग करिए। किसी की निदा, विकथा करके पापकर्म मत बॉधिये। फालतू की गप्पे मारकर अपनी बुद्धि व शक्ति को बरबाद मत कीजिये। जितना समय गप्पो मे व्यतीत किया करते हो, उतने समय मे धर्म–पुण्य का उपार्जन किया जा सकता है। सुमधुर भाषा पूर्वपुण्य के योग से ही प्राप्त होती है। अत अब भी मधुर भाषा का प्रयोग करके दूसरे के दिलो को ठडा करके वचन पुण्य का उपार्जन किया जाय। अगर इस भव मे वचनो का दुरुपयोग किया तो अगले भव मे जिहा ही नहीं मिलेगी। इस जबान को आपने अनेक मन गुड और शक्कर खिलाई है तो भी वैसा मिठास आपके जबान मे नही आया तो फिर वह गुड–शक्कर खिलाना बेकार गया। कहा भी है–

कुदरत को ना पसंद सख्ती जवान मे,
इसीलिए ना दी हड्डी जवान मे।

सारे शरीर मे हड्डियॉ है पर जवान मे छोटी–सी भी हड्डी नहीं है। वह बहुत कोमल है। अत आप भी कोमल शब्दो का ही प्रयोग करे। जिससे सहज मे ही पुण्यबध हो जावे। सत महापुरुष हमेशा मिष्ट वचनो का प्रयोग करते हुए स्व–पर कल्याण करते हैं। प्रवचन हेतु भाषा का प्रयोग करने वाले साधक

के लिये कहा है कि प्रवचन सुनने वालो को निर्जरा हो या न हो पर प्रवचन देने वालो के एकान्त निर्जरा होती ही है। अत भाषा का सदुपयोग करते हुए वचन पुण्य उपार्जन अवश्य करे।

8. काया पुण्य.- आपको पूर्ण पॉचो इन्द्रियो सहित शरीर मिला है तो इसका सेवा आदि करके सदुपयोग कीजिये। घर मे रोगी, तपस्वी, वृद्ध की सेवा अग्लान भाव से करिये। समता भाव से एक काम ज्यादा कर लेते हो तो भी कर्मो की निर्जरा का प्रसग बनता है। घर मे बहू आई है तो यह मत सोचिये कि सारा काम वही करेगी पर सास को भी अपनी कायिक शक्ति का गोपन न करते हुये काम मे सहयोग करना चाहिए। कहा भी जाता है कि 'चाम प्यारा नही, काम प्यारा है।' अत आपको पूरे दिन मे एक काम तो घर के सभी सदस्यो का करके काया का सदुपयोग करना ही चाहिए। और कुछ नहीं कर सकते हो तो पानी तो पिला ही सकते हो। यह शरीर टिकने वाला नहीं है। इसका जितना सदुपयोग हो सके, उतना कर लीजिए। आप हमेशा गाडी–स्कूटर से दर्शन करने आते है तो आठम–चउदस या पर्युषण पर्वो मे तो वाहन का त्याग करके काया का उपयोग कर सकते है।

9 नमस्कार पुण्य.- घर मे जितने भी बडे लोग है, उनके चरणो मे नमस्कार करे। बडो का आदर–सम्मान, विनय करने से उनका आशीर्वाद आपको प्राप्त होगा और आप सहज रूप से आगे बढ जाऍगे किन्तु आज तो माता–पिता के चरणो मे नमस्कार करते हुये शर्म आती है। श्रीकृष्ण के 72 हजार माताऍ थी। वे प्रतिदिन चार सौ माताओ का वदन करते थे। छ महीने मे एक माता का नबर आता था। श्रीकृष्ण तीन खड के अधिपति वासुदेव होते हुए भी अपने उपकारी माता–पिता को वदन करना नही भूलते थे। यह तो भारतीय सस्कृति भी है। प्रणाम करते हुये हाथ जुडते ही कमल के समान आकृति बन जाती है।

इसी प्रकार सयती वर्ग के चरणो मे वदन करते समय विधि का पूरा ध्यान रखना चाहिए। विधिपूर्वक वदना करने से सारे फेफडो की, हाथो की, पेरो की, कमर की एक्सरसाइज हो जाती है, जिससे शारीरिक फायदा तो होता ही है किन्तु आध्यात्मिक फायदा भी बहुत ज्यादा होता है। भावपूर्वक विधि सहित वदना करने से श्रेणिक महाराज के छ नारकी के वधन टूट गये थे। अत विधि सहित वदना करने मे व बडो को प्रणाम करने मे कजूसी नहीं करनी चाहिए तथा भगवान् के वचनो के अनुसार नमस्कार पुण्य का महान् लाभ भी प्राप्त करने से वचित नही रहना चाहिए।

अगर आपको स्वस्थ तन, धन, भूमि आदि सामग्री पुण्य योग से प्राप्त हुई है तो उसका सदुपयोग करके वर्तमान मे पुण्य कमाइये।

अगर कोई व्यक्ति पूर्वजो द्वारा सचित पुण्यवानी को खर्च ही खर्च करता

रहे तो सभव है उसी भव मे शीघ्र ही समाप्त हो सकती है। अत घर मे कितना भी धन हो पर कमाना भी पडता ही है उसी प्रकार पूर्व शुभ कर्मो से मिली पुण्यवानी का यदि उपभोग करते रहे और उसका सदुपयोग नही किया तो आप शीघ्र ही खाली हो जाओगे और देखते–देखते अचानक कोठी से रोड पर भी आ सकते हो। श्रीमत से भिखारी बन सकते हो। रवीद्रनाथ ठाकुर ने कहा है– **जो हम देते हैं, स्वर्ण हो जाता है व जो हम रख लेते है वह राख हो जाता है।**

वास्तव मे पुण्यवान और पापी की पहचान क्या है? इसके उत्तर मे किसी विचारक ने कहा कि असली पुण्यवान वही है जो पुण्यफल से प्राप्त समस्त शक्तियो को सत्कार्य मे सदुपयोग करता है और पापी वह है जो प्राप्त समस्त शक्तियो का असत्कार्य मे प्रयोग करता है। पुण्यात्मा प्राप्त धन–सम्पदा के माध्यम से गरीबो का सहयोग करता है। अनाथालय मे दान करके अनाथो का जीवन निर्माण करता है तथा गरीब बच्चो को पढाने आदि मे सहयोग करता है। दीन–दु खियो के ऑसू पौछता है। अपने दीपक की लौ से अन्य के दीपक भी जलाता है। ऐसा व्यक्ति प्राप्त पुण्य को और अधिक बढाता है। इस प्रकार निरन्तर पुण्य को बढाने वाला इस भव मे, परभव मे किसी से भी भय को प्राप्त नही होता। और न ही ससार की किसी भी शक्ति से पराभव को प्राप्त होता है। भले ही ससार मे उसके अनेको शत्रु ईर्ष्याग्नि मे जलते हुए उसे नष्ट–भ्रष्ट करने का कैसा भी षड्यत्र रचे परतु पुण्यवान व्यक्ति का कोई बाल भी बॉका करने मे समर्थ नही हो सकता। अपितु उससे बिना मतलब ही ईर्ष्या करने वाले ईर्ष्यालु अपने स्वय के द्वारा जलाई गई ईर्ष्याग्नि मे जलकर समाप्त हो जाते है। पुण्यवान के लिए अग्नि भी जल के रूप मे परिवर्तित हो जाती है। विष भी अमृत बन जाता है। यदि वह एक वार सर्प की बॉबी मे भी हाथ डाल दे तो भी उसके हाथ मे सर्प के बदले पुष्प की माला ही आयेगी। शूली भी उसके लिए सिहासन का रूप धारण कर सकती है। इतना ही नहीं, वह पुण्य व्यक्ति को नर से नारायण, भक्त से भगवान बना देता है। पुण्यवान व्यक्ति परिवार, समाज, राष्ट्र आदि जहॉ भी खडा रहता है, सभी के द्वारा आदर–सत्कार प्राप्त करता है। सभी के द्वारा यही शब्द उच्चरित होते हैं कि आपकी कृपा से हमारा काम अच्छा चल रहा है, आपकी कृपा वनी रहे आदि। ऐसे परोपकारी पुण्यवान व्यक्ति के हाथ से छुआ रुपया भी जिस किसी के हाथ मे चला जाता है वह उसके लिए अखूट खजाना वन जाता है। वे अपने आस–पास मे रहने वाले व्यक्तियो के दु ख को भी सुखरूप मे परिवर्तित कर देते है। पुण्यवान व्यक्ति थोडा कार्य करता हे फिर भी प्रसिद्धि अधिक होती है।

पुण्यवान व्यक्ति को ही धर्म की वात पसद आती हे। पुण्यहीन को धर्म

की बात जरा भी अच्छी नहीं लगती। भिखारी चाहे कि मै रसमलाई खाऊँ पर उसे कोई नही खिलाता है, उसी प्रकार पुण्यहीन सुख–सपत्ति, स्वर्ग, अपवर्ग चाहता अवश्य है पर पुण्य के बिना उसे वह सब–कुछ मिल ही नहीं सकता है। पुण्यवान व्यक्ति ही माला, प्रार्थना, सामायिक आदि कर सकता है और उसी पर उपदेश का प्रभाव भी शीघ्र ही पडता है। गजसुकुमाल की कहॉ तो शादी की तैयारियॉ हो रही थी और कहॉ एक ही प्रवचन से सब–कुछ छोडकर दीक्षित हो गये। पुण्यहीन व्यक्ति पहले तो उपदेश सुनने पहॅुचता ही नहीं है। अगर कभी पहॅुच भी गया तो नींद निकालते रहेगे। अगर कभी सुन भी लिया तो वहॉ की बात वही छोडकर आ जाएॅगे। सोचते है, महाराज के तो कहने का काम है, हमारे सुनने का काम है आदि।

पुण्यवान व्यक्ति अपने कुल की, धर्म की मर्यादाओ का उल्लघन नही करता। गलत सगति कभी नही करता है। ऐसे धर्मशील व्यक्ति के चरणो मे इन्द्र भी नमस्कार करते है। इससे स्पष्ट होता है कि इन्द्र की पुण्यवानी से बढकर पुण्यवानी भी धर्मवान–श्रद्धालु साधक वर्ग की होती है। श्रद्धालु व्यक्ति के द्वारा की गई क्रियाएॅ निर्जरा तो कराती ही है पर साथ मे पुण्य फल को भी प्रदान करती है। जैसे खेती मे धान्य बोया जाता है, वह फल की आकाक्षा से बोया जाता है किन्तु फल के साथ–साथ चारा तो स्वत ही प्राप्त हो जाता है। हलवाई की दुकान से मिठाई लाई जाती है पर डब्बा व डोरा तो उसके साथ स्वत ही प्राप्त हो जाता है वैसे ही साधक वर्ग के द्वारा ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तपरूप धर्म की आराधना कर्म निर्जरा के लिये की जाती है किन्तु पुण्यरूप चारा तो उसके साथ–साथ मे बिना चाह के भी प्राप्त हो जाता है। आप गृहस्थ मे रहते हुए अधिक धर्मक्रिया नही कर सकते हो, तो दान, शील, तप–भावना की आराधना यथाशक्ति करते हुये पुण्योपार्जन मे पीछे नही रहना चाहिए।



मेरा-घर

जत्थेव गंतुमिच्छेज्जा, तत्थ कुव्विज्ज सासयं।

अर्थात् बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि जहॉ पर जाने की इच्छा हो वही पर अपना स्थाई घर बनावे।

हर मानव के मन मे घर के प्रति गहरा आकर्षण होता है। हर व्यक्ति अपने लिये घर अवश्य बनाता है क्योकि हर मानव की रोटी, कपडा व मकान–ये तीन तो आवश्यक समस्याएँ होती ही है, उनकी पूर्ति होना मानव के लिये आवश्यक भी है।

बुद्धिमान मानव को घर भी अपना स्वय का चाहिए, जिसके पास स्वय का घर नही होता है, वे किराये के मकान मे भी रहते है किन्तु किराये का मकान तो एक अवधि के बाद पुन–पुन खाली करना ही पडता है। और मालिक के घर मे लडके–लडकी की शादी का काम पड गया तो वे उससे भी पहले मकान खाली करवाने की बात खडी कर देते है। बार–बार सामान किराये के मकानो मे इधर–उधर पटकने से मानव को घबराहट आने लगती है व कई सामान तो इधर–उधर लाने, ले जाने मे ही टूट–फूट जाता है। अत किराये का मकान व्यक्ति को अच्छा नही लगता। वह थोडे पैसे एकत्रित होते ही सर्वप्रथम घर का मकान बनाना चाहता है। चाहे एक कमरा, एक रसोई ही हो, पलस्तर नही भी कराया हो फिर भी मकान घर का चाहिए। घर के मकान मे हर व्यक्ति खुश रहता है। क्योकि वह जानता है कि पराये मकान मे सुख नहीं है। कहा भी जाता है–

अपना घर-हॅग के भर

दूसरों का घर-थूकने का ही डर।

जिस प्रकार मानव को किराये के मकान बार–बार खाली करते हुए परेशानी का अनुभव होता है क्योकि वह बुद्धिमान है अत घर का मकान बना लेता है पर कभी आपने यह भी सोचा है कि यह जीव निरन्तर कितने घर खाली कर रहा है। अगर देव के घर मे भी चले गये तो भी एक अवधि के बाद तो वहॉ से दूसरी गति हेतु विदा होना ही पडेगा। मनुष्य गति मे भी 60–70 वर्ष बाद व्यक्ति को विदा होना ही पडता है तथा तिर्यंच के घर में चले गये तो वहॉ की स्थिति तो बडी विचित्र है। जीवो के कुल 84 लाख घर

है, उनमे से 52 लाख घर तो एकेन्द्रिय के ही हैं और एकेन्द्रिय जीव एक श्वासोच्छ्वास जितने समय मे सतरह बार अपना घर छोडते हैं व वापस ग्रहण करते है तथा अडतालीस मिनिट के अन्दर–अन्दर पैंसठ हजार पॉच सौ छत्तीस बार घर छोडते है व वापस घर मे प्रवेश करते है। इस प्रकार यह जीव पुन–पुन जन्म–मरण करते हुए पुन–पुन मकान खाली कर रहा है। किन्तु अभी तक अज्ञानी जीव को बार–बार घर खाली करते हुए घबराहट नहीं आ रही है। वह यह नहीं समझ पा रहा है कि यह घर मेरा नही है। यह घर स्थायी नहीं है। बाहर के घर के विषय मे फिर भी व्यक्ति की बुद्धि काम करती है।

एक बुढिया चारपाई पर लेटी हुई थी। ऑखो मे नीद का नामोनिशान नहीं था। सोच रही थी– नारी की भी क्या नियति होती है। सारा जीवन घर को सॅवारने–व्यवस्थित करने मे ही बिता देती है, फिर भी घर उसका होता ही नही है। उसे याद आई–बचपन की बाते। मॉ उसे कहती थी– बेटी! सलीके से रहना सीखो। पराये घर जाना है। उत्तर मे मै कहती– मैं क्यो जाऊॅ पराये घर? मेरा तो यही घर है। तब मॉ समझाती–बेटी! यह तो तेरे पिता का घर है, भाई का घर है। तेरा घर तो तेरा अपने पति का घर होगा।

मेरे ससुराल का घर मेरा घर होगा। इस आस को लिये ससुराल आ गई और उस अपने घर को सॅवारने मे तन–मन से जुट गई थी।

पति की अनायास ही एक्सीडेट से मृत्यु हो गई। मैने अपने इकलौते बेटे को पढाया–लिखाया, उसकी शादी की। बेटे के लिए एक घर भी बनवा दिया। जैसे–जैसे बेटे का परिवार बढता जा रहा था वैसे–वैसे इस बुढिया के लिये घर मे से स्थान खत्म होता जा रहा था और एक दिन उस सपूत बेटे ने वृद्धाश्रम को ही मेरा घर बना दिया। तब मुझे समझ मे आया कि मै पति की अर्द्धागिनी तो थी पर अधिकारिणी नहीं। वह घर सिर्फ पति का घर था।

बाहरी घर के विषय मे तो फिर भी मानव समझ रहा है किन्तु आध्यात्मिक क्षेत्र मे मानव अपने ज्ञान चक्षु को बद करके रखता है और आत्मिक घर ही शाश्वत घर है, इस ओर दृष्टिपात ही नही करता है ओर जड के साथ रहकर अपनी बुद्धि को भी जड ही बना लेता है और रात–दिन जड की ही बात करता रहता है। वह यह नही जानता कि **जहॉ जड की बात है, वहॉ निज गुण की घात है।** जड की बात करने वाला पुन–पुन जड के साथ जन्म–मरण करता है। पर अपर घर मे शाति कभी नहीं मिल सकती। मानव यह नही सोचता है कि मै कब तक पुन–पुन घर खाली करता रहूॅगा। मैं इतनी धर्म की कमाई करूॅ कि मै अपने शाश्वत घर मोक्ष को प्राप्त कर लूॅ।

नमि राजर्षि दीक्षित होकर बगीचे मे ध्यानस्थ थे। इन्द्र वृद्ध के परिवेश

मे नमि राजर्षि की परीक्षा लेने उनके पास पहुँचा और कई प्रकार के प्रश्नोत्तर किये। उनमे से एक प्रश्न यह भी था कि—

पासाए कारइत्ताणं, बद्धमाण गिहाणि य
बालग्ग पोइयाओ य, तओ गच्छसि खत्तिया।

अर्थात् हे क्षत्रिय! तुम पहले वास्तुशास्त्र मे बतलाये अनुसार अनेक प्रकार के महल बनवाकर व जलक्रीडा के लिये तालाब के बीच मे महल आदि बनवाकर उसके बाद प्रव्रज्या धारण करना तुम्हे योग्य है।

इन्द्र कहता है कि आपको अच्छे—अच्छे बहुत—सारे घर बनाने थे। आप उनमे भले न रहते किन्तु आपकी अगली पीढियाँ तो उनमे रहती व आप अपना नाम उन मकानो पर लिखवा देते तो सैकडो वर्षो तक आपका नाम चलता रहता। तब नमि राजर्षि ने ब्राह्मण परिवेशधारी इन्द्र से कहा— हे देवानुप्रिय! तुम अभी सच्चाई को नही जानते हो, अत तुम्हारा कहना ठीक नही है। वास्तविकता यह है कि—

संसय खलु सो कुणई, जो मग्गे कुणई घरं।
जत्थेव गन्तुमिच्छेज्जा, तत्थ कुवेज्ज सासयं।।

अर्थात् जिसके मन मे यह सशय होता है— जहाँ मै जा रहा हूँ, वहाँ मेरा घर है या नही है, वही व्यक्ति रास्ते मे घर बनाता है। बुद्धिमान पुरुष तो वही घर बनाता है जहाँ उसका जाने का लक्ष्य है।

जैसे एक व्यक्ति को उगरानी करने जाना है। उसे जहाँ जाना है, उस गाँव का रास्ता ठीक नही है, अत वह पैदल—पैदल ही जा रहा है। रास्ते मे थकान को दूर करने आते—जाते विश्राम करता है। अगर वह विश्राम करने वाला व्यक्ति यह सोचने लग जावे कि मुझे यहाँ विश्राम करना पडता है अत रास्ते मे मेरा मकान होना ही चाहिये। ऐसे विचारो के साथ दस मिनिट विश्राम हेतु भी मकान बनाता है तो लोग उसे बुद्धिमान न कहकर मूर्ख ही कहते है। क्योकि ऐसी मूर्खता का काम तो वही कर सकता है जिसके मन मे यह सशय हो कि मेरा मकान गाँव मे है या नही? पर बुद्धिमान व्यक्ति के मन मे ऐसी शका कभी भी नहीं होती है।

नमि राजर्षि कहते है कि मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि मेरा स्थायी घर तो मोक्ष मे है। और वह ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना के माध्यम से प्राप्त होता है। मैं उन रत्नत्रय की आराधना कर रहा हूँ, अत निश्चय ही मुझे स्थाई आत्मिक घर मोक्ष की प्राप्ति होगी ही। हे देवानुप्रिय! मुझे रास्ते मे घर बनाने की जरूरत नहीं है। जिस व्यक्ति के मन मे यह शका हो कि मोक्ष नगर मे मेरा घर है या नहीं, वही व्यक्ति रास्ते मे घर बनायेगा। मेरे को रास्ते मे घर नही बनाना है किन्तु मानव आज रास्ते मे ही घर बनाने मे लगा हुआ है।

घर बनाने की सज्ञा तो पशु—पक्षियो मे भी होती है। चूहे अपने लिए बिल

बनाते हैं। पक्षी घोसले बनाते हैं, मधुमक्खियॉ व टॉटिये व बया अपना–अपना घर इतना सुदर बनाते है कि मनुष्य भी वैसा घर नहीं बना पाते। खैर, पशु तो अज्ञानी जीव है किन्तु आपके पास तो बौद्धिक शक्ति का भडार है फिर भी अशाश्वत घर को बनाने मे क्यो लगे हो? रहने को चाहिए दो कमरे, एक रसोई पर मन को बडे–बडे मकान चाहिए। एक मकान हो गया तो दूसरे की लालसा खडी हो जाती है और इन्ही बाहरी घरो को बनवाने मे अमूल्य जिन्दगी का समय खर्च हो जाता है। इन ईट–चूने के मकानो की बात छोडिये, अपना स्वय का शरीररूपी घर भी शाश्वत नही है। वह भी अशाश्वत है। उसे भी बार–बार बदलना पडता है। देवो के पास भौतिक दृष्टि से सुन्दर–से–सुन्दर घर होते है। अपार भौतिक सपदा उन्हे प्राप्त होती है पर सम्यक् दृष्टि जीव देव–घर को छोडकर मनुष्य का घर चाहते है। क्योकि वे बार–बार घर खाली करते हुए थक चुके है। वे चाहते है कि मनुष्यभव को प्राप्त करके, साधना करके स्थायी घर को प्राप्त कर लिया जाय।

वास्तव मे अपर घर मे शाति कभी मिल नही सकती। कहा भी है– झाड़ू निकालने वाली, बर्तन मॉजने वाली नौकरानी भी बडे–से–बडे महलो मे पहुॅचकर भी काम पूरा होते ही अपने घर जाना चाहती है, भले ही उसका घर टूटी–फूटी झोपडी ही हो। आप भी होटल मे जाते है। वहॉ हर तरह की सुविधा है किन्तु आप वहॉ स्थाई रूप से रहना नहीं चाहते, पुन अपने घर ही आना चाहते है। जमाईराज अपनी ससुराल जाते हैं। ससुराल मे गजब की खातिरदारी होती है। तीन दिन मे तीन पौड खून बढ जाता है। सास–ससुर की मनुहार, साले–सालियो की मीठी बातो मे समय कहॉ निकलता है, उसका पता ही नही लगता है, फिर भी जमाई अपने ससुराल मे ज्यादा नहीं रहता। अपने घर पर ही आना चाहता है क्योकि पराये घर मे वह इज्जत नहीं होती है।

एक बार एक जमाईजी ससुराल गये। वहॉ परम्परा के अनुसार ससुराल वालो की ओर से काफी सम्मान हुआ। मनुहार के साथ नित–नये माल–मिष्टान्न खिलाये जाने लगे। साले–सालियो के द्वारा की जाने वाली मजाको के कारण दिन पता नही कब निकल जाता। जमाईजी को वहॉ का वातावरण बहुत अच्छा लगा। सोचा–ससुराल मे कुछ दिन रहना चाहिये, पर ससुराल वालो के सामने यह बात कहे तो कैसे कहे कि मैं कुछ दिन यहॉ और रहूॅ। अत जमाईजी ने एक तरकीब निकाली और एक कोयले के द्वारा मुख्य द्वार के सामने वाली दीवाल पर लिख दिया **सासरो सुख वासरो।** शाम को दुकान से सालाजी आये। घर मे प्रवेश करते ही सामने वाली दीवाल पर नजर पडी तो देखा कि यह क्या लिखा हुआ है! सालाजी तुरत जमाई के मन की बात समझ गये। सालाजी बहुत होशियार व चतुर थे अत उन्होंने जमाई को

समझाने की सोच ली और उस पॅक्ति के आगे लिख दिया– **तीन दिनां रो आसरो।** अर्थात् जमाई दो या तीन दिन से ज्यादा ससुराल मे शोभित नही होता है।

जमाईजी जब पुन उधर आये और देखा कि सालेजी ने तो तीन दिन ही रहने का लिखा है। किन्तु जमाईजी का मन ससुराल छोडने का नही हो रहा है, अत मौका देखकर जमाईजी ने तीसरा चरण लिख दिया कि **रहस्यॉ मास-दो मास।** सालेजी शाम को दुकान से घर पर आये और जब दीवाल पर नजर पहुँची तो देखा कि जमाईजी ने तो ढीठता धार ली है। जमाई का ससुराल मे रहना कब तक ठीक रह सकता है, जमाईजी चिंतनशील नहीं है। अत उन्हे अब स्पष्ट समझाना ही पडेगा। ऐसा सोचकर चौथे चरण मे सालेजी ने लिख ही दिया कि **देस्यॉ फावडो खुदास्यॉ घास।**

जमाईराज इधर–उधर घूमते हुए जैसे ही उस तरफ आये और चौथे चरण को जब उन्होने पढा तो समझ गये कि तीन दिन के बाद मुझे भी कुदाली–फावडा हाथ मे दे देगे और खेती का काम करवाऍगे। इससे तो अच्छा है कि मै समय रहते ही यहॉ से चला जाऊँ। जमाईजी अपने ससुर–साले से विदाई मॉगकर अपने घर चले गये।

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि अपर घर मे शाति नही है। अत अपने घर मे ही प्रवेश करना है। उसके लिये हर भव्य आत्मा को ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप की आराधना करनी है ताकि अपना शाश्वत आत्मिक घर आपको प्राप्त हो जाय। आपको अपने अवचेतन मस्तिष्क तक यह बात जमा लेनी है कि मुक्ति नगर मे ही मेरा असली घर है, अगर ऐसी बात जम गई तो फिर आपकी साधना की गति तीव्र हो जायेगी। जैसे– घोडा व बैल जब चलते–चलते बहुत थक गये हो किन्तु जब उनका घर पास मे आने लगता है तो वे जल्दी–जल्दी चलते है वैसे ही आप कितने भी थक गये हो, काम मे उलझ गये हो किन्तु मुक्ति नगर मे मेरा शाश्वत घर है, यह अच्छी तरह से समझ लिया तो फिर आपके कदम धर्म हेतु शीघ्र ही उठेगे और कठिन साधना करके शीघ्र ही अपना शाश्वत घर प्राप्त कर लेगे।



कीच में खिलता कमल

सुत्तेसु यावि पडिबुद्धजीवी

अर्थात् द्रव्य और भाव से सोये हुये लोगो के बीच भी द्रव्य और भाव से जागते रहो।

मानव अनादि काल से विषय–कषाय, मोह की नीद मे सोया हुआ ससार मे बेहोशी अवस्था मे परिभ्रमण कर रहा है। ससार प्रमादी जनो से परिव्याप्त है। उन निद्राशील प्रमादी जनो के बीच जागना अति मुश्किल है। क्योकि देखा जाता है कि एक व्यक्ति ऊँघ रहा है तो उसे देखकर दूसरा व्यक्ति भी ऊँघने लगता है। एक को जभाई आती है तो अन्य को भी जभाई आने लगती है। एक व्यक्ति ताली बजाता है तो सभी ताली बजाने लगते हैं। जैसे हिटलर जिस किसी सभा मे भाषण देता तो वह अपने दस आदमियो को दस स्थानो पर बिठाये रखता था। ठीक समय पर दस आदमी ताली बजाते और ताली का सक्रमण पास वाले लोगो मे भी होता और सभी जने ताली बजाने लगते। इस प्रकार मानव–मन आसपास के वातावरण से जल्दी प्रभावित हो जाता है अत भगवान ने सोते हुओ मे भी जाग्रत रहने का फरमाया है। यानी प्रमादी व्यक्तियो के प्रमाद का सक्रमण तुम्हारे अदर न हो जावे, इसका पूरा खयाल रखना है। उन प्रमादी व्यक्तियो पर विश्वास नहीं करना है। जैसे आपके कमरे मे कभी कोई नया व्यक्ति आकर सोता है तो आप जाग्रत रहते हे, निश्चिन्त होकर नहीं सोते हैं क्योकि नये व्यक्ति पर विश्वास नहीं हे, वह कहीं रात मे चोरी न कर ले। अत बार–बार ऑख खोलकर देखते रहते हैं, सतर्क रहते है। ठीक वैसे ही भगवान फरमाते हैं– ससारी व्यक्ति सोये हुए हें। उनके बीच मे रहते हुये सावधान रहो, जाग्रत रहो, अप्रमत्त रहो। ताकि आप पर उनके प्रमाद का असर न हो सके, इसलिये सत–महापुरुष हमेशा जागते ही रहते है। आचाराग सूत्र के तीसरे अध्ययन के प्रथम उद्देशक मे कहा है कि **सुत्ता अमुणि, सया मुणिणो जागरंति।** अर्थात् अज्ञानी जन द्रव्य से निद्रारहित हो तो भी सोये हुए हैं और मुनि अर्थात् ज्ञानी जन द्रव्य से सोये हुए हो तो भी अनवरत जाग्रत ही हैं। क्योकि अज्ञानी जन द्रव्यनिद्रा से जागते रहने पर भी दर्शन–मोहनीयरूप महानिद्रा के गाढ अधकार मे सोये रहने से सदा सुषुप्त है। तथा मुनि, ज्ञानी जन दर्शनावरणीय कर्म के उदय से निद्रा लेते हुए भी

दर्शन–मोहनीयरूप महानिद्रा के चले जाने से सदा जाग्रत ही है। यानी मुनि जन सोकर भी जाग्रत है। सुतेषु शब्द मे सप्तमी विभक्ति का प्रयोग हुआ है, अत एक अर्थ तो पहले निकाला कि सोये हुए मे जाग्रत रहना। दूसरा अर्थ यह निकलता है कि सोकर भी जाग्रत रहना।

वास्तव मे मुनि–ज्ञानी जन सोकर भी जाग्रत रहते है। वे अज्ञान अधकार के दूर हो जाने से मोक्षमार्ग मे सतत प्रवृत्ति करने वाले होते है। भावनिद्रा से जागा हुआ व्यक्ति द्रव्यनिद्रा से सोकर भी जाग्रत ही है। ज्ञानी जन चौबीस घटे जागते है। गीता मे भी यही कहा है–

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी
यस्यां जाग्रति भूतानि, सा निशा पश्यतो मुने.।।

(गीता अ 2, श्लोक 69)

अर्थात् सब लोगो के लिये जो रात है उसमे सयमी जागता है और जब समस्त प्राणी जागते रहते है तब ज्ञानवान पुरुष को रात मालूम होती है।

इस श्लोक मे आलकारिक वर्णन किया है। इसका भाव इस प्रकार है– आत्मचितनरूप जागृति की अपेक्षा ससारी अज्ञानी जीव सोये रहते है। अर्थात् आत्मविषयक बुद्धि की अपेक्षा से ससारी जीवो के लिये रात्रि है क्योकि ससार के लोग रात्रि मे सोते है और मुनिजन उसमे साधना के लिये जागते है। उसी तरह आत्मा से सबधित चिन्तन के विषय मे ससार के लोग सो जाते है और साधक वर्ग आत्म–जागृति की अपेक्षा से सदा जाग्रत रहते है। ससारी लोगो की अनात्मविषयक बुद्धि होती है। अत उनकी प्रवृत्ति भी अनात्मविषयक कार्यो मे ही रहती है किन्तु मुनिजन अनात्मविषयक बुद्धि व कार्य की अपेक्षा से सोते है यानी अनात्मविषयक कार्यो के प्रति उनका चितन ही नही जाता है।

साराश यह है कि ससारी जीव आत्मा के विषय में निरन्तर सोते हुए रहते है और विषयो के प्रति जागते रहते है किन्तु मुनिजन आत्मा के विषय मे निरन्तर जागते रहते है और सासारिक विषयो के प्रति निरन्तर सोये रहते है। इस प्रकार मुनिजन सोते हुए भी जाग्रत ही हैं। उनका सोना रात–दिन के हिसाब से नही होता है बल्कि उनके सोने और जागने का तात्पर्य सावधान और असावधान रहने की अपेक्षा से है। आचार्य शकर ने कहा है–

जागर्ति को वा सद् असद् विवेकी। अर्थात् जिसके पास सद् और असद् का विवेक है, वही जागता है, अन्य सभी सोते है क्योकि विवेकी पुरुष कीच मे कमलवत् सोये हुए व्यक्तियो के बीच भी जागता है व सोता हुआ भी जागता है।

साधु हमेशा जागते है इसीलिये तो भगवान ने साधु को गृहस्थ की तरह से एक–एक सामायिक करने का नहीं बोला है। उनके तो हमेशा चौवीस घटे

ही सामायिक है यानी सोते, उठते, बैठते, चलते, खाते, पीते, बोलते आदि हर समय जाग्रत ही रहते है। दशवैकालिक सूत्र मे कहा है–

जय चरे जय चिट्ठे, जयमासे जयं सए।
जयं भुजन्तो भासंतो, पावकम्म न बधई।।

अर्थात् यतनापूर्वक चले, यतनापूर्वक खडा रहे, यतनापूर्वक बेठे, यतनापूर्वक सोवे, यतनापूर्वक भोजन करता हुआ और यतनापूर्वक बोलता हुआ पापकर्म नहीं बाधता है।

तात्पर्य यह है कि साधु 24 घटे जाग्रत है अत उन्हे अलग से सामायिक करने की जरूरत नही होती है जबकि गृहस्थ चौबीस घटे सोया रहता है। अत उन्हे एक सामायिक, दो सामायिक करने को कहा गया है ताकि कम से कम उतने समय तो वह जागरूक रहे।

कई ससारी लोग तो एकदम गहरी नीद मे सोये रहते है। उनके ऊपर से सर्प भी निकल जाय तो भी पता नहीं चलता। घर मे से चोर चोरी करके ले जावे तो भी उन्हे पता नहीं चलता, वे गहरी नींद मे ही सोये रहते हे। ठीक उसी प्रकार जो अविवेकी होते है उन्हे अपने कर्तव्य–अकर्तव्य का भी ज्ञान नहीं होता है, उचित–अनुचित का विवेक नहीं रहता है जिससे वह अपनी जिन्दगी को गहरी नींद मे सोये हुए व्यक्ति की तरह व्यतीत करता रहता है, जिन्दगी मिली है उसे जैसे–तैसे बिताना है यह सोचकर किसी भी तरह से इधर–उधर की निदा–विकथा, राग–द्वेष–ईर्ष्या करते हुए, धक्के खाते हुए बिताते रहते है। ज्ञानियो की दृष्टि मे ऐसी गहरी भावनिद्रा से युक्त व्यक्ति जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, दु ख, सकट आदि के नाटको को देखते हुए भी नही देख सकते और इस ससार मे दु खी होते है। किन्तु कोई व्यक्ति थोडी–सी हलचल होते ही जाग जाते है। वैसे ही कोई–कोई भव्य आत्मा थोडा–सा निमित्त मिलते ही जाग्रत हो जाते है और देश से जाग्रत होकर आत्मचितन मे लग जाते है। वे श्रावक की कोटि मे आते है तथा मुनिजन तो चौवीस घटे जाग्रत रहने वाले होते है। वे सोते अवश्य है किन्तु उनका सोना शरीर व इन्द्रियो को विश्राम देना मात्र होता है। किन्तु आत्मिक दृष्टि से तो जाग्रत ही रहते है। कूरगडूक मुनि से यद्यपि सवत्सरी का उपवास भी नहीं होता था किन्तु जाग्रत पूरे थे। अत सवत्सरी के दिन खाते–खाते भी केवलज्ञान हो गया।

भगवान महावीर स्वामी पूर्णरूप से जगे हुए थे अत कानो मे कीले ठोके जाने पर भी व दोनो पैरो के बीच आग लगाकर खीर बनाये जाने पर भी तनिक भी दु खी नही हुए। उनके लिये अपना–पराया, सुख–दु ख आदि कुछ था ही नही। उनका जीवन प्योर स्वर्णरूप था। गजसुकुमाल के सिर पर अगारे रखे गए। उस भयकर दु ख को भी वे हॅसते–हॅसते सह गये। इसीलिये तो उन्होने सिद्धस्वरूप को प्राप्त कर लिया।

भरत चक्रवर्ती सोये हुए लोगो के बीच मे रहते हुये भी जाग्रत थे। कॉच के महल मे भी केवलज्ञान प्राप्त हो गया।

अत हमेशा जाग्रत रहने का पुरुषार्थ करो ताकि सोये हुए लोगो का प्रभाव आप पर न पडे।



कैसी है दुनिया

नाल ते मम ताणाय।

अर्थात् मेरी रक्षा करने वाला इस दुनिया मे कोई भी नहीं है।

आज प्रत्येक मानव की जीवन प्रणाली स्वार्थ से परिपूरित है। उसकी सोच है कि बस एक मै ही रहूँ दूसरा कोई भी न रहे। ससार की समस्त वस्तुओ का अकेला मै ही उपभोग करूँ, अन्य कोई भी उनका उपभोग न करे। एकमात्र मै ही विकास के सोपान को पार करूँ, अन्य कोई भी न करे। वह धन, सपत्ति, मान, सम्मान सभी कुछ एकमात्र अपने लिये ही चाहता है। उसकी हर गतिविधि स्वार्थ से युक्त होती है।

घर मे गाय बॅधी हुयी है, वह जब तक दूध देती है तब तक उसकी लात खाते हैं और बॉटा भी देते है किन्तु जब गाय दूध देना बद कर देती है तो उसे कसाई के हाथो बेच देते है।

कुएँ मे से पानी निकालने के लिये चडस चलती है। जब वह पानी लेकर आती है तब तो उसे बैलो के माध्यम से मेहनत से ऊपर खेचते है किन्तु जैसे ही चडस खाली हो जाती है, वैसे ही उसे पुन कुएँ मे ढकेल देते हैं।

चुनाव के दिनो मे देखा जाता है कि लोग जनता से वोट लेने के लिए घर–घर मे प्रचार हेतु पहुॅचते हैं। 10–15 मिनट आधा घटा भी एक–एक घर मे लगा देते है। उनकी दु ख–सुख की बात को सुनते है। उनका उपचार करवाने हेतु, नौकरी दिलवाने हेतु हर तरह के आश्वासन दे देगे। प्रचार करते समय उनके होश–हवाश भी उड जाते है।

एक बार एक नेता एक गॉव मे प्रचार हेतु भाषण दे रहा था। लोगो ने कहा हमारे यहॉ नल की व्यवस्था नहीं है। नेता ने तुरन्त कहा हॉ, हॉ घर–घर मे नल लगवा देगे। दूसरी समस्या आयी, यहॉ पर बिजली की व्यवस्था नहीं है तो कहा–हॉ, हॉ घर–घर मे बिजली लगवा देगे। तीसरी समस्या आयी, हमारे यहॉ पर श्मशान की व्यवस्था नहीं है तो नेता ने तुरंत बोला हॉ, हॉ घर–घर मे श्मशान बनवा देगे।

नेताओ को, बस, स्वार्थपूर्ति करना है। प्रचार के समय झूठे आश्वासन देते रहते है।

एक बार एक नेताजी डाक्टर के पास गये। चेकप करवाया और कहा

मेरी रिपोर्ट जरा मेरी भाषा मे समझाने की कोशिश करे तब डाक्टर ने कहा– अच्छा सुनिये, मेरी रिपोर्ट के अनुसार आपका ब्लडप्रेशर घोटालो की तरह बढ गया है। फेफडे जूठे आश्वासन दे रहे है तथा हृदय त्यागपत्र देने वाला है।

नेता का अर्थ होता है– नेता–नेटा, नेक काम को जो टाटा करे वह है नेता। आज के युग की परिभाषा मे नेता ऐसे ही हुआ करते है। गरज के समय लोगो के पैरो मे प्रणाम भी कर देगे। किन्तु जब जीत जाएँगे तो उनकी ओर ऑख उठाकर देखने की भी कोशिश नही करेगे। किसी को पहचानने की कोशिश भी नही करेगे। कुर्सी मिलने पर एकमात्र घर को ही भरने मे लगे रहते है। थोडा–सा दायरा आगे बढा तो परिवार–मित्र आदि तक। बडी मात्रा मे घूस खाये बिना किसी का काम करने को तैयार नही होते। स्वार्थ निकलते ही वे किसी को पूछते ही नही है।

दुनिया मे जिधर भी दृष्टि डालो, स्वार्थ का ही डेरा है। पशु–पक्षी जब तक छोटे होते है तब तक उनका पालन माता–पिता करते है किन्तु जब पशुओ के दॉत व पक्षियो के पख आ जाते है तब वे अपने माता–पिता की परवाह नही करते और वे अपनी मॉ को मॉ न समझकर स्त्री–रूप समझने लगते है। कहॉ तो माता का सबध व कहॉ स्त्री का सबध। गरज थी तब तक माता थी।

महाराजा श्रेणिक का बेटा कोणिक भी कितना स्वार्थी निकला! उसने अपनी राज्यलिप्सा के कारण कालीकुमार आदि अपने भाइयो को वश मे करके पिता श्रेणिक को लोहे के सीखचो मे डाल दिया। क्योकि उसने सोचा कि राजा श्रेणिक तो पता नही कितने दिन जीवित रहेगे। जब तक वे जीवित है तब तक राज्य–सत्ता हाथ मे आने वाली नही है। अत पिता को जेल मे डालकर राज्य अपने हाथ मे ले लिया। ऐसा जानकर महारानी चेलना को बहुत दु ख हुआ। पर उपाय कुछ नही है।

एक दिन महारानी चेलना अपने पुत्र कोणिक को भोजन करवा रही थी। कोणिक अपनी गोद मे अपने छोटे बेटे को सुलाकर भोजन कर रहा था। बेटे ने पेशाब किया। पेशाब के छीटे कुछ–कुछ थाली तक भी आये पर उस पर ध्यान नही दिया। और कोणिक अपनी मॉ के सामने बोल उठा कि ऐसा कौन पिता होगा जो अपने बेटे को इतना प्यार करता होगा? ऐसा सुनते ही महारानी चेलना शेरनी की तरह से दहाड उठी और बोली कि तेरे पिता ने तुझे मरते हुए से बचाया है। तेरे पिता का प्यार तू भूल गया है। क्या बताऊँ तुझे! जब तू गर्भ मे था तब मेरे को दोहद उत्पन्न हुआ कि पति के कलेजे का मास खाऊँ। इस प्रकार के दोहद पैदा होने से मैने सोचा कि गर्भ मे पापी जीव है। अत मैने पैदा होते ही तुझे उकरडी पर फिकवा दिया। पर तेरे पिता

उकरडी पर शिशु को देखकर राज्य मे ले आये। तेरी अगुली को मुर्गे ने काट लिया। उस कटी हुई अगुली को तेरे पिता ने स्वय ने चूस—चूसकर जहर बाहर थूका और तेरे को बचाया जिसका परिणाम यह आया कि तूने पिता को ही जेल मे ठूँस दिया।

कोणिक मॉ के मुँह से उस घटना को सुनकर आश्चर्यचकित हो गया और कहने लगा कि ओ हो! ऐसे मेरे पिताजी उपकारी। अभी जाता हूँ और पिताजी को महलो मे लेके आता हूँ। कोणिक यह बोलते हुये तुरत वहाँ से उठा। वहा पर लगे ताले को तुरन्त तोडने हेतु एक तेज धार वाला शस्त्र लेकर दौडकर जा रहा है।

श्रेणिक ने लोहे के सीखचो मे से दूर से देख लिया कि बेटा कोणिक तेज धार का शस्त्र लेके आ रहा है, अब यह अवश्य मारेगा। बेटे के हाथो से मरने की बजाय तो स्वत ही मर जाना ठीक है। ऐसा सोचकर अपने हाथ मे पहनी हुई हीरे की अगूठी को मुँह मे लेकर निगल लिया। हीरा जहरीला होता है अत तुरत श्रेणिक के शरीर मे जहर फैलने लग गया।

कोणिक जैसे ही उस पिजरे के पास आया और उस शस्त्र से ताला काटने लगा उसी समय श्रेणिक पिजरे मे लुढक गये। कोणिक पिजरे को खोलकर अपने पिता को देखता है तो मालूम होता है कि पिताजी की मृत्यु हो गयी है।

देखिये! यह बेटा था या बड का टेटा था? उसने अपने स्वार्थ के वशीभूत हो पिता के साथ भी कैसा निदनीय कटु व्यवहार किया। यह बात कोणिक ही की नही है किन्तु ससार का प्रत्येक व्यक्ति स्वार्थ मे अधा बना हुआ है।

मॉ—बाप भी उसी बेटे को चाहते है जो कमाता हो। गरीब बेटे को नहीं चाहते है। वे उसी बेटी को ज्यादा आदर—सम्मान देते हैं जो धनवान हो, गरीब बेटी का कोई सम्मान नहीं। भाई यदि धनवान हो तो हर बहिन बढ—चढ कर अपने भाई का परिचय देगी। गरीब भाई की ओर देखना और बात करना भी पसद नही करेगी। बेटा भी यदि ज्यादा कमाने लग गया तो गरीब मॉ—बाप की ओर देखना भी पसद नही करता। जैसे गौतम कुलक का एक सूत्र हे—

चयति सुक्काणि सराणि हसा अर्थात् जिस सरोवर पर हस रहता था, जहॉ पर उसने तृप्ति पाई थी, जहॉ पर लम्बे समय तक किलोले की थी, जिस सरोवर के कमलो पर मॅडराये थे उस सरोवर के सूखते ही हस एक मिनिट भी वहॉ नहीं ठहरते और उडकर दूसरे सरोवर पर चले जाते हैं। पक्षियो मे भी स्वार्थ की गहरी स्थिति पाई जाती है। ठीक इसी प्रकार स्वार्थी व्यक्ति भी अपने माता—पिता से, मालिक से कुछ खाने को मिल रहा हे स्वार्थपूर्ति हो रही है। तब तक उनके पास रहता हे। जैसे ही माता—पिता ने अपने हाथा को खीच लिया, या उनके पास से धन खत्म हो गया और मॉ—बाप ने काम

करना बद कर दिया तो बेटा भी जैसे–तैसे लडाई करके दुनिया मे मॉ–बाप की बुराई करके अलग हो जाता है। वह उन्हे फूटी ऑख भी देखना पसद नही करता। वह स्वार्थी अपने मॉ–बाप के उपकारो की भी उपेक्षा कर देता है।

एक छोटे गॉव मे एक गरीब पति–पत्नी रहते थे। शादी के कई वर्षो के बाद उनकी गोद मे एक बेटे की प्राप्ति हुयी। उन गरीब मॉ–बाप की हमेशा इच्छा रहती थी कि हमारा लाडला प्यारा बेटा कलेक्टर बने, राजा बने। इसी अभिलाषा से वे बेटे को पढाने लगे। अपने पेट मे कटौती करके भी बेटे की हर सुविधा जुटाते रहे। गॉव मे बारहवी क्लास पास होने पर, कॉलेज पढाने के लिये बेटे को पास वाली सिटी मे पढने के लिये भेजा। वह वहॉ पर कमरा किराये पर लेकर पढने लगा और माता–पिता पर आर्थिक दृष्टि से ज्यादा भार न पडे, अत बच्चो का ट्यूशन भी लेने लगा। रविवार को माता–पिता से मिलने गॉव मे जाकर आ जाता।

माता–पिता उससे बडे खुश थे। बेटा हर वर्ष रेक टॉप कर रहा था। कॉलेज मे पढते–पढते किसी लडकी से उसका परिचय हो गया। वह परिचय प्रेम के रूप मे रूपान्तरित हो गया। लडकी के प्रेमजाल मे फॅस जाने से मॉ–बाप को थोडा–थोडा भूलने लगा। प्रति रविवार को मॉ–बाप से मिलने जाने वाला महीने–दो महीने से मिलने जाने लगा। मॉ बाप सोचते कि बेटे के ऊॅची पढाई, अत नही आ पाता होगा। इधर लडकी के पिता को उन दोनो के प्रेम की बात मालूम हुई। उन्होने देखा कि लडका बहुत होशियार है। ऐसा लडका मिलना भी मुश्किल है अत इसी के साथ शादी करने मे कोई हर्ज नहीं है। लडकी के पिता ने उस लडके से बातचीत की पर लडके ने एक बार तो मना कर दिया। माता–पिता से बात करने को कहा किन्तु लडकी के पिता ने कहा– अभी तो तुम हॉ कर दो। मॉ–बाप गाव के है, वे हॉ करे या नहीं करे। बाद मे उन्हे स्वत ही पता लग जायेगा।

लडके ने आखिर हॉ कर दी और लडकी के पिता ने दोनो की शादी करवा दी। वह लडका वही रहने लगा। अपने मॉ–बाप के पास डर के मारे गया ही नही। लडकी के पिता ने उसे ऊॅची पढाई हेतु अमेरिका भी भेजा। थोडे दिनो बाद वह कलेक्टर बन गया। सभी अखबारो मे उसका फोटू आया। उस गॉव वाले लोग अखबार लेकरके उसके मॉ–बाप के पास पहुॅचे और फोटू बताते हुये कहने लगे– देखो तुम्हारा बेटा कलेक्टर वन गया है। मिठाई खिलाओ। मॉ–बाप ने उन लोगो के कहने पर ऊपरी खुशी जाहिर की। बाजार से पेडे मॅगवाकर पेडे भी खिलाये किन्तु मन मे कोई खुशी नही थी क्योकि बेटा चार–पॉच वर्ष से आया ही नही था।

लोग सभी आकर कहने लगे– आपके बेटे को नासिक मे सरकार की

तरफ से बॅगला मिल गया है। आप अब इस बुढापे मे खेती क्यो करते हो? अपने बेटे के पास ही चले जाओ। बूढे मॉ--बाप अपने दु ख के ऑसुओ को अन्दर ही अन्दर पीते रहते और ऊपर से कहते कि गॉव मे ही अच्छा लगता है, शहर अच्छा नहीं लगता है। अत जब तक हम कुछ करने मे सक्षम हैं तब तक यहीं है, उसके बाद फिर जाएँगे।

एक बार वह वूढी मॉ रात्रि मे बेटे की याद मे रोने लग गई और अपने पति से कहने लगी कि अपने बेटे के पास चले। पुत्र कुपुत्र हो सकता है पर मायत कुमायत नहीं होते। अपने वेटे से मिलने चले। उसके पति ने बहुत मना किया। अपने को चलना ठीक नही है, पर पत्नी की जिद से वे दोनो अपनी झोपडी बेचकर उससे आये पैसे से टिकिट बनवाकर ट्रेन द्वारा नासिक गये।

नासिक मे स्टेशन पर स्थित धर्मशाला मे उतरे। उसने पत्नी को कहा कि मै पहले बेटे के बॅगले की खोज करके आता हूँ उसके बाद तुम्हे भी ले जाऊँगा। ऐसा कह करके वह वृद्ध अखबार मे आये एड्रेस के अनुसार बगले पर पहुँच गया। वह जैसे ही बॅगले मे जाने लगा कि पहरेदार ने दरवाजे पर ही रोक दिया। वृद्ध कहने लगा कि यह मेरा ही घर है, मुझे तुम रोकने वाले कौन होते हो?

उस समय बेटा ऊपर खिडकी के पास ही बैठा था। नीचे की आवाज को सुना और देखा कि कौन है। पिताजी पर नजर पडी और पहरेदार को इशारा किया--इसे हटाओ यहॉ से। कलेक्टर का इशारा मिलते ही पहरेदार ने उस वृद्ध को जोर से धक्का दिया। वह वृद्ध सडक पर चित्त गिर गया। चित्त गिरने से उसकी ऑखे खिडकी मे खडे बेटे से मिल गयी। इतना होने पर भी बेटे ने अनजान बनते हुए तुरत खिडकी के दरवाजे बद कर दिये। वाप देखता ही रह गया। सडक पर पडे पत्थरो की सिर मे चोट लगने से वृद्ध के सिर से बहुत खून बहने लगा। वह जैसे--तैसे वहॉ से उठा और धर्मशाला पहुँचा। इधर कलेक्टर की मॉ निरन्तर इतजार कर रही थी कि वेटे के समाचार लेकर पतिदेव अब आवे अब आवे। जैसे ही पतिदेव दिखायी दिये तो वह दूर से ही पूछने लगी कि लाल मिल गया क्या?

वृद्ध ने अपनी पत्नी को कहा कि तेरे लाल ने तो मेरा लाल निकाल दिया। सिर से निकलते हुये खून की ओर पत्नी की दृष्टि गयी। उन्हे धर्मशाला के कमरे मे सुलाया। डॉक्टर बुलाने गयी तव तक वेहोश हो गये। डाक्टर आया दवाइया दी किन्तु तीन दिन मे ही वह वृद्ध परलोकवासी हो गया। उधर कलेक्टर को भी विचार आया कि मेने भी अपने पिता के साथ केसा व्यवहार किया पर अब पिताजी कहॉ गये! जाऊॅ तो कहॉ जाऊॅ।

तीन दिन तक दवाई कराने मे उस वृद्धा ने अपने पास मे रहे चॉदी के गहने बेच दिए। पीछे कुछ बचा नहीं था फिर भी हिम्मत रखकर जेसे--तसे

पति का अतिम दाह सस्कार किया। उसके बाद सोचने लगी कि अब कहॉ जाऊॅ ? कैसे जीवन चलाऊॅ? वह पति की मृत्यु से उत्पन्न शोक को छोडकर आस–पास के घरो मे काम के लिये जाने लगी और झाडू, पोछा, बर्तन मॉजने आदि काम करके अपना काम चलाने लगी।

एक बार उसने सोचा कि काम तो अपने बेटे के घर भी कर सकती हूॅ। कम से कम वहॉ बेटे का मुॅह मेरे को देखने को तो मिलेगा। ऐसा सोचकर खोज करते–करते बेटे के बॅगले तक पहुॅच गयी। पहरेदार से कहा कि जाओ तुम अपनी मालकिन से पूछो कि नौकरानी की जरूरत है क्या? सयोगवश पहले वाली नौकरानी को एक दिन पहले छुट्टी दी थी अत नौकरानी की सख्त जरूरत थी। पहरेदार ने उस बुढिया से पूछा कि तुम कितना पैसा लोगी? उसने कहा– मुझे पैसा नही चाहिए। बस, बची हुई रोटी और पुराने कपडे ही चाहिए।

मालकिन बहुत खुश हुयी कि यह अच्छी बिना पैसे की नौकरानी मिली है। उसे रख लिया अपने घर मे। वह वफादारी के साथ बहुत अच्छा काम करने लगी। बेटे–बहू व छोटे पोते को अपने बच्चो की तरह रखने लगी। बहू को ऐसा महसूस होता कि यह मेरी मॉ है।

एक बार कलेक्टर का वह छोटा बेटा खो गया। उस बच्चे की मॉ रोने लगी तब उस वृद्धा ने कहा– धैर्य रखो अभी मिल जायेगा। मै जाती हूॅ ढूॅढने के लिये। घर से जाते–जाते वह कहने लगी–तुमने भी किसी का बेटा छीना होगा तो तुम्हारा भी छीना गया। तुझे अपने सास–ससुर को ढूॅढ के आशीर्वाद लेना चाहिए। बहू ने कहा–हॉ, मैने अपने सास–ससुर को देखा ही नही। बुढिया लडके को खोजने गयी। जैसे ही गली से आगे बढी कि बेटा मिल गया। वह उसे लेकर घर पर आयी। बच्चे को देखकर दोनो खुश हुई।

एक बार कलेक्टर के सिर मे भयकर दर्द हुआ। बुढिया ने खोपरापाक बनाया। कलेक्टर को दिया और कहा– इसे खाओ, सिर ठीक हो जायेगा। कलेक्टर खोपरापाक खा रहा है। उसे वह बचपन मे खाये खोपरापाक का स्वाद याद आने लगा। सोचने लगा, ऐसा खोपरापाक तो मेरी मॉ बनाती थी। थोडी देर बाद बुढिया कहती है– लो, मै सिर दबा देती हूॅ। सिर दबाने का ढग भी मॉ की तरह ही था पर भेद खुल नही रहा था। क्योकि पहले सधवा थी, अब विधवा हो गयी थी।

एक बार वह बुढिया रसोई बना रही थी, कलेक्टर भोजन कर रहा था, पत्नी परोस रही थी। उस समय कलेक्टर ने पत्नी से पूछा कि तेरे को नौकरानी कैसी लगती है? पत्नी बोली– क्या बताऊॅ, मेरे मुॅह से इनके लिये नौकरानी शब्द निकलता ही नही है। मेरी मॉ से भी बढकर लगती है। कलेक्टर ने पूछा– मॉजी महीने के कितने पैसे लेती हैं? पत्नी ने कहा– मॉजी

तो कुछ लेती ही नहीं हैं। कलेक्टर ने उस बुढिया को उसका नाम व गॉव पूछा तो बुढिया ने कहा– नौकरो के क्या नाम व क्या गॉव?

कलेक्टर को कई बार पिता के साथ किए दुर्व्यवहार की याद आ जाती और पश्चात्ताप के ऑसू भी बहाने लगता था। पर उपाय कुछ था नही। एक बार कलेक्टर की पत्नी कहीं गयी हुई थी। बुढिया बच्चे को हालरिया गाकर सुना रही थी। उसी समय कलेक्टर आया। उसने हालरिये की आवाज सुनी तो उसे बचपन की याद आ गयी कि मेरी मॉ भी ऐसे ही गाती थी।

कलेक्टर को मन मे दु ख हो रहा है। वह कमरे मे गया और सो गया। बुढिया बच्चे को सुलाकर कलेक्टर के पास गयी और पूछने लगी– क्या हुआ? कलेक्टर उस बुढिया को पूछता है– तुम कौन–से गॉव की हो? तब उसने गॉव का नाम बताया। तब कलेक्टर ने कहा कि तुम वहॉ पर भागीरथी बहिन को जानती हो? बुढिया ने कहा– बहुत अच्छी तरह से। दोनो सगी बहिनो की तरह से रहती थीं, मानो एक ही प्राण था।

कलक्टर से अब रहा नही गया। वह माता–पिता को देखने अपने गॉव आया तब गॉव वालो ने कहा–वे तो झोपडी बेचकर तुझसे मिलने के लिये नासिक गये। क्या वहॉ पर पहुॅचे नही? बेटा सब–कुछ समझ गया। वहॉ से वापिस नासिक आया और अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करते हुए सो गया।

बुढिया कलेक्टर के पास गयी। सिर दबाने लगी। कलेक्टर बुढिया से कहता है– तुम इतनी अच्छी हो, तुम्हारे बेटा है या नहीं? बुढिया ने कहा– यह सब मेरा ही है। कलेक्टर बोलता है– नही, तुम सत्य–सत्य कहो। तब बुढिया का हृदय भर आया, रोने लगी। कलेक्टर समझ गया कि यह मेरी मॉ ही है। वह मॉ के चरणो मे गिरकर रोने लगा। कहने लगा– तुम्हारे वेश से लगता है कि बाबूजी मेरे उस गलत व्यवहार से ससार से चल वसे है। आखिर मॉ ने बेटे को अपने हाथो से उठा लिया। इतने मे बहू भी आयी। वह भी माफी मॉगने लगी। ओ हो ! मैने सास से कैसे–कैसे काम कराये है। पिताजी हेतु पूछा तो सारी बात बताई। बेटे–वहू ने मॉ की बहुत सेवा की। स्वार्थी पुत्र के लिये कहा भी है–

जायमानो हरे भार्या, वर्धमानो हरे धनं।
म्रियमाणो हरे प्राणान्, नास्ति पुत्र समो रिपु।।

ऐसे स्वार्थी बेटो व पारिवारिक जनो, मित्रजनो आदि के कारण यह ससार ही नरकवत् बन जाता है। घर मे कितना भी धन हो, सभी उपभोग्य सामग्री उपलब्ध हो, पर स्वार्थ की भावनाओ के कारण वात–वात पे टकरा जाते है। मनुष्य के स्वार्थ की कोई सीमा ही नही है।

मनुष्य अपने स्वार्थ के लिये कस्तूरी हेतु मृग की ओर अन्दर हेतु मच्छ मारने मे सकोच नहीं करते? अपने स्वार्थ के लिये सूर्यकान्ता महारानी ने अपने

पति को जहर देकर मार डाला। औरगजेब ने अपने पिता को कैद मे डाल दिया।

घर मे जब पुत्र की उत्पत्ति होती है तो थाली बजाते है और पुत्री जन्मती है तो सूपडा बजाते है। दुनिया मे पुत्री का पद इसलिए नीचा है कि उससे माता–पिता का स्वार्थ नही सधता। भैस के यदि बेटा (पाडा) हो जाय तो बिल्कुल खुशी नहीं होती किन्तु पाडी हो तो खुशी होती है क्योकि पाडी से मनुष्य का स्वार्थ सिद्ध होता है।

आज व्यक्ति दूध के स्वार्थ के लिये भैस–गाय के बच्चे को मारकर उसकी खाल मे चारा भर देते है और उस डुप्लीकेट बच्चे को भैस–गाय को दिखाकर दूध निकाल लेते है।

ऐसा भी सुनने मे आया है कि गाय के मूत्र स्थान पर बासडा डालकर, उसमे हवा भरकर उसकी ऑतडियो से सारा दूध निकाल लेते है।

स्वार्थ के वश होकर मनुष्य कितना अनर्थ कर डालता है! सन्मुख आई रसोई की थाली को कोई उठाले तो आप अपना अपमान समझते हो पर स्वार्थी जन बछडे को स्तन के दर्शन कराकर वापस खेच लेते है।

आज दुनिया भयकर स्वार्थी बन गयी है। यही बात मानो सभी के मुँह पर रहती है पर कोई भी स्वार्थ छोड नही पा रहे है।

एक बार एक स्त्री पति के मरने पर रोने लगी और रोते–रोते कहने लगी कि मेरा यह मकान कौन सॅभालेगा? पास मे उस स्त्री का भाई बैठा था, वह कहने लगा–मै सॅभाल लूँगा। तभी बहिन ने कहा कि दुकान कौन सॅभालेगा? तो वह भाई बोला कि वह भी सॅभाल लूँगा। बहिन ने फिर कहा 500 बीधा खेती है, उसे कौन सॅभालेगा? तब उसका भाई बोला मै सॅभाल लूँगा। बहिन–कुछ आसामी भी लानी है।

भाई–बहिन तुम चिता मत करो। मै सॅभाल लूँगा।

बहिन–एक बात और है, दो लाख का कर्जा भी है।

भाई अन्य बैठे हुए लोगो की तरफ देखते हुए कहने लगा– इतना काम मै सॅभाल लूँगा तो एक काम तो आप भी कोई सॅभाल ही लेगे ?

यह स्थिति है आज के स्वार्थ की।

स्वार्थ से ऊपर उठे बिना व्यक्ति परमार्थ को नही साध सकता। महापुरुष स्वार्थ से ऊपर उठे हुए होते है। वे हर समय स्वार्थ को एक तरफ रखकर अन्य के हित साधन हेतू मन, वचन, काया की प्रवृत्ति करते है। अपने हित के लिये अन्य का अहित कभी नही करते। तभी तो वे अन्य व्रतो का भी शुद्धता से पालन करते हुए आगे बढ जाते है व सभी से प्रशसा के पात्र बनते हैं। ऐसे महापुरुषो को सभी आदर की दृष्टि से देखते है और अपनी दु ख–दर्द की बात भी उनके सामने आराम से दिल खोलकर कह देते है। क्योकि स्वार्थ से

ऊपर उठा हुआ व्यक्ति हमेशा सही परामर्श देगा। वे यदि कुछ कर सके तो सामने वाले का भला हो, ऐसा ही करेगे। अगर कुछ नहीं हुआ तो सामने वाले की बातो को इधर–उधर उडायेगे नही, अपने हृदय मे ही दफना देगे। अत ऐसे महापुरुषो को सभी चाहते है। आप भी अगर इस भव–परभव मे सुख व शाति चाहते है तो अपने जीवन मे स्वार्थ को नही आने देवे।

नि स्वार्थी व्यक्ति ही स्वर्ग व अपवर्ग को प्राप्त करने का अधिकारी वन सकता हे।



सावधान ! विश्वास मत कीजिये !

न वीससे पडिए आसुपण्णे (उत्त सूत्र 4/6)

अर्थात् सासारिक लोग प्राय अपने स्वार्थ के वशीभूत होते हैं तथा अपने जीवन के हर क्षेत्र मे स्वार्थ मे अन्धे होकरके राग, द्वेष, काम, क्रोध लोभ, मोह, ईर्ष्या रूपी वासनाओ से ग्रसित होकर अपने सारे कार्य करते है। अत ऐसे दुर्गुणो से युक्त, सोये हुये, स्वार्थी ससारी व्यक्तियो पर आयुप्रज्ञ पडित लोगो को कभी भी विश्वास नही करना चाहिए।

एक बार एक मत्रवादी कही जा रहा था। रास्ते मे एक तडफते हुए छोटे–से चूहे को देखा। मत्रवादी को उसे देखकर करुणा आ गयी और अपने मत्र के प्रभाव से उसे शेर बना दिया। कहॉ तो वह छोटा–सा चूहा था, बिल्ली से भी सदा डरता रहता था। किन्तु अब वह वन के राजा शेर के रूप मे सामने आ गया जिससे सभी पशु–पक्षी व मनुष्य डरते है। कहॉ तो उस चूहे का छोटा–सा पेट व कहॉ शेर का बडा पेट। शेर को भूख लग रही है। अब उसे खाने को चाहिए। पर क्या खाए? सामने वही शेर बनाने वाला मत्रवादी व्यक्ति खडा है। उसी को खाकर अपनी भूख बुझाने उस पर झपटने लगा। मत्रवादी ने सोचा– रे, यह क्या हो रहा है? उसने तुरन्त दूसरा मत्र पढा और उसे पुन चूहा बना दिया।

ऐसी होती है राग–द्वेष से युक्त ससारी व्यक्तियो की स्थिति। वह उपकारी के साथ भी अपकार करने से नहीं चूकता। अत अपनी सीमा मे रहकर अपना कर्तव्य अवश्य करे किन्तु एक हद से आगे बढकर ज्यादा विश्वास मत करो।

प्रत्यक्ष देखने मे आता है कि पिता अपने पुत्र पर विश्वास करता है, पुत्र अपने पिता पर विश्वास करता है, पति पत्नी पर विश्वास करता है व पत्नी पति पर विश्वास करती है। सभी आपस मे कहते हैं कि हम आपके ही है। किन्तु वास्तव मे कोई किसी का नही है। समय आने पर किनारा कर लेते है। सभी कहते है–हम आपके बिना नहीं जी सकते है, किन्तु सब सबके बिना जी लेते है। यद्यपि यह कठोर सत्य है पर इसको मानना ही पडता है।

एक युवक ने अपनी प्रेमिका से कहा कि मैं तुम्हारे लिये प्राण भी देने को तैयार हूॅ। तभी गली मे सामने से एक सॉड दौडता हुआ आ रहा था। गली सॅकडी थी। अत प्रेमिका ने कहा– अच्छा इस सॉड की तरफ तुम रहो। किन्तु

वह तो भाग गया।

ऐसी स्वार्थमयी भावनाएँ हैं ससार की। अत किसी पर भी विश्वास नही करना चाहिये। सेठ मुनीम पर सीमा से अधिक विश्वास करके दुकाने छोडकर घर पर बैठ जाता है तो आप यह अच्छी तरह से जानते हैं कि उसकी दुकानो का क्या हाल होने वाला है। सेठानी नौकर पर अधिक विश्वास कर लेती है और अपनी गोपनीय बाते भी उसके सामने कर देती है। ऐसी स्थिति मे उस नोकर के द्वारा कभी भी खतरा उपस्थित हो सकता है और ऐसे प्रसग कई बार उपस्थित होते भी हैं।

विश्वास करने वाला व्यक्ति कभी भी सतर्क नही होता। दुनिया मे जितने भी धोखे हुए है वे सभी जरूरत से ज्यादा विश्वास करने से ही हुए है। अहिल्या व जलन्धर की पत्नी ने विश्वास के कारण ही अपने सतीत्व को गुमाया था। गजसुकमाल के निन्यानवे लाख भवपूर्व की घटना है। दो सौत थीं। एक सौत ने दूसरी सौत पर विश्वास कर लिया और उसके कहे–कहे अपने बच्चे पर गरम–गरम मोटी रोटी सिर पर बॉधदी। उसका बच्चा ही मर गया। गॉधीजी ने विश्वास कर लिया कि प्रार्थना सभा मे मेरे को मारने वाला कोई नहीं है। पर ईर्ष्यालु दुश्मन लोगो के लिये हिसा हेतु कोई स्थान वर्जनीय नहीं है। अत नाथूलाल गोडसे ने वहीं गोली चलादी। इस प्रकार विश्वास करने से गॉधीजी मृत्यु को प्राप्त हुए। इन्दिरा गॉधी को उनके विश्वासी बोडीगार्ड ने ही मारा था। वास्तव मे यह ससार विश्वासयोग्य है ही नहीं, इसलिए भगवान् ने विश्वास करने का मना किया है। ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के लिए भगवान ने नववाड बताई है। सतो के पास बहिने तभी वेठ सकती हैं जब एक भाई साक्षी रूप मे हो तथा साध्वियो के पास भाई तभी बैठ सकता है जब एक बहन साक्षी रूप मे हो जबकि दस साध्वियॉ एक स्थान पर बैठी हो तो भी एक भाई भी नहीं बैठ सकता। प्रतिष्ठित सत भी क्यो न हो पर उनके पास भी अकेली बहन नहीं बैठ सकती। वह बहन भी भले सौ वर्ष की हो, उसे बराबर दिखता न हो, सुन नहीं सकती हो, इन्द्रियो से विकल भी हो, फिर भी सतो के पास अकेली नहीं बैठ सकती है। इससे स्पष्ट होता है कि भगवान ने विश्वास करने हेतु साफ मना किया है। नाव मे यदि छेद हो गया हो तो नदी का पानी उसमे घुसते देर नहीं लगती, उसी प्रकार विश्वास व्यक्ति को गिराने मे देर नहीं करता। विश्वास करके चोट खाना सब से बडी मूर्खता है। आदमी अगर विश्वास नहीं करे तो शत्रु भी उसका कुछ नहीं बिगाड सकता विश्वास करने पर मित्र भी उसका अहित कर देते ह। क्योकि मित्र को उसका सम्पूर्ण भेद मालूम होता हे। वह आपको हाथ मे रखे हुए ऑवलेवत् अपने वश मे जान करके चाहे जैसा व्यवहार करता है। कई बार ऐसा होता हे कि विश्वास मे एक बार ठगे जाने पर ठगने वाला ठगने की एक परपरा

बना लेता है और बहुत दिनो के बाद वह भॉडा फोड देता है कि अमुक आदमी अमुक आदमी का इतने दिनो से अमुक प्रकार का शोषण कर रहा था। इसलिए सबसे अधिक घातक विश्वास तो विश्वसनीय लोगो के प्रति होता है। एक बार उल्लुओ के राजा ने कौए पर विश्वास करके उसे अपने किले पर रहने को स्थान दे दिया पर कौए ने धीरे–धीरे बहुत–सी लकडी इकट्ठी की और एक बार जलता हुआ तिनका अपने मुह मे दबाके ले आया और आग से सारे उल्लुओ को नष्ट कर दिया। अत कभी किसी पर विश्वास नही करना चाहिए। यहॉ तक कि जो विश्वसनीय है उस पर भी उसी हद तक विश्वास करना चाहिए जहॉ तक नियत्रण अपने हाथ मे हो और धोखा खाने का अवसर उपस्थित न हो। क्योकि नियत्रण हाथ से निकल गया और हम केवल विश्वास पर जी रहे है तो आपका सर्वस्व दूसरे के हाथ मे है। वह आपका शोषण कर सकता है, ब्लेकमेल कर सकता है, दोहन कर सकता है। इस प्रकार जरूरत से ज्यादा विश्वास का प्रतिफल गलत रूप मे उपस्थित होता है। विश्वास करना एक प्रकार का प्रमाद माना गया है। जैसे किसी ने आपको कह दिया कि आप अपने कपडे रहने दो, मै धो दूँगी। ऐसा कहने वाले ने आपकी मदद व परोपकार करने का विश्वास दिलाके आपको अकर्मण्य बनाया है व आपको आलसी बनाना शुरू कर दिया है। आप धीरे–धीरे उन्ही पर निर्भर हो जाएँगे और कुछ समय के बाद आप अपने–आपको देखेगे तो मालूम पडेगा कि आपकी काया–शक्ति मे कितना ह्रास हुआ है व कितनी असक्षमता बढी है, आपके अन्दर पर–निर्भरता के दुर्गुणो ने किस प्रकार प्रवेश कर लिया है। उन्होने आपके विकास को एकदम रोक दिया है, आपको पगु बना दिया है। इसलिए महापुरुषो ने विश्वास को कर्म का बाधक माना है। हम यदि समर्थ, सक्षम हैं तो अपनी मजिल स्वय को ही तय करनी है। इसलिए भगवान् ने फरमाया है– 'उट्ठिए नो पमाइए'। अर्थात् उठो प्रमाद मत करो। भगवान् ने प्रत्येक आत्मा मे सिद्ध–प्रभुवत् अनत शक्ति बतायी है। फिर दूसरो पर विश्वास किस कारण से करते हो? आप स्वय अपनी शक्ति को उद्घाटित कीजिए।

विश्वास का तात्पर्य है कि हम जिस पर विश्वास करते है उसकी अपेक्षा आप कम योग्य है या अक्षम है, तभी आप अपने कार्यो की पूर्ति के लिए दूसरो की सहायता की अपेक्षा पर विश्वास कर लेते है। पर भगवान् ने आपको पूर्ण समर्थवान बनाया है अत उस शक्ति को पहचानकर उसे उद्घाटित करने का आपको पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए। आत्मा की अनत शक्ति को प्रकट करने के लिए यदि किसी का सहारा लेना है तो गुरु व परमात्मा का ही सहारा लेना चाहिए और उन्ही पर पूर्ण विश्वास रखना चाहिए। सासारिक सोए हुए व्यक्तियो पर विश्वास करना उपयुक्त नही है।



सिद्धि सोपान - सत्य

त सच्च खु भगव। (प्रश्न व्याकरण द्वि म)

अर्थात् सत्य ही भगवान् है। सत्य अर्थात् जो नित्य है, शाश्वत है, सदा–सर्वदा एकरूप रहने वाला है। ऐसा सत्य ही परमात्मा का स्वरूप है। कहा भी है– **सत्य ज्ञानमनन्त ब्रह्म।** अर्थात् सत्य ही, ज्ञान है वह अनन्त है, वही परमात्मा का स्वरूप है। उपनिषदो मे भी सत्य को परमात्मा का पर्याय माना गया है यानी परमात्मा के अनेक नाम है उनमे सत्य भी उनका नाम बताया गया हे। इस प्रकार सत्य ही सब–कुछ है। कहा भी है– **न हि सत्यातपरो धर्म.।** अर्थात् सत्य से बडा कोई धर्म नहीं है और धर्म का अर्थ होता है–जिसको धारण किया जाय। वास्तव मे यह धर्म दान, पुण्य, तीर्थाटन आदि नहीं है। अपितु सत्य ही धर्म है क्योकि जो सत्य को धारण करता हे वह परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। महात्मा कबीर ने कहा है कि "जॉके हिरदे सॉच है ताके हिरदै आप"। अर्थात् जिसके हृदय मे सत्य है उसके हृदय मे परमात्मा निश्चित रूप से विराजमान है।

किन्तु सत्य का सच्चा स्वरूप समझना होगा। साधारण मनुष्य तो वास्तविक सत्य का स्वरूप समझते ही नही हैं। उनको तो अपना स्वार्थ ही सत्य मालूम पडता है। क्योकि सासारिक मनुष्यो के लिये अपने स्वार्थ के अतिरिक्त और कुछ सत्य होता ही नहीं है जबकि सत्य तो परमार्थ है। किन्तु सासारिक लोग इस परमार्थ का भी गलत अर्थ लगाते हैं। वे परमार्थ को परोपकार के अर्थ मे वपराते हे। पर वह अर्थ ठीक नही है। परमार्थ = परम+अर्थ।

परम शब्द का अर्थ होता है– सर्वोत्कृष्ट यानी जिससे वडा कुछ भी नही हो ओर अर्थ का तात्पर्य हे–प्रयोजन। अर्थात् सर्वोत्कृष्ट प्रयोजन सत्य को पहचानना है, सत्य का अनुभव करना होता हे। अगर सत्य को जीवन–व्यवहार मे पूर्ण तौर से अपना लिया जाय तो सत्य का शीघ्र साक्षात्कार हुए विना नहीं रहता हे। जैसे किसी से कोई भारी गलती हो जाय, उसको किसी ने गलती का सकेत कर दिया। उस पर वुरा न मानते हुए क्षुब्ध न होना तथा अपने अन्दर दुर्भावना नही आने देना और उसके बाद तुरत पश्चात्तापपूर्वक सुधार कर लेना सत्य का स्वरूप है। जो व्यक्ति प्रशसा–प्रिय होगा वह तो सत्य को

कभी भी नही पा सकता है। सत्य एक अनिर्वचनीय वस्तु है। चाणक्य ने भी कहा है—

सत्येन धार्यते पृथ्वी, सत्येन तपते रविः।
सत्येन वाति वायुश्च, सर्व सत्ये प्रतिष्ठितम्।।

अर्थात् सत्य से पृथ्वी स्थिर है, सत्य से सूर्य तपता है, सत्य से हवा बहती है, सब सत्य पर ही प्रतिष्ठित हैं।

जिस दिन सत्य नही होगा उस दिन वे सूर्य—चद्र के विमान टपाटप नीचे आ जाएँगे। पृथ्वी नीचे चली जायेगी किन्तु ऐसा होगा नही क्योकि सत्य स्थायी है। सत्यस्वरूपी परमात्मा का शासन कभी डगमगाने वाला नही है। क्योकि जिनके नेता अटल है, उनका शासन भी अटल है। उनके शासन मे किसी प्रकार का दोष नही होता है। सदोष मे ही खराबियॉ घूमती है। मावे मे पानी हो, तो बिगडता है। यदि उसकी किट्टी बना ली जाय तो वह नही बिगडती। ठीक वैसे ही जिसमे सदोषता है उस शासनपति का शासन डगमगा सकता है पर सत्यस्वरूपी अदोषी शासन कभी डगमगाता नही है।

पतिव्रता नारी सीता के सामने बहुत कठिनाइयॉ आई थी। लका मे सीताजी अशोक वाटिका मे बैठी थीं। सीता को आकर्षित करने हजारो—हजार उपाय किये थे किन्तु रावण की एक भी न चली, वह तो राम को ही सब—कुछ मानती थी। सोने की लका मे पॉच सौ दरवाजे। एक—एक दरवाजे पर एक—एक मण का मोती लटका हुआ था। जहॉ एक मोती एक मण का है तो उसके आस—पास के मोती कितने—क्या थे, उनका तो कोई नाप नही है। रावण ने सीता को अपनी ओर झुकाने का भरसक प्रयत्न किया था। अशोक वाटिका को ऐसा सजाया कि देवता भी वहॉ आकर क्रीडाएँ करने लग जावे। वहॉ के सुन्दरतम वातावरण मे एक सीता ही क्या हजारो स्त्रियॉ मोहित हो जायॅ। पर सीता का मन एक रग मे ही रँगा हुआ था। सिर्फ सत्य पतिव्रत धर्म मे ही रमण था। एक श्वेत रग नही उतारा जा सकता। अन्य हजारो रग उतारे जा सकते है। वैसे हजारो हजार विचारो मे आपत्ति आती है पर एक सत्य विचार कभी भी परिवर्तित नही हो सकता। इसीलिये लका कैसी भी सजी हो फिर भी सीता को आकर्षित करने मे समर्थ न हो सकी। सत्य के समक्ष अन्य आसुरी शक्तियॉ परास्त होकरके ही रही। कहा भी है— **सच्च सिद्धीइ सोपाण।** अर्थात् सत्य सभी सिद्धियो का सोपान है। सत्य की शक्ति के सामने अग्नि भी जलरूप मे परिवर्तित हो जाती है। देवता भी दास बन जाते है, सर्प फूल की माला बन जाती है, विष अमृत बन जाता है, सिह भी मृगरूप बन जाते है, जगल भी नगररूप बन जाते है।

सत्य की शक्ति के समक्ष धन—बल, परिवार—बल, शारीरिक बल आदि कुछ भी कामयाब नहीं होते। लोग समझते है कि हम धन के बल पर सब—कुछ

कर सकते हैं, पर ऐसी सोच सही नहीं है। रावण के पास सोने की क्या कमी थी? किंतु रावण के देखते–देखते वह सोने की लका ध्वस्त हो गई। धन की शक्ति भी एक सीमा तक चल सकती है पर सीमा से आगे वह कामयाव नही होती। सेना का बल भी एक हद तक ही कामयाब होता है। पारिवारिक वल भी एक सीमा तक ही कामयाब होता है। द्रौपदी के तो पॉच–पॉच पति थे। बहुत बडा परिवार था, फिर भी द्रौपदी के गौरव को बरबाद करने उसे हजारो की जनमेदनी के मध्य मे खडा किया गया। वहॉ पर ससार के सबसे बडे शक्तिशाली पुरुष व पारिवारिक जन बैठे थे किन्तु वे सभी उस समय जड बन गये थे। असाधारण शूरवीर, पृथ्वी को कॅपाने वाले पॉचो पॉडव पत्थर की मूर्ति बने नीचा मुँह करके बैठे है। द्रौपदी को नगा करने की तैयारी हे। ऐसे विकट समय मे किसने द्रौपदी की लाज बचाई थी? वह एक सत्य स्वरूप परमात्मा का ही सहारा मिला था। अत इसान को हमेशा सत्य का ही सहारा पकडना चाहिये।

वास्तव मे सत्य की शक्ति महान् होती है। सस्कृत मे कहा भी हे–

तपस्याग्निर्जलमर्णव स्थलमरिर्मित्र सुरा. किङ्करा.,
कान्तार नगर गिरिर्गृहमहिर्माल्य मृगारिर्मृगः।
पाताल विलमस्त्रमुत्पल-दल व्याल. शृगालो विप,
पीयूष, विषमं सम च वचन, मत्यांचितं वक्ति य.।।

अर्थात् जो सत्ययुक्त वाणी बोलता है, उसके लिए अग्नि जलरूप मे बदल जाती है, समुद्र स्थल बन जाता है, शत्रु मित्र एव देवता दास वन जाते है, जगल नगर, पर्वत घर, सर्प माल्यरूप, सिह मृगरूप, पाताल बिलतुल्य, अस्त्र कमल के समान, व्याल हिस्त्र जन्तु शृगाल, विष अमृत और विषम स्थान सम बन जाता है।

जो सत्यवान व्यक्ति होते है वो मृत्यु के समय भी मुस्कराते रहते है। गजसुकुमाल मुनि के हृदय मे सत्य विद्यमान था इसीलिये उनका चितन विपत्ति के समय मे भी बाहरी अगारो से प्रभावित नही हुआ। वे आत्मिक चितन मे और ज्यादा मग्न होते हुए सोचने लगे कि मेरे सिर पर जो अगारे रखे गये है उनसे मेरी कोई क्षति नही होने वाली है। आत्मा अजर–अमर है, शाश्वत सत्यरूप है, उसका कोई कुछ भी नही बिगाड सकता। जिस शरीर पर आपत्ति आई है वह पौद्गलिक शरीर मेरा नहीं है। वे सत्य पर विश्वास करते हुए सब कुछ सहते रहे और सत्य पर अडिग रहने से अखड स्थान को प्राप्त कर गये।

सुदर्शन सेठ के सत्यबल के समक्ष राक्षसी बल वाला अर्जुनमाली हार गया और सुदर्शन के सहारे से सत्य मार्ग को प्राप्त कर मोक्ष भी प्राप्त कर लिया।

आज मानव थोडे–से धन के लोभ मे सत्य को बेच देता है। दुकान पर

बैठकर पॉच दस रुपयो के पीछे भगवान की सौगध खा लेता है। कई प्रकार के घोटाले कर रहे है, मास का एक्सपोर्ट कर रहे है, घी मे मिलावट कर रहे है, पर यह नही समझते कि सत्य के बिना यह धन दु ख देने वाला बनेगा। डनलप के गद्दो पर शूले चुभोने वाला बन जायेगा।

राम ने सत्य के पीछे कुर्बानी दे दी। पिताजी का वचन रहना चाहिए। राज्य मे आसक्त नही हुए और वे सत्य के सहारे आगे गति करते हुए मोक्ष तक चले गये।

आज के व्यक्ति को मुक्ति तो चाहिए पर सत्य नही चाहिए। पर सत्य के बिना ससार का कोई भी काम नही चलता। भूख लगी है तो सत्य ही कहना पडेगा कि भूख लगी है, उसे झूठ नही कह सकते। इसी प्रकार ससार का प्राय व्यवहार सत्य पर ही आधारित है। उस सत्य को जीवन के हर कोण पर उद्भाषित करना है।

अपने को अन्दर झॉककर देखना है कि अपने अदर सत्य का स्वरूप कितने अशो मे है ? हमारा चारित्र महापुरुषो के समान है या पशु–पक्षियो के समान है ? हमारा चरित्र वासनाओ से घिरा हुआ है या पवित्र है ? हमे अपने–आपके अदर जो भी बुराइयॉ दिखाई दे उन्हे चुन–चुन कर बाहर फेकना है, तभी वह सत्य एक दिन शुद्ध रूप मे उभर सकेगा। सत्य कहते भी उसे ही है जिसमे थोडी भी मिलावट नही हो। जैसे कोई अत्यत सुन्दर हो किन्तु उसके मस्तक पर तिल बराबर भी कोढ का दाग हो तो वह उसके सौन्दर्य को नष्ट कर देता है। उसी प्रकार सत्य भी आग मे हजार बार तपाये हुए सोने के समान है। इस सत्य का साक्षात्कार करना व आत्मसात् करना सहज बात नही है। कबीर ने कहा है कि इस सत्य को अपनाने के लिए सब–कुछ छोडना पडेगा क्योकि जहॉ सत्य रहता है वहॉ वही रहता है और कुछ नही रह सकता है। अत जिसे सत्य को अपनाना हो, परमात्मा को पाना हो, उसे सत्य के सिवाय सब–कुछ छोडना पडेगा व एकमात्र उसी को सम्मान देना होगा। जीवन के हर क्षेत्र मे उसे अपनाना होगा। इसके लिये मिथ्या अभिमान को त्यागना होगा, मिथ्या गौरव को त्यागना होगा। हठाग्रह, दुराग्रह को त्यागना होगा व अपने अल्पज्ञत्व मे बहुज्ञत्व का अभिमान छोडना होगा।

सत्य की साधना बहुत कठिन साधना है। जिसने एक सत्य की साधना कर ली, उसके लिये अन्य कोई साधना बाकी नहीं रहेगी तथा एक सत्य को छोडकर बाकी सभी साधना कर भी ली तो कुछ भी हाथ नहीं आयेगा वल्कि मनुष्य जीवन निष्फल बन जायेगा। कहा भी है–

एकै साधे सब सधे, सव साधे सव जाय।

अत आप अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखिए कि हर क्रिया निर्विवाद सत्यरूप तो है ? आपके ज्ञान, दर्शन, चारित्र पर करोडो, अरबो अगुलियो मे से एक

अगुली भी नही उठनी चाहिए। अगर एक अगुली भी उठ गई तो सत्य कलकित हो जायेगा। जिसमे कलक है तो वह सत्य नहीं और सत्य है तो उसमे कलक नही होता है। सत्य तो कसौटी पर कसे सोनेवत् होता है।

वास्तव मे ज्ञान, दर्शन, चारित्र व मन, वचन, काया की पूर्ण सत्यता ही परमात्मा है।



सुरक्षा-कवच

दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं

अर्थात् ससार के सभी प्रकार के दानो मे अभयदान सर्वश्रेष्ठ है। अभय का सीधा अर्थ है–भय से मुक्त करना।

सासारिक आत्माएँ दुनिया मे अनेक प्रकार के भयो से सत्रस्त हो रही है। किसी को अर्थ का भय है, किसी को काम का भय है, किसी को क्रोध का भय है, किसी को लोभ का भय है, किसी को मोह का भय है, किसी को समाज का भय है, किसी को लेन–देन का भय है, किसी को रोग का भय है, किसी को आजीविका का भय है, किसी को अपयश का भय है, किसी को मृत्यु का भय है, इस प्रकार दुनिया मे अनेक प्रकार के भय है। उन सब भयो से अभयदान–दाता को यथाशक्य मुक्त करना चाहिए। वैसे मोटे तौर पर लोग अभयदान का एक ही अर्थ लेते है कि मरते हुये जीव को बचाना। यह ठीक है कि सबसे बडा भय मृत्यु का ही होता है, अत मृत्यु के भय से अभय करना सबसे बडा दान माना गया है। शास्त्र मे चार प्रकार के दानो का वर्णन आया है– 1 आहारदान 2 औषधदान 3 ज्ञानदान 4 अभयदान।

चारो प्रकार के दान अपने–अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण है पर विशेष विचार करने पर एक–दूसरे मे विशेषता भी मालूम पडती है। अन्नदान देने वाले दुनिया मे बहुत व्यक्ति हो सकते है किन्तु साथ मे औषध का दान देने वाले व्यक्ति कम ही होते है। जो औषध का दान देते है, वे व्यक्तियो व पशुओ के बाहरी शरीर की चिकित्सा करवा सकते है किन्तु मानसिक रोग को दूर नहीं कर सकते। आजकल मानसिक रोगो के कारण ही ज्यादातर रोग पैदा हो रहे है। उन मानसिक रोगो को दूर करने के लिये ज्ञान की आवश्यकता है। ज्ञान के आधार पर ही व्यक्ति की सोच सही बन सकती है और मानसिकता से उत्पन्न होने वाले रोगो से वह बच सकता है। उन मानसिक रोगो से बचाने हेतु ज्ञानदान करने वाले दातार और भी कम होते है। अत आहार व औषधदान से भी ज्ञान का दान और विशेष माना गया है। मानव अन्न, धन व शारीरिक शक्ति से सपन्न व ज्ञानवान होते हुए भी मृत्यु से अलग नहीं हो सकता है। मृत्यु का डर प्राय सभी शरीरधारी प्राणियो को रहता ही है, अत मृत्यु के भय से अभय कर देना अभयदान है। और भगवान ने सबसे

श्रेष्ठ दान अभयदान को ही बतलाया है। इसे एक उदाहरण के द्वारा अच्छी तरह से समझा जा सकता है–

राजा अरिमर्दन के राज्य मे एक चोर चोरी के अक्षम्य अपराध मे पकडा गया। प्राचीन युग के राजा अपराधियो को दण्ड देने मे प्राय बहुत कठोर रहते थे। जिससे भविष्य मे दूसरा व्यक्ति वैसा अपराध करने का दु साहस नहीं कर सके। राजा अरिमर्दन भी इसका अपवाद नही था। चोर के पकडे जाने पर जब उसे राजा के समक्ष उपस्थित किया गया तो राजा अरिमर्दन ने सारी स्थिति को समझते हुए अपराधी को दण्ड के रूप मे मृत्यु की सजा का आदेश दिया। उस समय की परम्परा के अनुसार अपराधी का मुँह काला किया गया, गधे पर बिठाया गया, डुण्डिम नाद के साथ राजपुरुष शहर के मुख्य मार्गो मे इस घोषणा के साथ घुमाने लगे–"इस व्यक्ति ने राज्य–विरुद्ध चोरी का निन्दनीय अपराध किया। इस अपराध के कारण इसे मृत्यु दण्ड की सजा दी जा रही है। जो कोई भी व्यक्ति इस प्रकार के निन्दनीय अपराध को करेगा उसे भी इसी प्रकार दण्डित किया जाएगा।"

इस प्रकार की घोषणा करते हुए राजपुरुष जब उसे राजमहलो के पास ले जा रहे थे उस समय चारो रानियो के साथ राजा अरिमर्दन वातायन मे बैठा नगर की शोभा निहार रहा था। रानियो ने जब राज–पथ पर किसी अपराधी को ले जाते हुए देखा तो राजा से पूछा– "प्राणेश्वर! इस व्यक्ति को किस अपराध मे मृत्यु दड दिया जा रहा है।" राजा ने बतलाया– "प्रिये! इसने चोरी जैसा जघन्य कर्म कर राज्य की जनता को बहुत उत्पीडित किया है। इसी अपराध मे इसे दण्डित किया जा रहा है।"

चारो ही रानियॉ इसकी दीन दशा देखकर द्रवित हो उठीं और इसे बचाने का उपाय सोचने लगी। इतने मे ही उन्हे राजा द्वारा दिए गए वरदान की बात याद आ गई। सबसे बडी रानी ने राजा द्वारा दिए वरदान की याद दिलाते हुए कहा कि "प्राणेश्वर! आज उस वरदान का अवसर आ गया है। आप मेरी भावना पूरी करिए।" बोला "प्रिये! तुम्हारी क्या इच्छा है? "मैं अपने वरदान के अनुसार तुम्हारी इच्छा को पूरी करने के लिए तत्पर हू।" राजा की बात सुनकर रानी ने कहा– "प्राणेश्वर एक दिन–रात के लिए आप इस अपराधी की मृत्यु सजा रोक कर इसे मेरे सुपुर्द कर दीजिए।" राजा– "जैसी तुम्हारी इच्छा।"

राजा के आदेश को पाकर राजपुरुषो ने एक दिन के लिए अपराधी को सबसे बडी रानी के सुपुर्द कर दिया। रानी ने अपराधी चोर को मनोज्ञ भोजन करा कर एक हजार स्वर्णमुद्राऍ देकर तुष्ट किया। एक दिन–रात के लिये बडी रानी ने अपराधी की मृत्यु बचा ली। अपराधी ने रानी के प्रति बहुत कृतज्ञता ज्ञापित की। बहुत–बहुत आभार प्रदर्शित किया। बडी रानी की

प्रशसा सुनकर दूसरी रानी के मन मे भी अपनी प्रशसा करवाने की इच्छा बलवती हो उठी। उसने भी अनुकूल अवसर देख कर राजा से अपना वरदान माँग ही लिया और एक दिन के लिये उसने चोर के प्राण की रक्षा की और उसे अच्छा खाना खिलाकर पाँच हजार स्वर्णमुद्राएँ प्रदान कर तुष्ट किया। चोर ने दूसरी रानी के प्रति भी आभार प्रदर्शित किया। तीसरी रानी भी यह अवसर कब चूकने वाली थी। उसने भी राजा को अपना वरदान याद दिला कर चोर को एक दिन के लिये निर्भय बना दिया। उसे अच्छा खिलाया–पिलाया और दस हजार स्वर्णमुद्राएँ प्रदान की। चोर ने तीसरी रानी का भी गुणानुवाद गाया और उसके प्रति भी अपना आभार ज्ञापित किया।

चौथी रानी को भी यह अवसर अनुकूल लगा। उसने भी राजा को अपने वरदान ,की याद दिला कर चोर को अपने पास बुलाया और कहा– "चौर्य कर्म बहुत निन्दनीय है, इसी कारण आज तुम्हे मृत्यु दण्ड मिल रहा है। बोल तू क्या चाहता है, जीना चाहता है या मरना ही?" चोर तत्काल बोला उठा:– "महादेवी! मुझे और कुछ नही चाहिये, केवल जीवन–जीवन। मै तुम्हारे चरणो मे गिरता हूँ, मुझे बचा लो, जन्म–जन्म तक मै आपका उपकार नही भूलूँगा। बस, मुझे बचा लो।" छोटी रानी ने कहा "मैं तुम्हारी सुरक्षा कवच बन सकती हूँ, तुम्हे अभयदान दिलवा सकती हूँ। तुम यह निन्दनीय कार्य सदा–सदा के लिए छोड दो।" "हे अम्बे! मै तैयार हूँ। अब कभी भी ऐसा कार्य नही करूँगा जो राज्य–विरुद्ध होगा। शिष्टता एव सभ्यता के साथ रहूँगा। बस, तुम मुझे बचा लो, डूबते हुए को उबार लो।"

महारानी ने चोर को आश्वासन दिया और सम्राट के पास पहुँच कर बोली– "प्राणेश्वर! राज्य का दण्ड विधान दोषो का नाश करने के लिए है या दाषियो का नाश करने के लिए है?" सम्राट ने कहा–"महारानी! दण्ड का विधान तो दोषो का नाश करने के लिए है।" "तो बस राजन! अब मुझे आपके द्वारा दिए वरदान से और कुछ नही चाहिए– चोर को मुत्यृदड मत दीजिए। उसे जीवनदान दे दीजिए।" सम्राट अवाक् रह गया, वोला–"देवी! तुम यह क्या कह रही हो! क्या मै उस भयकर दुर्दान्त चोर को छोड दूँ जिसे पकडने मे कितना समय लगा था। इसे छोडने पर देश की जनता क्या कहेगी? सोचो रानी, यह गभीर विषय है। तुम और कुछ माग लो।" रानी ने कहा– "राजन! मैने बहुत सोच–समझ कर वर माँगा है। इस अपराधी ने सदा–सदा के लिये निद्य कर्म का त्याग कर दिया है, अत आप उसे बचा लीजिए।" प्रतिज्ञा के अनुसार राजा ने चोर को निर्भय कर दिया। अव तो चोर मुक्तकण्ठ से छोटी रानी की प्रशसा करने लगा। पूरे नगर मे छोटी रानी की चर्चा होने लगी। नागरिक भी प्रशसा करने लगे। यह चर्चा जव तीनो रानियो ने सुनी तव वे ईर्ष्या से दग्ध हो उठी। अरे! इसने चोर को दिया ही क्या है–हमने तो उसे

बहुत सारी स्वर्णमुद्राएँ दी, फिर भी लोग उसी की प्रशसा कर रहे है। हमारी तो कोई चर्चा ही नही करता जबकि हमारा दान सबसे ज्यादा दान था। बडी रानी ने कहा– "मैंने उसे एक हजार स्वर्णमुद्राएँ दीं।" दूसरी ने कहा– "मैंने उसे तुम्हारे से भी अधिक पॉच हजार स्वर्णमुद्राएँ दी।" तीसरी ने कहा–"अरे! जबकि चौथी रानी ने कुछ नही किया फिर भी जनता उसी की प्रशसा कर रही है! सम्राट से अवश्य इसका निर्णय कराना चाहिए, किसका दान सर्वश्रेष्ठ दान है?"

बन्धुओ! देखिए ईर्ष्या का परिणाम! मानव जब ईर्ष्यालु बन जाता है तब अपने विवेकचक्षु खो बैठता है। बस, सदा अपनी आत्मप्रशसा का ही इच्छुक बना रहता है। दूसरो की सच्ची प्रशसा एव उनके गुणो का विकास उसे फूटी ऑख भी नही सुहाता। ईर्ष्याटग्ध मानस हित–अहित के विचार की क्षमता को खो बैठता है। किसी व्यक्ति की उन्नति को देखकर जल–भुन उठता है। उन्नतिशील व्यक्ति का पतन कैसे किया जाय, बस इसी की उधेड–बुन मे वह जिन्दगी के अमूल्य क्षणो को खो बैठता है। ईर्ष्यादग्ध मानस कभी इतनी उन्नति नही कर सकता, आत्मविकास का तो कोई प्रश्न ही नही उठता। सुज्ञ चिन्तको को सदा दूसरो की उन्नति मे "गुणिषु प्रमोद"– प्रमोदभाव होना चाहिए। आत्मविकास के लिये साधक का चिन्तन स्वपरानुप्रेक्षी होना चाहिए। दूसरो की उन्नति को देखकर यह सोचना चाहिए कि यह भी बढे और मै भी बढ़ूँ। मै भी अपने मे ऐसे–ऐसे गुणो का निष्पादन करूँ, जिससे मेरी भी उन्नति हो। इस प्रकार सोचने वाला साधक ही आत्मविकास की दिशा मे प्रगतिशील बनता है।

किन्तु वे ईर्ष्यादग्ध तीनो महारानियॉ छोटी रानी की प्रशसा सहन नही कर पाई और किसका कार्य सर्वश्रेष्ठ है, इसका निर्णय लेने के लिए तीनो मिलकर सम्राट के निजी कक्ष मे पहुँची। तीनो को एक साथ देखकर सम्राट अवाक् रह गया। बोला– "क्या चाहती हो? किसलिए तीनो का एक साथ मिलकर यहॉ आना हुआ है?" वडी महारानी ने तीनो की समस्या सामने रखी और दान की सर्वश्रेष्ठता का निर्णय कराने के लिए निवेदन प्रस्तुत किया। सम्राट स्वय विचार मे पड गए। सोचने लगे–यद्यपि छोटी रानी का दान कार्य ही सर्वश्रेष्ठ है किन्तु इसका निर्णय मै दूँगा तो ये सोच बैठेगी कि मेंने इसका पक्ष लिया है। अच्छा हो, चोर इस बात का निर्णय दे। यह सोच कर सम्राट ने कहा– "आपकी बात विमर्शनीय है। इसका निर्णय मैं दूँ इससे श्रेष्ठ तो यह होगा कि स्वय चोर ही इस वात का निर्णय दे कि उसे वास्तव मे किसने सर्वश्रेष्ठ दान दिया है।" तीनो रानियॉ मान गई। सभी के समक्ष चोर को बुलाया गया और कहा गया कि "बोलो, इन चारो रानियो मे से सबसे अधिक दान तुम्हे किसने दिया?" सम्राट की बात सुनकर चोर विस्मय मे पड गया

फिर भी उसे कुछ तो कहना ही था। बोला– "राजन्! बडी रानी का महान उपकार है, इन्होने मुझे एक दिन का जीवनदान दिया, साथ ही एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ दी। इसी प्रकार दूसरी व तीसरी रानीजी का भी बहुत उपकार है, इन्होने भी क्रमश एक–एक दिन का जीवनदान तथा पॉच और दस हजार स्वर्ण मुद्राएँ भी प्रदान की। इनका उपकार भी मै नही भूल सकता। किंतु राजन्! चौथी रानी का उपकार तो अनन्य है। इनके दान के लिये तो मेरे पास कहने योग्य कोई शब्द नही है। तीनो रानियो ने यद्यपि मेरा रक्षण, सत्कार, सम्मान एव स्वर्णमुद्राओ का दान दिया, किंतु फिर भी मेरा मन अशात एव उद्विग्न ही बना रहा। मुझे मानसिक शाति बिल्कुल नही मिल पाई क्यो कि राजन्! अन्तत तो मेरे मस्तिष्क पर मृत्यु मॅडरा रही थी। किंतु जब चौथी रानी ने मुझे अभय कर दिया, मृत्यु का भयचक्र मेरे मस्तिष्क से हटा दिया तो मेरा तन–बदन अत्यधिक परितोष को प्राप्त हुआ। यद्यपि छोटी रानी ने मुझे धन के रूप मे कुछ भी नहीं दिया, लेकिन निर्भयता का जो महान दान दिया, उसके सामने ससार की सपूर्ण वस्तुएँ तुच्छ है। अत हे राजन्! छोटी महारानी का दान ही सर्वश्रेष्ठ दान है।"

यह तो एक घटनाक्रम आपके सामने रखा गया। घटना चाहे किसी भी रूप मे घटी हो या नहीं, किन्तु इस घटना से यह शाश्वत सदेश मिलता है कि "सव्वेसि जीविय पिय"। ससार के समस्त प्राणी अपना जीवन चाहते हैं, मरना कोई नही चाहता। अत मुत्यृ के भय से जिसे निर्भय किया जाता है, उसकी आत्मा परम सतोष को प्राप्त होती है। इसीलिए अभयदान ही सर्वश्रेष्ठ दान कहा गया है।

इस प्रकार सर्वदानो मे अभयदान सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होता है। वेदो मे भी कहा है– एक तरफ मेरु पर्वत जितना सोने का दान व दूसरी तरफ एक जीव को अभयदान देवे तो दोनो मे अभयदान बडा है। मैतार्य मुनि ने क्रौच पक्षी को अभयदान देने हेतु अपने–आपको खतरे मे डाला। उससे उन्हे मोक्ष प्राप्त हो गया। अभयदान इस अपेक्षा से भी श्रेष्ठ है कि आहारदान, औषधदान व ज्ञानदान आदि मे देश, काल, द्रव्य, भाव, योग्यता, अयोग्यता पर भी विचार किया जाता है किन्तु अभयदान मे किसी भी अपेक्षा–विशेष का विचार नहीं किया जाता है। अभयदान कोई भी व्यक्ति दे सकता है व कोई भी प्राणी ले सकता है। इसमे ऊच–नीच, गरीब–अमीर व जाति–पॉति आदि किसी का भी विचार नही किया जाता है। एक बहुत सपन्न व्यक्ति भी गरीब व्यक्ति को अभयदान दे सकता है व एक गरीब से गरीब व्यक्ति भी अवसर आने पर धनी व्यक्ति को अभयदान दे सकता है। इसलिए सूत्रकृताग सूत्र मे कहा है– "दाणाण सेट्ठ अभयप्पयाणं।' चाणक्य ने भी पचतत्र मे अभयदान को महत्त्वपूर्ण माना है।

ससार मे किस–किस प्रकार से अभयदान दिया जा सकता है, उसका दिग्दर्शन करवाना भी यहाँ उपयुक्त लग रहा है। जैसे– कोई व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से विपन्न है और उसके घर मे कन्या की शादी या अन्य कोई कार्य–विशेष आ गया जो अर्थ–सापेक्ष है। वह अर्थहीन गरीब व्यक्ति चिता कर रहा है किन्तु सयोगवश कोई दयालु धार्मिक धनाढ्य व्यक्ति मिल गया। वह उसे कहता है कि तुम चिता मत करो। जो भी तुम्हारे काम आ गया है, उसे प्रारभ कर दो। तुम्हारे पैसे की कमी नही आने दी जायेगी। इस प्रकार यह अर्थ की दृष्टि से अभयदान हुआ। यानी उसे भय से रहित बना दिया। परिवार मे कोई व्यक्ति क्रोधी है तो उससे भी हमेशा भय बना रहता है कि अभी कुछ प्रतिकूल बात लग गई तो नाराज हो जाएँगे। अमुक काम करेगे तो नाराज हो जाएँगे आदि। किन्तु जो क्षमावान है, अक्रोधी व्यक्ति है, उनसे किसी को भी कुछ भी भय नहीं रहता है। वे सभी को अपने द्वारा अभय प्रदान करते है अर्थात् भयमुक्त रखते है।

जो व्यक्ति लोभी नहीं होता है वह भी अपने पास मे आने वालो को लोभ के भय से मुक्त रखते हुए अभयदान देता है। जैसे– कोई दुकानदार न्याय–नीति से अपनी दुकान चलाता है। उस दुकान पर लोग अपने छोटे–छोटे बच्चो को भी भेज देते हैं क्योकि उन्हे यह भय नहीं रहता है कि वह दुकानदार बच्चे को ठग लेगा। वे उस भय से मुक्त रहते हैं। यह दुकानदार की तरफ से अभयदान हुआ।

शिक्षक यदि पुरुषार्थ करके बच्चे को ढग से पढाता है तो विद्यार्थी को यह भय नही रहता है कि मै फेल हो जाऊँगा। उसे पूर्ण विश्वास रहता हे कि पास होऊँगा ही। यह शिक्षक की तरफ से विद्यार्थी को अभयदान है।

बहू धर्म–ध्यान करना चाहती है और सास उसे धर्म मे सहयोग करती हे तो यह सास की तरफ से बहू को अभयदान हुआ। इसी प्रकार धार्मिक क्षेत्र मे कोई भी धर्म का कार्य करते हुए को धर्मगुरु या पारिवारिक जन या समाज वाले जो भी सहयोग करते है, वे सहयोग करने वाले अभयदान–दाता हुए।

इस प्रकार हर प्रकार के भय से व्यक्ति को मुक्त करना अभयदान हे।



शहद-लिपटी तलवार

माई, पमाई पुण एइ गब्भ (आचाराग 1/3/1)

अर्थात् मायावी व प्रमादी बार–बार गर्भ मे अवतरित होते है, जन्म–मरण करते है। मन मे कुछ छिपाये रखना और बाहर मे कुछ और अभिव्यक्त करना माया है। मायावी के लक्षण को बताते हुए कहा है–

मुखं पद्मदलाकारं, वाचा चन्दन शीतलम्।
हृदयं कर्तरीतुल्यं, त्रिविधं धूर्त लक्षणम्।।

अर्थात् मायावी धूर्त के तीन लक्षण होते है– उसका मुँह कमल की तरह हॅसमुख, खिला रहता है। उसके वचन चदन की भॉति शीतल होते है। परन्तु उसका हृदय कैची के समान होता है। मायावी भद्रपुरुषो के साथ अति मृदु वचनो के साथ मृदु व्यवहार करके स्नेह–सबध जोडता है। फिर उसे कपट के भॅवर जाल मे बुरी तरह फॅसा लेता है। जैसे– बडी–बडी नदियो व समुद्रो मे ऐसे भॅवर पडते है कि जो ऊपर से तो दिखाई नहीं पडते किन्तु अगर प्राणी उनमे फॅस जायॅ तो उसका जीवित निकलना कठिन हो जाता है। वैसे ही कपटी के भॅवर जाल मे फॅसा हुआ व्यक्ति यह नहीं जान पाता कि यह मीठा बोलने वाला कपटी मेरी जडे ही खोद रहा है। कहा जाता है कि समुद्र मे गई हुई वस्तु तो फिर भी गोताखोरो द्वारा निकाली जा सकती है पर समुद्र मे रहे पातालकलशो मे यदि कोई वस्तु चली गई तो उसे पुन निकाल पाना मुश्किल है। वैसे ही कपटी के पातालकलश मे फॅस गये तो फिर उससे निकलना मुश्किल हो जाता है।

माया वह शहद–लिपटी तलवार है जो एक समय के लिए मुँह मीठा कर देती है पर जबान को काट देने वाली होती है। अनार का दाना ऊपर से लाल–लाल, सुदर दिखाई देता है व खाने मे मीठा भी लगता है किन्तु वही दाना अन्दर से कडा, स्वादरहित और सफेद होता है। उसी प्रकार मायावी का ऊपरी व्यवहार मीठा व अच्छा होता है। ऊपर से हितचिन्तक दिखाई देता है पर अन्दर फीका, कडवा, अहित करने वाला, हानि पहुँचाने वाला, कटु भावो से युक्त होता है। मायावी ऊपरी मिठास से भद्र पुरुषो के पेट मे घुसकर अपनी कैची चलाता है पर व्यक्ति उसे पहचान नहीं पाते। मायावी दूसरो की दासता, चापलूसी, गरज, विनय, खुशामद करता है। हर छोटे–से–छोटे काम

मे पूरा–पूरा सहयोग करता है। घर, परिवार, दुकान, अस्पताल आदि सारे कार्यो को पूरा समय देकर करता है।

मायावी के बोलने, हॅसने, चलने, फिरने, उठने, बैठने आदि की सभी क्रियाएँ कपटपूर्ण होती हे। बात–बात मे कपट करते है, उनका सारा व्यवहार ही कपटपूर्ण होता हे।

एक ज्योतिषी ने ज्योतिषशास्त्र का आधा ज्ञान ही किया और अपने–आपको पडित बताने लगा व अच्छा बडा लेबल ज्योतिषी का लगा लिया। कुछ बाते उसकी सही निकलने से वह शहर मे अतिशीघ्र प्रसिद्ध हो गया। एक बार राजा ने नगर के सभी ज्योतिषियो को आमन्त्रित किया। ठीक समय पर सभी ज्योतिषी पहुँचे। वे सभा मे बैठे हुए थे तभी राजा ने उनके सामने एक प्रश्न रखा कि– महारानीजी गर्भवती है। उनके लडका होगा या लडकी इसका निर्णय आज राज्यसभा मे आये हुए नये ज्योतिषी देगे। अधूरे ज्योतिषी राजा की बात सुनते ही मन मे घबराये कि अब सभी पहुँचे हुये महाज्ञानी पडितो के समक्ष मै अधूरा ज्योतिषी क्या उत्तर दूगा? वह शेर के मुखौटे मे सियार घबरा रहा है, ऑख मीचकर योगी महात्मा की तरह सोच रहा है। सभी समझ रहे है– बहुत बडे ज्ञानी व ध्यानी पडित है। किन्तु वे असलियत को छिपाने का खेल खेलने का सोच रहे है। कहा भी है–

पूयणट्ठा जसो कामी, माण सम्माण कामए।
बहुपसवइ पाव, मायासल्लं च कुव्वइ।।

अर्थात् पूजा, यश, मान–सम्मान के कामी लोग मायाचार का सेवन करते है और अनेक पापो का आचरण करते है।

उस मान, सम्मान, यश, प्रतिष्ठा की कामी, कपट–क्रिया मे कुशल ज्योतिषी ने शीघ्र ही एक प्लान बना लिया ओर ऑखे खोलकर, खडा होकर सम्राट के समक्ष कहने लगा कि इसका उत्तर मैं एक शुद्ध, पवित्र कागज मे लिखकर ही दूगा। जिसे महारानीजी का प्रसव कार्य निपटने पर ही पढा जायेगा। उससे पहले खोलना नही है। सम्राट ने तुरत एक साफ–सुथरा, अच्छा कागज मॅगवाकर उसे दे दिया। ज्योतिषी ने पहले उस कागज को भी मत्रोच्चारपूर्वक शुद्ध बनाया, फिर उस पर गुप्त रूप से एक छोटा–सा वाक्य लिखा, वह इस प्रकार था – 'पुत्रो न पुत्री । ज्योतिषी ने सोचा कि अगर पुत्र होगा तो मैं राजा के समक्ष पुत्रो+ न पुत्री के रूप मे विग्रह कर दूँगा तथा अगर पुत्री हुई तो पुत्रो न + पुत्री के रूप मे विग्रह कर दूँगा। यह मेरा उत्तर पुत्र हो या पुत्री, दोनो दशाओ मे सही रूप से सफलतापूर्वक चलेगा।

इस प्रकार मायावी लोग छलपूर्वक वचनो का प्रयोग करके अपना काम चलाते है।

आज के युग मे ऐसा कपटपूर्ण ज्ञान ही ज्यादा प्रचारित हो रहा है और अध श्रद्धालु लोग उसमे फँसते हुए चले जा रहे है।

जो व्यक्ति धन–सत्ता के लोलुप हैं, पद–प्रतिष्ठा की चाह रखने वाले है, भूत–प्रेत से पीडित है, वे अतिशीघ्र ही मायावियो के चगुल मे फँस जाते हैं और वे छोटे–मोटे मत्र व ताबीज देकर अपना उल्लू सीधा करने मे लगे रहते है।

मायावी लोग यही खोज करते रहते है कि कौन व्यक्ति किसके प्रति श्रद्धाशील है या किस दु ख से पीडित है ताकि उसे उसी ढग से ठगा जावे।

एक बार अहमदाबाद मे एक धर्मश्रद्धालु धनाढ्य परिवार की मायावियो ने खोज की और पूरा ध्यान रखा कि पुरुष वर्ग अपने ऑफिस के लिये घर से कब जा रहे है। जैसे ही पुरुष घर से निकल गये वैसे ही मायावी ने साधु की ड्रेस पहनी और झोली–पातरे लेकर उस बँगले मे प्रवेश पा गये। ऊपर जाते ही एक साधु ने सीढियो के यहॉ से गेट बद कर दिया और दोनो वेशधारी साधुओ ने अदर रही हुई दो महिलाओ के मुँह मे कपडे ठूस दिये, हाथ–पैर बाध दिये और तिजोरिया खोलकर सारे गहने निकालकर और अच्छे कपडे निकालकर दो बडी अटेचिया तैयार की और पुन गृहस्थ की ड्रेस पहनकर, अटेचिया लेकर चम्पत हो गये। यह धर्म के परिवेश मे कैसी माया है? सीता को हरण करने, रावण ने योगी का रूप बनाया व छलपूर्वक सीता का हरण कर लिया गया। जिन्होने घर, परिवार, धन आदि सभी छोडकर सयम ग्रहण किया है किन्तु वे पच महाव्रतो का पालन बराबर नही कर रहे है। लोगो को दिखाने के लिए ज्ञान, ध्यान, मौन, तपस्या आदि करते है और साधु वेश की आड मे गृहस्थवत् काम करते रहते है। पॉच इन्द्रियो के कामभोगो को भी भोगने हेतु अपने कदम बढाते हुये जरा भी कतराते नहीं हैं। वेशधारी साधुओ की भी आज की दुनिया मे कमीं नही है। कहा है–

गृहस्थी केरा टुकडा, लम्बा-लम्बा दात।
धर्म करे तो ऊबरे, नहीं तो काढे आंत।।

गृहस्थी के घर से सीधा, आहार–पानी लाकर खाने वाले यदि महाव्रतो की आराधनारूप धर्म–ध्यान नही करते हैं तो उनकी गति बिगडे बिना नही रहती।

कोई दुबला–पतला साधु है। उसे कोई पूछे–महाराजसा, आप तो बहुत तपस्या करते हो। ऐसी बात किसी अनजान पुरुष से सुनकर उत्तर देवे कि हॉ भाई! साधुओ के तो यही काम है। इस प्रकार खुद तपस्वी न होते हुए भी अपने–आपको तपस्वी ज्ञापित करना कपट ही है। इस माया महाठगिनी ने धर्म के क्षेत्र को भी अछूता नहीं छोडा। कथनी और करनी मे भारी अन्तर दिखाई पड रहा है। भगवान की आज्ञा की चोरी करते हुए भी अपने–आपको पचमहाव्रतधारी बताया जा रहा है। कहा भी है– **मायी मिच्छादिट्ठी** अर्थात्

मायावी जीव मिथ्यादृष्टि होते है। अत मायावी के द्वारा की गई मास–मास–खमण की साधनाएँ भी फलीभूत नहीं हो सकती।

तत्त्वार्थ सूत्र मे भी कहा है– **निःशल्यो व्रती** अर्थात् जो माया, निदान, मिथ्यादर्शन आदि शल्यो से रहित होगा वही वास्तविक व्रती हो सकता है।

विषाक्त कॉटे से युक्त शरीर सड जाता है वैसे ही माया आदि शल्य साधनामय जीवन को विकृत कर देते है।

मायावी मन मे कुछ और ही विचार करता है, वचन से कुछ और ही बोलता है व काया से आचरण कुछ और ही करता है। मायावी व्यक्ति सरलात्माओ की ऑखो मे धूल झोकता है।

मायावी व्यक्ति ऊपर से सफेदपोश के रूप मे पेश आता है, सिद्धात की बडी–बडी बाते करता है और अपने कुकृत्यो को छिपाने की कोशिश करता है किन्तु घाव को जितना छिपावो–दबावो उतना ही वह ज्यादा फैलता हे। वैसे ही अपने कृत पापो को दबाने का जितना प्रयत्न किया जायेगा उतने ही पाप बढेगे।

माया सभी पापो की जननी है। ऐसा कौन–सा पाप है जिसका सेवन मायावी नही करता है। आज सिन्थेटिक दूध को यूरिया, सर्फ, चूना आदि से तैयार करके बेचा जा रहा है। यह मनुष्यो के साथ माया का ही व्यवहार हो रहा है। गूढ माया करके धनोपार्जन करने के कई केस दुनिया के सामने आये है। जैसे– प्रतिभूति घोटाला, बोफोर्स घोटाला, शक्कर घोटाला, चारा घोटाला, यूरिया खाद घोटाला, हवाला काड आदि। इनमे करोडो रुपयो का घोटाला किया गया है।

अपने इस एक 70–80 वर्ष के जीवन को जीने के लिये कैसे–केसे घोटोले किये जा रहे है और दुनिया मे बदनाम हो रहे हैं।

आज ससार मे कोई ऐसा कार्यक्षेत्र नहीं बचा है जहॉ माया देवी का प्रवेश नही हुआ है।

सरकारी क्षेत्र मे छोटी–मोटी सीट मिल जावे तो कुछ ही दिनो मे सात पीढी तक खावे उतना धन एकत्रित कर लेते हैं व अपने परिवार वालो को भी निहाल कर देते है।

एक बार पेपर मे लिखा हुआ आया कि कौन कहता है हमने गॉधी मार्ग नही अपनाया हे। अरे! आकर देख लो, कुर्सी पाते ही गॉधीमार्ग पर बॅगला बनवाया है।

एक बार रात्रि के समय राजा नगर मे घूम रहा था। एक घर मे से दाते करने की आवाजे आ रही थीं। एक युवक अपनी पत्नी से कह रहा था कि एक बार मुझे सरकार की नोकरी मिल जावे तो मैं तुम्हे सोने से मढ दूँगा। राजा को यह बात अटपटी लगी। फिर सोचा– इसे राज्य की नौकरी देके

देखूँ तो सही कि कैसे क्या करता है? दूसरे दिन उसे राजा ने अपने पास बुलाया और घोडो के अस्तबल मे घोडो की निगरानी हेतु नौकरी दे दी। राजा ने सोचा कि यहॉ से कमाई का कोई रास्ता ही नही है।

वह भाई घोडो के अस्तबल मे गया और इधर–उधर घूमते हुए घोडो की लीद को सूघने लगा। घोडो के रक्षक लोगो ने उससे कहा कि तू यह क्या कर रहा है? उसने कहा कि मै देख रहा हूँ कि तुम घोडो को क्या खिलाते हो? घोडो की सॅभाल करने वाले लोगो ने सोचा कि अगर इसने राजा को शिकायत कर दी तो बडी मुश्किल होगी। हमारी नौकरी भी छूट सकती है। अत उन लोगो ने घूस दी। वह उन पैसो को लेकर घर पहुँचा और रात्रि मे पत्नी को बताने लगा कि ले यह पैसे! सरकार की नौकरी मे ऐसे कमाई होती है।

राजा ने रात्रि मे उस भाई की बात सुन ली। अब सोचा– इस भाई को कल दूसरी जगह नौकरी दूँगा। दूसरे दिन उसे बुलाया और कहा कि तुम समुद्र के किनारे बैठकर समुद्र की लहरे गिनो। वह समुद्र के किनारे चला गया और एक कुर्सी लगाके बैठ गया। समुद्री किनारे जो भी जहाज आता, उसे दूर से ही रोक देता कि किनारे पर नही आना है। राजा ने मुझे समुद्र की लहरे गिनने का काम दिया है। उसमे तुमने गडबडी की तो राजा को शिकायत कर दूँगा। जहाज वालो ने आपस मे कहा– रे, इसे कुछ ले–देके नक्की करो। नही तो राजा के पास शिकायत चली गई तो जहाज का सारा सामान ही जायेगा। जहाज वाले ने उसे घूस दी और जहाज किनारे पर ले आये।

इस प्रकार पूरे दिन मे जितने भी जहाज आए। सभी से घूस मिलती गई। शाम तक तो रुपयो से उसका थैला भर गया। शाम को खुशी–खुशी घर लौटा। रात्रि के समय पत्नी को नोट गिनाये और सरकार की नौकरी की करामात की बात सुनाने लगा। राजा ने रात्रि मे उसकी सारी बात सुन ली और समझ गये कि वास्तव मे राज्य की नौकरी मे लोग कितनी गडबड कर सकते है?

स्कूलो मे विद्यार्थी कपट करके, परीक्षा देकर पास हो जाते हे। किन्तु इससे सही जीवन जीने की कला प्राप्त नहीं हो सकती और जिन्दगी मे कई स्थानो पर ठोकरे खानी पडती है।

माया करने से मित्रता भी टिक नहीं पाती। दशवैकालिक सूत्र मे आया है– **माया मित्ताणि नासई** अर्थात् माया से मित्रता नष्ट हो जाती है। दुकान मे दो व्यक्तियो की भागीदारी है और अन्दर–अन्दर मे माया का सेवन किया जा रहा है तो वह भागीदारी भी ज्यादा समय टिक नहीं सकती व दुकान भी विकसित नही हो सकती।

माया के कारण परिवार टूटते हुए नजर आते है। बेटा दुकान से पैसा

निकालता रहता है। बैक मे अपना पैसा अलग जमा करवा रहा है, अपने नाम से गाडी वगैरह खरीद रहा है। महिलाएँ सास, देवर व जेठ के बच्चो के साथ कपट करती है तो वह सयुक्त परिवार शीघ्र टूट जायेगा व शाति किसी भी तरह से मिल नही पायेगी।

माया की खटाई बीच मे पडते ही पति–पत्नी, भाई–बहिन, भाई–भाई मॉ–बेटी, पिता–पुत्र आदि सारे सबधो मे फीकापन आ जाता है।

मायावी व्यक्ति मे धर्म नही ठहर सकता है। माया और धर्म दोनो विपरीत रूप है। जिस घट मे माया है, उस घट मे धर्म नही रह सकता तथा जिस घट मे धर्म हे वहा माया नही रह सकती। मायावी के तप, जप, सयम सभी बेकार है। मुख मे राम, बगल मे छुरी के अनुसार धर्म फलदायक नही हो सकता। कहा भी है–

जाके दभ कपट नहीं माया
ताके हृदय बसे रघुराया।

ईश्वर उन्ही क घट मे निवास करता है जिनके अतरग मे दभ नहीं होता।

कपटयुक्त आलोचना करने वाले को प्रायश्चित्त भी अधिक आता हे।

अत पुन–पुन गर्भ मे जाने के दु खो से छूटना है तो माया को छोडना होगा।



अमृत का क्षण - मानव तन

दुल्लहे खलु माणुसे भवे, चिरकालेण वि सव्व पणिण।

अर्थात् सभी प्राणियो के लिए मनुष्य जन्म बहुत लम्बे काल मे मिलना दुर्लभ है। ससार मे जितने भी प्रकार के प्राणी मौजूद है उनमे तारतम्यता की अपेक्षा से विचार किया जावे तो सर्वश्रेष्ठ प्राणी मनुष्य ही उभरकर सामने आयेगा।

श्रोत्र, चक्षु आदि पॉचो इन्द्रियॉ नारकी, देव, पशु को भी प्राप्त है। किन्तु मनुष्य उन पॉचो इन्द्रियो का जितना सदुपयोग कर सकता है उतनाँ कोई भी पचेन्द्रिय प्राणी नही कर सकता। इसान ही एक ऐसा प्राणी है जो अपने शरीर के माध्यम से, साधना करके विकास करते हुए ईश्वर अवस्था को भी प्राप्त कर सकता है। नारकी मे एकान्त दु ख ही दु ख है। अत वहॉ पर अपने–पराये के विषय मे चितन करने का कोई समय नही है। निरन्तर दु ख मे ही मशगूल रहते है। यानी अति दु खी व्यक्ति कुछ भी विकास नही कर सकता, वहॉ आत्मा की बात तो बहुत दुर रही।

देवता, नारक, देवी आदि सुखो मे मशगूल रहते है। उन्हे अपनी आत्मा के विकास के विषय मे सोचने की फुरसत नहीं है। आज भी ज्यादातर देखा जाता है कि करोडपति लोग सोचते है कि हमे धर्म करने की जरूरत नहीं है। हम राजनेता, धर्मनेता बन सकते है, अध्यक्ष, मत्री वन सकते है। किन्तु धर्म करने वाले, तपस्या करने वाले तो दूसरे ही होगे। जहॉ मनुष्य जीवन मे धर्म कर सकते है वहा भी कुछ मात्रा मे सुखी–सेठ लोग धर्म नहीं करते तो देवताओ का तो कहना ही क्या? देवताओ के लिए तो यह अभिशाप है कि वे कितना भी कुछ कर ले पर चौथे गुणस्थान से आगे नही वढ सकते। पशु भी पॉचवे गुणस्थान से आगे नही बढ सकते। वैसे सामान्य पशुओ मे तो वह शक्ति नही है। वे तो अपनी सामान्य अवस्था मे इधर–उधर घूमते रहते हे।

मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो अरिहत, सिद्धावस्था को प्राप्त कर शाश्वत शाति को प्राप्त कर सकता है। वैसे मनुष्य की वजाय देवता मे अपार शक्ति होती है। देवता तीन चुटकी वजावे उतने मे एक लाख योजन के लम्बे चौडे जम्बूद्वीप की इक्कीस बार परिक्रमा कर सकते हैं। सिद्ध लोक के आस–पास तक उनकी गति है फिर भी सिद्ध वनने का वरदान मनुष्य को ही

मिला है, देवता को नही। देवता सुनने व देखने मे मनुष्य की अपेक्षा अति विकसित दिखाई देते है फिर भी मनुष्य मे जो विशेषताएँ होती है वे देव मे नहीं है। देवलोक सगमरमर के महल जैसे होते है किन्तु मनुष्य भव काली मिट्टी वाले खेत और कुऑवत् होते है। अनाज, फल–फूल की पैदाइश सगमरमर के ऑगन पर न होकर काली मिट्टी वाले खेत मे ही होती है। अनाथी मुनि जैसे सत मडीकुक्षी जैसे साधारण बगीचे मे ही प्राप्त हो सकते है, नदन वन जैसे विशेष बगीचे मे नहीं। नदन वन मे पक्षियो का कलरव भी प्राप्त नही हो सकता क्योकि नन्दन वन मे वृक्ष, पोधे, फूल आदि सब–कुछ सोने व रत्नो के ही बने हुए है। मडीकुक्षी बगीचे से नदन वन विशेष है। किन्तु नदन वन से ज्यादा कामयाब मडीकुक्षी बगीचे जैसे सामान्य बगीचे है। वैसे ही देव भव से मनुष्य भव अधिक कामयाब है।

मनुष्य मे दिमागी शक्ति व साधना शक्ति भी ज्यादा होती है। जिससे अति बलशाली शेर, हाथी जैसे जानवर को अपने वश मे कर लेता है व साधना शक्ति के माध्यम से देवो को भी वश मे कर लेता है। कहा भी है–

देवावि त नमसति जस्स धम्मे सया मणो धर्म मे सदा रमण करने वाले साधनाशील तपस्वी मनुष्यो के चरणो मे देवता भी नमस्कार करते है। इससे स्पष्टत सिद्ध होता है कि महात्रृद्धिवत देवताओ से भी बढकर एक मनुष्य है। मनुष्य अनासक्त भावना मे इतना रमण कर सकता है कि उसे सोना सिर्फ पीली वस्तु दिखाई देती है। हीरा–माणक सिर्फ कॉच के टुकडे लगते है। सुन्दर नार बेडोल वृक्ष की तरह दिखाई देती है, स्वर्गीय महल ईट–चूने के मकान ही लगते है। ऐसे महापुरुष ही शाश्वत सुख को प्राप्त कर लेते हें। कहा भी है–

फरिश्ते जो कर सकते हैं, वह कर सकता इंसान भी,
इंसान जो कर सकते है, वह न कर सकते फरिश्ते भी।

इसलिए सम्यक्दृष्टि देव मनुष्य भव को प्राप्त करने के हर पल इच्छुक बने रहते है। आत्मिक विकास हेतु चाहते है कि हमारा जन्म उस कुल मे हो जहॉ गर्भ से ही धर्म–ध्यान के सस्कार प्रारभ हो जावे, जहॉ सप्त–कुव्यसन का सेवन न होता हो, खाद्य–अखाद्य, कर्तव्य–अकर्तव्य का विवेक रखते हो, माता–पिता आदि बडो के प्रति आदर भाव हो, नौकरो को भी कोटुम्बिक पुरुष बोलकर बुलाते हो, सास बहू, देवरानी–जेठानी, भाई–भाई, पिता–पुत्र मे झगडे न होते हो, जिस घर मे सत–सतियो के पगलिये पडते हो।

ठाणाग सूत्र के तीसरे ठाणे मे आया है– तओ ठाणाइ देवे पीहेज्जा-**माणुसं भव, आरिए खेते, जम्मं, सुकुल पच्चायाति।** अर्थात् देवता भी तीन बातो की इच्छा करते हैं– मनुष्य जीवन, आर्यक्षेत्र मे जन्म और श्रेष्ठ कुल की प्राप्ति। जिस मनुष्यभव को प्राप्त करने हेतु देवता भी तरसते हें, वह मनुष्यभव कितना

महत्त्वपूर्ण होगा। अनत पुण्यो के फलस्वरूप मनुष्यभव की प्राप्ति होती है। इससे मनुष्य भव रूपी अमृत की दुर्लभता स्पष्टत सिद्ध हो जाती है।

एक देश मे गाये बिल्कुल नही होती थीं। वहॉ पर एक व्यक्ति सयोगवश गाय लेकर पहुँचा। लोगो ने कहा– यह क्या वस्तु है? उस व्यक्ति ने सोचा यहॉ के लोग जानते ही नही है कि यह क्या प्राणी है, अत उसने अवसर देखकर उनके सामने बोला–यह पचामृत वृक्ष है। यानी और वृक्ष तो एक तरह का ही फल देते है, जैसे– आम का वृक्ष सिर्फ आम ही देता है, अनार का वृक्ष सिर्फ अनार ही देता है किन्तु यह वृक्ष तो पॉच तरह के फल देता है। सभी बडे खुश हुए और उसे पचामृत वृक्ष की कीमत पूछी। उसने 500 रुपये उसकी कीमत बताई। वह व्यक्ति 500 रुपये लेकर वहॉ से चल दिया। गॉव से बाहर आया और उसे ध्यान आया कि उन्हे यह तो पता ही नही है कि पॉच फल कौन–कौन–से, कैसे प्राप्त होगे? अत मेरे से पूछने के लिए आ सकते है। ऐसा सोचकर गॉव के बाहर वृक्ष की छाया मे बैठ गया। उधर नगर के चौक मे जहॉ गाय बधी हुई है, सैकडो लोग इकट्ठे हो गए उस अजीब वृक्ष को देखने हेतु। सभी सोच रहे है कि पॉच फल कौन–से, कैसे व कब प्राप्त होगे? तभी गाय ने पोठा किया। लोगो ने भागकर उस पोठे को अच्छे बर्तन मे झेल लिया और गर्म–गर्म पोठे का प्रसाद उपस्थित सभी लोगो को दिया। सभी ने मुँह मे रखा किन्तु तुरन्त थू–थू करने लगे। लोगो ने कहा– अरे! यह अमृतफल नही, यह तो खारा फल है। सभी जने अमृतफल का इन्तजार करने लगे। तभी गाय ने पेशाब किया, पास मे उपस्थित लोगो ने स्वच्छ भगोने मे झेल लिया, फिर उपस्थित जनसमूह को थोडा–थोडा प्रसादरूप मे दे दिया। पर वे उसे भी चखकर थू–थू करने लगे। लोगो ने कहा– अरे! सेठजी, निश्चित ही उस व्यक्ति ने तुम्हे ठग लिया है। तुम्हारे 500 रु बेकार गये। और कहने लगे– वह अभी तो कितनी दूर पहुँचा होगा। दौडकर पकडना चाहिए। कुछ लोग लकडियॉ लेकर उसको पकडने हेतु भागे। जैसे ही गॉव से बाहर आये कि देखा तो वह व्यक्ति शाति से वृक्ष की छाया मे बैठा है। उससे कहा– अरे! तूने तो हमे ठग लिया है। वह बोला–हॉ! मै आपको पचामृत फल प्राप्त करने की विधि बताना भूल गया था। चलो! मैं अब तुम्हे विधि बता देता हूँ। वह पुन गॉव मे पहुँचा और गाय के सामने हरी–हरी घास डाली। गाय को नहलाया। पानी पिलाया। उसके बाद दूध दुहने बैठा। उस प्राप्त दूध मे से थोडा–थोडा दूध उपस्थित जनसमूह को चखने हेतु दिया। जिन्दगी मे प्रथम बार ऐसे अमृतरूप दूध को चखकर वे बडे प्रसन्न हुये। बचे हुए आधे दूध को उसने गरम किया। फिर दही जमाया। दूसरे दिन उन लोगो को सवेरे दही खिलाया। फिर मक्खन और घीरूप फल बताया। इस प्रकार दूध, दही, मक्खन घी व मावारूप पाच प्रकार के अमृतफल प्राप्त कर गाय को खरीदने वाला भाई

बहुत खुश हुआ और उस व्यक्ति को 500 रुपये इनाम मे दिये तथा 10-पचामृत वृक्ष और लाने हेतु कहा।

इसी तरह से यह मनुष्य तन भी पचामृत फल देने वाला है। अगर शरीर का सदुपयोग करते हुए ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तपरूप साधना मे लग तो निरन्तर विकास करते हुए गुणस्थानो की सीढियो पर चढते हुये अक अवस्था को प्राप्त करके, चार घनघाति कर्मो का क्षय करके केवलज्ञ केवलदर्शन, यथाख्यात चारित्र, क्षायिक-सम्यक्त्व, परम शुक्ल लेश्या अ पॉच प्रकार के अमृतफल प्राप्त होते है। अगर इस शरीर को विषय-वास मोह-माया मे लगाकर दुरुपयोग किया तो गोबरवत् अस्वादिष्ट, खार फल प्राप्त हो जाएँगे।

आज का मानव प्राप्त शक्ति का सदुपयोग करने के बदले दुरुप ज्यादा कर रहा है। क्रूरतम पशुओ से भी बढकर भयकर क्रूरता को धा कर रहा है। पशु तो एक बार मे किसी एक प्राणी को ही अपना ग्रास बन है जबकि मानव-वैज्ञानिक एकात मे बेठकर ऐसी जहरीली गेस का निम करता है कि एक ही बम्ब से हजारो लोग एक ही साथ होम-स्वाहा हो ज है। मानव की पुण्यवानी एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय आदि स प्राणियो से अधिक है। मोक्ष मे प्रवेश का टिकिट भी मानवभव मे ही प्राप्त हे है। इस भव को प्राप्त करके भी यदि क्रोध, मान, माया, लोभ, राग-द्वे लडाई-झगडे, एक दूसरे की टॉग खीचने मे फॅसे रहे और उसी मे शक्ति समय की बरबादी करते रहे तो पुन मनुष्यभव प्राप्त होना मुश्किल जाएगा। कहा भी है-

पैर फिसल जाए तो सॅभलना मुश्किल है,
कलंक लग जाए तो धुलना मुश्किल है,
हार गया एक बार मानव जन्म तो-
पुन. मानवतन पाना मुश्किल है।

मूर्ख-अज्ञानी व्यक्ति मानव-शरीररूपी हीरे का उपयोग कौए उडाने करते हैं और सज्जन उसी का सदुपयोग ऋण उतारने व अपने सुखोपभ मे कर लेते है।

बच्चे के सामने हीरा व मिश्री का टुकडा-दोनो पडे है किन्तु वह हीरे छोडकर मिश्री के टुकडे को ही उठाता है। वह बालक यह नहीं जानता इस एक हीरे मे अनेक मिश्री की थैलियॉ रही हुई है। उसी प्रकार हीरे समान ही मानव-जीवन है। इस जीवन मे अनेक आत्मिक सद्गुणरूपी र भरे हुए है। उन्हे उभारने वाला चाहिए। महापुरुष उन्हे प्रकट कर लेते हें अ अज्ञानी जीव उन्हे और अधिक आच्छादित कर देते है।

यह नरभव तिरासी लाख, निन्यानवे हजार नौ सौ निन्यानवे जी

योनियो पर विजय प्राप्त करने के बाद प्राप्त होता है। अत इसका सदुपयोग करना ही चाहिए।

एक सेठ के पास चन्द्रकात मणि थी। एक बार सेठ बीमार हुआ। तब तीनो पुत्रो ने मणि मागी। तो पिताजी ने कहा–पुत्रो! तुम पहले मणि का ज्ञान करो। मै जब तक जिन्दा हूँ तब तक मणि दे नही सकता। मरने के बाद तुम भले ही ले लेना। दो बेटे तो बहुत आलसी थे। सोचा–पिता मरेगे तब ले लेगे। तीसरा बेटा पिताजी के कथनानुसार मणि के उपयोग का ज्ञान करने पिता के पास बैठता है और पिताजी के पास मणि का विज्ञान भी अच्छी तरह कर लिया। पिताजी की मृत्यु के बाद तीनो भाई क्रमश एक–एक महीने मणि को अपने पास रखने लगे। दोनो बडे भाइयो को मणि का ज्ञान था नही, अत उन्होने उस मणि का सदुपयोग रात्रि मे उसके प्रकाश मे खटमल चुगकरके ही किया। किन्तु तीसरे भाई के पास जैसे ही मणि आयी उसने पूर्णिमा के दिन अपने मकान की छत पर चन्द्रमा के प्रकाश मे चन्द्रकान्त मणि को रखकर लाखो–करोडो रुपयो का सोना बनाया।

ठीक इसी प्रकार चौरासी लाख जीवयोनि मे मानवभव अरिहन्त, सिद्ध बनने हेतु अतिम पडाव है। इससे यदि पुरुषार्थ के बल पर आगे बढ गए तो ठीक है, नही तो ये गर्विष्ठ ऑखो के द्वार कभी भी बद हो जाऍगे और दुर्गति मे चले जायॅगे। अत समय रहते जाग्रत होना है और आपको अपने जीवन का सम्राट बनना है, गुलाम नही।

अत सुदुर्लभ मनुष्यभव को प्राप्त करके अपनी शुद्ध भावनाओ के माध्यम से दुर्लभ बोधि को प्राप्त करके, अतिदुर्लभ सयम जीवन को प्राप्त करके अप्रमत्त अवस्था के साथ आगे बढकर परमात्म अवस्था को प्राप्त करने मे मानव जीवन की सार्थकता है।



मिट्टी के दीवट में अबूझ लौ

माणुस्सं खु दुल्लह (उत्तराध्ययन सूत्र)

अर्थात् मनुष्य मे मनुष्यत्व का प्राप्त होना दुर्लभ है।

ससार की सभी भव्य आत्माओ मे परमात्मा बनने की शक्ति है। किन्तु परमात्मा बनने हेतु पुरुषार्थ मनुष्यभव मे ही करके जीवन मे सफलता प्राप्त कर सकता है। मनुष्य को परमात्मा बनने हेतु पहले महात्मा की स्टेज पर आना होता है। अर्थात् आत्मा से महात्मा व महात्मा से परमात्मा बना जा सकता है। किन्तु महात्मा का महत्त्वपूर्ण पद भी व्यक्ति को तभी प्राप्त हो सकता है जब व्यक्ति मे मानवता का प्रवेश हो । मानवता के अभाव मे महात्मा पद के अनुसार अनुपालन होना असभव है। जैसे एक आदमी की पाचन शक्ति बीमारी से इतनी कमजोर हो गयी है कि मूँग का पानी भी उसके लिए हजम होना मुश्किल हो गया है। ऐसी स्थिति मे यदि उसे हलवा खिलाया जाए तो वह उसे किसी भी हालत मे पचा नहीं पाएगा और वह कल मरता हो तो आज ही मर जाएगा। इसी प्रकार मानवता के गुणो के बिना महात्मा के गुणो का जीवन मे समावेश होना बहुत मुश्किल है।

धर्म का मूल मानवता है। मानवता जैसे–जैसे विराट रूप ग्रहण करती है वैसे–वेसे अन्य अनेक गुण उसके साथ जुडते चले जाते है। विज्ञान के एक भक्त थे मैक्सिम गोर्की। वे एक गॉव मे भाषण दे रहे थे– देखिए सज्जनो! विज्ञान ने तत्काल सुखप्राप्ति के कितने साधन इकट्ठे कर लिए है। पहले एक दीपक जलाने हेतु कितना प्रयत्न किया जाता था तब कही थोडा–सा प्रकाश प्राप्त होता था किन्तु आज बटन दबाते ही विपुल मात्रा मे प्रकाश प्राप्त हो जाता है। महीनो की यात्रा घटो मे व घटो की यात्रा मिनटो मे पूरी हो जाती है आदि। ऐसी अनेक बाते गोर्की बता रहे थे तभी एक देहाती ने खडे होकर कहा–यह सब–कुछ तो सच है ही किन्तु विज्ञान ने मनुष्य को मनुष्य ही बनना सिखाया है या नहीं? गोर्की इसका उत्तर न दे सके।

विज्ञान ने मनुष्य को मनुष्य बनना सिखाया ही नहीं। अगर सिखाया होता तो मानव इतना अशात, झगडालू, दुष्प्रकृति वाला होता ही नहीं। विज्ञान निरन्तर उन्नति कर रहा है। उससे मनुष्य को कुछ सुविधाएँ अवश्य मिली हें। कुछ विश्राम भी मिला है परन्तु सच्चा सुख नही मिला है, चैन नहीं मिला ह,

शाति नही मिली है। फिर इस विज्ञान की उन्नति ने मनुष्य को जगली पशु भी बना दिया है। पहले तलवार के वार से एक व्यक्ति को ही घायल किया जा सकता था। किन्तु आज एटम बम से हजारो लोगो को नष्ट किया जा सकता है। एक हाइड्रोजन बम के माध्यम से लाखो लोगो को पलभर मे मौत की नीद सुलाया जा सकता है। लाखो अन्य लोगो को हाथ–पॉवो से विकल बनाया जा सकता है। इससे एक ऐसा विष ससार मे फैल सकता है कि वर्षो तक किसी प्राणी के लिए सुरक्षित स्थान ही न रहे।

अगर यह उन्नति है तो अवनति फिर क्या होती है? यह सुख और चैन है तो बेचैनी व विनाश क्या चीज है? विज्ञान ने मनुष्य को पारस्परिक घृणा, शत्रुता व विनाश के मार्ग पर चला दिया है। यह तो मनुष्य को मनुष्य बनाने का मार्ग नही है। मनुष्य जब मनुष्य बनता है तो उसमे मानवता जाग जाती है। मानवता जागने पर उसके हृदय मे शत्रुता नही रहती, घृणा नही रहती, बुरी भावना नही रहती। सारा ससार उसके लिए परिवार बन जाता है।

मानवीय गुणो से युक्त व्यक्ति अपने सुख को दूसरो मे बॉटने के लिए हमेशा तत्पर रहता है। रूस देश के एक सम्पन्न कुल मे उत्पन्न महिला मादाम ब्लेक्ट्रस्की थी। उसका दिल करुणा से आपूरित रहता था। जब कभी किसी दु खी व्यक्ति को देखती तो मोम की भॉति पिघलकर उसका दु ख दूर करने के हर प्रयत्न को अपनाने को तैयार रहती थी। एक बार वह होवर बन्दरगाह से न्यूयार्क अमेरिका जा रही थी। वह जहाज मे चढ ही रही थी कि अचानक उसकी दृष्टि एक रोती हुई महिला पर पडी। वह तुरत उसके पास गई ओर पूछने लगी रोने का कारण। तब उस बहिन ने बताया कि मेरे पति ने मुझे अमेरिका बुलाने के लिए टिकिट के रुपये भेजे थे। किसी धोखेबाज ठग व्यक्ति ने जहाज का झूठा एजेन्ट बनकर मेरे से पैसे लेकर झूठे टिकिट दे दिए है। उन टिकटो से जहाज वाले मुझे जहाज मे बैठने नही देते। मेरे साथ मेरे दोनो बच्चे भी है। पर अब क्या करे? कैसे पहुँचे अमेरिका? महिला मादाम ने कहा–ठहरो! मै अभी आती हूँ। वह तुरन्त टिकिट खिडकी के पास गई और अपना प्रथम श्रेणी का टिकिट लौटाकर चार तृतीय श्रेणी के टिकिट ले आयी। और उस बहिन को व दोनो बच्चो को जहाज मे अपने साथ चढा लिया। महिला मादाम सुकोमल थी। धनाढ्य परिवार की होने से पहली वार तृतीय श्रेणी मे बैठ कर यात्रा करने से उसे धक्के तो लगे ही होगे पर एक कवि कहते हैं–

सुख वढ जाता, दु.ख घट जाता,
जव वह है वॅट जाता।।

इस प्रकार महिला मादाम को उस समय धक्के खाकर यात्रा करते हुए भी सुख की ही अनुभूति हो रही थी। दु ख जरा भी महसूस नहीं हो रहा था।

मनुष्य की मनुष्यता इसी मे है कि दु खी जीवो को देखकर मानवता से परे नहीं हटे। सपत्ति का सदुपयोग अवश्य करे। यदि अधिक उदारता न कर सके तो अपनी कमाई का कुछ हिस्सा मानवीय गुणो की वृद्धि के लिए अवश्य लगावे। मानव को धनोपार्जन हेतु दो हाथ मिले है। किन्तु खाने हेतु एक ही हाथ काम मे आता है। अत एक हाथ से देना चाहिए। एक हाथ से खाना व एक हाथ से देना मानवता है। किन्तु दोनो हाथो से खाना पशुता है। सपत्ति का उपयोग जीवन मे हमेशा दीवाली बनाए रखता है। धन से कोई भी बडा नहीं होता, अपितु बडा धन के सदुपयोग से होता है। नगर मे पचासो जने करोडपति हैं। किन्तु वही करोडपति प्रसिद्ध होता है, उसी का नाम धनवानो की गिनती मे ज्यादा आता है जो कुछ देता है। देने वाले के प्रति सभी की दृष्टियॉ लग जाती है कि यह धनवान है। देने वाला सभी धनवानो मे प्रथम नम्बर का स्थान प्राप्त कर लेता है। वीर भामाशाह ने समय पर अपनी सपत्ति का उपयोग किया था। इसलिए इतिहास मे उनका नाम स्वर्णाक्षरो मे प्राप्त होता है।

जगत मे धन–सपत्ति, यश–प्रतिष्ठा, स्व–शरीर सुरक्षा आदि व्यक्तिगत स्वार्थो के लिए मरते हुए बहुत नजर आते है किन्तु नि स्वार्थ भाव से अन्य मानवो की रक्षा हेतु मरते हुए नजर नही आते। परन्तु ऐसी बात भी नहीं है। मानवता आज भी कही–कही जीवित है।

पाकिस्तान की घटना है। जब हिन्दुस्तान–पाकिस्तान का विभाजन हो रहा था उस समय की घटना है कि एक स्थान पर हिन्दू व मुस्लिम पडोसी थे। दोनो परिवारो मे अच्छा प्रेम था। जब यह मालूम हुआ कि कुछ मुस्लिम हमलावर गुण्डे हिन्दू स्त्रियो को तग करने आ सकते है तो पडोसी मुस्लिम परिवार मे, जहॉ केवल बूढे–बूढी दो ही रहते थे, उन्होने अपने घर मे हिन्दू महिलाओ को छुपा लिया। थोडी देर मे वे मुस्लिम गुण्डे हिन्दू घर मे पहुॅचे और पूछने लगे–कहॉ है तुम्हारे घर की औरते व लडकियॉ? उन्होंने उत्तर दिया अभी यहॉ पर नहीं है। वे उपद्रवी लोग पडोसी मुसलमान के घर शका से पहुॅचे और कहने लगे कि तुमने हिन्दू औरतो को छुपाया है। बूढे–बूढी ने उत्तर दिया– कि हम खुदा की कसम खाकर कहते हैं कि हमने हिन्दू महिलाओ को नही छिपाया है। फिर भी उपद्रवियो को शका थी। अत उन्होंने धमकी देते हुए कहा कि देखो, तुम जान को खतरे मे मत डालो और सही–सही बता दो। हमे पूरी शका है कि वे हिन्दू महिलाऍ तुम्हारे घर मे ही है। बूढे ने जल्दी से कुरान की पुस्तक हाथ मे उठा ली और कहा– देखो हमारे लिए कुरान से बढकर कोई वस्तु नहीं है। हम उसे हाथ मे उठाकर कह रहे है कि हमारे यहॉ कोई हिन्दू औरते नही है। आखिर वे उपद्रवी गुण्डे वहॉ से चले गए। थोडी ही देर बाद हिन्दुस्तान की ओर से हिन्दुओ को सुरक्षित

स्थान पर पहुचाने वाली मिलट्री की बस आगयी और उन सब महिलाओ की सुरक्षा हो गई।

यह है धर्म से पहले मानवता। अगर धर्म के चक्कर मे फँसकर मानवता को खो दिया जाता तो उन स्त्रियो की क्या स्थिति होती? उन बूढे–बूढी की स्वार्थ की स्थिति बिल्कुल नहीं थी। उन्होने मानवता की सुरक्षा के लिए अपनी जान भी जोखिम मे डाल दी थी। पर अन्य की सुरक्षा की भावना से स्वय की भी सुरक्षा हो गई। भगवान के द्वारा बतलाये गये अहिसा, सत्य धर्म का गहराई से अध्ययन करेगे तो पता चलेगा कि भगवान ने भी इसानियत को कितना महत्त्व दिया है। अहिसा धर्म के आधार पर ही सत्य आदि धर्म चलते है। हिसा के वशीभूत होकर सत्य बोले तो भी वह झूठ कहलाता है।

मनुष्य को सदा अपनी श्रेष्ठता को कायम रखना चाहिये। मनुष्य मे मनुष्यत्व के गुण तो सहज वृत्ति के साथ ही होते हैं। तभी आगे महात्मा–परमात्मा की दिशा मे गति हो सकती है। व्यक्ति त्याग–तपस्या करे, पौषध करे और घर मे पारिवारिक सदस्यो के साथ मानवता का व्यवहार न कर सके तो वह धर्म श्रेष्ठ प्रतिफल दिलाने वाला नही हो सकता। परिवार के अन्दर रहते हुए सोचिए– आपने अपने बूढे मॉ–बाप के प्रति कुछ कर्तव्य निभाये भी है या नही? उनकी सेवा मे आपने अपना थोडा भी समय लगाया क्या? विनय, सेवा आदि सहजिक सद्गुणो से आपके माता–पिता खुश हुए या नहीं? कही आपके करतब से मॉ–बाप की ऑखो मे ऑसू तो नहीं आये है? इसी प्रकार माता–पिता को भी अपनी सतानो के विकास के लिए पूरा समय देना चाहिए। उन्हे शिक्षा देने से पूर्व अपने–आपको भी वैसा बनाना चाहिए। तभी सताने आपकी चाह के अनुसार बन सकेगी। राम व लक्ष्मण जैसे भाइयो मे मानवता थी। उन्होने अपने भाइयो के कर्तव्य को पूरा निभाया था। मानवता के अन्दर ईर्ष्या, कपट आदि को स्थान नही है। मानवता को अपनाकर ही मानव राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, गॉधी, नेहरू आदि बने है। मानवीय गुणो की धारक लडकी ससुराल मे कभी दु ख नही पाती। वह सभी के द्वारा प्रशसा की पात्र बनती है। सभी उसे चाहते हैं। खिलते हुए ताजा गुलाब की तरह सदा खिलती व महकती रहती है। अपने मधुर, पवित्र जीवन की सुगन्ध से वहॉ के व आस–पास के वातावरण को भी सुवासित बना देती है। द्रव्य–दहेज से भी मानवीय गुणो का दहेज अधिक होता है। वह घर को स्वर्गमय बना देती है। किन्तु आज बहू लाते है घर मे, पर सद्गुण देखकर नही अपितु गोरापन व धन देखकर। लडकी ऊपर से नीचे तक कितनी भी गोरी हो किन्तु उसमे मानवीय गुण नही हो तो परिवार मे एडजस्ट नही हो सकती है। ऐसी स्थिति मे उसका गोरापन भी लज्जित होता है। जैसे किसी का नाम राजाराम रख देने मात्र से वह राजा नही हो जाता। इन्द्रेश रख देने से इन्द्र नहीं हो जाता,

ईश्वर रख देने से ईश्वर नहीं हो जाता। इसी प्रकार ऊपर से गोरापन पा लेने से अन्तरग गुण गोरे नही आ जाते। धन से भी लडकी श्रेष्ठ नही हो सकती है। श्रेष्ठ तभी होगी जब वह अपने पास रहने वालो के लिए उदारता रखे।

व्यक्ति को अन्दर–बाहर से एकरूप होना चाहिए। अन्दर मे कुछ ओर व बाहर से कुछ और तरीके से प्रकट होने वाला व्यक्ति परिवार के भी टुकडे–टुकडे करवाने मे सहयोगी बनता है। जिसमे एकरूपता का मानवीय गुण होता है वह सयुक्त परिवार मे भी आराम से रह सकता है। मानवता का लक्षण भी यही है कि वह किसी के भी साथ ऊँच–नीच का व्यवहार न करे, किसी का सम्मान व किसी का अपमान न करे। आत्मवत् सर्वभूतेषु की भावना से जीवन को भरपूर रूप से भर दो। ऊँच–नीच की भावनाएँ उन्नति मे बाधक बनती हैं। बादल को देखिए, वे बिना भेदभाव के सारी पृथ्वी पर बरसते है। उपजाऊ भूमि हो या ककर–पत्थर वाली हो, वे सभी जगह समान रूप से पानी बरसाते है।

जिन व्यक्तियो मे मानवता विकसित हो जाती है वे जगत के सभी प्राणियो को अपनी आत्मा के समान समझने लगते है और पशु–पक्षी आदि सभी का भला चाहते हैं। आज कई व्यक्ति अपने मनोरजन के लिए पशु–पक्षियो को सताते है। जैसे कई जने कबूतर आदि की टॉग मे रस्सी बॉधकर उसे घर मे उडाते है और उसे फडफडाते हुए देखकर खुश होते हैं। चूहे को पकडकर उसकी पूँछ के डोरी बॉधकर घर व चौक मे नचाते है। बिल्ली को चारो तरफ से बद करके इधर–उधर दौडती हुई देखकर खुश होते है। इसी प्रकार घर मे प्रमाद के वश अनेकानेक छोटे प्राणियो की हिसा कर डालते है। रातभर जूठे बर्तन के खुले पडे रहने से कितने मक्खी–मच्छर उनमे गिरकर मर जाते है। पहले के राजा–महाराजा निर्दोष पशु का शिकार करके बडे खुश होते थे।

ये सब काम मानवता से परे है। अगर आप मानव से आगे नहीं बढ सकते तो कम से कम मानवता को तो मत खोइए। अगर आप मानवता से आगे बढकर महात्मा, परमात्मा बनना चाहते है तो भी मानवता के गुण तो जीवन मे पहले आने जरूरी है। ऐसा मानवीय गुणो से युक्त जीवन ही दुर्लभ होता है। मनुष्य जीवन तो अनेक बार पाया किन्तु मनुष्यता को पा लिया होता तो परमात्मा बनने मे देरी नहीं लगती।



मोही मन - भूला जीवन

दुक्ख हयं जस्स न होइ मोहो

अर्थात् जिसके मन मे मोह नही होता, उसका दु,ख नष्ट हो जाता है।

परमात्मा के शुद्ध स्वरूप को लेकर चलने वाली आत्मा कर्मो के आवरण के कारण इस ससार मे परिभ्रमण कर रही है। कर्म आठ है—– ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय।

इन आठ कर्मो मे से मोहकर्म सभी कर्मो का राजा है। यह सब कर्मो से अधिक बलवान है। इसके कारण सभी कर्म आत्मा से दूर नही होते। अत मोहकर्म आत्मा का प्रबल शत्रु है। ससार मे हॅसना, रोना, राग–द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ की प्रवृत्तियॉ मोह के कारण ही गतिशील होती है। मोह के कारण व्यक्ति समतोल अवस्था मे नही रह पाता है।

मोह को शराब की उपमा भी दी जाती है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति अधिक नशीली शराब अधिक मात्रा मे पी लेता है तो उसे अपने–आपका भी भान नही रहता। जहॉ–तहॉ पडा रहता है। कुत्ते भी उसके शरीर को चाटते रहते है किन्तु उसमे इतनी भी जाग्रत अवस्था नही रहती कि वह कुत्ते को भगा सके। उसकी सारी शक्तियॉ सो जाती है। वह अट–सट बकता फिरता है। मॉ को प्राणप्यारी व प्राणप्यारी को मॉ कहने लगता है। यहॉ तक कि एक शराबी ने भैस को श्रीमती कहकर पुकार लिया। इस प्रकार उसका सारा विवेक खो जाता है। वह इसानियत से भी नीचे उतर जाता है। मदिरा के कारण ही देवो द्वारा बसायी गयी द्वारिका नगरी भी जलकर भस्म हो गई।

उसी प्रकार मोह के वशीभूत होकर मानव खाद्य–अखाद्य, कर्तव्य–अकर्तव्य के विवेक को खो देता है। एक बार एक महारानी ने अपने शरीर की ठिठुरन मिटाने के लिए गरीबो के झोपडे जलवा दिए और उसके बाद भी कोई अफसोस नही। इस शरीर के मोह ने महारानी का विवेक भ्रष्ट कर दिया था। शरीर के मोह मे उसकी सुन्दरता बढाने हेतु कैसी–कैसी हिसात्मक प्रसाधन सामग्रियो का प्रयोग किया जाता है। शरीर मे मोह के कारण ही उपवास, बेले, तेले आदि तपस्या का अनुष्ठान नही हो सकता।

धन का मोह शराब के नशे से भी ज्यादा खतरनाक होता है। सीताजी सोने के हिरण को देखते ही उसपे मोहित हो गई थी। उस स्वर्ण हिरण को

प्राप्त करने हेतु रामचद्रजी को घोर वन मे भेजा और अत मे लक्ष्मणजी को भी भेज दिया और पीछे से रावण ने उनका अपहरण कर लिया। माता अपने पुत्र को मोह के वशीभूत होकर गहने पहनाती हे और वे गहने बच्चे की जान तक ले लेते है। तब उस मॉ को मोह के प्रतिफलस्वरूप बेटे के वियोगरूप कष्ट को भोगना पडता है। धन के मोह के कारण ही व्यक्ति दानधर्म की आराधना नहीं कर सकता है।

व्यक्ति मोह के वशीभूत होकर मेरा–मेरा करता है। किन्तु यह मेरेपन का मोह व्यक्ति के आगे बढने मे भयकर रूप से बाधक होता है। मरुदेवी माता जब तक मेरा बेटा, मेरा बेटा करती गई तब तक केवलज्ञान नहीं हुआ। जैसे ही उनके परिणाम मोह से हटकर निर्मोह की दिशा मे प्रवृत्त हुए, वैसे ही केवलज्ञान व मोक्ष की प्राप्ति हो गयी। इलायचीकुमार का जैसे ही नटवी से मोह हटा ओर नाचते–नाचते ही केवलज्ञान हो गया। गौतम स्वामी के केवलज्ञान मे मोह ही बाधक बन रहा था। वह हटते ही सर्वज्ञ, सर्वदर्शी बन गए।

एक छोटे–से बच्चे मे भी मेरेपन की भावनाए होती है। वह पचासो ओरतो मे भी अपनी मॉ को पहचान लेता है। मा के शरीर मे रहे हुए वर्ण, गध, रस, स्पर्श की पहचान उस बच्चे को होती है। आये दिन पेपरो मे खबरे पढते रहते है व टी वी के माध्यम से सुनते रहते है कि अमुक स्थान पर बाढ आ गयी, अमुक स्थान पर चक्रवात तूफान आ गया, ट्रेन पटरी से नीचे उतर गयी, सैकडो व्यक्ति मर गए। आप सहज भाव से यह समाचार सुन व पढ लेते हैं। किन्तु आपको दु ख नहीं होता। आपकी ऑखो मे ऑसू नहीं आते। किन्तु सयोग से कल्पना के आधार पर आपका बेटा उस एक्सीडेट होने वाली ट्रेन मे ही बैठा है तो आपको कितनी जिज्ञासा रहेगी समाचार लेने की? फोन करोगे, जब तक समाचार न आवे तब तक रोटी खाना भी अच्छा नहीं लगेगा, न सोना अच्छा लगेगा। जब बेटे के समाचार मिल जावे कि मैं यहॉ सुरक्षित हूँ तो आप यहॉ पर खुशियॉ मनाते हुये मिठाई बॉटते फिरेगे। यह हे मोह की स्थिति। ट्रेन एक्सीडेट मे सैकडो व्यक्ति मर गए, उनका गम नहीं किन्तु बेटा बच गया है उसकी खुशी है। मरने वाले लोग भी तो किसी मॉ के बेटे ही हैं। पर अपने व्यक्ति के प्रति अजीब मोह होता है जो उसे रुलाता व हॅसाता हैं। वास्तव मे जहॉ मोह होता है वहॉ शोक का आधिक्य होता है। मोह की कहानी ही निराली होती है।

एक बार एक व्यक्ति महाराज के पास गया और कहने लगा– म सा , कल आप मेरी दुकान पर कपडे हेतु पधारे, उसके बाद से तो मेरी दुकान सोना उगलने लगी है। आसपास के लोगो को भी बडा आश्चर्य हो रहा है। भगवन आपकी कृपा सदा बनी रहे। महाराज ने कहा–ठीक है, यह सद धर्म का

प्रभाव है अत धर्म हमेशा करते रहना चाहिए व परिवारवालो को भी धर्म ध्यान करने हेतु प्रेरित करना चाहिये। सेठजी बोले—हॉ म सा, मै तो धर्म को ही सर्वोपरि मानता हूॅ। मेरे घर से कोई दीक्षा लेवे तो भी अन्तराय नही दूॅगा। सयोग की बात समझिए कि 8—10 दिन बाद ही एक पोते ने घर मे दीक्षा की बात कही—मै दीक्षा लेना चाहता हूॅ। बस, इतना कहना ही था कि दादाजी का दिल ही बैठ गया। वे महाराज को गालियॉ देने लग गए। बाजारो मे महाराज की बुराई करने लगे और मोह के वशीभूत होकर महाराज के स्थान पर जाकर उन्हे भी भला—बुरा कहने लगे। तू—तू करके गालियॉ बोलने लगे। यह है मोह की विचित्र दशा।

इस मोह के कारण ही कई स्त्री—पुरुष दीक्षा लेते हुए अटक जाते है। कभी व्यक्ति दीक्षा की भावना होते हुए भी पत्नी के मोह मे अटक कर ससार मे ही रह जाते है तो कभी बच्चे के मोह मे अटक जाते है। यह मोह जगह—जगह प्रगति मे बाधक बनता है। श्रीमद्भगवद्गीता मे कहा है— **स्नेहानुबन्धो बन्धूना मुनेरपि सुदुस्त्यजः।**

अर्थात् स्वजनो का स्नेहबधन तोडना मुनियो के लिए भी अत्यत दुष्कर है। आचार्यश्री स्कन्दक मुनि अपने पॉच सौ शिष्यो के साथ विचरण करते हुए अपनी ससारपक्षीय बहिन पुरदरयशा को प्रतिबोध देने के लिए दण्डकारण्य पधारे। वहॉ का मत्री पालक स्कन्दकाचार्य को देखते ही कुपित हो गया व अपने पूर्व वैर का बदला लेने के लिए योजना तैयार करने लगा। उसने रातोरात जिस वाटिका मे आचार्य ठहरे हुए थे वहा पर पॉच सौ हथियार गडवा दिए और सम्राट को सूचना दी कि—बगीचे मे पॉच सौ डाकू आए हुए है। सम्राट कुभकार को विश्वास नही हुआ। सम्राट ने कहा—मत्री! बगीचे मे जैन साधु ठहरे हुए है। वे उत्कृष्ट साधनाशील है। लगता है तुझे कोई भ्रम हो गया है। वहॉ ठहरे हुए श्रमणो के आचार्य स्कदक मुनि मेरे ससारपक्षीय साले है। वे डाकू कैसे हो सकते है ? मत्री बोला— राजन् आपको विश्वास नहीं हो तो गुप्तचारो द्वारा खोज करवा लीजिए कि उद्यान मे शस्त्र गडे हुए है या नही? राजा ने कर्मचारियो से खोज करवायी तो मालूम हुआ कि वास्तव मे शस्त्र गडे हुए है।

सम्राट बहुत क्रोधित हुए और मत्री को आदेश दिया कि उचित दड की व्यवस्था की जाये। मत्री बहुत खुश हुआ। उसको वैर का बदला लेने का मौका मिल गया। मत्री ने उद्यान मे कोल्हू पहुँचाने का आदेश दे दिया। तुरन्त उद्यान मे कोल्हू पहुॅचा दिया गया। मत्री स्कन्दकाचार्य को बोले कि— अब तैयार हो जाओ— मै तुम्हे व तुम्हारे शिष्यो को कोल्हू मे पीसकर वैर का बदला लूॅगा। आचार्य ने मत्री को समझाने का प्रयास किया कि तुम वैर का बदला लेना चाहते हो तो मेरे से ले लो। किन्तु निरपराध शिष्यो की हत्या मत करो।

पालक मत्री किसी भी प्रकार से माना नही और एक–एक शिष्य को बुलाता गया। शिष्य भी गुरूदेव को वन्दना करके, सथारा करके खुशीपूर्वक कोल्हू मे जाकर बैठने लगे। देखते–देखते खून की नदियाँ बहने लगीं। आचार्य ने अपने विचारो को निर्मल, उज्ज्वल व राग–द्वेष रहित रखा। किन्तु जेसे ही सबसे छोटे बालक शिष्य का नम्बर आया तो स्कन्दकाचार्य का मोह जाग उठा और वे बोले– मैं इस छोटे–से साधु को मेरे सामने मरते हुए नहीं देख सकूँगा अत पहले मेरे को पील दो। किन्तु वह मत्री नहीं माना और पहले शिष्य को कोल्हू मे पीला और बाद मे आचार्य को।

पॉच सौ शिष्यो ने मरणातक कष्ट आने पर भी, कोल्हू मे पीलकर मारे जाने पर भी, अपने विचारो को राग–द्वेष से रहित निर्मल रखा। अत वे पॉच सौ शिष्य मोक्ष मे चले गए। किन्तु आचार्य के दिल मे छोटे शिष्य के प्रति मोह की भावना जाग्रत हो जाने से वे मोक्ष से वचित रहे। वे अग्निकायिक देव बने। इसलिए उत्तराध्ययन सूत्र के आठवे अध्ययन मे कहा है– **असिणेह सिणेह करेहिं।** अर्थात् हे साधक! तेरे साथ जो स्नेह करे उनके साथ भी नि स्नेह भाव से रह।

आचार्य के उस आशिक मोह ने भी समग्र सयम–साधना पर पानी फेर दिया। चक्रवर्ती की पटरानी श्रीदेवी चक्रवर्ती की मृत्यु के बाद मोह के वशीभूत होकर छह महीने तक रोती है अत छठी नारकी मे चली जाती हे। इसी प्रकार मोह से हर क्षेत्र मे भयकर कष्ट उठाने पडते हैं।

एक चील मास का टुकडा लेकर जा रही थी। उसके पीछे कौए लगे। यह देखकर चील ने मास का टुकडा फेक दिया। अब उस मास के टुकडे को खाने के लिए कौए आपस मे लडने लगे। किन्तु चील शाति के साथ यह दृश्य देखने लगी। मास पर से चील का मोह टूटा और वह सुखी हो गई। लुहार लोह को तपाता है व तपाने के बाद उस तपे लोहे पर हथौडे मारता है। वह हथौडा तब तक मारता है जब तक उस लोहे मे अग्नि विद्यमान है। जब अग्नि शात हो जाती है तो लोहे को पीटना भी बद कर देता है। वैसे ही जब तक आत्मा मे मोह है तब तक इस पर आधि–व्याधि–उपाधि रूप हथोडे लगते रहते है। दु ख के आवर्तो मे फसकर आत्मा चक्कर लगाती रहती हे।

उन दु ख के आवर्तो से दूर होने के लिए मोहोत्पादक वस्तुओ से दूर होना जरूरी है। आत्मा मे आध्यात्मिक भाव पैदा कीजिए कि यह मकान मेरा नहीं है, यह तिजोरी मेरी नहीं है व यह परिवार मेरा नहीं हे। अगर वास्तव मे ये वस्तुएँ मेरी होतीं तो मेरे साथ परलोक मे भी जातीं। जैसे चन्द्रमा की चॉदनी चन्दमा की ही होती है, पानी की शीतलता पानी से जुडी होती हे। अत चॉदनी को चन्द्रमा से व शीतलता को पानी से अलग नही किया जा सकता। वैसे ही जो वस्तु आत्मा की हो उसे आत्मा से अलग कैसे किया जा सकता है?

इसलिए सयत वर्ग कभी ऐसा नही बोलते कि यह मेरा कपडा है, यह मेरी डायरी है आदि। सयत ऐसा ही बोलते है कि– यह डायरी मेरे नेश्राय की है, यह कपडा मेरे नेश्राय मे है। यानी यह डायरी, शास्त्र, कपडा मेरी देख–रेख मे है।

आपको अपने मकान के ऊपर मोह होता है। उस मकान को छोड कर कभी छोटे मकान मे जाना पडे तो भयकर दु ख होता है। किन्तु सयत वर्ग एक बडे स्थानक को छोडकर दूसरे गॉव की ओर विहार करते है तो उन्हे उस स्थानक को छोडते हुए जरा भी दु ख नही होता। क्योकि उनका मकान के प्रति मोह नही है। अत स्पष्ट है कि सुखप्राप्ति हेतु मोह को हटाना जरूरी है। मोह को हटाने के लिए बहुत समय तक मेहनत करनी पडती है। दश गुणस्थान तक का समय तो मोह को हटाने मे ही लग जाता है। मोह का क्षय होने पर केवलज्ञान, केवलदर्शन व अनत बल–वीर्य प्रकट होते देर नही लगती। घाति–चारकर्म नष्ट हो जाने पर अघाति कर्म आत्मा को परेशान नही करते।

जिस प्रकार तालवृक्ष के अग्रभाग को किसी तीक्ष्ण शस्त्र से छेदन कर दिया जाने पर वह वृक्ष गिर जाता है। वैसे ही मोह कर्म का छेदन हो जाने पर अन्य कर्म भी शीघ्र नष्ट हो जाते है।

पर मोहाधीन मनुष्य को दु ख भी सुखरूप लगते है और इस मोहभाव को छोड नही पाते। यदि मोक्ष की गाडी का किराया दो रुपये लगता हो तो मोहाधीन व्यक्ति डेढ रुपया देने की कोशिश करता है। यह व्यक्ति की कैसी दयनीय अवस्था है?

व्यक्ति एक तरफ शाश्वत सुख भी चाहता है और दूसरी तरफ नश्वर पदार्थो का मोह छोड भी नहीं सकता है। ऐसी स्थिति मे दोनो काम एक साथ कैसे बन सकते हैं? दो घोडो पर एक साथ व्यक्ति बैठ नहीं सकता। एक का तो मोह छोडना ही पडेगा। अत परमात्म तत्त्व की प्राप्ति के लिए आत्मा को जाग्रत करके जो वस्तुएँ आत्मा के साथ जाने वाली नहीं है उनसे जुडे गलत सबधो को तोडने हेतु तत्पर बने।

जब मन मे यह भाव पैदा हो जाये कि मेरा कोई नहीं है तथा मै भी किसी का नही हूँ तब किसी भी प्रकार का सयोग–वियोग होने पर व्यक्ति सुखी या दु खी नही बनेगा।



क्यूँ करता मेरा-मेरा

वित्त पसवो य नाइओ, त वाले सरण ति मन्नइ।
एए मम तेसु वि अह, नो ताण सरणं न विज्जई।।1।।

अर्थात् अज्ञानी पुरुष धन, पशु और जाति वालो को अपना शरण मानता है और समझता है कि ये मेरे है और मै इनका हूँ। किन्तु वस्तुत ये कोई भी त्राण या शरण रूप नहीं है।

मानव कर्मो के आवरण से दवा हुआ होने से अपूर्ण है। जैसे एक पैर वाले व्यक्ति को लकडी के सहारे की आवश्यकता होती है, ऊपरी मजिल पर पहुँचने हेतु सीढियो के सहारे की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार अपूर्ण व्यक्ति को किसी–न–किसी सहारे की अपेक्षा होती है। व्यावहारिक जीवन मे रोग, शोक, दु ख–दर्द, गरीबी–अमीरी आदि अनेक प्रकार की समस्याएँ आती है। उन समस्याओ के समाधान हेतु किसी अन्य के सहारे की जीवन मे अपेक्षा होती है और समाज मे रहते हुए व्यक्ति को सहारे मिल भी जाते है। किन्तु वे सहारे व्यक्ति के जीवन मे एक सीमा तक ही कामयाव होते हे। क्योकि वे सहारे भी अपूर्ण ही हे, सच्चे सहारे नहीं हे। यह मानव मन की दुर्बलता है कि मानव हर किसी को सहारा मान लेता हे और हर किसी के सामने अपनी समस्याएँ रख देता हे। जबकि आपको मालूम हे कि मे जिसके सामने समस्या पेश कर रहा हूँ वह समाधान करने मे सक्षम नहीं है, वह मेरा त्राण नही कर सकता। फिर भी मनोबल की कमजोरी के कारण उन सहारो को भी स्वीकार कर लेता है। पारिवारिक, सामाजिक कुछ सहारे ऐसे होते है जो कुछ हद तक कामयाव भी होते हे पर वे भी अपूर्ण ही होते हे। क्योकि उनके अन्तरग मे भी राग–द्वेष, स्वार्थ आदि छिपे रहते हें। वे सहारे भी तभी तक साथ देते है जब तक स्वार्थ सिद्ध होता रहता ह। नजदीक से नजदीक सवधी भी स्वार्थ सधता है तभी तक सबध निभाता हे।

परदेशी राजा व सूर्यकाता महारानी सदेव एक दूसरे को अपना सहारा मानकर चलते थे। वे आपस मे अत्यत आसक्त रहते थे। परदेशी राजा अपने विनोद की पूर्ति के लिए शिकार भी किया करते थे। भौतिकवादी वातावरण मे ही मशगूल रहते थे। आत्मा स्वर्ग नरक मोक्ष आदि कुछ भी नहीं मानते थे। एक बार जैन धर्मानुयायी चित्तप्रधान के सहयोग से केशीश्रमण मुनि के

प्रवचन मे पहुँचे। जिनवाणीरूपी अमृत का पान करके श्रावक–व्रत अगीकार कर लिये। एक महीने मे छह पौषध करने लगे। सूर्यकान्ता महारानी को अपना स्वार्थ टूटता हुआ नजर आने लगा। अत उसे राजा के द्वारा किया गया धर्म–ध्यान जरा भी पसद नही आता था।

एक बार सवेरे–सवेरे बेटा सूर्यकान्त मातुश्री के चरणो मे प्रणाम करने के लिए पहुँचा। महारानी ने बेटे को आशीर्वाद नही दिया। बेटे सूर्यकान्त ने मातुश्री से पूछा– क्या बात है, माताजी? आप आज इतनी उदास क्यो दिखाई दे रही हो? क्या कोई शारीरिक बीमारी है जो आपको परेशान कर रही है? या कोई मानसिक टेन्सन है? आखिर आपके मन मे क्या विचार है? वह कृपया मुझे बताइये। मै यथाशक्य हर दु ख को दूर करने की कोशिश करूँगा। महारानी– अगर ऐसा ही है तो मेरी बात सुनो, मुझे आज के बाद माँ नहीं कहना है। मै तुम्हारे रूप मे आसक्त हूँ। तुम्हारी दासी बनना चाहती हूँ। राजकुमार कहने लगा–ऐसी बाते मेरे सामने मत करो। मै तो आपका बेटा हूँ। बेटे के सामने ऐसी बाते करना शोभास्पद नही लगती। महारानी–तुम समझ रहे होगे कि परदेशी राजा के रहते हुए यह सब होना असभव है। किन्तु तुम इस विषय मे चिन्ता मत करो। परदेशी राजा का काम तो मै सरलता से तमाम कर दूँगी। सूर्यकान्त– मातुश्री आप क्या बोल रही हो? मै इन सब बातो को सुन नही सकता हूँ। सूर्यकान्त के द्वारा ऐसा कहने पर महारानी जैसे ही उसको पकडने लगती है कि सूर्यकान्त बचकर के बाहर चला जाता है।

सूर्यकान्त के बाहर निकलते ही महारानी सूर्यकान्ता को भारी चिन्ता हो गयी। सोचा, यदि सूर्यकान्त ने राजा परदेशी को मेरे विषय मे बता दिया तो मुझे मृत्यु दड ही मिलेगा। महारानी सूर्यकान्ता ने अपनी गुप्तचर दासियो को राजा व राजकुमार की निगरानी हेतु लगा दिया। ताकि वे दोनो आपस मे बात करे तो भी पता लग जावे। इधर महारानी ने जल्दी–जल्दी पारणे की सारी सामग्री अपने हाथो से तैयार की और सभी मे मीठा जहर डाल दिया।

परदेशी राजा पौषध पालकर अपने सहज भावो के साथ सीधे महलो मे ही पहुँच गये। पारणे का समय होने पर प्रत्याख्यान पालकर पारणा करने के लिये बैठे है। सम्राट ने दो चार घूँट दूध पीया ही होगा कि दूध मे मिले मीठे जहर ने शरीर पर अपनां प्रभाव दिखाना प्रारभ कर दिया। राजा दूध को छोडकर अन्य वस्तु ग्रहण करने लगे तो उसमे भी नशा था। राजा समझ गए कि आज दाल मे काला है। पर मुझे कुछ भी न बोलते हुए, आये हुए उपसर्ग को समभाव से सहन करना है। राजा पारणे की सामग्री को छोडकर वहा से उठे और लडखडाते पॉवो से चलकर पास वाले कमरे मे गए। वहॉ पर लगे हुए गद्दे पर सोते समय सागारी सथारा ग्रहण करके समभाव के साथ लेट गए। कमरे के आसपास घूम रहे नौकरो ने राजा की स्थिति को देखा कि

लगता है सम्राट का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। वे तुरन्त डॉक्टर–वैद्यो को बुलाने हेतु चले गए।

परदेशी राजा को अचानक क्या हो गया, यह जानकर कोई तात्रिक–मात्रिक को भी बुलाने चले गये। सभी परदेशी राजा की बीमारी का सुनकर शीघ्र चले आए। वैद्य नाडी देख रहे है, जडी बूटियॉ पीसी व घिसी जाने लगी। मात्रिक–तात्रिक भी अपनी मत्र–तत्र विद्या का प्रयोग करने लगे।

महारानी ने ये सब प्रक्रियाएँ देखीं तो सोचा मत्र–तत्र व ओषधोपचार से राजा बच गये तो क्या होगा? फिर तो मुझे मृत्युदड या राज्य–निष्कासन का ही दड प्राप्त होगा। ऐसा सोचकर उसने त्रिया चरित्र खेलना प्रारभ किया। अपने लम्बे–लम्बे काले–कजरारे बालो को चारो ओर बिखेर दिया। कपडे अस्त–व्यस्त कर दिए। जोर–जोर से रोती हुई उपस्थित जनसमुदाय के मध्य मे से राजा के पास पहुँचने लगी। सभी ने तत्काल रास्ता दे दिया। सूर्यकाता महारानी रोती–बिलखती हुई–हाय! पतिदेव आपको क्या हो गया? इन शब्दो का उच्चारण करती हुई परदेशी राजा के मुँह मे मुँह डालकर और जोर से रोने लगी। बाल चारो तरफ बिखर चुके थे। महारानी ने ऊपरी ढोग रचाते हुए अपना एक हाथ बालो के मध्य मे से परदेशी राजा के गले पर रख दिया और जोर से दबाना प्रारभ किया। ऊपर से लोगो को दिखाने के लिए पति की बीमारी हेतु रो रही है और अन्दर मे अपने हाथो से गला दबा रही हे। गले को इतना दबाया कि कहीं थोडा–बहुत श्वास भी अन्दर न रह जाये। कितना स्वार्थ! एक अर्द्धागिनी कहलाने वाली पत्नी भी अपने पति के लिए अशरणभूत हो जाती है तो सासारिक अन्य सबधो के विषय मे क्या विश्वास किया जाये?

वास्तव मे अपूर्ण का सहारा सच्चा सहारा नहीं हो सकता है। जिस नाव मे छिद हो रहे है वह नाव क्या आपको नदी पार करवा देगी? जिस मकान के नींव नहीं है वह मकान आपके लिए आधारभूत नहीं हो सकता। जिस गाडी का ब्रेक सही नहीं है वह गाडी आपको सुरक्षित रूप से नहीं पहुँचा सकती। जिस व्यक्ति के स्वय के पास पेटभर भोजन नहीं है वह दूसरो का पेट कैसे भर सकेगा? जो व्यक्ति स्वय अपनी रक्षा करने मे असमर्थ है, वह अन्य की सुरक्षा करने मे कैसे सक्षम हो सकता है? इसी प्रकार जो व्यक्ति स्वय अपूर्ण है वह कैसे शरण दे सकता है? फिर भी वह शरण देता अवश्य हे। पर जब स्वय अपने पर कोई आपत्ति आती है और विरोधी शक्तियो का प्रहार उस पर पडता है तब वह स्वय भी टिक नहीं पाता है तो फिर दूसरो के लिए वह सही रूप मे शरणभूत कैसे हो सकता है? सासारिक लोग सोचते हैं कि बेटा हमारी जिन्दगी के लिए शरणभूत होता हे। स्वय का अपना बेटा नहीं होता है तो लोग बेटा गोद ले लेते हैं। जैसे बेटे की शरण बिना मोक्ष होता ही नहीं हो। कहा भी है–

पुत्रं बिना गतिर्नास्ति।

अर्थात् पुत्र के बिना गति नही होती है। वास्तव मे आज लोगो को पुत्र के बिना मकान, धन आदि खाने को दौडते है, किन्तु पुत्र की शरण वास्तविक शरण नही होती। राजा श्रेणिक का बेटा कोणिक अपने पिता के लिए शरणभूत नही हो सका। कहा भी है– **नास्ति पुत्र समो रिपु।** अर्थात् पुत्र के समान अन्य कोई शत्रु नही होता है। मरने के बाद सिर वही फोडता है। सपत्ति भी व्यक्ति के लिए शरणभूत नही हो सकती है। कहा भी है– **जड संपत्ति तहँ विपत्ति।** जहाँ–जहाँ सपत्ति है, वहाँ–वहाँ विपत्ति है। चक्रवर्ती के पास छह खड की सपत्ति होती है। वह उसे आसक्ति से भोगते हुए नरकरूप विपत्ति को तैयार कर लेता है। आप किसी को बोल दीजिए– मेरे पास दो लाख रुपये की सपत्ति है। फिर देखिए, आपके पीछे किस प्रकार से विपत्ति पडती है। सपत्ति के बढते ही सेलटेक्स, इकमटेक्स, छापे आदि–आदि अनेक विपत्तियाँ सामने आकर खडी हो जाती है। जाते हुए श्वासो को धन भी रोक नहीं सकता।

इस प्रकार ससार मे धर्म के सिवाय अन्य कुछ भी शरणभूत नही है। धर्म की जहाज ही ससार–सागर को पार करवाने मे समर्थ है। धर्म की शरण एक ऐसी शरण है जिसको ग्रहण करने के बाद किसी अन्य की शरण मे जाने की आवश्यकता नही पडती है।

महर्षि गौतम ने भी कहा है– **धम्मो सरण गईय।** अर्थात् धर्म ही शरण व गति है। अर्थात् धर्म ही शरण लेने योग्य है, वही मोक्षगति प्राप्त करवाने मे सहायक है।

अनाथी मुनि के जीवन से सबधित घटना है। जिस समय युवक अनाथी की ऑखो मे भयकर पीडा होने लगी व सारे शरीर मे जलन होने लगी उस समय उन्हे भयकर शारीरिक वेदना महसूस हो रही थी। उन्हे ऐसा महसूस हो रहा था जैसे मेरी ऑखो मे शूल डाली जा रही हो। ऐसी असह्य भयकर पीडा से युक्त उस युवक को माता–पिता, पत्नी आदि पारिवारिक जन कोई भी नही देख पा रहे थे। निरन्तर डाक्टर, वैद्य, तान्त्रिक, मान्त्रिक आदि सभी को बुला रहे थे। पैसा पानी की तरह बहा रहे थे। माता–पिता, भाई–बहिने, धर्मपत्नी आदि सभी रात–दिन सेवा मे तत्पर थे। युवक अनाथी की वेदना को देख–देख कर सभी ऑसू बहा रहे थे। घर मे धन अपार था, बडा परिवार था। उपचार के सभी साधन उपलब्ध थे। फिर भी उनकी वेदना को कोई भी शात नही कर पा रहा था या घटा पा रहा था। माता, पिता, पत्नी आदि सभी अनेक देवी–देवता व दान आदि की मनौतियाँ मना रहे थे।

एक दिन युवक अनाथी के मन मे विचार आया कि मुझे इतनी शारीरिक वेदना देने वाला कौन है? दु ख का मूल कारण आखिर है क्या? आत्मा ही

कर्मो का कर्ता व भोक्ता है। कर्म के कारण ही दु खो की प्राप्ति होती हे। अत दु खो के मूल कारण कर्म को नष्ट करने हेतु धर्म ही एकमात्र सर्वोत्तम उपाय है। अत मै बाहर के पारिवारिक जनो की, दवाइयो की शरण छोडकर धर्म की शरण ग्रहण कर लूँ। और अगर मै इस वेदना से मुक्त हो गया तो शान्त, दान्त एव निरारम्भ होकर अनगार धर्म की शरण ग्रहण कर लूँगा। इस प्रकार का चितन जैसे ही किया कि इस आध्यात्मिक चितनरूपी दवाई ने तुरत अपना असर दिखाना प्रारभ कर दिया। जैसे तेज बुखार वाले को एक क्रोसीन की गोली दे दी जाए तो बुखार तुरत उतर जाता है उसी प्रकार जैसे ही युवक अनाथी ने चितन किया और बहुत दिनो से जो नींद नहीं आ रही थी, वह शीघ्र ही आने लग गयी। माता–पिता आदि सभी पारिवारिक जन पास मे वेठे ही थे। कई दिनो के आद युवक की ऑखो मे नीद देखकर सभी वहुत खुश हुए और इशारे से एक–दूसरे से कहने लगे कि यहॉ छींक, खासी, पैरो की आवाज आदि कुछ भी नही होना चाहिए। पूरी रात युवक को गहरी नींद आयी। सवेरे जैसे ही युवक उठा और माता–पिता कहने लगे– कल के वेद्य की दवाई लग गई है अत वही चालू रखनी हे। युवक अनाथी ने कहा–हॉ, पिताजी जो दवाई मैने रात को ली थी, वही मुझे लेनी है। मेरे अव ऑख की वेदना व शारीरिक जलन बहुत ठीक है। माताजी, पिताजी, पत्नी आदि सभी कहने लगे– मैने अमुक देवता की मनौती ली, इसलिए ठीक हुए। इसी मध्य मे युवक बोला कि मैने भी एक मनौती की है। उसे पूरी करना है। माता–पिता वोले– हॉ–हॉ, तुम्हारे द्वारा की गई मनौती तो पहले पूरी करना हे। तव युवक ने बताया कि अपार वेदना से परेशान होकर मेने एक सकल्प लिया। वह सकल्प इस प्रकार का लिया कि अगर मै ठीक हो गया तो अणगार धर्म को ग्रहण करूँगा। वही मेरा पक्का सकल्प है। उसी अणगार धर्म को मे ग्रहण करना चाहता हूँ। यही मैंने कल सोते समय दवाई ली थी। यही अव मुझे लेनी है। युवक अनाथी ने अपने दृढ सकल्प के साथ दीक्षा ग्रहण कर ही ली। इस ससार मे धर्म की शरण लेने से सभी प्रकार की समस्याऍ समाप्त हो जाती है। इसीलिए उत्तराध्ययन मे कहा है–

जरा मरण वेगेण, वुज्झपाणाण पाणिण,
धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई शरण मुत्तम।

अर्थात् जन्म, जरा, मृत्यु रोग, शोक आदि वेगो से पीडित प्राणियो के लिए धर्म ही द्वीप के समान हे, एकमात्र आश्रयस्थल हे, सहारा हे, धर्म ही शरण दाता हे, धर्म ही गति है।

सच्ची शरण को नहीं पहचानने वाला भोतिक वस्तुओ की व धन, परिवार स्त्री, पुत्र, मित्र, मकान आदि की शरण ग्रहण करने वाला यहॉ से मरकर भी उसी स्थान पर चील आदि वनकर मॅडराता रहेगा कुत्ता वनकर घर मे घुसता

रहेगा, सर्प बनकर तिजोरी के ऑटे मारता फिरेगा। अत भगवान ने फरमाया था– **धम्मं शरणं गच्छामि।** तथा यह भी फरमाया है कि– **असरणं सरणं मन्नमाणे वाले।** अर्थात् अशरण मनुष्य नष्ट हो जाता है। वास्तव मे बाहरी पदार्थ जड है, शरीर भी जड है। वो जड है, वे पराए है और पराई वस्तु आपकी आत्मा के लिए शरणभूत कैसे हो सकती है? पराए को अपना बनाना बेकार है। कहा भी है– **पराया सो पराया व अपना सो अपना।** ऐसी स्थिति मे पराए को अपनी शरण मान कर चलना एक बहुत बडी भूल होगी। इस भूल से बचे और चतुर्गति ससार मे परिभ्रमण करने से बचे।



निःस्सार है जगत - मत बन भगत

चउव्विहे ससारे पण्णत्ते तजहा-णेरइय ससारे, तिखिख जोणिय ससारे, मणुय ससारे, देव ससारे। (स्थानाग सूत्र, चोथा स्थान)

अर्थात् स्थानाग सूत्र के चौथे ठाणे के अन्दर ससार चार प्रकार का प्ररूपित किया गया है– 1 नरक ससार, 2 तिर्यच ससार, 3 मनुष्य ससार, 4 देव ससार।

जीव अनादिकाल से चार गति, चौरासी लाख जीवयोनिरूप ससार मे निरन्तर परिभ्रमण कर रहा है व अनेको प्रकार के दु खो को झेल रहा हे। चारो गति मे से नरक गति का दु ख तो भयकर दु ख है।

नरक गति मे उत्पन्न होने वाले जीव वहॉ की दीवालो मे लगी कुभियो मे जाकर उत्पन्न होते है तथा वहॉ पर पर्याप्तियॉ पूर्ण करते ही उनका शरीर बहुत ज्यादा फूल जाता है। वे कुभियो मे फॅसने लगते है। कुभियॉ अन्दर से तलवार की धार के समान तीखी होती है। नारकी जीव को वहॉ की पीडा असहनीय लगती है। वे चिल्लाते है–हाय! हमे यहॉ से कोई बाहर निकालो, परमाधार्मिक देव उन्हे उन कुभियो मे से खींचकर टुकडे–टुकडे करके बाहर निकालते है। नारकी जीव के शरीर के टुकडे होने पर भी वे मरते नहीं है क्योकि उनका शरीर वैक्रिय पुद्गलो से बना हुआ होता है अत पारे की तरह वापस मिल जाता है। अर्थात् पुन शरीर जैसा शरीर बन जाता हे।

कुभियो से बाहर आने के बावजूद भी उन्हे दस प्रकार की वेदनाऍ होती रहती है। उन्हे इतनी भूख लगती है कि सम्पूर्ण भूमडल का अन्न ले जाकर एक नैरयिक के सामने रख दिया जाए और उससे कहा जाए कि पास मे दूसरा नारकी भी बैठा है, उसे भी भयकर भूख लग रही है, मुट्ठीभर दाना उसे भी दे दो तो वह नारकी कहेगा– इतना अनाज तो मेरे अकेले के लिए भी पर्याप्त नहीं है तो दूसरो को क्या दूॅ?

नारकी जीव को प्यास भी भयकर लगती है। ससार के सभी कुऍ, तालाब, नदियाँ, समुद्र आदि का पानी किसी एक नारकी जीव को दे दिया जाए और कहा जाए कि एक गिलास पानी पास मे बैठे नेरयिक को भी दे दो तो उत्तर यही मिलेगा कि इतना पानी तो मेरे अकेले के लिए भी पर्याप्त नहीं है तो दूसरो को कैसे दे सकता हूॅ?

नारकी जीव को भयकर सर्दी लगती है। जैसे कोई लोहार लोहे के गोले को तपा–तपाकर एक महीने तक निरन्तर कूटकर मजबूत बनावे। उस गोले को नरक की सर्दी मे रख दिया जाए तो वह गोला क्षणभर मे सर्दी के मारे बिखर जाता है। वापस हाथ मे नही आता। जैसे पौष मास की आधी रात का समय हो, आकाश बादलरहित हो, शरीर को कॅपा देने वाली ठडी हवा चल रही हो, उस समय मे यदि कोई पुरुष हिमालय पर्वत के बर्फीले शिखर पर शीत–निवारण वाली सभी सामग्री से रहित हो। ऐसी स्थिति मे वह पुरुष जैसी शीत–वेदना का अनुभव करता है उससे भी अनन्तगुणी वेदना शीत प्रधान नारको मे होती है। उन नैरयिको को वहॉ से निकालकर यदि हिमालय पर्वत के शिखर पर बिठा दिया जाए तो वह कहेगा मै बहुत आराम मे आ गया हूॅ। वहॉ उसे नीद भी आ जाएगी।

नारकी जीव मे उष्ण वेदना भी भयकर होती है। जैसे कोई लोहार लोहे के गोले को पन्द्रह दिन तक खूब तपाकर, कूटकर मजबूत बनावे और गोले को ले जाकर उष्णताप्रधान नारको मे रख दिया जाए तो क्षणभर मे वहा की गरमी से पिघलकर बहने लग जाता है। ऐसे गरमी मे रहे हुए नैरयिको को असत् कल्पना के आधार पर निकालकर भिलाई की भट्टी मे, जहॉ लोहा पिघाला जाता है, उस भट्टी मे ले जाकर नैरयिक को रख दिया जाए तो वह वहॉ पर अमृत रस से स्नान किए पुरुष की तरह अत्यन्त सुख की अनुभूति करता है। इसी प्रकार अनन्त परवशता, अनन्त दाह, अनन्त ज्वर, अनन्त खाज–खुजली, अनन्त भय, अनन्त शोक आदि उन नारकी जीवो मे होता है।

एक–एक नारकी जीव के पॉच करोड अडसठ लाख निन्यानवे हजार पॉच सौ चौरासी तरह के रोग लगे हुए है। भयकर पीडाऍ निरन्तर भोगते रहते है। यहॉ पर मनुष्य के एक पैर मे एक कॉटा भी चुभ जाए तो भी बहुत पीडा होती है। किन्तु वहॉ पर कितनी वेदनाए भोगता है। प्यास से पीडित हुआ नैरयिक बहती हुई वैतरणी नदी को दूर से देखकर अपनी तृष्णा मिटाने हेतु भागता है। कितु वहॉ देखता है कि नदी मे तो सिर्फ खून व रस्सी है, वहॉ पानी नही है। वह वहॉ से घबराता हुआ वापस लौटता है। रास्ते मे वृक्ष देखता है तो अपनी घबराहट को शात करने उस वृक्ष की छाया मे बैठता है। वृक्ष से जो पत्ता गिरता है, वह तलवार की धार से भी अधिक तीखा होता है। हाथ पर पडे तो हाथ कट जाता है, सिर पर गिरे तो सिर कट जाता है।

इस प्रकार नरक के भयकर दु खो को पापी जीव भोगता रहता है। जो भी जीव नरक मे चला गया तो कम से कम दस हजार वर्ष तक तो वहॉ रहता ही है। उससे पहले नरक से किसी भी जीव की छुट्टी नही होती।

नरक से निकलकर कभी तिर्यच के ससार मे प्रविष्ट भी हो जाए तो वहॉ भी बहुत दु ख उठाने पडते है। एकेन्द्रिय मे रहता हुआ जीव एक अन्तर्मुहूर्त

के अन्दर–अन्दर पैसठ हजार पॅाच सौ छत्तीस बार जन्म–मरण कर लेता है। इसी प्रकार बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय आदि सभी अवस्थाओ मे दु ख भोगते रहते हैं। देखा जाता है कि बैलगाडी, ऊटगाडी आदि मे शक्ति से बाहर भार डाल देते है, तागे मे चार सवारी बैठ सकती हैं उनके स्थान पर छह–आठ सवारी व भारी समान भी भर लेते है, ऊपर से चाबुक की मार ओर खानी पडती है। सर्दी–गरमी आदि प्रकृति–प्रदत्त दु ख भी सहन करने होते है। इस प्रकार तिर्यच गति मे भी दु खो का पार नही है।

मनुष्य गति मे रहे हुए प्रत्येक मनुष्य भी प्राय दु खी देखे जाते है। कोई व्यक्ति निर्धनता से दु खी है तो कोई नि सतान होने से दु खी है। किसी को कर्कशा नारी मिल जाने से दु खी है तो कोई कपूत बेटे से दु खी है। कोई इष्ट वियोग से दु खी है, कोई अनिष्ट सयोग से दु खी है, कोई व्यापार अच्छा नहीं चलने से दु खी हैं। इस प्रकार हर इन्सान किसी न किसी दु ख से अवश्य दु खी है।

देवभव मे कहने को तो भौतिक सुख–सपदा होती हे किन्तु ईर्ष्या, राग–द्वेषजनित दु ख वहॉ पर भी है। एक देव दूसरे देव की ऋद्धि–सपदा को देखकर ईर्ष्या करता है, किसी भी निमित्त से कलह करने मे भी पीछे नहीं रहता। देवता की आयु जब छह महीने बाकी रहती है उस समय उसके गले मे रही हुई माला मुरझाने लगती है। जब भी वे बडे दु खी होते हैं, विलाप करते है कि हाय! सुखोपभोग मेरे पास से छूट जाएँगे। अब मेरे को नही मिलेगे। मुझे निम्न गतियो मे जाकर वहॉ के घोर दु खो को उठाना पडेगा। इस प्रकार देव भी कई निमित्तो से दु खी होते है तथा जन्म–मरण के दु ख से तो सभी जीव दु खी है ही। उत्तराध्ययन सूत्र मे बताया है–

जन्म दुक्ख, जरा दुक्खं, रोगणि मरणाणि य,
अहो दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसति जन्तवो।।

अर्थात् जन्म दु,ख है, बुढापा दु ख है, रोग दु ख है, मृत्यु दु ख हे। अहो! ससार दु खरूप ही है जिसमे जीव क्लेश पा रहा है।

बच्चा गर्भ अवस्था मे कितना दु ख पाता है। कभी बस मे भीड अधिक हो जाए तो भी दम घुटने लगता है। इच्छा होती है कि तुरन्त बस से नीचे उतर जाएँ व किसी अन्य बस को पकड ले। बस मे तो फिर भी खिडकी या फाटक आदि से बाहर की स्वच्छ हवा आने–जाने के मार्ग होते है पर गर्भ मे बच्चा चारो ओर से पैक रहता है, गन्दे पदार्थो से लिपटा हुआ रहता है। माता खडी होती है तो बच्चे को लगता है कि मुझे आकाश मे उछालके फेंक दिया है व माता बेठती है तो उसे लगता है पाताल मे फेंक रहे हैं। गर्भगत जीव की वेदनाऍ भयकर होती है। जन्म लेने के बाद भी बच्चा अपनी इच्छानुसार कुछ भी नहीं कर सकता। पेट दु खे, सिर दु खे, भूख लगे, प्यास लगे तो कुछ भी

व्यक्त नही कर सकता। बडे होने पर भी अनेक प्रकार के दु खो को ससार मे भोगता रहता है।

जब–कभी कोई मिल जाते है तो बातो–बातो मे अपने दु खो की कहानी सुनाने लगते है। पहले अमीर थे, फिर गरीब हो गए या पहले गरीब थे, कैसी–कैसी स्थितियाँ थी आदि सुनाने लगते है। इस प्रकार जिन्दगी मे उतार–चढाव आते ही रहते है और उन–उन अवस्थाओ के साथ इन्सान दु खी होता रहता है। आजकल लोग बीमारियो से भी काफी दु खी रहते है। हर घर का फेमिली डॉक्टर होता है। इस प्रकार यह ससार दु खो से परिपूरित है। कहा भी है–

संसारो दुःखानामेकमास्पदम्।।

अर्थात् ससार दु खो का एकमात्र स्थान है। ससार मे दु ख–ही–दु ख है, सुख तो केवल काल्पनिक है। आखिर ससार है क्या? जहाँ जीव पीडा का अनुभव करता है, दु ख का अनुभव करता है, वेदना का अनुभव करता है, वह ससार है।

ससार मे जीव ने परिभ्रमण करते हुए सभी जीवो के साथ अनेक बार हर तरह के सबध कर लिए है। भगवती सूत्र के शतक बारहवे, उद्देशे सातवे मे लिखा है– यह जीव सभी जीवो के साथ मातापने, पितापने, भाई–बहन, पुत्र, पुत्री, पुत्रवधूपने, शत्रुपने, वैरीपने आदि रूप से अनेक बार उत्पन्न हुआ है व लोक के सारे आत्मप्रदेशो पर इस जीव ने जन्म–मरण कर लिया है। जो व्यक्ति आपके घर का मालिक है, पिताजी है वह बकरा बनकर आपके घर मे घुसने लगे तो आप उसे डडे मारकर बाहर निकाल देते है। मनुष्य मरकर पशु बन जाता है, बाप मरकर बेटा बन जाता है, बेटा पडोसी बन जाता है।

इस प्रकार यह ससार एक बहुत बडा नाटक है। इसमे पात्रो की कोई सीमा नहीं है। इसमे राजा, रानी, पति, पत्नी आदि हर प्रकार के पात्र है। खुशियाँ व दु ख सभी–कुछ हैं। वाद–विवाद, सवाद, गाने आदि सभी–कुछ इस नाटक मे रहते है और कर्मबधन करते हुए इस ससार मे परिभ्रमण करते रहते है।

ससार मे कोई किसी का नही है। जीते–जी सभी मेरा–मेरा करते है। वेदना व मृत्यु से कोई नही बच सकता है।

एक बार एक युवक महात्मा के दर्शन करने गया। महात्मा ने ससार की दशा का चित्रण उसके सामने प्रस्तुत करते हुए कहा कि ससार के सभी जीव स्वार्थी है। कोई किसी को शरण देने वाला नही है। अत ससार मे आसक्त होने जैसा कुछ भी नहीं है। युवक ने कहा– महात्मन् ऐसी बात नहीं है। वे मेरे लिए सब–कुछ करने के लिए तैयार है। महात्मा ने कहा– तुम परीक्षा

करके देखलो। युवक– क्या परीक्षा करू? महात्मा– तुम बीमारी का बहाना करके सो जाओ, खाना–पीना बद करो और मुझे बुला लेना तो मैं आ जाऊँगा ओर सब सँभाल लूँगा। युवक घर पर गया और वह सन्यासी के बताए अनुसार बीमारी का बहाना करके सो गया। परिवार के लोगो को लगने लगा कि लगता है इन्हे किसी गभीर बीमारी ने घेर लिया है। सभी चिन्तित हो गये। युवक ने हाय–त्राय करते हुए कहा कि अमुक महात्मा को बुला दो, वे बहुत जानकार है। परिवार का एक सदस्य भागा–भागा महात्मा के पास गया। तुरत उन्हे बुलाकर लेके आ गया। महात्मा उसके घर पहुँचे। महात्मा के आते ही सारे पारिवारिक जन रोने लग गए। मॉ कहने लगी– मेरा एकाएक बेटा है। एकमात्र यही हमारे परिवार का सहारा है। आप इसे ठीक कर दीजिए। अभी तो मैं बूढी हूँ अत मेरे जाने का नबर है। मै चली जाऊँ पर मेरे बेटे को प्राणदान दे दो। पिताजी कहते है–हॉ–हॉ, मै मर सकता हूँ। मेरी उम्र इसके लगा दो पर इसे अच्छा कर दो। पत्नी कहने लगी– इनके बिना इस ससार मे मेरा है ही क्या? मै पहले जाना चाहती हूँ। महात्माजी, मै मर जाऊगी पर आप इन्हे जीवित कर दो।

महात्माजी ने कहा– ठीक है। एक कटोरे मे दूध ले आओ। मै अभी दूध को मन्त्र देता हूँ। एक कटोरे मे दूध लेकर सात बार मत्रित किया ओर सभी पारिवारिक जनो के समक्ष कहने लगे कि इस दूध मे इस युवक की सारी बीमारी का जहर आ गया है। अब आप परिवार मे से जो इन्हे जिलाना चाहते है वे इसे पीलो, यह युवक ठीक हो जाएगा और पीने वाला मर जाएगा। सभी चुपचाप खडे है। मॉ की तरफ इशारा किया कि आप कह रही थीं, अब आप इसे पीलो। मॉ बोली– महात्मन् आपकी बात ठीक हे। मैं जहर पी भी लेती किन्तु बेटे से बढकर पति प्यारा है और मैं मर जाऊँ तो बूढे पति की सेवा का कैसे–क्या होगा? उनका समय बीतना ही मुश्किल हो जाएगा। पिता ने कहा– वैसे मै पी लेता। मैंने मेरी इच्छा पहले ही प्रकट कर दी पर मेरे सामने मेरी दो लडकियॉ खडी हैं। उनकी शादी करना भी जरूरी हे। अत ओर कोई पी लेवे तो अच्छा रहेगा।

महात्मा ने उस कटोरे को पत्नी के सामने करते हुए कहा– तुम तो अपने पति के लिए सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार हो, इतना रो रही हो। लो, यह दूध तुम पीलो। तुम्हारे प्राणप्यारे पति बच जाऍगे। पत्नी बोली– मैं बिल्कुल पी लेती। मुझे पति के बाद इस ससार मे जिन्दा रहके करना भी क्या है? किन्तु महात्माजी, यह मेरा छोटा दूधमुँहा बेटा, इसका क्या होगा? बिना मॉ के सतान की हालत क्या होती है? उसमे थोडा–सा जीव जा रहा ह, नहीं तो मे अवश्य ही पी लेती। इस प्रकार आसपास मे खडे मित्र–पडोसी आदि सभी ने उस दूध को पीने से मना कर दिया। तब महात्मा ने कहा–अच्छा मैं

पी लेता हूँ। सभी ने एक स्वर से कहा–हाँ! महात्माजी, आप पी लीजिए क्योकि आपके आगे–पीछे कोई भी नही है। आपके बाद रोने वाला भी कोई नही है। वैसे आप तो साधनाशील है। आप तो मर भी गए तो देवलोक मे ही जाओगे। अत आपका ही पीना श्रेयस्कर है।

महात्मन्! हमारा परिवार आपकी अन्तिम क्रिया बहुत अच्छी कर देगा। अन्तिम जुलूस भी अच्छा निकालेगे और चन्दन की लकडी से व घी से जलाएँगे। महात्मा बैठ गए दूध पीने। दूध पी लिया और डकार लेते हुए खडे हो गए। इधर युवक स्वस्थ हो गया। पलग पर से उठ खडा हुआ। महात्मा को प्रणाम किया। महात्मा जाने लगे तो युवक भी साथ–साथ मे रवाना हो गया। पारिवारिक जनो ने रोकने की कोशिश की किन्तु वह रुका नही। कह दिया– मैने देख लिया इस ससार की अवस्था को। कोई किसी का सहारा नही बन सकता। सभी स्वार्थी है। मै तुम सबकी बाते सुन चुका हूँ। अब रुकूँगा नही। मै तो साधू ही बनूँगा। प्रभु का भक्त बनूँगा व साधना करूँगा। युवक महात्मा के साथ ही चला गया और साधू बन गया।

ऐसा है यह स्वार्थी ससार। इस प्रकार ससार की नाना परिणतियो को जानकर, निरन्तर होते हुए परिवर्तनो को जानकर तथा जन्म–मरण के दु खो को जानकर ससार के मोह को त्यागे व अन्तर–आत्मा मे रमण करे।



स्वयं के द्वारा स्वयं की पहचान

जे अज्झत्थ जाणइ, से वहिया जाणइ।

अर्थात् जो अपने–आपको जानता है वह बाहर को भी जानता है।

इस ससरणशल ससार मे जबसे मानव ने अपने चर्मचक्षुओ को खोला तव से बाहर ही बाहर देख रहा है, बाहर का ही ज्ञान प्राप्त कर रहा है, वाहर मे ही घूम रहा है, बाहर की सपत्ति को ही प्राप्त करना चाह रहा है, बाहर के शरीर को ही सजाना चाह रहा है किन्तु भगवान् फरमाते हे– वाहर को जानने के लिए अलग से शक्ति प्रयोग करने की जरूरत नहीं है। अपने–आपको जानने व देखने वाला स्वत ही बाहर को जानने व देखने लगता हे। भगवान् महावीर स्वामी ने सबसे पहले अपने–आपको देखा, अपने–आपको जाना। साढे बारह वर्ष तक मौन की अपने–आपको देखने व जानने के लिए।

भगवान् महावीर स्वामी को सगम देव ने भयकर कष्ट दिये। छह महीने तक लगातार भगवान के साथ रहकर निरन्तर कष्टो की बोछार करता रहा। किन्तु भगवान् ने उन भयकर कष्टो को पाते हुए भी सगम को नहीं देखा, अपितु अपनी आत्मा को ही देखा। चितन किया, सगम तो सिर्फ निमित्त मात्र है। उपादान कारण मेरा ही खराब है। अगर मेरा उपादान अच्छा हे तो अन्य की शक्ति हो ही नहीं सकती कि वह मुझे कष्ट दे सके। यह सगम तो मेरे कर्मो की निर्जरा करवाने मे सहयोगी बन रहा हे। अगर कर्म टूटेगे नहीं तो शाश्वत स्थान भी प्राप्त होगा नही। इस प्रकार भगवान ने कष्टमय क्षणो मे भी अपने–आपको ही देखा।

व्यावहारिक क्षेत्र मे भी देखिए– साइकिल, स्कूटर, कार आदि वाहन चलाने वाले को कुशलता के साथ अपने गतव्य स्थान पर पहुँचने के लिए अपना रास्ता ही देखना होता हे। अपने–आपको केन्द्रित करके, अपने रास्ते को देखकर वाहन चलाने वाला अपने लक्षित स्थान पर सुरक्षित पहुँच जाता है। अगर वाहन चलाने वाले का ध्यान अपने रास्ते पर न होकर इधर–उधर एडवरटाइज पढने मे, मकान–दुकाने देखने मे या रास्ते मे हो रहे खेल–तमाशे देखने मे चला गया तो वह अपने–आपको सुरक्षा के साथ लक्षित स्थान पर नही पहुंचा पायेगा। उसी प्रकार आप अपने–आपको देखिए, वाहर–वाहर देखने से आप अभिलषित लखित अखड सुख प्राप्त नहीं कर पाओगे। अपितु

बाहर को देखने से उत्पन्न मोह, राग–द्वेष, कषाय, आसक्ति आदि अनेक प्रकार की बाधाएँ उपस्थित हो जाएँगी जिससे मानव अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ ही नही पायेगा। जितने भी महापुरुष बने है उन्होने अपने–आपको देखा है तभी वे अपनी लक्षित दिशा मे आगे बढ पाये है।

आठवी क्लास के विद्यार्थी को अपनी ही क्लास का अध्ययन करना होगा। दसवी क्लास आदि का व कोमिक्स, उपन्यास आदि का अध्ययन करने वाला अपनी आठवीं क्लास की परीक्षा मे पास नही हो सकता। ठीक उसी प्रकार हमे अपने–आपका ही अध्ययन करना होगा। बाहर के अध्ययन से आत्मा को कुछ भी प्राप्त होने वाला नही है। अपितु दूसरो के अध्ययन से, दूसरो को देखने से ईर्ष्या आदि दुर्गुण आत्मा मे पैदा हो सकते है। और वे दुर्गुण स्वय के स्वय की ओर आने मे पूर्ण तौर से बाधक बनते है। अत स्वय को, स्वय द्वारा, स्वय की पहचान करनी है। यद्यपि हर व्यक्ति बाह्य जगत मे बाह्य पदार्थो के मध्य मे ही दिन–रात रहता है। फिर भी महापुरुष अपने–आपको पहचान ही लेते है। अपनी आत्मिक सपदा की पहचान उन्हे हो ही जाती है। किन्तु पराये की ओर झॉकने वाला व्यक्ति वीर्य से युक्त होते हुए भी कुछ भी लब्धि प्राप्त नहीं कर सकता है।

श्यामलालजी परदेश मे लगातार दस वर्षो तक धन कमाकर पुन अपने देश को लौटने के लिए यात्रा कर रहे थे। रास्ते मे एक ठग मिल गया। मीठी–मीठी बाते करते हुए पूछने लगा– आप कहॉ से आ रहे हो व कहॉ जा रहे हो? श्यामलालजी ने बताया कि मै परदेश मे दस वर्ष तक व्यापार करके पुन अपने गॉव मे जा रहा हू। ठग के मुँह मे पानी आ गया। वाह! इसके पास दस वर्ष की कमाई साथ मे है। वह सारा पैसा मै आराम से ठग लूँगा। ठग ने कहा– श्यामलालजी आपका जो हमीरपुर गॉव है, उसी गॉव से लगभग 15 कि.मी की दूरी पर मेरा एक छोटा सा आनन्द नाम का गॉव है, मै भी वही जा रहा हूँ। मेरे को बडी खुशी हो रही है कि यात्रा मे अपन दो हो गए है अत रास्ता बडे आराम से कटेगा। कहा भी है–

दिन कटे-काम से
रात कटे-नींद से
व गेलो कटे-बाते से।।

श्यामलालजी ने कहा– मैं स्वय यही चाह रहा था कि मुझे रास्ते मे कोई साथ मिल जाए तो यह लम्बी यात्रा आराम से पार हो जाए। दोनो बाते करते हुए जा रहे थे। शाम ढलने लगी। तभी ठग ने कहा–यहॉ एक धर्मशाला आ रही है। रात्रि मे यही विश्राम कर ले। उसके बाद आगे बढेगे। श्यामलालजी ने कहा– ठीक है। धर्मशाला मे विश्राम के लिए रुक गए। रात को दानो लेट गए। ठग नींद का ढोग करते हुए खर्राटे भरने लगा। श्यामलालजी अपनी

सहज नींद मे हमेशावत् सो गए। जैसे ही श्यामलालजी को नींद मे सोए हुए ठग ने देखा तो वह स्वय उठ खडा हो गया और धन खोजने लगा। श्यामलालजी के बिस्तर के नीचे, तकिये के नीचे, कुर्ते की जेब मे, सामान के थैले मे। किन्तु कहीं धन नहीं मिला। तब ठग हैरान होकर सो गया। दूसरे दिन रास्ते मे चलते हुए ठग फिर मीठी बाते करते हुए पूछने लगा– आपने व्यापार किया तो सफलता मिली या नहीं? श्यामलालजी ने कहा–भाई, व्यापार करते अवश्य हैं किन्तु पूर्वभव मे जितना पुण्य कमाकर आये हें उतना ही इस भव मे मिलता है। जो–कुछ कमाया है वह लेकर अपने पारिवारिक जनो से मिलने जा रहा हूँ। ठग फिर प्रसन्न हुआ कि लगता है, कुछ तो है ही। दूसरे दिन भी रात्रि मे उठकर बहुत खोज की किन्तु कुछ भी प्राप्त् नहीं हुआ। तब ठग ने सोचा–यह श्यामलाल कुछ अलग ही दिमाग का आदमी दिखता है। इसने मुझे धोखा देने के लिए ही प्रशसा के पुल बॉधे हें। वास्तव मे जो धन साथ लेके आएगा वो थोडे ही कहेगा कि मैं धन कमाकर साथ मे लाया हूँ। मैं कहॉ इसके चक्कर मे फॅस गया और अपने समय और शक्ति की बरबादी की। अब रास्ते मे से एकाएक जाए कहॉ? तीसरे दिन चलते–चलते श्यामलालजी का गाव ही आ गया। आग्रह कर श्यामलालजी ठग को भी अपने घर ले गए। ठाठ से भोजन कराया। फिर अपना थैला खोलकर पॉच स्वर्ण मुद्राएँ ठग को दीं। ठग देखता ही रह गया। यह क्या? रास्ते मे स्वर्ण मुद्राएॅ तो इसके पास मे थी ही, पर इसने छिपाई कहॉ? यह समझ मे नहीं आया। उस रहस्य को जानने के लिए ठग ने श्यामलालजी से कहा–सेठजी! मेरा सही परिचय मैं बताता हूँ। मैं ठग हूँ। दो दिन से लगातार रात्रि मे तलाशी ले रहा था। घटो तक खोज करने के बाद भी मुझे धन की पोटली मिली नहीं। आखिर आपने यह पोटली छिपायी कहॉ पर? यह बताने का कष्ट कीजिए।

श्यामलाल सेठ ने कहा– यह तो मुझे प्रथम दिन ही पता लग गया था कि तुम ठग और धन हडपने के लिए ही साथ मे चल रहे हो। यह पक्का है कि जो अपने–आपको नहीं देखता वह अन्य की ही तलाशी लेता है। अत रात्रि मे सोने से पहले मैं अपनी धन की पोटली तुम्हारे सामान मे रख देता था। जब तुम तलाशी लेके सो जाते और मैं सवेरे चार बजे प्रभु–भजन, माला आदि के लिए उठता तब तुम्हारे थैले से पोटली निकालकर मेरे थैले मे डाल देता था। तुम्हारे साथ रहने से एक फायदा और यह था कि तुम सारी रात तलाशी लेते रहोगे तो कोई अन्य चोर भी चोरी हेतु नहीं आ सकता। सहज मे ही मेरी सुरक्षा हो जाएगी। ठग सोचने लगा–ओ हो! मेरे थैले मे ही धन रहता और मैं उसे प्राप्त नहीं कर सका। तभी श्यामलालजी ने कहा कि तुम इस ठगी के धधे को छोड दो। पापकार्य करने से भयंकर कर्मो का बधन हो जाता है जिससे छुटकारा पाना महामुश्किल होता है। ठग श्यामलालजी की

बात को समझ गया और ठगी के धधे को छोडकर अपने–आपके स्वरूप को पाने के लिए धर्म के रास्ते पर लग गया।

इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति दूसरो की खोज–खबर लेता है। अमुक घर मे क्या हो रहा है? अमुक समाज मे क्या हो रहा है? अमुक राष्ट्र मे क्या हो रहा है? पर अपने–आपकी खोज–खबर नही लेता। आप अपने को देखिए, कही हम भी तो ठग की तरह ठगे तो नही जा रहे है? हम केवल दूसरो को ही सॅभाल रहे है। कभी पदार्थ को सॅभाल रहे है तो कभी पडोसी को सॅभाल रहे है तो कभी सास–बहू को सॅभाल रही है, तो कभी जेठानी–देवरानी को सॅभाल रही है कि उसने मेरे साथ ऐसा कर दिया, वैसा कर दिया पर अपने–आपको नही देखते। मनुष्य की दृष्टि प्राय पराङ्मुखी होती है।

ईश्वर ने सृष्टि की रचना की। उसने मनुष्य को बुद्धिमान बना दिया। बाद मे मनुष्य की तीव्र बुद्धि को देखकर वह बहुत घबराया और ब्रह्माजी के पास पहुॅचा और कहने लगा कि इस सृष्टि रचना मे मनुष्य इतना बुद्धिमान बन गया है कि वह मेरी भी खोज करने लगा है। अब मै कहॉ जाके छिपूॅ? ब्रह्माजी ने कहा–कोई चिन्ता की बात नही है। आप मानव के मन मे ही छिप जाओ। मानव की आदत है कि वह दूसरो को ही देखता है, अपने–आपको नही। दूसरो को देखने वाला अपने को ढूॅढ ही नहीं सकता। अत परमात्मा की खोज करना है या परमात्मा बनना है तो दूसरो की तरफ देखना छोडकर स्वय को देखना सीखना होगा।

स्वय को देखने वाला ही परमात्मा पद पर आसीन हो सकता है इसलिए ज्ञानीजन कहते है– भीतर मे झॉको। वहॉ परम प्रकाश है। ज्ञानी गुरुजनो के कहने से कभी कोई व्यक्ति बाहर से ऑखे बद करके भीतर झॉकने की कोशिश भी करता है तो उसे घोर अधकार ही दिखाई देता है। प्रकाश तो नाम–मात्र भी दिखाई नहीं देता। अत वह वहॉ थोडी देर भी न ठहरकर पुन बाहर आ जाता है। किन्तु व्यावहारिक क्षेत्र मे भी देखते है कि जब सयति वर्ग रात्रि के अॅधेरे मे बैठे रहते है उस समय बाहर से दर्शनार्थी आते है तो आने वाले दर्शनार्थी को तो सयति वर्ग आराम से देख लेता है पर आने वाले दर्शनार्थी को कुछ भी दिखाई नहीं देता है कि महाराज बैठे कहॉ है? महाराज बोलते है– आप थोडी–सी देर बैठेगे तो उसके बाद सब दिखाई देने लग जाएगा। वास्तव मे थोडी देर बाद महाराज की तरह ही दर्शनार्थी को भी उतनी–उतनी मात्रा मे दिखाई देने लगता है। उसी प्रकार अन्दर झॉकते ही तो अधकार दिखाई देगा, क्योकि व्यक्ति बाहर सूर्य के, लाइट के प्रकाश के आदी बने हुए है, अत अन्दर का प्रकाश हमे समझ मे ही नहीं आता ओर अधकार ही दिखाई देता है। किन्तु निरन्तर भीतर देखने की प्रेक्टिस करने पर अपने–आपके दर्शन हो जाऍगे कि हम अपने आप मे कितने सही हॅ व

कितने गलत हैं? पर मानव अपनी गलती को देखने की इच्छा करता ही कहाँ है! वह तो दूसरे की गलती देखना चाहता है। सास, अपने हाथो से कुछ भी बिगाडा हो जावे तो कुछ भी नहीं बोलती जबकि बहू के हाथ से थोडा भी बिगाड हो गया तो वह एकदम बोलने को तैयार हो जाती है। कहा भी हे–

अप्पा तो साधे नहीं और साधे चारू खूँट,
बिल्ली खेत पडोसिया, घर मे घुस गया ऊँट।

अर्थात् दूसरो के घर मे बिल्ली घुस गयी तो चिल्ला रहे है कि अरे! तुम्हारे घर मे बिल्ली घुस गई। पर अपने घर मे तो देखा ही नही कि नीचे दरवाजे मे ऊँट घुस गया है। बिल्ली तो दूध का बर्तन ही खाली करेगी किन्तु ऊँट तो सब कुछ सफाचट कर देगा।

एक भाई ने हैदराबाद की घटना सुनाई कि एक बाजार मे दो मित्रो की गिरवी की दुकान थी, सुबह–सुबह एक मित्र दुकान पर जा रहा है। सामने की दुकान पर नजर पडी कि ताला टूटा हुआ है। उसने उसी समय उसको सूचना दी कि ताले टूट गए हैं। मित्र तुरन्त पहुँचा दुकान। पर दुकान खोलकर देख ही रहे है कि उस दुकान वाले मित्र की नजर पडी कि अरे मित्र! तेरी दुकान का भी ताला टूट रहा है। उस मित्र को बडा आश्चर्य हुआ कि यह क्या? मेरी नजर तो तेरी दुकान पर ही गई। मेरी दुकान को मैंने देखा ही नही।

इसी प्रकार अनादिकाल से व्यक्ति की आदत बाहर–बाहर को देखने की बनी हुई है। टेन्सन अन्दर मे है और मिटाने के उपाय बाहर–बाहर कर रहे है। मानसिक स्वास्थ्य को ठीक करने बाहरी डॉक्टर के पास जा रहे हे। डाक्टर हर तरह की जॉच करवाने का बोलता है पर किसी जॉच मे कोई खराबी नहीं आती तो इसका कारण यही है कि आपका अन्तरग ही खराब है। उसी से बीमारी आयी है। आज व्यक्ति टेन्सनमुक्त होने के लिए बगीचो मे घूमने जा रहा है, हिल स्टेशनो पर घूमने जा रहा है। ड्रिक कर रहा हे पर उससे मानसिक स्वास्थ्य ठीक नहीं हो सकता। मानसिक स्वास्थ्य ठीक करके अपनी सोच को ठीक करना होगा और समस्याओ का समाधान करना होगा।

अन्तरग मे यदि आनद नहीं है तो बाहरी पदार्थ आनद नहीं दे सकते। बाहरी पदार्थ थोडी देर के लिए सुविधा दे सकते है पर सुख नहीं। सुख तो अन्तरग मे फूटता है। हौज मे बाहर से भरा हुआ पानी कितने दिन चल सकता हे? कुएँ मे अन्दर से सीर फूटती है। अत कुएँ से पानी निकालने पर भी कुआँ खाली नही होता। उसी प्रकार सच्चा सुख तो अन्दर से ही फूटेगा। अगर अन्तरग मे सुख है तो बाहरी पदार्थ हो या नहीं हो, हर स्थिति मे वह सुखी रहेगा।

साधक के पास मे बाह्य साधन के रूप मे दो जोडी कपडा और एक दिन

का अलग से खाने हेतु सचित नहीं होता फिर भी दिल की प्रसन्नता पूछी जाए तो आप को करोडपतियो से अधिक ही मिलेगी क्योकि वे अन्तर मे रमण करते है, अन्तर को देखते है। तिजोरी के अन्दर बहुत–सारे रत्न पडे है पर खोलोगे तभी मिलेगे। वैसे ही अन्तरग के द्वार खोलके देखिए। नारियल के ऊपर तो कचरे रूप जोटी ही दिखाई देती है किन्तु सार तत्त्व भीतर मे है। उसी प्रकार तपस्या, सयम आदि मे रुक्षता, नीरसता, दु ख दिखाई देते हैं। अत अनादिकाल से पडी बाहर देखने की आदत को पलटे और अन्दर मे झॉकने की कोशिश करे।



सुन आत्म राही - बाहर सुख नाहीं

अप्पा मे णदणं वण। (उत्तरा 20/36)

अर्थात् आत्मा ही नदन वन है।

शरीरधारी प्रत्येक आत्मा अनतकाल से निरन्तर सुख की खोज कर रही है। अखड सुख की प्राप्ति ही चैतन्य का परम चरम लक्ष्य है। पर यह चैतन्य मार्ग मे पुण्यवानी से प्राप्त हो रहे भौतिक सुखो को ही वास्तविक सुख मानकर सतुष्ट हो रहा है। ये सुख क्षणिक है। ऐसे क्षणिक सुखो मे उलझकर आत्मा ससार मे अटक रही है, भटक रही है। यह बाहरी सुख सच्चा सुख नहीं है। विषमिश्रित मिठाई के समान है। जो अल्पतम तात्कालिक सुख के साथ अपार दु ख को देने वाले है। देखते हैं—ससार मे धनवान से धनवान व्यक्ति, जिनके पास हर प्रकार की सुख—सुविधा प्राप्ति के बाह्य साधन उपलब्ध है, फिर भी वे आनद से नींद नहीं लेते। आनद से नहीं बैठते हैं, आनद से खाते—पीते भी नहीं है।

ससार मे अभावग्रस्त गरीब भी दु खी है तथा साधन—सपन्न धनवान भी दु खी है। लोगो की बाहरी दष्टि मे नजर आने वाले व्यक्तियो के सुख मे तारतम्यता नजर आती है, कोई थोडा कम साधन—सपन्न दिखाई देता है अत कम सुखी है व कोई अधिक साधन—सपन्न होने से ज्यादा सुखी है। ऐसा सासारिक लोगो की दृष्टि मे रहता है। इससे स्पष्ट सिद्ध होता हे कि ससार मे जहॉ सुख की तारतम्यता दिखाई देती है वहॉ सुख का प्रकर्ष भी अवश्य ही है। वह प्रकर्षता को प्राप्त अखड सुख अन्तरग मे ही विद्यमान है। मृग कस्तूरी की सुगध से प्रभावित होकर उसकी प्राप्ति हेतु जगल मे छलॉगे लगाता रहता है। उस सुगध की खोज करता रहता है कि आखिर यह सुगध आ कहॉ से रही है? उस सुगंधित वस्तु को प्राप्त करना चाहिये। इस हेतु वनो मे घूमता रहता है पर बेचारे उस मृग को क्या पता है कि वह सुगधमय पदार्थ मेरे भीतर मे ही स्थित है और सुगध भीतर से ही आ रही हे। ठीक उसी प्रकार वह अखड सुख अन्दर मे ही विद्यमान है किन्तु मानव उस सुख को बाहर मे ढूॅढ रहा है।

एक बुढिया रात्रि के समय घर से बाहर सडक पर लगी लाइट की रोशनी मे कुछ ढूॅढ रही थी। किसी राहगीर ने पूछा आप क्या ढूंढ रही हो

मॉजी? मॉजी बोली—मै सुई ढूँढ रही हूँ। राहगीर ने कहा— सुई कहाँ गिरी थी, आपको मालूम है क्या? मॉजी ने कहा— सुई घर के अन्दर गिरी थी। राहगीर— जब सुई घर मे गिरी तो घर मे ही देखो। बाहर कैसे मिलेगी? मॉजी— घर मे अन्धेरा बहुत है, अत बाहर प्रकाश मे ढूँढ रही हूँ। राहगीर मॉजी को समझाकर चला गया। इसी प्रकार दुनिया मे रहने वाले सुखाकाक्षी लोगो की यही दशा हो रही है। सुख अन्दर आत्मा मे है पर उसे बाहर ढूँढ रहे है। वे कभी अच्छे वस्त्रो मे सुख खोज रहे है, तो कभी आधुनिक कलाकृति से बनी कोठी मे सुख खोज रहे है, तो कभी कार, टी वी , फोन, फ्रीज, हीटर आदि आधुनिक सामग्रियो मे सुख खोज रहे है। सुख—प्राप्ति हेतु विज्ञानप्रदत्त अनेक आधुनिक सामग्रियॉ एकत्रित की जा रही है फिर भी व्यक्ति सुखी नजर नहीं आ रहा है। अपितु जितना धन, जितनी सामग्री, उतना ही व्यक्ति दु खी नजर आ रहा है। वास्तविक सुख तो अन्दर ही प्राप्त होगा। अनार के ऊपर का छिलका कडवा होता है व बेस्वाद होता है। अगर रस लेना है, तो अन्दर के दाने को खाकर रसास्वादन करना होगा तभी असली स्वाद का पता चल सकता है। वैसे ही असली सुख की प्राप्ति हेतु अन्दर मे उतरना होगा। आत्मिक आनद कैसा होता है? इस हेतु पढिये—

सेठ—सेठानी के आपस मे अतिशय प्रेम था। सेठानी को एक बार पीहर जाना हुआ। भाई—भाभी ने स्नेहवश मनुहार करके बहिन को समय—सीमा से ज्यादा रोक लिया। सेठानी के यथासमय घर पर नहीं लौटने से सेठजी आकुल—व्याकुल हो गए। समय काटना मुश्किल हो गया। दिन मे चैन नहीं व रात मे नीद नही। पूरी रात नींद नही आने से रात की चार बजे सेठजी उठे और गाडीवान को ससुराल चलने हेतु बुलाया। किन्तु सयोग से गाडी व गाडीवान मिले नही। सेठजी सेठानी की याद मे अन्य गाडी की व्यवस्था किए बिना ही लगभग पॉच बजे पैदल—पैदल ही ससुराल की ओर प्रस्थान कर गए। ससुराल लगभग 5 कोस था। सोचा पैदल ही घूमते—घूमते पहुँच जाऊँगा। अन्य के भरोसे तो दिन—पे—दिन निकलते चले जाएँगे।

सेठजी अपनी शक्ति का विचार किए बिना ही चल तो पडे किन्तु दो कोस तक चलते—चलते ही थक गये। जेठ महीने की गरमी मे मरुस्थली प्रदेश की बालू रेत के टीले वाला वन विभाग साढे सात, आठ बजते—बजते गरम होने लगा। प्यास लगने लगी। किन्तु रेगिस्तान मे दूर—दूर तक पानी का नामोनिशान नही था सिर्फ मृगतृष्णा के सिवाय और न ही विश्राम हेतु छायादार कोई वृक्ष। घबराहट तेज हो रही है। चारो और निर्जनता, नीरवता, दूर—दूर तक कोई व्यक्ति नही दिखाई दे रहा है। घबराहट से शान्ति पाने आकडे के पोधो की मामूली तिरछी छाया मे दुबककर बैठ गए और नवकार मन्त्र का जप करने लगे। थोडी ही देर मे दूर से आती हुई ऊँट गाडी पर नजर पडी और वह

गाडी उसी दिशा मे जा रही है, जिधर सेठ को जाना है। सेठजी खडे हुए अ
गाडी के पास पहुँचे। गाडी मे बँधे हुए पानी के मटके को देखते ही गिला
के द्वारा पानी पीने लगे और तुरत गाडी मे बैठ गए। गाडीवान देखता ही र
गया। किन्तु कडपबन्द कपडो मे लिपटे सेठ से कुछ पूछे तो कैसे पूछे? गा
चलने लगी। कुछ बातचीत हुई, उसी के मध्य मे पूछ लिया कि आप कौन है
कहाँ से आए हो? कहाँ जाना है? आदि। सेठजी ने अपना परिचय दे दिया
सेठजी का ससुराल सुरपुरा गाँव के नगरसेठ के यहाँ पर है, यह जानक
गाडीवान प्रसन्न हुआ और मुँह की तरफ हाथ का इशारा करते हुए कहा—मु
भी आज आपके साथ गरम—गरम गुडराब खाने को मिलेगी।

सेठजी ने कहा—अरे! मेरे ससुराल मे गुडराब क्या, अच्छे—अच्छे पकवा
खाने को मिलेगे। गाडीवान ने मिठाइयो मे सिर्फ गुडराब को ही अच्छी मिठा
समझ रखा था। अत वह बोला सेठजी, मुझे तो गुडराब ही खाना है, वो ह
मेरे को अतिप्रिय है। अगर गुडराब खिलाने का वादा करते हो तो मैं आपव
ले जाने को तैयार हूँ वरना अभी उतर जाओ। सेठजी ने बहुत समझाया वि
गुडराब से भी अधिक अच्छी मिठाई मिलेगी। भाई, मेरे ससुराल मे गुडरा
कहाँ? यह सुनते ही गाडीवान और ज्यादा भडककर बोला—नहीं, मुझे त
गुडराब ही चाहिए। पहले गुडराब खिलाने का वादा करो नही तो यहीं उत
जाओ। सेठजी हैरान हो गए। भयकर गरमी का समय और गाडीवान व
समझाएँ तो कैसे समझाएँ? वास्तव मे मूर्ख को समझाना महामुश्किल है।

एक स्थान पर दो व्यक्तियो मे भयकर लडाई हो रही थी। तू—तू, मैं—
के साथ मारामारी भी प्रारभ हो गई। सैकडो लोग देख रहे हैं पर यह कि
को पता नहीं है कि आखिर लडाई हो किसलिए रही है? एक साहसी सज्ज
भी उधर से निकल रहा था। उसने भी वह लडाई का दृश्य देखा। वह
उपस्थित लोगो से पूछा कि ये दोनो क्यो लड रहे है? सभी ने यही कहा—कु
पता नहीं। कुछ—न—कुछ तो है ही। सज्जन ने कहा—मैं एक व्यक्ति व
पकडता हूँ और दूसरे व्यक्ति को तुम लोग पकड लेना। फिर उनसे पूछते
कि आखिर बात क्या है? ऐसे तो ये लडते—लडते खून—खराबा कर देंगे। उ
लोगो ने वैसा ही किया। लडते हुए दोनो को पकड लिया। सज्जन व्यकि
ने एक से पूछा—तुम्हारे क्या बात हुई है? उसने कहा—मैंने इसको पावले
उधार मे दी थी, वह मुझे नहीं दे रहा है। बदले मे और ही कुछ दे रहा ह
दूसरे व्यक्ति से पूछा—तुम्हारे क्या हुआ? तो उसने कहा—इसने मेरे को चवन्
उधार दी थी। मैं उससे कह रहा हूँ कि वही चवन्नी ले लो। पर यह मेरे क
कहता है कि मैंने तो पावली दी थी जबकि उसने पावली मेरे को दी ही नहीं

सज्जन समझ गया कि बिना मतलब की लडाई हो रही है। उस
कहा—लाओ! तुम्हारी चवन्नी उस व्यक्ति ने चवन्नी उसके हाथ मे थमा द

और बोला–मै किसी का पैसा खाना ही नहीं चाहता। सज्जन ने कहा– बिल्कुल ठीक बात है। तुम सही कह रहे हो। उस दूसरे व्यक्ति से सज्जन ने कहा कि यह लो पावली। वह खुश हो गया और कहने लगा कि भाई, आप आ गये इसलिए आपने दिलवा दी, नही तो वह दे ही नही रहा था। सज्जन ने दोनो को समझाकर झगडा समाप्त करवाया। कहा भी है–

समझदार को सहज है, है गंवार को धोखा,
चांवला चोखा एक है, समझनवाला बोगा।

सेठजी ने भी आखिर एक तरकीब निकाली और गाडीवान से कहा–अच्छा भाई! गुडराब खिलाऊँगा। गाडीवान शान्त हो गया और गाडी शीघ्र आगे बढ गई। लगभग घटेभर मे गाडी ससुराल वाले घर के सामने जाके खडी हुई। बच्चे बाहर खेल रहे थे। फूफासा को देखते ही सूचना दी अन्दर जाकर। तुरन्त सालाजी दौडकर बाहर आये और सेठजी को बडे सम्मान के साथ अन्दर ले गये। ठडे से स्वागत किया, फिर पूछा–आप अकेले और इस समय कैसे आए? चेहरे पर भी थकान लग रही है, सो क्या बात हुई? सेठजी ने शरमाते हुए कुछ छिपाया और कुछ बता दिया। सेठजी व गाडीवान दोनो एक ही कमरे मे अपने उचित आसन पर अलग–अलग बैठे थे।

भोजन का समय होते ही दोनो के सामने पाटे लग गए व पाटे पर पकवान से सजी थालियॉ लग गई। दोनो की थाली मे रखे गये पकवान एकदम बराबर थे। फिर भी जिसने इन पकवानो को देखा ही नहीं, उसे कहॉ अच्छे लगने वाले! उसे तो गुडराब का ही इन्तजार था। किन्तु सेठ के सालाजी भी उसी कमरे मे थे। अत शर्म के मारे कुछ क्षण तो बोला नहीं। किन्तु सेठ की दृष्टि उसकी दृष्टि से मिलते ही इशारे से समझाने की कोशिश की। फिर भी सेठ की तरफ से कोई प्रत्युत्तर न पाकर अपनी ऑखो से सेठ को डराने की कोशिश की। सेठ भी थोडा डरा। मारवाड के जिमाने वाले इधर–उधर भी हो जाते है। अत सेठ ने थाली मे से मिठाई का एक ग्रास तोडकर मुॅह मे रखा और सालाजी कमरे से बाहर चले गए। इधर गाडीवान को मौका मिल गया और बोलने लगा अटसट– तुमने पहले वायदा किया ही क्यो? अगर तुम गुडराब का वायदा नहीं करते तो इतनी देर तक तो अपनी झोपडी मे जाकर आराम से छाछ–रोटी तो खा लेता। और यहॉ पर ये गोल–गोल अडे और पता नहीं ये कौन–से मिट्टी के ढेले मेरी थाली मे रख दिए। बोलते–बोलते गालिया बोलने लग गया। सेठजी घबराए कि अन्दर कोई सुनेगा तो क्या कहेगा कि क्या लडाइयॉ हो रही है? अत सेठजी ने अपने विवेक से काम लिया। खडे हुए। तरकीब से हाथ मे रसगुल्ला ले लिया। गाडीवान को और ज्यादा गुस्सा आया और तेजी से बोलने के लिए जैसे ही मुॅह खोला कि सेठजी ने मुॅह मे रसगुल्ला डाल दिया। गाडीवान को और ज्यादा क्रोध आया

तथा गालियॉ देने के लिए गुस्से से जैसे ही दॉत भीचे कि रसगुल्ले का रस मुँह मे चारो तरफ फैल गया। गाडीवान सोचने लगा कि इतना मीठा रस तो मैने कभी चखा भी नहीं। तभी उसे सेठ की बात याद आयी कि सेठजी ने मेरे को पहले ही कहा था कि ससुराल मे गुडराब से भी ज्यादा अच्छे–अच्छे पकवान मिलेगे सो वे ही दिखते है। जो मुँह क्रोध मे गाली देने के लिए भींचा जा रहा था वह वैसा ही बन्द रह गया और चुपचाप आराम से नीचे बैठ गया। उसे बडा स्वाद आ रहा है। इसी प्रकार अन्य मिठाइयो का स्वाद भी आने लगा। देखते ही देखते थाली साफ हो गई। उसी समय सेठजी के सालेजी आए। देखा गाडीवान की थाली खाली है, तो वैसी की वैसी दूसरी थाली लगा दी। इस प्रकार 3–4 थालियॉ साफ कर दीं। जब गले तक पेट भर गया तब हाथ धोकर खडा हुआ। अब तो उसके चेहरे की रौनक ही बदल गई थी। जिस चेहरे पर क्रोध था उसी पे मन्द–मन्द मुस्कराहट है। जो लकडी हाथ मे आगे थी, वह अब बगल मे चली गई। हाथ जोडकर सेठजी के पास आया और धीरे–से कहने लगा–सेठजी, अब आपको कभी पैदल आने की जरूरत नहीं है। जब कभी आना हो तो मुझे दो दिन पहले ही कह देना। यह सेवक व गाडी आपके ही है। आपकी सेवा मे सदा ही हाजिर रहूँगा।

जिस प्रकार जब तक रसगुल्ले का स्वाद नहीं आया तब तक वह गुडराब–गुडराब कर रहा था, वैसे ही जब तक आत्मिक सुख का आनद नहीं आता है तब तक मानव भौतिक आनद को ही अर्जित करने की कोशिश करता है। जिस दिन आत्मा के अपूर्व सुख का रस आ जाएगा उस दिन फिर भौतिकता से मन स्वत ही हट जाएगा।

भौतिक सामग्रियो मे सुख होता तो भगवान महावीर स्वामी राज्य, ऋद्धि, पत्नी, पुत्री आदि परिवार का त्याग करके दीक्षित होते ही नहीं। उन्हे तो गर्भ से ही अवधिज्ञान जैसा विशेष ज्ञान होता हे। सभी बाह्य सामग्रियॉ उन्हे दिखाई दे रही थीं। राज्य वैभव भी उन्हे प्राप्त था। किन्तु उन्होने निर्मल मति–श्रुत ज्ञान द्वारा जान लिया कि ये सामग्रियॉ वास्तविक आनन्द देने वाली नही है। वास्तविक आनन्द तो आत्मिक आनन्द है जिसे प्राप्त करके बाहर से हटकर भीतर मे उतरना होगा। बाहर की दुनिया मे भ्रमण करने वालो को आन्तरिक दुनिया का आनन्द मालूम नहीं होता हे। जेसे ग्रामीण व्यक्ति को शहर मे निरन्तर काम मे आने वाली आधुनिक सामग्रियो का पता नहीं होता है–जेसे लिफ्ट, बोट, मोबाइल फोन आदि।

एक बार एक वृद्ध ग्रामीण व्यक्ति किसी काम से दिल्ली महानगर मे गया। उसने एक स्थान पर लिफ्ट देखी। लिफ्ट मे एक बुढिया ने प्रवेश किया। देखते ही देखते लिफ्ट बटन दबाते ही ऊपर चली गयी। कुछ क्षणो बाद जैसे ही लिफ्ट पुन नीचे उतरी तो देखा एक युवा महिला उस लिफ्ट के

कमरे से बाहर आ रही है। उस व्यक्ति को यह देखकर बडा आश्चर्य हुआ। ओ–हो! यह बहुत बडा जादुई काम है। क्या ही अच्छा होता कि मै मेरी बुढिया को भी साथ ले आता तो वह भी वृद्ध से जवान हो जाती! यह है शहरी वस्तुओ को नही जानने का प्रतिफल। ठीक उसी प्रकार बाहर मे ही रमण करने वाले भौतिकवादियो को आत्मिक आनद क्या वस्तु होती है, यह समझ मे नही आ सकता। उसे तो आध्यात्मिक साधना मे निरन्तर निमज्जित रहने वाले महापुरुष ही जान सकते है। वे ही उस आत्मिक आनद का स्वाद ले सकते है।

बाहरी सुख तो क्षणिक है, वस्तु की अपेक्षा से प्राप्त हुए सुख हैं जबकि आत्मिक सुख अखड है। वह खडित नही हो सकता। जैसे हौज मे पानी ऊपर से नल द्वारा भरा जाता है, जो पुन खाली भी शीघ्र ही हो जाता है। किन्तु कुएँ के अन्दर से सीर निकलती है अत कुएँ का पानी निकालने पर भी समाप्त नही होता। ठीक उसी प्रकार बाहरी सामग्रियो से प्राप्त होने वाला आनद सामग्री के हटते ही समाप्त हो जाता है। जबकि अन्दर से फूटने वाला आनन्द अखडित होता है। वह एक बार प्राप्त होने पर पुन समाप्त नही होता तथा आत्मिक आनद अपूर्व होता है। उसके लिए बाहर की सामग्री की कोई अपेक्षा नहीं रहती।

अत हमे भी बाहरी क्षणिक आनद से हटकर अखड आत्मिक आनद को प्राप्त करना है। इस हेतु बाहर से निवृत्ति, भीतर मे प्रवृत्ति अवश्य करे।



स्वत्व का बोध

कोऽह

अर्थात् मै कौन हूँ।

ससारगत सभी शरीरधारी जीवो के आत्मा और शरीर अनत–अनत काल से साथ–साथ मे चल रहे है। जब तक आत्म–प्रदेशो के साथ कर्मो का लेप लगा हुआ है तब तक शरीर रहता ही है। कर्म और आत्मा आपस मे दूध व पानी की तरह एकीभू होकर रहते है। अत जीव निरन्तर कर्मो के साथ रहकर अपने–आपके स्वरूप को ही भूल गया है। अपनी स्वय ही पहचान नहीं कर पा रहा है कि मै कौन हूँ? मेरा असली रूप क्या है? शरीरधारी जीव अपने–आपको कभी कुत्ता, कभी घोडा, कभी गधा, कभी सर्प, कभी विच्छू, कभी मनुष्य, कभी नारकी, कभी देव आदि मानता आ रहा है।

आज भी किसी व्यक्ति से पूछा जाता है कि आप कौन है? तो वह कहेगा–मेरा नाम अमुक है, मै अमुक जाति का हूँ, अमुक गॉव का रहनेवाला हूँ, मेरा अमुक व्यवसाय है आदि। पर वह यह नहीं बताता कि मै चेतन्य आत्मा हूँ। वह मे और मेरे मे भेद ही नही समझता कि मे और मेरा– ये दोनो अलग है या एक ही है। अगर शरीर ही आत्मा होता तो यह मेरा शरीर हे, यह मेरा हाथ है, यह मेरा पैर हे ऐसे शब्द कैसे उच्चारित होते? इससे स्पष्ट होता हे कि मेरा कहलाने वाला शरीर भिन्न है तथा मे वस्तु–विशेष भी भिन्न हे। शरीर तो मृत्यु होने पर भी तथावत् पडा रहता है। किन्तु पूर्व की तरह सक्रिय नही होता, निष्क्रिय ही पडा रहता है। क्योकि इस शरीर मे "मे" कहलाने वाला तत्त्व नहीं रहा है। जब तक "मैं" तत्त्व शरीर मे रहता हे तव तक शरीर मे नाडीतत्र गतिशील रहता है तथा ससारी आत्मा मेरा–मेरा करता रहता ह। जेसे यह मेरी माता है, ये मेरे भाई–वन्धु है, यह मेरा भक्त है, यह मेरा महल है, यह मेरी सम्पत्ति है। इस प्रकार यह मेरेपन का चक्कर 'म' तत्त्व का पहचानने मे अवरोधक रूप है तथा मैं गोरा हूँ, मे काला हूँ, में धनवान हूँ, में निर्धन हूँ, मे बालक हूँ, मे युवा हूँ, मे वृद्ध हूँ आदि भाव शुद्ध तत्त्व आत्मा पर थोपना व्यक्ति के अज्ञान को वता रहा हे। मे रूप आत्मा न वर्ण गंध रस स्पर्श कुछ भी नही होते तथा आत्मा का स्वरूप सदा–सर्वदा एक समान ही रहता हे। अत अन्य स्वरूप को आत्मा पर थोपना कदापि सही नहीं है।

आत्मा जड पदार्थ के साथ रहकर अपने स्वरूप को भूल गया है। वास्तव मे आत्मा न गोरा है, न काला है, न धनवान है, न निर्धन है, न बालक है, न युवा है, न वृद्ध है, न स्वामी है, न सेवक है। फिर भी ऐसे भावो के पैदा होने का कारण है कि वह चौबीस घटे उसी घेराव के मध्य मे रहता है। अत वह उन्ही को सब–कुछ मानने लगता है। शुद्ध, बुद्ध, निरजन, निराकार आत्मा के प्रति ऐसे विचार बनाना पागलपन की अवस्था से कम नही है।

एक गडरिया सिह के नवजात बच्चे को जगल से उठा लाया और अपने पास मे रही हुई भेड–बकरियो के साथ छोड दिया। वह उन्ही के साथ निरन्तर रहने से अपने–आपको ही भेड–बकरी समझने लगा। एक बार जगल मे सिह के द्वारा की गई गर्जना की आवाज सुनी तो वह भी उसकी तरह ही आवाज करने लगा। भेड–बकरियॉ उस आवाज से तुरन्त भागती हुई नजर आयी। सिह का बच्चा अपने सिहत्व को समझ गया और छलॉग लगाता हुआ जगल मे प्रस्थान कर गया।

इसी प्रकार आत्मा भी अनादिकाल से जड पुद्‌गलो के सग मे ही रहा है पर जब देखो तब उन्ही का ही सबध उसके साथ चल रहा है। जैसे सवेरे उठते ही बेड–टी के साथ सबध जोडता है, उसके बाद टूथपेस्ट, साबुन, पानी, कपडे, तेल, इत्र, कघी आदि के साथ सबध जोडता है। उसके बाद दूध, नाश्ता, भोजन, टी वी व हजारो व्यक्तियो के साथ सबध जोडता है और उन्हीं बाहरी सपर्को मे फॅसता हुआ चला जाता है। अपने आपको तो बिलकुल भी याद ही नही करता है। ऐसे बाहरी वातावरण मे यह सोच ही नही पाता कि "मै" चेतन्य आत्मा हूॅ।

आप सोचते है, मेरी ऑख देख रही है, मेरी नाक सूॅघ रही है, मेरी जिह्वा चख रही है, मेरे कान सुन रहे है आदि। किन्तु यह सत्य नहीं है। ऑख, नाक, कान आदि तो मात्र खिडकियॉ है। उन खिडकियो मे से देखने वाला आत्मा है। जिस प्रकार कमरे की खिडकियॉ है। उन खिडकियो से देखने वाला देवदत्त खिडकी से अलग होता है वैसे ही इन्द्रियो की खिडकियो से देखने वाला आत्मा अपने अस्तित्व को शरीर से अलग बनाए हुए है। ऑख है तभी आत्मा देखती है, ऐसा नही होता। आत्मा है, इसलिए ऑख देखती हे। ऑख आत्मा के बिना नहीं देख सकती। किन्तु आत्मा ऑख के होने या नहीं होने पर भी देख सकता है। घडी चलती है किन्तु उसे चलाने वाला चैतन्य ही हे। घडी जड है– स्वय सक्रिय नहीं है। अत वह यह नहीं जानती कि अभी कितने बजे है जबकि चैतन्य को यह बोध रहता है कि मैं अमुक गति कर रहा हूॅ, अमुक विषय मे सोच रहा हूॅ, अमुक बात बोल रहा हूॅ। अत स्पष्ट हे कि आत्मा जड तत्त्व से परे कोई महत्त्वपूर्ण तत्त्व अवश्य है। उसे कई महापुरुषो ने पहचाना भी है।

मिथिला नगरी के सम्राट नमिराज ने जब दीक्षा ग्रहण की थी तब समग्र जनता रोने लग गई थी। मिथिला रुदनपूरित आवाज से आपूरित हो गई थी। तब इन्द्र ब्राह्मण के परिवेश मे नमिराज को समझाने पहुँचा और अनेक प्रश्न किए। उनमे से कुछ प्रश्नो का सकलन उत्तराध्ययन सूत्र मे है। उनमे एक प्रश्न यह भी था।

एस अग्गी य वाऊअ एय डज्झई मदिरं,
भयवं अतेउर तेण, कीस ण णावपेक्खह।।(उ 9)

अर्थात् हे भगवन्, वायु से प्रेरित यह अग्नि प्रचण्ड रूप धारण कर आपके महलो को जला रही है और इसमे आपका अन्त पुर जल रहा हे। इनकी रक्षा करना आपका कर्तव्य है फिर आप उस ओर देखते क्यो नही हो? इन्द्र के द्वारा ऐसा कहने पर नमि राजर्षि ने उत्तर दिया–

सुहं वसामो जीवामो, जेसि मो नत्थि किचण,
मिहिलाए डज्झमाणीए, न मे डज्झइ किचणं।। (उत 9–14)

अर्थात् हे देवानुप्रिय! मै अपने–आप मे सुखपूर्वक जी रहा हूँ। इस ससार मे जो कुछ भी है, मेरा कुछ भी नहीं है। ऐसी स्थिति मे अगर मिथिला जल रही है तो भी मेरा कुछ भी नहीं जल रहा है।

नमि राजर्षि ने कितना महत्त्वपूर्ण व सुन्दर उत्तर दिया है। उन्होने अपनी आत्मा को पहचान लिया था। उनके कहने का तात्पर्य था कि–वह चैतन्य आत्मा जलाने से जलता नहीं है, काटने से कटता नहीं है, मारने से मरता नहीं है। शरीर, जल, कट, मर सकता है पर चैतन्य आत्मा अखड है। वह अग्नि मेरी आत्मा तक तो पहुँच ही नहीं सकती। अत मै तो सुखमय स्थिति मे विद्यमान हूँ तथा आत्मा अकेला है, अकेला ही जन्म धारण करता हे और अकेला ही मरता है। वस्तुत अन्त पुर वगैरह मेरा कुछ भी नहीं है और मेरा उनमे ममत्व भाव रहा हुआ है। इसलिए मिथिला के जलने पर मेरा कुछ भी नहीं जल रहा है। वास्तव मे जिनके मन मे जड पदार्थो के प्रति असक्ति नहीं होती तथा जिन्होने आत्म तत्त्व को अच्छी तरह से समझ लिया है। वे सासारिक जड जगत के सबधो मे उलझते नहीं हैं। ससार की समस्त वस्तुओ को अपने से भिन्न समझते हैं। समस्त रिश्तो के साथ मेरेपन की भावना नहीं रखते है। उनके पास कभी दु ख नहीं आ सकता। समस्त मिथिला नगरी के जलने पर भी नमि राजर्षि अपने–आप मे ही रमण करते हुए सुखमय स्थिति मे ही स्थित रहे। आज तो एक रुपये का भी नुकसान हो जाए तो भी व्यक्ति आग–बबूला हो उठता है। अगर अपना मकान जलने की बात अन्य शहर मे बैठे हुए दूर से ही सुन लेवे तो हार्ट–अटेक होने मे देर न लगे। क्योंकि उसने आत्मा को अभी पहचाना नहीं है।

आत्मा के स्वरूप को पहचानने वाले अनेक महापुरुषो ने अपने शरीर पर

आने वाले भयकर उपसर्गो को हॅसते–हॅसते सहन कर लिया था। गजसुकुमाल ने अपने सिर पर रखे हुए जलते अगारो के सयोग से होने वाली वेदना को भी आराम से सहन कर लिया। खदक मुनि की चमडी उतारे जाने पर भी वे जरा भी दु खित नही हुए।

मेतार्य युनि के सिर पर गीला चमडा बॉधा गया। मरणान्तक कष्ट उपस्थित होने पर भी वे जरा भी दु खी नही हुए। परदेशी राजा ने महारानी के द्वारा जहर दिए जाने पर भी मन को द्वेष भाव मे नहीं जाने दिया। क्योकि महापुरुषो ने आत्मा की पहचान अच्छी तरह से कर ली थी कि आत्मा अलग है और शरीर अलग है। शरीर नष्ट हो सकता है, आत्मा नही। अत उन महापुरुषो ने राग–द्वेष से दूर रहकर आत्म कल्याण को साध लिया था।

आत्मा को पहचानना कठिन भी नही है। जैसे सूर्य की रोशनी मे सूर्य स्वत ही पहचान लिया जाता है। आत्मा तो सूर्य से भी अनत गुणा प्रकाशमान है। सारा जगत उसमे प्रकाशित हो रहा है। अत टेलीविजन, कम्प्यूटर, रोबोट, मोबाइल फोन आदि आधुनिक वस्तुओ को देखकर अनुमान होता है कि इनका कोई निर्माता अवश्य है। ठीक उसी प्रकार शरीर की सक्रियता को देखकर स्वत मालूम होता है कि शरीर के अन्दर कोई आत्मा नामक तत्त्व अवश्य है।

हे शरीरधारी जीवात्मा। तू अपने अन्दर रही हुई अनत–अनत प्रकाशमान आत्मा को पहचान। वह प्रकाश न सूर्य मे है और न चन्द्रमा मे है। वह प्रकाश तो तुम्हारी आत्मा मे ही है।

उस प्रकाशमयी आत्मा को नहीं समझा तो आत्मा मिथ्यात्व मे भी जा सकती है। अत उस प्रकाशमयी आत्मा की पहचान करके निरन्तर आगे बढेगे तो आत्मा के दर्शन भी अवश्य ही हो जाऍगे।



एक ऐसा पाश - जिससे सर्वनाश

लोहो सव्व विणासणो (दशवै.....)

अर्थात् लोभ सर्वगुणो का विनाशक है।

प्रत्येक भव्य आत्मा मे परमात्मा बनने की शक्ति है और परमात्म मार्ग मे बढने के प्रयास भी करती है। पर कुछ बाधक तत्त्व ऐसे है जो उसे अपने लक्ष्यानुसार आगे बढने नहीं देते। उन बाधक तत्त्वो मे लोभ, कषाय प्रमुख रूप से बाधक है। यह लोभ ग्यारहवे गुणस्थान तक बढी हुई आत्मा को वापस नीचे खींच ले आता है और आगे बढने के लिए किए गए सारे पुरुषार्थ को धूल-धूसरित कर देता है। वह आत्मा बीच मे सॅभल जाये तो पुन ऊर्ध्वगमन भी हो सकता है किन्तु कभी-कभी तो अध पतन रुकता ही नहीं है ओर मिथ्यात्व की दशा तक पहुॅच जाता है और नरक गति तक मे भी प्रवेश कर लेती है।

यह अध पतन कराने वाला लोभ अग्नि के समान है। अग्नि मे ज्यो-ज्यो ईधन डाला जाता हे त्यो-त्यो अग्नि बढती चली जाती है। वैसे ही लोभ को शान्त करने जैसे-जैसे जड वस्तु का सचय किया जाता है वैसे-वैसे लोभ बढता चला जाता है। एक पाश्चात्य विचारक जुवेनल ने कहा हे-

Avarice increases with the increasing the Tile of gold

अर्थात् सोने का ढेर बढने के साथ-साथ लोभ भी बढता जाता है।

हृदय के अन्तरग कोने मे निरन्तर प्रज्वलित होने वाली अग्नि धन का ईधन डालने से कभी भी शान्त नहीं होती। उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा है-

कसिणं पिजो इमं लोयं, पडिपुन्नं दलेज्ज एक्कस्स,
तेणावि से न संतुस्से, दुप्पूरए इमे आया।।

अर्थात् एक ही मनुष्य को समग्र धन-धान्य से परिपूर्ण यह समस्त लोक दे दिया जाए तो उससे भी वह सन्तुष्ट नहीं हो सकता। इस प्रकार यह आत्मा अतृप्त ही रहती है।

मनुष्य को यदि चार कोस के लम्बे-चोडे दो कुएॅ स्वर्ण, हीरे मोती से भरे हुए भी मिल जाएँ तो भी तीसरे कुएँ की इच्छा करेगा। मनुष्य के इस अतृप्त उदर को कब्र की मिट्टी के सिवाय कोई भी भरने मे समर्थ नहीं ह। एक बार पत्नी ने अपने पति से कहा कि- मैंने अखबार मे पढा ह कि एक पति ने अपनी

पत्नी को साईकिल के बदले मे बेच दिया। अजी! आप तो ऐसा नही करेगे? तब जवाब मे पति बोला—मै इतना मूर्ख नही हूँ। मै तो अगर सौदा करूँगा तो टाटा सुमो गाडी का करूँगा। कितना लोभ है मानव मे! हर व्यक्ति जानता है कि लोभ का कभी अत नही आता। लोभ सदा व्यक्ति को दु खी ही बनाता है। फिर भी लोभ को छोड नहीं पाता।

लोभाविष्ट व्यक्ति, धनोपार्जन का कोई भी तरीका क्यो न हो, उसे अपनाने मे सकोच नही करता। लोभी मनुष्य माता—पिता, पुत्र, भाई, स्वामी और मित्र के साथ भी विद्रोह कर बैठता है। कोर्ट मे खडा होकर भी झूठी गवाही देता है। पॉच—दस रुपयो के लिए देव, गुरु, धर्म की सौगन्ध खाते देर नहीं करता। गरीबो की धरोहर दबा लेता है, चौगुना ब्याज लेता है। अवसर आने पर ब्रह्मचर्य का खडन तक कर देता है। अपनी 16 वर्ष की बेटी को साठ वर्ष के बूढे के हाथ बेच देता है। दुराचारियो का पोषण करता है, जैन होकर के मास एक्सपोर्ट करता है, मुर्गियॉ पालने का धन्धा करता है, पन्द्रह कर्मादान सबधी व्यापार करता है, लडाई—झगडा, मारपीट, भला—बुरा आदि सब—कुछ कर लेता है। लोगो की खुशामद करता फिरता है। यहॉ तक कि धर्मादे को भी खाने से नहीं चूकता। इस प्रकार दुनिया का हर नीच से नीच काम भी कर लेता है। और तो और, बहने कुछ पतासो के लोभ मे जवॉई को गीतो मे गालियॉ गाने को तैयार हो जाती है। कैसी दयनीय दशा है लोभी की! कोणिक ने सत्ता के लोभ मे आकर ही तो अपने पिता श्रेणिक को भी जेल के शिकजे मे डलवा दिया।

औरगजेब ने राज्य—लोभ के कारण अपने चारो भाइयो को बुरी तरह से मरवा डाला और अपने पिता शाहजहा को कैद मे डलवा दिया तथा विष देकर मरवाने का प्लान बनाता रहा। धन को ही मुक्ति मार्ग समझने वाला व्यक्ति अति कष्टसाध्य मार्ग मे भी प्रवेश कर जाता है। अगाध समुद्र मे गोते लगाता रहता है। दुर्गम जगलो मे प्रवेश कर जाता है। परिवार को छोड परदेशो मे रहता है। सुख से खाना—पीना छोडकर तनतोड परिश्रम करता है। धनिको की चमचागीरी करता है। रात्रि को आराम से नींद नहीं ले सकता। बस, इच्छित वस्तु को पाने के विषय मे ही सोचता रहता है। पूछताछ भी उसी विषय मे करता रहता है और प्रवृत्ति भी उसी दिशा मे करता है। इस प्रकार जड पदार्थ की प्राप्ति हेतु खून—पसीना एक कर देता है। पर यह लोभ दु खदायी है। जीवन को भी खतरे मे डाल देने वाला है।

एक बार एक गरीब बनिया कमाने के लिए परदेश जाने हेतु घर से रवाना हुआ। रास्ते मे चलते हुए एक मन्दिर आया। वह उस मन्दिर मे गया। दर्शन करते हुए कामना की कि मैं परदेश धन कमाने जा रहा हूँ। अगर कमाई अच्छी हुई तो वापस आते वक्त एक नारियल चढा दूँगा। ऐसा बोलकर परदेश

चला गया। सयोग की बात रही कि धन अच्छा कमाया। उस जमाने मे लगभग दस हजार रुपये कमाकर लाया। परदेश से पुन लोटकर अपने गॉव की तरफ आ रहा हे। रास्ते मे वही मन्दिर आया। उस मन्दिर को देखते ही उसे पूर्व मे की गई प्रतिज्ञा याद आ गई। किन्तु नारियल पास मे था नहीं। अत नारियल लेने पास वाले गॉव मे गया। वहॉ एक नारियल की दुकान पर गया और पूछा नारियल कितने पैसे का है? तो दुकानदार ने बोला कि चार पैसे का। बनिया बोला—तीन पैसे मे दे दो। दुकानदार—नहीं, मेरे पास तो श्रेष्ठ श्रीफल है। अत चार पैसे से बिलकुल कम नहीं लूॅगा। अगर तुम्हे तीन पेसे का श्रीफल चाहिए तो पास वाली दुकान पर चले जाओ। बनिया पास वाली दुकान पर गया और बोला कि नारियल कितने पैसे का हे? दूसरा दुकानदार— तीन पेसे का। बनिया—दो पेसे मे दे दो। दुकानदार—दो पैसे मे नारियल चाहिए तो अगली दुकान पर जाओ। बनिया तीसरी दुकान पर गया और पूछा कि नारियल कितने पैसे का है? दुकानदार—दो पैसे का। बनिया— एक पेसे मे दे दो। दुकानदार—एक पेसे मे कोई नारियल आता हे? इससे खराब नारियल और कैसा होगा? तुम गॉव के बाहर जाओ। वहॉ पर बहुत से नारियल के वृक्ष हैं अत नारियल तोड के ले आना तुम्हे बिना पेसे ही नारियल मिल जायेगा। वह बनिया बहुत खुश हुआ ओर पहुॅचा गॉव से बाहर दक्षिण दिशा मे। नारियल के बहुत—सारे वृक्ष देखकर बहुत प्रसन्न हुआ पर वृक्ष बहुत लम्बे—लम्बे थे। एक वृक्ष कुछ झुका हुआ था। अत उस पर चढ गया। नारियल को हाथ से पकडकर तोडने लगा किन्तु टूट नही रहा हे।

नारियल का तना बहुत मजबूत होता हे। अत एक हाथ से नारियल टूटने का तो कोई प्रश्न ही नही था। उसे तो चाकू से काटना पडता हे। पर चाकू पास मे था नही। बनिए ने अपने हाथ नारियल पर लगा दिए। और पूरी ताकत से नारियल को खींचने लगा। नारियल को खींचते हुए उसके पर खिसक गए और वह नारियल पकडकर लटक गया। उसने नीचे कूदने के लिए देखा तो नीचे कुआ था। वह बनिया बडा परेशान हुआ और जोर—जोर से आवाजे करने लगा कि कोई मुझे बचाओ। तभी एक व्यक्ति ऊॅट पर बैठा हुआ उधर से निकला। उसने उसकी आवाज को सुना तो वह पास मे गया किन्तु कहने लगा— में तुम्हे केसे बचा सकता हू क्योंकि नीचे कुऑ है। बनिया कहने लगा कि मै परदेश से आया हूॅ। मेरे पास दस हजार रुपय हें। अगर तू मेरे को बचा लेगा तो मे तुम्हे पॉच हजार रुपये दे दूॅगा। ऊॅट वाल के मुॅह मे पानी आ गया ओर वह बचाने हेतु तेयारी करने लगा। ऊॅट को कुए के पास बांध दिया। उस पर खडा होकर बनिए की टॉगो को पकडता ह। उसी समय वह ऊॅट वहॉ से जरा—सा खिसक गया। खिसकते ही ऊॅट वाल के पर ऊॅट पर से खिसक गए और बनिए के पेर पकडकर लटक गये। ऊॅट वाला बनिये

से कहने लगा—रे! तेरे चक्कर मे मै आ गया पर अब तू नारियल को कड़ा पकडके रखना, नहीं तो दोनो जने कुएँ मे गिर जाएँगे। बनिया—मेरे हाथ टूटे जा रहे है, नीचे से तुम खीच रहे हो और ऊपर से हाथ खींच रहे है। मेरी तो मौत आ गई है। ऊँटवाला—अरे भाई! मै तो अभी दो दिन पहले ही शादी करके आया हूँ। अत मेरे दहेज के दस हजार रुपये मेरे पास है, मै वे सारे रुपये दे दूँगा। पर तुम अभी इस समय हिम्मत रखना। बनिए के मुँह मे पानी आ गया। वाह! दस हजार मेरे पास व दस हजार यह देगा। इस प्रकार बीस हजार रुपये हो जाएँगे। मै गाँव के अन्दर सबसे ज्यादा धनी कहलाऊँगा। बहुत खुश हो रहा है और आगे कल्पना कर रहा है कि—अब मै शीघ्र ही एक तिजोरी भी खरीद कर लाऊँगा। वह तिजोरी इतनी बडी होगी। कल्पनाओ के अन्दर उसे अपना भान नही रहा और हाथ चौडे कर दिए कि इतनी बडी तिजोरी लाऊँगा और धडाम से दोनो कुएँ मे गिर गए।

कोणिक ने चक्रवर्ती बनने के लोभ से व सुभूम चक्रवर्ती ने सातवां खड जीतने के लोभ से अपने प्राण तक खो दिए। इस प्रकार जब तक यह लोभ पिशाच पीछे लगा रहता है तब तक आधिभौतिक, अधिदैविक व आध्यात्मिक दु खो से निरन्तर दु खी बना रहता है। नीतिकार ने कहा भी है—

अर्थानामर्जने दुःखं, अर्जितानां च रक्षणे,
आये दुःखं, व्यर्थ दुःखं, धिगर्था कष्टसश्रया।।

अर्थात् धन के अर्जन मे भी दु ख है, फिर उपार्जित किए हुए धन की रक्षा करने मे भी दु ख है। धन की आय मे भी दु ख है व व्यय मे भी दु ख है। धिक्कार है ऐसे कष्टो के आश्रयभूत अर्थ—धन को।

लोभी व्यक्ति शर्म भी छोड देता है। एक बार एक घर मे मेहमान आये। घर की महिला ने कहा कि आप संकोच मत करना। ठडा चाहिए तो ठडा व गरम चाहिए तो गरम, जैसा भी चाहिए, बोल दीजिए। मेहमान ने कहा—इसमे सकोच की क्या बात है? जब तक गरम तैयार हो तब तक ठडा दे दीजिये।

बडे—बडे विद्वान, योगी, महात्मा, सत—महापुरुष भी लोभ के चक्कर मे फँस जाते है और अपनी—अपनी आत्मिक साधना को भूलकर रुपये—पैसे की बातो मे लग जाते है और साधु जीवन के लक्ष्य को विस्मृत कर देते है। इस प्रकार लोभ को पाप का बाप बताने वाले श्रमण भी इस चक्कर मे फँस जावे तो फिर तो दुनियावी लोगो का लोभ से बच पाना अति मुश्किल होगा।

धनवान घरो के बच्चो को तो प्रारभ से ही जन्मघूटी के साथ ही धन की घूटी भी पीने को मिलती है। वे सदा धन एकत्रित करने मे ही लगे रहते हैं। उन्हे धर्मरुचि होती नहीं है। वे सोचते हैं, धर्म तो चाहे जब कर सकते है, वह तो हमारे पास है ही किन्तु धन कब—कब मिलेगा? किन्तु वे यह नहीं जानते कि धर्म से अलग होने पर धन मिल ही नहीं सकता, धर्म से ही धन की प्राप्ति

होती है। पुण्य खत्म होने पर करोडपति भी रोडपति बन जाता है। बिना धर्म के धन आदमी को एक इच भी आगे नहीं बढने देता। लोभी व्यक्ति दस मिनिट बैठकर भी परमात्मा को याद नहीं कर सकता है। साधुओ के दर्शन तक करने नहीं जा सकता क्योकि लोभी जिसे अमृत समझता है, त्यागी उसे कचरा समझता है। इस प्रकार यह लोभ हर क्षेत्र मे गति को अवरुद्ध करने वाला होता है। दशवैकालिक सूत्र मे कहा है–

कोहो पीइ पणासेइ, माणो विणय नासणो,
माया मित्ताणि नासेई, लोहो सव्व विणासणो।

अर्थात् क्रोध, प्रीति का नाश करता है। मान विनय का नाश करता है, माया मित्रता का नाश करती है और लोभ सभी सद्गुणो का विनाश करता है। इस प्रकार क्रोध, मान, माया, कषाय तो एक–एक गुण का ही नाश करते है पर लोभ कषाय जीवन के सभी गुणो का नाश कर देने वाला होता है। इस प्रकार लोभ ही सारे पापो का माता–पिता है। यानी सभी पापो की आधारशिला है।

अत आत्मिक विकास की चाह रखने वाले व इस भव–परभव मे सुख के अभिलाषी व्यक्ति को लोभ कषाय से सदेव बचते रहना चाहिए।



चाहत से आहत

इच्छा हु आगास समा अणन्तिया

अर्थात् जैसे आकाश का अन्त नही है उसी प्रकार इच्छा का भी अन्त नहीं है।

जीवन सीमित है। इच्छाएँ, कामनाएँ, आकाक्षाएँ, असीमित है, अनन्त है, असीम है जैसे आकाश अनन्त है। लोक से बाहर अलोक मे भी आकाश है। आकाश का कोई ओर–छोर नही है। अगर आकाश को कोई नापना चाहे तो उसके लिए यह कार्य असभव है। समुद्र के किनारे बैठकर कोई समुद्र की लहरे गिनना चाहे तो यह कार्य भी उसके लिए असभव ही है। ठीक उसी प्रकार से कोई चाहे कि मैने इस भूमडल पर जन्म लिया है तो मेरी सारी इच्छाएँ पूर्ण होनी चाहिएँ। मेरे प्यारे बेटे को मैने जन्म दिया है तो मेरे द्वारा मेरे पुत्र की सारी इच्छाएँ पूर्ण होनी ही चाहिएँ। इच्छापूर्ति के लिए कोशिश करता है किन्तु आज तक कोई उदाहरण ऐसा नही मिला कि जिसकी इच्छा पूरी हो गई हो और उसके आगे कोई इच्छा खडी ही नही हुई हो। एक इच्छा की पूर्ति नहीं होती कि अन्य अनेको इच्छाएँ और खडी हो जाती है। इच्छा पूर्ति से इच्छा अपूर्ति का पलडा हमेशा भारी रहता है।

बच्चा जन्म लेता है तब उसकी इच्छा माँ का दूध पीने तक ही सीमित रहती है। पर जैसे ही थोडा बडा होता है तो कुछ खाने–पीने की व खिलोने की इच्छा होती है। फिर थोडा बडा होने पर अच्छी ड्रेसे, अच्छे खिलौने आदि को ग्रहण करने की इच्छा पैदा होती है। धीरे–धीरे आगे बढते हुए पत्नी, पुत्र, पौत्र, महल, आधुनिक साधन, धनवृद्धि आदि की इच्छाएँ आगे से आगे जाग्रत होती रहती है। बच्चा छोटा था उस समय उसके शरीर पर कुछ नहीं था। पारिवारिक जन उस बच्चे को नजर न लग जाए इस हेतु एक काला डोरा हाथ मे, गले मे व कमर मे बाध देते हैं। किन्तु बडा होते ही हाथो मे ब्रासलेट, गले मे चैन आदि आभूषण पहनने की इच्छाएँ जाग्रत हो जाती है। इन बढती हुई इच्छाओ को देखते ही ऐसा अनुभव होने लगता है कि बच्चे के जन्म लेने के साथ ही इच्छाएँ भी जन्म लेती है। जैसे–जैसे उम्र बढती है, जैसे–जैसे बाहरी नये पदार्थो को देखता है वैसे–वेसे इन्द्रियाँ और मन उन पदार्थो की ओर आकृष्ट होने लगते है। मन उन्हे प्राप्त करने के लिए एकदम चचल हो

उठता है। मन और इन्द्रियो की अपने–अपने विषय को प्राप्त करने
लोलुपता से इच्छाएँ पैदा होती हैं। वे इच्छाएँ देखे व सुने हुए पदार्थ को
प्राप्त करने की होती ही हैं किन्तु अनदेखे, अनसुने पदार्थो को भी पाने
कल्पनाएँ करता रहता है।

वे इच्छाएँ सिर्फ बचपन या जवानी तक ही सीमित नहीं रहती। बुढ
मे भी इच्छाएँ चलती रहती है। इन्द्रियाँ शिथिल हो गई, शरीर जर्जरित
गया पर इच्छाएँ जर्जरित व शिथिल नहीं होती है। कहा भी हे–

तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा.

शरीर बूढा हो सकता है पर इच्छाएँ तो सदा–सदा जवान ही बनी रह
है। इच्छानुसार पदार्थो की सम्प्राप्ति होने पर भी इच्छाएँ जाग्रत होना व
नहीं होता है। खाने–पीने, पहनने, घूमने–फिरने, टी वी , विडियो देखने, ता
खेलने आदि अनेक तरह की इच्छाएँ जाग्रत होती रहती हैं। वे इच्छाएँ पू
होती ही नही है उससे पूर्व ही व्यक्ति इस ससार को छोडकर चला जाता है
इच्छाओ के जाल मे फँसकर व्यक्ति अपनी स्वय की भी हानि कर लेता है

एक व्यक्ति तालाब से कुछ मछलियाँ पकडकर बाजार मे बेचने के लि
गया। उस दिन उसे बीस रुपये मिले। सोचा आज दुगुने रुपये मिले हे। अ
रुपये बच जाएँगे। बहुत खुश हो रहा है। सोच रहा है, बचे दस रुपये का मु
क्या करना है? दूसरे दिन बाजार मे इधर–उधर दुकानो को देखता हुआ
रहा है। सस्ते कॉच के छोटे–मोटे बर्तनो को देखकर खुश हुआ। एक छब
बर्तनो की खरीद ली और उन्हे बेचने के लिए चोराहे पर बने गोल चक्कर
पास पहुँचा। छबडी को आगे रखकर खडा हुआ। सोचने लगा–आज मुझे 1
के दुगुने 20 रुपये प्राप्त हो जाएँगे। कल 20 रुपये के बर्तन खरीदकर बेचूँग
तो 40 रुपये प्राप्त होगे। फिर 40 रुपये के बर्तन खरीदकर 80 रुपये
बेचूँगा। इस प्रकार कल्पना से आगे बढते–बढते करोडो रुपये तक पहु
गया। फिर एक महल बहुत बडा बनाऊँगा। जो राजा के महल से भी ज्या
सुन्दर व सुविधाजनक, आकर्षक होगा। मे शाही ठाठ–बाट से रहूँगा। रा
को मेरे ठाठ का पता चलने पर वे भी मेरे से आकर्षित हुए बिना नहीं र
सकते। उनकी एक सुन्दर राजकुमारी हे। वे जरूर उसकी शादी के लिए म
पास मन्त्री के माध्यम से समाचार भजेगे। जब मन्त्री आयेगा तो मैं आनाका
कर दूँगा। जब वे बहुत कहेगे तब मैं हॉ भरूँगा। शादी होने के बाद राजकुमा
जब मेरे साथ महलो मे आयेगी तब मै अपने निजी महल मे राजकुमारी क
जूते उतारने का बोलूँगा। अगर उसने जूते उतारने हेतु जरा भी आनाका
कर दी तो मैं उसे एक लात की मारूँगा कि ।

ऐसी लात मारने की कल्पना के साथ उस मच्छीमार की टांग भी
मे एक्शन हेतु उठ गई। टॉग जसे ही राजकुमारी को मारने हेतु

उठी कि सामने राजकुमारी तो थी नहीं किन्तु सामने वह कॉच के बर्तनो की टोकरी थी। पैर के प्रहार की लगते ही टोकरी के सारे बर्तन चौराहे पर बिखर गए व गुडकते हुए टूट भी गए। तब उसकी कल्पना टूटी और देखा मै कहॉ और किस अवस्था मे खडा हूॅ। इसी प्रकार व्यक्ति बैठा–सोया कितने ही कल्पना के किले बॉध लेता है।

इस प्रकार इच्छाऍ, कामनाऍ आकाशवत् असीम होने से कभी पूरी होने वाली नही है व अधूरी ही रहती है। यद्यपि व्यक्ति की आवश्यकताऍ बहुत कम है। रोटी, कपडा आदि की आपूर्ति आराम से हो ही जाती है पर वह यह सोचता है कि मेरे आगे बुढापे मे क्या होगा? मेरे परिवार का क्या होगा? अगली पीढी, पोते–पडपोते का क्या होगा? सात पीढी खाए उतना धन भी पास मे हो तो भी इच्छा पैदा होती है कि आठवी पीढी के लिए इकट्ठा करूँ। इस प्रकार इच्छा करने मे ही अपनी सारी बुद्धि व शक्ति को खर्च कर देता है और जिन्दगी के सारे क्षण दु खमय अवस्था मे निकाल देता है। अत इच्छाओ पर ब्रेक लगाना जरूरी है।

सयति वर्ग के दीक्षा लेते ही इच्छाओ पर ब्रेक लग जाता है। जैसे कपडे पहनना है तो श्वेत ही पहनना है। अन्य सभी प्रकार के कपडो को प्राप्त करने की इच्छाऍ समाप्त हो जाती है। आज क्या खाना है? वह इच्छा भी समाप्त हो जाती है। क्योकि साधक वर्ग गोचरी जाते है तो उन्हे कुछ पता नहीं रहता कि आज क्या मिलने वाला है? जबकि गृहस्थो आज क्या बनाना है? आज क्या इच्छा है खाने की? इसे सोचने मे ही काफी समय खर्च कर देते है और भोजन बनाने मे भी लेट हो जाते है तथा सर्दी मे अमुक चीज बनाना, गरमी मे अमुक चीज बनाना अगर दूसरी बन गई तो क्रोधित होना, वर्षा के मौसम मे घूमने जाना, गरमी मे शिमला, नैनीताल आदि स्थानो पर घूमने जाना आदि इच्छाऍ प्रतिदिन चलती रहती है। जबकि सयति वर्ग की इच्छा समाप्त होने से उनके मन मे एकदम शान्ति बनी रहती है। जो मिल गया वह ले आये। और मस्ती से खा लिया। दो जोडी कपडे है, उन्हे पहन लिया। आगे की उन्हे इच्छा ही नहीं। कल की कोई कामना ही नही। अत वे वर्तमान मे ही सुखी जीवन जीते है।

गृहस्थ वर्ग सुख पाने के लिए इच्छापूर्ति मे लगा रहता है। इच्छा हो गई, मन मचल गया– अमुक वस्तु प्राप्त करना है। उसे जैसे–तैसे प्राप्त भी कर ली किन्तु उससे सुख नहीं मिला। तब वह अप्राप्त वस्तु मे सुख देखने लगता है। तो दूसरी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा हो गई। दूसरी से भी सुख नहीं मिला तो तीसरी वस्तु की इच्छा पैदा हो गई पर यह पक्का है कि बाहरी वस्तु से इच्छापूर्ति कभी हो नही सकती व सुख कभी मिल नहीं सकता। वस्तु से सुख मिलेगा, यह सिर्फ भ्रममात्र ही है।

अगर सुख मिलेगा तो इच्छाओ को हटाने से ही मिलेगा। इच्छा हटने पर ही मन की चचलता भी समाप्त होगी और सुख अन्दर से फूट पडेगा। यह एक विशेषता है कि इच्छा जीव मे ही होती है, अजीव मे नहीं। जैसे उपयोग जीव का लक्षण है वैसे ही इच्छा भी शरीरधारी जीव मे ही पाई जाती है। अजीव कम्प्यूटर यद्यपि मानव मस्तिष्क का बहुत काम करता हे पर इच्छा उसमे नहीं होती। इच्छा तो जीव मे ही होती है। अगर इच्छाधारी मानव आपे से वाहर हो गया तब तो भयकर खतरे वाली स्थिति पैदा हो सकती है। जैसे इच्छाएँ तो कई तरह की मानव मन मे पैदा होती है। जो कि समाजविरोधी होती हैं। उन इच्छाओ पर कन्ट्रोल नहीं किया तो व्यक्ति समाज मे, नगर मे रहने लायक नहीं रह सकता है। अत इच्छाओ पर कन्ट्रोल करना तो जरूरी हे ही, उन इच्छाओ को प्रेसरपूर्वक दबाना ही पडेगा।



क्रोध की शरण - प्रीत की हरण

कोहो पीइ पणासेइ (दशवै 8)

अर्थात् क्रोध प्रीति का नाश करता है।

क्रोध व प्रीति दोनो एक साथ रह नही सकते है। क्योकि क्रोध व प्रीति दोनो परस्पर विरोधी है। जहॉ क्रोध है वहॉ प्रीति नही रहेगी, व जहॉ प्रीति है वहॉ पर क्रोध नही रहेगा। जैसे दिन और रात एक साथ, एक समय मे, एक स्थान पर नही रह सकते ठीक वैसे ही क्रोध और प्रेम भी एक साथ नही रह सकते। जब मनुष्य के मन मे क्रोध की मलिनता आती है तब प्रीति की स्वच्छता वहॉ टिक नही सकती।

क्रोधरूपी पागलपन की उत्पत्ति होने पर पति–पत्नी, पिता–पुत्र, भाई–भाई, भाई–बहिन आदि के पवित्र रिश्ते एक क्षण मे टूटते नजर आते है। बहुत समय से चला आ रहा सहजिक प्रेम भी द्वेष मे परिवर्तित होता हुआ नजर आता है। परिणामस्वरूप क्रोधी व्यक्ति सभी के द्वारा निन्दा व घृणा का पात्र बनता हुआ चला जाता है। घर मे बेटे की सगाई हुई जिससे मॉ को बहुत खुशी हुयी। आस–पडोसी मिलने वाली बहिनो ने पूछा कि आपकी बहू कैसी है? तो महिला ने उत्तर दिया कि मेरी बहू हीरे जैसी है। यानी बहूत अच्छी है। जब शादी होकर बहू घर मे आयी तब औरतो ने पूछा कि बहू कैसी है? तो महिला ने उत्तर दिया–बहू लाखीणी है। घर मे रहते हुए बहू के छह महीने निकल गये। सास–बहू मे आपस मे काफी प्रेम है, खाना पीना, काम करना सभी साथ–साथ मे होता था। कभी–कभी कुछ खटपट भी हो जाती थी। बाद मे किसी ने पूछा–बहू कैसी है? तो उत्तर दिया– मेरी बहू हजारो मे एक है। कालान्तर मे एक बार सास–बहू के आपस मे किसी बात को लेकर लडाई हो गई। बहू क्रोध करके सामने बोलने लग गई। कालान्तर मे किसी ने पूछा–आपकी बहू कैसी है? तब उस सास ने जवाब दिया कि ऐसी बहुएँ कौडी की तीन मिलती है। इस प्रकार क्रोध करते ही बहू की कीमत खत्म हो जाती है। आपस मे मन फट जाते है ओर सास अपनी तिजोरी का धन धीरे–धीरे, चुपके–चुपके बेटी को देने लगती है। और बहू गुस्सा करती हुई ऐसे ही रह जाती है। यह है क्रोध का दुष्परिणाम।

काफी समय से आपस मे मित्रता चली आ रही है। किन्तु एक बार आपने

क्रोध करके अनर्गल शब्दो का प्रयोग कर दिया तो वह आपसी मित्रता, प्रेम हमेशा–हमेशा के लिये समाप्त हो जाता है। वर्षो की मित्रता एक बार मे ही खत्म हो जाती है।

क्रोधी आत्मा भूत की तरह बन जाता है। सारा शरीर थर–थर कॉपने लगता है। होठ फडकने लगते है, ऑखे लाल हो जाती हैं व आपे से बाहर हो जाता है। अनर्गल शब्दो का प्रयोग करने लगता है। उस समय घर के लोग भयभीत हो जाते है। क्रोधी के समक्ष पत्नी, पुत्र मॉ–बाप कोई भी नहीं आ पाते। बार–बार क्रोध करने व क्रोध मे मार–पीट पर उतरने से पत्नी भी पति को छोडकर पितृगृह चली जाती है। पूरी जिन्दगी स्वावलम्बी होकर बिताने का निर्णय ले लेती है। पर ऐसे गुस्सैल पति के साथ रहना पसन्द नहीं करती है। माता–पिता क्रोधी बेटे को छोडकर प्रशान्तमना बेटे के साथ ही रहना चाहते हैं। इस प्रकार क्रोधी के साथ कोई भी प्रीत नही रखना चाहता, जेसे मणभर दूध को रत्तीभर जहर खराब कर देता है। ठीक उसी प्रकार थोडा क्रोध भी सभी प्रेमीजनो व पारिवारिकजनो के साथ रही प्रीति को नष्ट कर देता है।

एक शिष्य ने गुरुजी से पूछा–कि विष, कि अमृत? गुरुजी ने उत्तर दिया–क्रोध विष क्षमा अमृत। जैसे व्यक्ति क्रोध मे बोल उठता है कि तू कहीं भी चला जा, मैं तुझे छोडने वाला नहीं हूँ। मैं तेरा खून किए बिना नहीं रहूँगा। यह जहर उगलना हुआ। किन्तु जिस व्यक्ति का हृदय क्षमारूपी अमृत से आप्लावित है, वह कहता है–तू डरता क्यो है? मैं हूँ वहॉ तक तुझे डरने की आवश्यकता नहीं है। ऐसा आश्वासन देना अमृत है।

व्यक्ति अपना व्यवहार अमृत जैसा रखता है तो सारे प्रेमी लोगो का आपके प्रति प्रेम बना रह जाता है। अगर आपने क्रोध के साथ जहरीला व्यवहार किया तो सभी अपने कहलाने वालो का प्रेम भी समाप्त होते देर नहीं लगती। क्रोध के साथ दिया जाने वाला दबाव तो आज नौकर भी पसद नहीं करते, तो फिर आज के बच्चे का तो सुनने ओर सहन करने का प्रश्न ही नहीं है। जो काम शान्त रहकर किया जा सकता हे उसके लिए व्यर्थ मे क्रोध करना बेकार है। क्रोध करके एक बार किसी को भले ही दबाया जा सकता है किन्तु अन्तर की प्रीति के तार समाप्त हुए बिना नहीं रहते। गुब्बारे मे सीमा से अधिक हवा भर दी तो विस्फोट हो जाता हे। इसी प्रकार साईकिल स्कूटर, मोटर, टैक्सी के टायर मे भी ज्यादा हवा भर दी जाये तो टायर फटने की संभावना पूरी–पूरी रहती हे। दूध पुष्टिकारक होता हे पर सीमा से अधिक पीया गया तो वह दूध पेट मे गडबड करने वाला होता हे। ठीक उसी प्रकार आपने अपनी सीमा मे रहकर अच्छा व्यवहार किया तब तक तो परिचित लोग आपका मान–सम्मान करेंगे। किन्तु आपे से बाहर होकर [illegible]

व्यवहार किया तो सभी पारिवारिक जन दूर हो जाएँगे। क्रोधी व्यक्ति बेभान हो जाता है। वह कर्तव्य–अकर्तव्य सभी कुछ विस्मृत कर बैठता है। क्रोध मे बेभान हुई महिलाएँ अपने बच्चो को मारने लगती है। कभी–कभी तो बच्चे को उठाकर फेक देती है। ऐसा करने से कभी बच्चे की हड्डी टूट जावे तो फिर रोती हुई पश्चात्ताप करती है।

क्रोधी को उसका अपना शरीर भी सहयोग करना छोड देता है। तपस्या से शरीर जितना क्षीण नही होता है उससे भी कई गुणा क्रोध से क्षीण होता हुआ देखा जाता है। क्रोधी का शरीर कभी भी पुष्ट देखने मे नही आता है। उसका खाया–पीया सारा जहररूप मे परिवर्तित हो जाता है। क्रोधी कितनी भी रासायनिक दवाइयॉ खाले, वे उसके शरीर को पुष्ट करने मे सक्षम नही बन सकतीं। क्रोध करने के कारण रक्त अशुद्ध हो जाता है। रक्त की अशुद्धि से सारा शरीर पीला पड जाता है। पाचनशक्ति भी बिगड जाती है। इस प्रकार उसके शरीर मे कई प्रकार की बीमारियॉ घर कर लेती है और अकाल मे ही मृत्यु का ग्रास बन जाता है। वैज्ञानिको ने शोध करके बताया है कि पन्द्रह मिनिट का क्रोध साढे आठ घटे की सचित शक्ति को समाप्त कर देता है।

क्रोध हलाहल जहर है। एक बार क्रोधित हुई एक महिला ने अपने बच्चे को स्तनपान करवा दिया। दूध पिलाते ही बच्चे ने ऑखे फेर ली और देखते ही देखते बिना बीमारी के ही उसके प्राण–पखेरू उड गए। डाक्टरी जॉच से मालूम पडा कि मॉ के क्रोध का जहर बेटे पर चढ गया है। भगवती सूत्र के आठवे शतक मे बिच्छू व सर्प से भी अधिक जहर मानव मे बताया गया है। मानव क्रोध मे यदि किसी व्यक्ति को दॉतो से काटले तो वह तत्काल मर जाता है।

क्रोध करने से गुरु–शिष्य के स्वस्थ सबधो मे भी विकृति आ जाती है। एक बार गुरु–शिष्य दोनो जा रहे थे। रास्ते मे गुरुजी का पैर एक मरे हुए मेढक पर नहीं चाहते हुए भी टिक गया। शिष्य ने गुरुजी से कहा–आपके पॉव से मेढक मर गया है। अत प्रायश्चित्त लीजिए। गुरुजी ने शिष्य की वात सुनी–अनसुनी कर दी। शिष्य गुरुजी के साथ स्थानक मे पहुँचते ही फिर बोला कि गुरुजी आपके पैर के नीचे आकर मेढक मर गया है। अत प्रायश्चित्त लीजिए। तब गुरुजी ने कहा– मेढक मेरे पैरे से नहीं मरा, वह तो मरा हुआ ही था। शिष्य बोलता है कि नहीं, गुरुजी मैंने अपनी ऑखो से देखा है कि आपका पैर मेढक पर पडा था और वह मर गया था। गुरुजी ने एक–दो वार समझाने की कोशिश की किन्तु शिष्य नहीं मान रहा था। तव गुरुजी मौन रह गये। शिष्य ने फिर शाम को प्रतिक्रमण के वाद आलोचना के समय कहा कि गुरुजी, आज आपके पॉव से मेढक मर गया था, उसका प्रायश्चित्त लीजिए।

बार–बार कहने से गुरुजी को क्रोध की उत्पत्ति हो जाती है। उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा है–

मिउंपि चड पकरेंति सीसा

अर्थात् मृदु हृदयी गुरु भी शिष्य के निमित्त से क्रोधी स्वभाव वाले बन जाते है। शिष्य बार–बार किसी–न–किसी बात पर तग करता रहे व गुरुजी के विपरीत काम करता रहे तो उसके निमित्त से मृदु स्वभावी गुरु भी कभी प्रचड क्रोधी बन सकते है। वही हुआ कि गुरुजी को शिष्य पर क्रोध आ गया और वे कहने लगे–बताता हूँ तेरे को कि मेढक कैसे मरा? गुस्से मे वे अपने पाटे से उठे और मारने के लिए शिष्य के पीछे दौडे। शिष्य तो वहॉ से भाग गया। गुरुजी उस द्रव्य व भाव (अज्ञानाधकार) दोनो अधकार के कारण एक थभे से जोर–से टकराये और नीचे गिर पडे। मर्मान्तक चोट आने से गुरुजी उसी समय देवलोक हो गए और उस क्रोध मे आयुबधन होने से तिर्यच गति का बधन हुआ। यद्यपि साधु देवलोक मे या मोक्ष मे ही जाता हे पर क्रोध के कारण वे चडकौशिक सर्प बने। ओ–हो! इस क्रोध से गुरुजी की वर्षो की साधना सारी निरर्थक हो गई, जिस साधना से वे अपना साध्य सिद्ध कर सकते थे। किन्तु उस क्रोधरूपी दुश्मन के सहयोग से निम्न गति मे चले गए, जबकि शिष्य का सहयोग उच्च गति को प्राप्त करवा सकता था। पर उस क्रोध ने शिष्य की प्रीति को तुडवा दिया और निम्न गति करवा दी।

क्रोधी व्यक्ति कभी–कभी क्रोध के आवेश मे इतना आ जाता है कि वह अपने शरीर की प्रीति को भी तोडकर आत्महत्या तक कर लेता है। क्रोधी व्यक्ति सर्वत्र अपमानित होता है। उसे कोई भी व्यक्ति अपने पास विठाना नहीं चाहता। कोई उससे बात नहीं करना चाहता। सभी उससे घृणा करते है। जैसे पागल कुत्ता रास्ते मे मिल जावे तो सभी उससे बचकर दूर से ही निकलते हैं। ठीक उसी प्रकार क्रोधी से कोई प्रीति रखकर पास मे नहीं जाना चाहता।

हरिकेशी मुनि जब बचपन अवस्था मे थे तब उन्होने एक दृश्य देखा। गॉव के बाहर महोत्सव चल रहा था। उस समय जैसे ही एक सर्प निकला तो सभी पत्थर–डडा आदि लेकर मारने दौडे। किन्तु उसी समय एक दुमुँही निकली तो दूध पिलाने लगे, पूजा करने लगे। बालक हरिकेशी ने इसका कारण किसी से पूछा तो मालूम पडा कि सर्प सभी को काटता है अत वह मारने योग्य हे। दुमुँही किसी को भी काटती नहीं है अत वह पूजा करने योग्य हे। ऐसा सुनकर बालक का चितन आगे बढा। सोचा, जो व्यक्ति क्रोध मे सभी को ऊलजुलूल बोलता रहता है। वह सभी के लिए अप्रीति का पात्र हो जाता ह और जो सभी के साथ अमृत–सा व्यवहार करता है। वह सभी के लिए प्रीति का पात्र बन जाता है। उस हरिकेशी ने भी अपना जीवन समतामय बनाकर

सयमी जीवन जीया जिससे बाहर कुरूप होते हुए भी सभी की प्रीति के पात्र बन गए। क्रोधी व्यक्ति को उसकी स्वय की तीव्र बुद्धि भी सहयोग नही दे पाती। जो व्यक्ति जरा–जरा–सी बात मे कुपित हो जाता है, कभी–कभी बिना बात भी उत्तेजित होता रहता है, अपनी बात की शुरुआत भी क्रोध से करता है, ऐसे व्यक्ति की बुद्धि उसे छोडकर दूर भाग जाती है। एक बार एक सेठ को नौकर पर बहुत क्रोध आ रहा था। वह उसे डॉट रहा था कि तुम समय पर काम नही करते हो। जाओ, बाहर गार्डन मे पानी पिलाओ। नौकर धीरे–से कहता है कि मालिक बाहर मुसलाधार पानी बरस रहा है। मालिक कहता कि तुम्हे वितर्क करने की क्या जरूरत है? मै तुम्हे कहता हूॅ कि जाओ, पोधो को पानी पिलाओ। इस प्रकार क्रोधी व्यक्ति अपने सामान्य ज्ञान को भी खो देता है।

क्रोधी व्यक्ति को सत्य भी असत्य व असत्य भी सत्य दिखाई पडता है। वैदिक रामायण मे एक प्रसग आता है कि एक बार वाल्मीकि ऋषि रामायण का पाठ कर रहे थे। पाठ चल रहा था कि हनुमानजी जिस समय लका की अशोकवाटिका मे सीता के पास पहुॅचे तब उनकी नजर अशोकवाटिका की अद्भुत छटा की ओर पडी। वहॉ उन्होने बहुत ही सुन्दर, आकर्षक फूल देखे। उन्होने बहुत मधुर शब्दो मे बोला–ऋषिवर! वाटिका मे सफेद फूल नहीं, लाल रग के फूल थे। ऋषिवर ने दृढता के साथ मृदुस्वरो मे कहा– भक्तराज, वे फूल सफेद ही थे लाल नहीं, यह सुनते ही हनुमानजी को क्रोध आ गया और बोले मै प्रत्यक्षद्रष्टा हूॅ। मैने अपनी ऑखो से देखा है–वह बात असत्य कैसे हो सकती है? आपने तो फूल देखे भी नहीं हैं। मेरे जैसे प्रत्यक्षदर्शी को झूठा कैसे बता रहे हो? मै आपकी बात को कैसे स्वीकार कर सकता हूॅ? आप इस बात को नहीं मान रहे हैं तो श्रीराम के पास चलकर पूछ लीजिए। दोनो श्रीराम के पास पहुॅचे और हनुमानजी क्रोध मे जल्दी–जल्दी अपनी बात कहने लगे। तब श्रीराम ने कहा–अहो! अजनिनन्दन, मैं तो अशोकवाटिका मे गया ही नही। अशोकवाटिका मे तो सीताजी ही रही थीं। वह प्रत्यक्षदर्शी है। उन्हे ही पूछ लो। तब वे दोनो सीताजी के पास पहुॅचे। हनुमानजी ने सीताजी को प्रणाम करके अशोकवाटिका के पुष्पो के रग के विषय मे पूछा तब सीताजी ने अतिमृदु स्वरो मे जवाब दिया– वत्स, वे फूल सफेद ही थे। तब हनुमानजी ने कहा–तो माताजी, मुझे लाल क्यो दिखाई दिये? तब सीताजी ने उत्तर दिया– हे वत्स, जब तुम अशोकवाटिका मे आये थे तो वहॉ की रमणीयता को देखकर तुम्हे एकदम आवेश आ गया कि इस पापी–कपटी रावण की इतनी सुन्दर वाटिका! आवेशयुक्त लाल ऑखो के द्वारा वाटिका को देखने से तुम्हे सफेद फूल भी लाल दिखाई दिए।

इस प्रकार क्रोधित व्यक्ति सत्य–असत्य का निर्णय भी बराबर नहीं कर

पाता। क्रोध आत्महित मे बडा व्यवधान डालने वाला होता है। बहुत समस्याओ को पैदा करने मे सहयोगी होता है। क्रोध के परिणाम अतिघातक व दु खप्रद होते हैं। एक महिला को एक बार किसी प्रोग्राम मे जाना जरूरी था। वह अपने बच्चे को साथ मे लेकर जा रही थी। तभी उसका पति बोला—ऐसी भयकर गरमी मे बच्चे को साथ मे लेकर क्यो जा रही हो? यहीं छोड दो। आज रविवार होने से मैं घर पर ही हूँ। अत मैं उसे रख लूँगा। पत्नी ने कहा—आपका कहना ठीक है किन्तु बच्चा ज्यादा चचल व उच्छृखल है और आपका क्रोध भी बहुत तेज है। अत आपके लिए सँभाल पाना मुश्किल होगा। मै साथ मे ले जाती हूँ। किन्तु उसके पति ने कहा— नहीं, मैं सँभाल लूँगा। गरमी के समय मत ले जाओ। पत्नी बच्चे को वहीं छोड गई।

दोपहर मे वो महाशयजी तिजोरी खोलकर रुपये गिनने लगे। बच्चे ने दस हजार का एक बण्डल उठाया और बाहर खेलने के लिए चला गया। बच्चे ने दूसरे बच्चो से मिलकर उन नोटो की नावे बनाकर नालियो मे तैराना प्रारभ किया। सारे नोटो की नावे नालियो मे तिर गई। बाद मे उन गीली नावो की गोटियाँ बना—बनाकर एक—दूसरे पर उछालना प्रारभ किया। इधर उसके पापा नोटो के बण्डल तिजोरी मे रख रहे थे। तब उन्हे एक बण्डल नहीं मिल रहा था। वे बडे परेशान हो रहे थे। फिर ध्यान कि वह बच्चा तो उठाके नहीं ले गया! वे उसे देखने बाहर आ रहे थे और बच्चा अन्दर आ रहा हे दूसरा बण्डल लेने। उसे पकडकर उसके पापा ने उससे पूछना चाहा पर बेटा पहले ही बोलता है— पापा मेरे को वो बाबा वाले कागज चाहिए। मे उनकी नाव बनाकर खेलूँगा। उसके पापा उसकी बात सुनते ही समझ गए कि वह बण्डल यही ले गया है। उससे पूछा—बेटा, पहले तू जो बण्डल ले गया वह कहाँ हे? बेटा—वह तो खत्म हो गये। पापा— उनका क्या किया? बेटा—नावे बनाकर नाली मे चलाई। पापा— बता, बाहर किस नाली मे चलाई? बेटा—पापा, उन नावो की तो गोटियाँ बनाकर एक—दूसरे पर फेककर खेल लिये। उसके पापा को बहुत क्रोध आया। बाहर आकर देखा, कुछ भी नहीं दीखा। इधर बच्चा रो रहा है, मेरे को वैसे कागज चाहिये। उसके पापा घर मे आये और रोते हुए बच्चे को जोर से मारा और लात से जोर से धक्का मारा। बच्चा छोटा ही था। लात से मारे गए जोर के धक्के से बच्चे का सिर चाक मे बनी हुई नाली से जोर से टकराया। मर्मस्थल पर चोट लगते ही बच्चा उसी समय बेहोश हो गया। किन्तु उसके पापा ने घूमकर बच्चे की तरफ देखा ही नहीं। वे अपने कमरे मे जाकर सो गए। इधर उसकी माँ घर पर पहुँची। अन्दर घुसते ही बच्चा नजर आया। सोचा, यह क्या हो रहा ह? उसे उठाया देखा—यह तो मर गया लगता ह। वह रोते—रोते बच्चे को लेकर पति के पास पहुँची। पति क्रोध से आवेशित होकर बोला— इसने मेरे दस हजार रुपये का

नुकसान कर दिया है। पत्नी ने कहा–मैने पहले ही कहा था कि बच्चा बडा नटखट है और आपका क्रोध बहुत तेज है। मै इस बच्चे को अपने साथ ले जाती हूॅ पर आपने मना कर दिया। अब 10 हजार की बात छोडकर पहले बच्चे को डाक्टर को बताने जाओ। वह बच्चे को लेकर डाक्टर के पास गया। डाक्टर ने उसे बताया कि इसके सिर मे अन्तरग भयकर चोट आयी है। अत यह मर गया है। इसे ले जाओ। अब उसके पापा की ऑखो मे ऑसू आ गए और अपने द्वारा किए गए कृत्य पर पश्चात्ताप करने लगा। अब क्या हो सकता है? इस प्रकार क्रोधी व्यक्ति के विवेक–द्वार ही बन्द हो जाते है। जिस प्रकार पानी की तह मे बैठे हुए कीचड को हाथ डालकर हिलाया जाए तो निर्मल जल भी गदगीयुक्त हो जाता है। इसी प्रकार क्रोध के कारण व्यक्ति भी क्षणभर मे मूर्ख बन जाता है। एक विचारक ने कहा है– "क्रोध मूर्खता से शुरू होता है व पश्चात्ताप पर समाप्त होता है।"

आज व्यक्ति क्रोध मे दूध, चाय, पीना–खाना छोड सकते हैं, मिठाई, फ्रूट, माल–मसाला छोड सकते है। परन्तु उस महान् हानिकारक क्रोध का त्याग नहीं कर सकते। पता नही, उस क्रोध मे व्यक्ति को क्या मिठास प्राप्त होती है! क्रोधी अवस्था मे सामायिक आदि भी शुद्ध नही कर सकता है। जैसे प्रवचन मे जाने का समय हो रहा है, उससे पूर्व घर मे किसी बात को लेकर झगडा हो गया। आप भी क्रोधाविष्ट होकर झगडे मे सम्मिलित थे। क्रोध करते–करते ही प्रवचन मे आ गए। सामायिक कर ली। वैठ गए जिनवाणी सुनने। पर आपका उस समय क्या सामायिक मे मन लग सकता है या प्रवचन सही रूप से समझ मे आ सकता है? नहीं। क्योकि आपके मन–मस्तिष्क मे वही सकल्प–विकल्प की रील चल रही है। अत धर्म–ध्यान भी शातचित्तपूर्वक ही सभव है। जिस प्रकार तपी हुई जमीन मे वोया गया वीज निष्फल हो जाता है वैसे ही क्रोध से सतप्त व्यक्ति की साधना फलवान नहीं हो सकती।

प्रज्ञापना सूत्र के चौदहवे पद मे वताया है कि क्रोध चार स्थानो मे रहा हुआ है–

1 आत्म–प्रतिष्ठित।
2 पर–प्रतिष्ठित।
3 तदुभय–प्रतिष्ठित।
4 अप्रतिष्ठित।

1. आत्म-प्रतिष्ठितः- अपने आचरण का ऐहिक कुफल जानकर अपने आप पर क्रोध करना। जैसे वच्चे ने मेहनत करके परीक्षा दी। किन्तु रिजल्ट आने पर जैसे ही पता लगा कि मैं फेल हो गया हूॅ तो वह अपने आप पर क्रोध करने लगता है और कोई–कोई आत्महत्या तक कर लेते हे। शरीर मे अधिक बीमारियॉ होने पर भी व्यक्ति अपने–आप पर क्रोध करता रहता ह।

2. पर-प्रतिष्ठित क्रोध.- वहू शादी करके जैसे ही ससुराल गई, सास–ससुर व पति की इच्छानुसार दहेज नहीं आया तो वे उसे ताने मारने लगते हैं। पुन–पुन ताना मारने से ससुराल वालो के कारण वहू को क्रोध आ जाता है ओर इस कारण से आये दिन आत्मघात की घटनाएँ भी सुनने को मिलती हैं। इसी प्रकार अपनी इच्छा–पूर्ति या स्वार्थपूर्ति मे जो कोई व्यक्ति वाधक वनता हे उस पर ही व्यक्ति क्रोध करने लगता है। अधिक मिर्चीयुक्त चटपटा भोजन करने से भी क्रोध आता है। पित्त की प्रबलता के कारण भी व्यक्ति को क्रोध आता हे।

3. तदुभय प्रतिष्ठित क्रोधः- एक व्यक्ति को सुस्वादु भोजन ही अच्छा लगता हे, पर पत्नी अनुकूल भोजन बनाने मे कुशल नहीं होने से वह मनचाहा भोजन नहीं बना सकती। ऐसी स्थिति मे व्यक्ति को स्वय पर भी क्रोध आता है कि मेरी जबान हर तरह के भोजन को स्वीकार क्यो नहीं करती है व प्रतिकूल पत्नी पर भी क्रोध करता है।

4. अप्रतिष्ठित क्रोधः- क्रोध मोहनीय कर्म के उदय से निष्कारण ही क्रोधोत्पत्ति किसी भी प्रकार से आचरणीय नही है। महावीर, कृष्ण, ईसा, बुद्ध आदि विभिन्न धर्म के प्रर्वतको का अन्य विषयो मे भले ही मतभेद रहा हो पर क्रोध त्याज्य है, इस पर सभी एकमत है।

मनुष्य की ऑख आ जाती है तो चिकित्सा करवाते हे किन्तु उससे भी जरूरी है क्रोध से लाल हुई ऑख की चिकित्सा करवाना। सर्दी के कारण जब बुखार आ जाता हे तब रजायी से मुँह ढँक के सो जाता है। उसी प्रकार से क्रोधरूपी बुखार आने पर रजाई से मुँह ढक्कर सो जाना चाहिए। अगर आपको क्रोध ही करना है तो क्रोध पर ही क्रोध कीजिए। धक्का देकर वाहर निकाल दीजिए ओर पुन उसे घर मे मत घुसने दीजिए। कुत्ते का स्वभाव होता है पुन–पुन घर मे घुसने का पर आप उसे घुसने नहीं देते हो। वेसे ही क्रोधरूपी कुत्ते को भी अन्दर मत घुसने दीजिए।

स्थानांग सूत्र के आठवे स्थान मे आत्मा आठ प्रकार की वतलाई गई ह। उनमे कषाय आत्मा भी आई है व ज्ञान आत्मा भी आई है। कषाय आत्मा से युद्ध करने के लिए, क्रोधरूपी शत्रु को परास्त करने के लिए ज्ञान आत्मा को सामने खडी कर दीजिए। जिससे क्रोधरूपी शत्रु स्वत ही भाग खडा होगा। एक युवक बहुत क्रोधी स्वभाव का था, किन्तु अच्छा कमाऊ भी था। उसकी शादी नही हो रही थी। उसने एक वार न्यूजपेपर मे निकलवा दिया कि मैं शादी करना चाहता हूँ पर मेरा क्रोधी स्वभाव है। मैं उसी लडकी से शादी करना चाहता हूँ जो मेरे इशारे के अनुसार चले। मेरे अनुकूल नहीं चलने पर मैं उसे बहुत पीटूँगा। जिसने भी उस विज्ञप्ति को पढा, वे सभी बहुत हंसे कि कैसा मूर्ख युवक है! ऐसा लिखवाने पर कोन मूर्ख लडकी होगी जो उसके साथ शादी करने को तेयार होगी। एक लडकी ने भी उसे पढा। वह धर्मनिष्ठ

शान्त चित्त, गृहस्थ धर्म को समझने वाली थी। सत्सगति मे जाने से उसका व्यावहारिक जीवन काफी अच्छा था। उसने अपनी माताजी से कहा कि– मै इस युवक से शादी करना चाहती हूँ। उसके पालकवर्ग ने कहा कि हम हमारी लडकी को हमारे हाथो से कुएँ मे नही डाल सकते। किन्तु लडकी ने अपने माता–पिता को समझाया कि मेरा सत्सगति मे जाना व आपके द्वारा सद्सस्कारो को पाना फलितार्थ तभी होगा जब मै अपने आपको विपरीत परिस्थिति में भी समतोल अवस्था मे रख पाऊँ। तथा पेपर मे साफ लिखा है कि मेरे अनुकूल काम नही होगा तो पीटूँगा या लडूँगा। बाकी तो शान्त ही रहते है। यह तो हर व्यक्ति की आदत मे होता है। साफ–साफ अपनी आदत को लिखना भी हृदय की स्वच्छता को प्रकट करता है। अत आप किसी प्रकार की चिन्ता मत करिये तथा आप विश्वास रखिए मै आपके गौरव पर कभी भी आच नही आने दूँगी। आखिर उस लडके के साथ सबध निश्चित हो गया। शादी करदी गयी। लडकी अपने ससुराल मे हर काम पति की नाडी देखकर ही करती है। जैसा पति का मिजाज है उसी के अनुसार कार्य करती है। शादी को दो वर्ष हो गये। पर एक बार भी पति को क्रोध करने का मौका नही आया। एक बार पति ने सोचा कि एक बार तो उसे छेडना चाहिए। अत एक दिन पति ने अपनी पत्नी से बोला–आज मै लौकी खरीदकर लाया हूँ। इस लौकी से जितनी प्रकार की वैरायटीज बना सको, बनाना।

शाम को ऑफिस से आने पर जो भी वस्तु मॉगूँ, वह तैयार मिलनी चाहिए। पत्नी ने कहा–ठीक है। उसने पूरे दिन मे जितनी भी तरह की वैरायटीज याद आयी, हर तरह की बना डालीं। शाम का समय हो रहा हे। पतिदेव आने वाले है तभी उसके बच्चे ने रसोईघर मे लेट्रिन कर दी। तभी उसके पति की गाडी की आवाज आई। उसने सोचा–अब मैं बच्चे की लेट्रिन साफ करूँ तब तक देर हो जाएगी। अत उसने उस अशुचि पर एक तपेली उल्टी रख दी। उसके पति घर पर आये। समय पर भोजन करने बैठे। एक–एक करके लौकी की वैरायटीज मॉगने लगे। लौकी का हलवा, लोकी का रायता, लौकी के कोफ्ते, मुठिये, सेव, लोकीपाक आदि। जो भी मॉगा वह उस महिला ने हाजिर कर दिया। पति हैरान हो गया कि अब वो क्या मॉगे। तभी पत्नी ने कहा– और फरमाइए, क्या लाऊँ? पति को क्रोध आ गया और बोला–और क्या दूँ? और क्या दूँ? तो क्या अब "घू" देगी? पत्नी ने कहा–हॉ स्वामिन्! वह भी तैयार है। पति का क्रोध एकदम ठडा हो गया। सोचा, यह भी किस नस्ल की बनी है? हर प्रकार से सेवा मे तैयार हे। जो मांगो वही हाजिर है। इस पर क्रोध करना बडा मुश्किल हे। उस युवक ने तुरन्त प्रतिज्ञा कर ली कि आज के बाद मैं कभी क्रोध नहीं करूँगा।

इस प्रकार युवक ने पत्नी के सयोग से अपने क्रोध को सदा–सदा के

लिए अपने आत्मिक घर से भगा दिया। भगवान महावीर स्वामी को कई बार ऐसे प्रसग मिले कि क्रोधित हो जावे, किन्तु उनकी निर्मल ज्ञान आत्मा हमेशा जाग्रत रहती है। अत कषाय आत्मा का वश चलता ही नहीं। उसी प्रकार हम भी हमारी ज्ञान–दर्शन आत्मा को सजग सावधान रखे ताकि क्रोध–कषायात्मा अपना कुछ भी नहीं बिगाड सकती। क्रोध आत्मा की आत्मिक घर मे प्रवेश करने की कभी भी हिम्मत नहीं हो सकती।



अपनी कहानी - अपनी जुबानी

कटापावोडित मणूसो, आलोइए निदिउं गुरु सगासे,
होइ अइरेग लहुओ, ओहरिय भरोव्व भारवहो।।

(मरण समाधि प्रकीर्णक–गाथा 102)

अर्थात् जैसे भारवाही भार उतारकर अत्यन्त हल्कापन अनुभव करता है। इसी प्रकार पापी मनुष्य भी गुरु के समीप अपने दुष्कृत्यो की आलोचना, निन्दा कर पाप से हल्का हो जाता है।

आलोचना का अर्थ है कि मोह के कारण जो अकरणीय कार्य हो गए हो उनके लिए बिना किसी दबाव के भावशुद्धि को दृष्टि मे रखकर अपने कृत्य को अपनी ही जबान से गुरु के समक्ष मर्यादापूर्वक प्रकट कर देना।

मानव जीवन भूलो का भडार है। गलतियो का खजाना है। व्यक्ति जन्म से लेकर ही गलतियॉ करना प्रारभ करता है। जेसे मॉ के पेट मे लाते मारना, पिता के गाल पर हाथो से मार देना। पालकवर्ग के कपडे मल–मूत्र से भर देना आदि। ये गलतियॉ बच्चे के द्वारा अज्ञान, नासमझीवश होने से क्षमा करने योग्य होती है। जैसे–जैसे बच्चा बडा होता है तो उसकी गलतियॉ भी बढना प्रारभ हो जाती हैं। असत्य बोलना, किसी की वस्तु चुरा लेना, गालियॉ देना, क्रोध करना, उत्तेजना मे किसी के साथ मार–पीट करना, माता–पिता, मास्टर आदि के सामने बोलना, उनकी आज्ञा का पालन नहीं करना आदि। इन गलतियो के लिए माता–पिता आदि गुरुजनो के द्वारा बच्चो को कुछ दड प्राप्त करना होता है जिससे बच्चे को अपने द्वारा कृत भूल का एहसास हो सके और आगे से पुन भूल दोहराई न जा सके। बच्चे का ज्ञान जैसे–जैसे विकसित होता है, वैसे–वैसे वह समझने लगता है कि अमुक कार्य अच्छा है और अमुक कार्य खराब। ऐसी समझ आने के बाद व्यक्ति अपनी जिन्दगी के कदम सही ढग से उठाना प्रारभ करता है।

जीवन सुन्दरतम बने किन्तु कभी सगत के असर से, कभी परिवार के सस्कारो से, कभी खुद के कच्चे मन से तथा कभी गलत वातावरण के असर से व्यक्ति अपने सही रास्ते से च्युत हो जाता है और पापो के भार को अपनी आत्मा पर लादना प्रारभ कर देता है। कोई–कोई व्यक्ति तो योजनाबद्ध तरीके से सकल्पपूर्वक गलतियॉ करते है जैसे किसी की छुरा भोककर हत्या

अपनी कहानी - अपनी जुबानी

कटापावोडित मणूसो, आलोइए निदिउं गुरु सगासे,
होइ अइरेग लहुओ, ओहरिय भरोव्व भारवहो।।

(मरण समाधि प्रकीर्णक–गाथा 102)

अर्थात् जैसे भारवाही भार उतारकर अत्यन्त हल्कापन अनुभव करता है। इसी प्रकार पापी मनुष्य भी गुरु के समीप अपने दुष्कृत्यो की आलोचना, निन्दा कर पाप से हल्का हो जाता है।

आलोचना का अर्थ है कि मोह के कारण जो अकरणीय कार्य हो गए हो उनके लिए बिना किसी दबाव के भावशुद्धि को दृष्टि मे रखकर अपने कृत्य को अपनी ही जबान से गुरु के समक्ष मर्यादापूर्वक प्रकट कर देना।

मानव जीवन भूलो का भडार है। गलतियो का खजाना है। व्यक्ति जन्म से लेकर ही गलतियॉ करना प्रारभ करता है। जेसे मॉ के पेट मे लाते मारना, पिता के गाल पर हाथो से मार देना। पालकवर्ग के कपडे मल–मूत्र से भर देना आदि। ये गलतियॉ बच्चे के द्वारा अज्ञान, नासमझीवश होने से क्षमा करने योग्य होती है। जैसे–जैसे बच्चा बडा होता है तो उसकी गलतियॉ भी बढना प्रारभ हो जाती हैं। असत्य बोलना, किसी की वस्तु चुरा लेना, गालियॉ देना, क्रोध करना, उत्तेजना मे किसी के साथ मार–पीट करना, माता–पिता, मास्टर आदि के सामने बोलना, उनकी आज्ञा का पालन नही करना आदि। इन गलतियो के लिए माता–पिता आदि गुरुजनो के द्वारा बच्चो को कुछ दड प्राप्त करना होता है जिससे बच्चे को अपने द्वारा कृत भूल का एहसास हो सके और आगे से पुन भूल दोहराई न जा सके। बच्चे का ज्ञान जैसे–जैसे विकसित होता है, वैसे–वैसे वह समझने लगता है कि अमुक कार्य अच्छा हे और अमुक कार्य खराब। ऐसी समझ आने के बाद व्यक्ति अपनी जिन्दगी के कदम सही ढग से उठाना प्रारभ करता है।

जीवन सुन्दरतम बने किन्तु कभी सगत के असर से, कभी परिवार के सस्कारो से, कभी खुद के कच्चे मन से तथा कभी गलत वातावरण के असर से व्यक्ति अपने सही रास्ते से च्युत हो जाता है और पापो के भार को अपनी आत्मा पर लादना प्रारभ कर देता है। कोई–कोई व्यक्ति तो योजनावद्ध तरीके से सकल्पपूर्वक गलतियॉ करते है जैसे किसी की छुरा भोंककर हत्या

निजारायं सानुशयस्तवाग्रे।।

अर्थात् हे नाथ! आपके सामने वास्तविक बात प्रकट कर देने मे हर्ज ही क्या है? क्या बालक अपने माता–पिता के सामने सारी बाते निष्कपट भाव से प्रकट नही कर देता है। मे बालक की तरह ही अपने आशय को पश्चात्ताप के साथ आपके समक्ष प्रकट करता हूँ। वैद्य के समक्ष व्यक्ति को अपनी शारीरिक हर तरह की समस्या सही–सही रूप से प्रकट करनी ही होती हे। नहीं तो इलाज बराबर नही हो सकता। तन की बीमारी से मन की वीमारी भयकर होती है। मन की बीमारी को अगर अन्दर ही अन्दर छिपाते रहे, अन्दर मे घुटते रहे और बाहर प्रकट नही किया तो इस प्रकार वीमारी को दवाने से कब तक दबेगी? आखिर तो पाप का घडा फूट करके ही रहता हे। कहा भी है–

पाप दबाया ना दबे, दबे तो मोटा भाग,
दाबी-दूबी ना रहे, रुई लपेटी आग।।

अत पाप का परिमार्जन जल्दी ही कर देने मे फायदा हे। मध्य के वाईस तीर्थकर के साधु अपने दोषो की आलोचना तुरन्त ही करते थे। जवकि उनको दोनो समय प्रतिक्रमण करना भी जरूरी नही था। तव भी वे इतनी सावधानी रखते तो फिर अपने को कितना सावधान रहना चाहिये। वे तो तीव्र बुद्धि होते थे पर अपनी बुद्धि भी मन्द है। अत और कभी कर लेगे, इस भरोसे तो रहना ही नही चाहिए। तत्काल आलोचना कर लेनी चाहिए। जब तक आलोचना नहीं की जाएगी तब तक पापो का भार सिर पर रहेगा। वह पाप अवश्यमेव फल देगा। इससे अच्छा तो पहले ही आलोचना, प्रायश्चित्त करके शुद्धिकरण कर लिया जाए और मन को रोगरहित बना लिया जाए। तन का रोग तो फिर भी एक जन्म ही दु ख देगा पर मन का रोग तो जन्म–जन्म दु ख देने वाला है। अत मन को समय रहते स्वच्छ बना लिया जाए। जेसे हाथ–पेर यदि मल–मूत्र मे भर जाते है तो तुरन्त साफ करते हें वैसे ही आत्मा मे मन, वचन, काया की चचलता से कोई भी विकृतिरूप गन्दगी आ गई हे तो उसे तुरन्त साफ कर लिया जाए। उसके लिए सवत्सरी तक लम्वे काल का इन्तजार करने की जरूरत नही है। अगर आप तत्काल जाग्रत न हो तो सन्ध्याकालीन प्रतिक्रमण करके आलोचना करके शुद्धि कर लेवे। वह भी नहीं हो सका ता 15 दिन मे, अगर वह भी नहीं जम सका तो चोमासी व अन्तिम मे सवत्सरी तक तो गन्दगी साफ कर ही लेवे। अगर उस समय तक भी जाग्रत नहीं हो सके तो वे तो अपनी स्टेज से नीचे गिरे विना नहीं रह सकते। गिरत हुए मिथ्यात्व तक मे भी चले जाते हें। अत आलोचना करना परम आवश्यक ह। अपने जीवन के अन्तकाल मे वुरी तरह से पश्चात्ताप करना पडेगा। इस पश्चात्ताप को न करना पडे, इस दृष्टि से यही उचित ह कि मनुष्य अपन कृत

देखकर उपस्थित कई सत–सतियो का भी मन विचलित हो गया था और मन मे निदान करने लगे कि हमारी साधना का प्रतिफल हो तो हमे अगले भव मे ऐसा सौन्दर्यवान् पति मिले या पत्नी मिले। मन मे आगत इन भावो की भगवान के समक्ष आलोचना करने से पुन पवित्र हो गए। कई व्यक्ति ऐसे मोटे दोषो की आलोचना कर देते है जिनका सेवन करते हुए किसी ने देख लिया हो या किन्ही दोषो की आलोचना करता है और किन्ही दोषो की नही। कोई–कोई लोग अपने–आपको अच्छा दिखाने के लिए आलोचना करते है तथा अपनी उत्कृष्टता प्रकट करने के लिए जिस दोष का आचरण नहीं किया है, उस दोष की आलोचना करते है। किन्तु ऐसी आलोचना दोषरूपी कचरे को हटाती नहीं अपितु और ज्यादा दोषो को बढाती है और सद्गुणो का नाश करती है। आप घर मे से कचरा बाहर फेकते है, पर बर्तन आदि अन्य वस्तुएँ नही, वैसे ही दोषो की आलोचना सत्य रूप से की जाए तो दोषरूपी कचरा साफ होता है। झूठ बोलकर की गई आलोचना से तो अपने अन्दर रहे सद्गुणो को बाहर फेकने की प्रक्रिया होगी। इसलिए आलोचना विधि बतलाते हुए समाधि मरण प्र 105 मे कहा है–

जं पुव्वं तं पुव्वं, जहाणुपुव्विं जहकम्मं सव्वे,
आलोइज्ज सुविहिओ, कम कालविधि अभिदंतो।।

अर्थात् श्रेष्ठ आचार वाले पुरुष को क्रम और काल का उल्लघन न करते हुए दोषो की क्रमश आलोचना करनी चाहिए। जो दोष पहले लगा हो उसकी आलोचना पहले और बाद मे लगे दोष की बाद मे करनी चाहिए।

जहाँ दोषो की अलोचना भी क्रम से करनी चाहिए तो फिर किन्ही दोषो की आलोचना करना व किन्हीं दोषों की नहीं, यह तो बिलकुल गलत है। ऐसी आलोचना की प्रक्रिया से बिलकुल भी लाभ प्राप्त होने वाला नहीं है। अपितु अपनी आत्मा को और ज्यादा गिराना है। अत जो दोष जिस रूप मे सेवन किया गया है, उसको उसी रूप मे प्रकट करना चाहिए। उसे न न्यून रूप, न अधिक रूप से प्रकट करे। जैसे–छोटा सा बालक अपने माता–पिता के सामने अपनी किसी भी बुराई को प्रकट कर देता है। उसमे नमक–मिर्च नही लगाता है। न कुछ भी छिपाता है। इसलिए दोष का पता लगाने के लिए पुलिस छोटे–छोटे बच्चो से पूछताछ करती है और उनसे सही पता लगा लेती है। उसी प्रकार आलोचना करने वाले को गुरु के समक्ष सरल भाव से अपने द्वारा कृत दोषो को प्रकट कर देना चाहिये। यही सच्ची आलोचना है। इस विषय मे रत्नाकर पच्चीसी मे भी कहा है–

किं बाल लीला कलितो न बालः,
पित्रेः पुरो जल्पति निर्विकल्पः?
तथा यथार्थ कथयामि नाथ!

देखकर उपस्थित कई सत–सतियो का भी मन विचलित हो गया था और मन मे निदान करने लगे कि हमारी साधना का प्रतिफल हो तो हमे अगले भव मे ऐसा सौन्दर्यवान् पति मिले या पत्नी मिले। मन मे आगत इन भावो की भगवान के समक्ष आलोचना करने से पुन पवित्र हो गए। कई व्यक्ति ऐसे मोटे दोषो की आलोचना कर देते है जिनका सेवन करते हुए किसी ने देख लिया हो या किन्ही दोषो की आलोचना करता है और किन्हीं दोषो की नही। कोई–कोई लोग अपने–आपको अच्छा दिखाने के लिए आलोचना करते है तथा अपनी उत्कृष्टता प्रकट करने के लिए जिस दोष का आचरण नहीं किया है, उस दोष की आलोचना करते है। किन्तु ऐसी आलोचना दोषरूपी कचरे को हटाती नहीं अपितु और ज्यादा दोषो को बढाती है और सद्‌गुणो का नाश करती है। आप घर मे से कचरा बाहर फेकते है, पर बर्तन आदि अन्य वस्तुऍ नही, वैसे ही दोषो की आलोचना सत्य रूप से की जाए तो दोषरूपी कचरा साफ होता है। झूठ बोलकर की गई आलोचना से तो अपने अन्दर रहे सद्‌गुणो को बाहर फेकने की प्रक्रिया होगी। इसलिए आलोचना विधि बतलाते हुए समाधि मरण प्र 105 मे कहा है–

जं पुव्वं तं पुव्वं, जहाणुपुव्विं जहकम्मं सव्वे,
आलोइज्ज सुविहिओ, कम कालविधि अभिदंतो।।

अर्थात् श्रेष्ठ आचार वाले पुरुष को क्रम और काल का उल्लघन न करते हुए दोषो की क्रमश आलोचना करनी चाहिए। जो दोष पहले लगा हो उसकी आलोचना पहले और बाद मे लगे दोष की बाद मे करनी चाहिए।

जहॉ दोषो की अलोचना भी क्रम से करनी चाहिए तो फिर किन्ही दोषो की आलोचना करना व किन्हीं दोषो की नहीं, यह तो बिलकुल गलत है। ऐसी आलोचना की प्रक्रिया से बिलकुल भी लाभ प्राप्त होने वाला नहीं है। अपितु अपनी आत्मा को और ज्यादा गिराना है। अत जो दोष जिस रूप मे सेवन किया गया है, उसको उसी रूप मे प्रकट करना चाहिए। उसे न न्यून रूप, न अधिक रूप से प्रकट करे। जैसे–छोटा सा बालक अपने माता–पिता के सामने अपनी किसी भी बुराई को प्रकट कर देता है। उसमें नमक–मिर्च नहीं लगाता है। न कुछ भी छिपाता है। इसलिए दोष का पता लगाने के लिए पुलिस छोटे–छोटे बच्चो से पूछताछ करती है और उनसे सही पता लगा लेती है। उसी प्रकार आलोचना करने वाले को गुरु के समक्ष सरल भाव से अपने द्वारा कृत दोषो को प्रकट कर देना चाहिये। यही सच्ची आलोचना है। इस विषय मे रत्नाकर पच्चीसी मे भी कहा है–

किं बाल लीला कलितो न बालः,
पित्रेः पुरो जल्पति निर्विकल्पः?
तथा यथार्थ कथयामि नाथ!

निजारायं सानुशयस्तवाग्रे।।

अर्थात् हे नाथ! आपके सामने वास्तविक बात प्रकट कर देने मे हर्ज ही क्या है? क्या बालक अपने माता–पिता के सामने सारी बाते निष्कपट भाव से प्रकट नहीं कर देता हे। मैं बालक की तरह ही अपने आशय को पश्चात्ताप के साथ आपके समक्ष प्रकट करता हूँ। वैद्य के समक्ष व्यक्ति को अपनी शारीरिक हर तरह की समस्या सही–सही रूप से प्रकट करनी ही होती हे। नहीं तो इलाज बराबर नहीं हो सकता। तन की बीमारी से मन की बीमारी भयकर होती है। मन की बीमारी को अगर अन्दर ही अन्दर छिपाते रहे, अन्दर मे घुटते रहे ओर बाहर प्रकट नहीं किया तो इस प्रकार बीमारी को दबाने से कब तक दबेगी? आखिर तो पाप का घडा फूट करके ही रहता हे। कहा भी है–

पाप दबाया ना दबे, दबे तो मोटा भाग,
दाबी-दूबी ना रहे, रुई लपेटी आग।।

अत पाप का परिमार्जन जल्दी ही कर देने मे फायदा है। मध्य के बाईस तीर्थकर के साधु अपने दोषो की आलोचना तुरन्त ही करते थे। जबकि उनको दोनो समय प्रतिक्रमण करना भी जरूरी नहीं था। तब भी वे इतनी सावधानी रखते तो फिर अपने को कितना सावधान रहना चाहिये। वे तो तीव्र बुद्धि होते थे पर अपनी बुद्धि भी मन्द है। अत और कभी कर लेगे, इस भरोसे तो रहना ही नहीं चाहिए। तत्काल आलोचना कर लेनी चाहिए। जब तक आलोचना नहीं की जाएगी तब तक पापो का भार सिर पर रहेगा। वह पाप अवश्यमेव फल देगा। इससे अच्छा तो पहले ही आलोचना, प्रायश्चित्त करके शुद्धिकरण कर लिया जाए और मन को रोगरहित बना लिया जाए। तन का रोग तो फिर भी एक जन्म ही दु ख देगा पर मन का रोग तो जन्म–जन्म दु ख देने वाला है। अत मन को समय रहते स्वच्छ बना लिया जाए। जैसे हाथ–पेर यदि मल–मूत्र मे भर जाते है तो तुरन्त साफ करते हैं वैसे ही आत्मा मे मन, वचन, काया की चचलता से कोई भी विकृतिरूप गन्दगी आ गई है तो उसे तुरन्त साफ कर लिया जाए। उसके लिए सवत्सरी तक लम्बे काल का इन्तजार करने की जरूरत नहीं है। अगर आप तत्काल जाग्रत न हो तो सन्ध्याकालीन प्रतिक्रमण करके आलोचना करके शुद्धि कर लेवे। वह भी नहीं हो सका तो 15 दिन मे, अगर वह भी नहीं जम सका तो चोमासी व अन्तिम मे सवत्सरी तक तो गन्दगी साफ कर ही लेवे। अगर उस समय तक भी जाग्रत नहीं हो सके तो वे तो अपनी स्टेज से नीचे गिरे बिना नहीं रह सकते। गिरते हुए मिथ्यात्व तक मे भी चले जाते हैं। अत आलोचना करना परम आवश्यक है। अपने जीवन के अन्तकाल मे बुरी तरह से पश्चात्ताप करना पडेगा। इस पश्चात्ताप को न करना पडे, इस दृष्टि से यही उचित है कि मनुष्य अपने कृत

अपराधो के लिए उसी समय आत्मनिन्दापूर्वक गुरु के समक्ष आलोचना कर प्रायश्चित्त करले व दोषो की पुनरावृत्ति न करने हेतु सकल्प ग्रहण कर ले तो महान् लाभ की प्राप्ति हुए बिना नही रहेगी।

एक बार एक सत अपने गुरु की आज्ञा लेकर तपस्या के पारणे हेतु गोचरी लेने के लिए गए। अज्ञात कुलो मे गोचरी करते हुए साधु एक ऐसे घर मे प्रविष्ट हुए जहॉ केवल एक महिला रहती थी। उसके पति विदेश मे रहते थे। साधु के सुन्दर शरीर को देखकर उस महिला की कामवासना की भावना जाग्रत हो उठी और मन विकारयुक्त हो गया। उस महिला ने बडी चतुराई से मेनगेट को बद कर दिया। साधु इस बात से अनभिज्ञ था। वह महिला उस साधु को बहुत अन्दर तक ले गई। फिर वह साधु से कहने लगी–आपको इतना कोमल व सुन्दर शरीर मिला है फिर आप क्यो अपना जीवन साधु बन करके बेकार कर रहे है ? आप तो मेरे साथ रहकर ससार के सुख को भोगिए। मै अपनी सपत्ति व अपना पूरा जीवन आपके चरणो मे समर्पित कर दूॅगी। साधु यह सुनकर अवाक् रह गया। वह बोला कि तुम व ससार की सारी महिलाएँ मेरे लिए माता व बहिन के समान है। अत तुम इस प्रकार की कलुषित भावना को त्याग दो। उस महिला ने साधु से अनेको बार निवेदन किया। लेकिन वह साधु जरा भी विचलित नहीं हुए, लेशमात्र भी सयम से नहीं डिगे। तब उस महिला के मन मे यह विचार आया कि यदि यह साधु मेरी बात नहीं मानेगा तो वह सबके समक्ष मेरा भॉडाफोड करेगा। मगर इस साधु को मनाऊॅ भी कैसे? तभी उसे पास मे पडा एक बहुत बडा व मोटा डडा दिखायी दिया। सोचा, यह साधु ऐसे सरलता से नहीं किन्तु मार से अवश्य मानेगा। अरे! मार के सामने तो भूत भी नहीं टिकता है अत उसके सयम के भूत को भगाने हेतु इस डडे की मार ठीक ही रहेगी। ऐसा सोचते हुये उस बहू ने तुरत ही महाराज के सिर पर डडे की जोर से मार दी।

उन साधु का थोडे समय पूर्व ही लोच करवाया हुआ था अत मस्तक कच्चा था। साधु के आतरिक चोट भयकर आयी जिसके कारण मस्तक से खून की धाराएँ बहने लगीं और थोडे समय मे ही उन्होने देह को त्याग दिया। जैसे ही महिला को उनके मरने का एहसास हुआ, वह घवराने लगी कि यह क्या हो गया? सोचा मैंने कुछ और था पर हो कुछ और ही गया है। अव मैं क्या करूॅ? कुछ समझ मे नही आ रहा है। तभी उसकी विपरीत वुद्धि में सहसा एक विचार आया कि मै गड्ढा खोदकर इन्हे दफना दूॅ। यदि किसी को पता लग गया तो चारो तरफ मेरी वदनामी हो जाएगी। ऐसा सोचकर उसने तुरत गड्ढा खोदा और साधु को दफना दिया। सारा काम निपट जाने पर मुख्य दरवाजा खोलकर अपना काम करने लग गई।

इधर स्थानक मे जब साधु गोचरी लेकर वापस नहीं आए तो सभी को

चिता होने लगी। एक घटा, दो घटा ऐसे करते–करते तीन दिन हो गए। तीन दिन तक सभी साधु भूखे बैठे रहे और चारो तरफ उस साधु की खोज करवानी शुरू की गई। पर कहीं भी उनका पता न चला। उस महिला ने जब चारो तरफ फैलती हुई खबर सुनी कि साधु कहीं नहीं मिला और सभी सत तीन दिनो से भूखे बैठे हैं तब उसकी आत्मा उसको धिक्कारने लगी। उसका पाप उसे अन्दर ही अन्दर खाने लगा। उसकी आत्मा उससे बार–बार कहने लगी कि तू पापिनी है, अत्याचारिणी है, तूने सयम मे दृढ एक साधु की हत्या कर भयकर पापकर्मो का बन्धन किया है। अब उस महिला को न तो खाना अच्छा लगता था, न सोना अच्छा लगता था। उसकी बेचैनी निरन्तर बढती गई। उसका मन अब किसी काम मे नहीं लगता था। उसकी बेचेनी निरन्तर बढती गई। उसका मन अब किसी काम मे नहीं लगता था। अत. एक दिन अत्यत दु खी होकर उसके मन मे आया कि अब मैं आचार्य महाराज को सारी घटना कहँ दूँगी और पापो की आलोचना करूँगी। ऐसा विचारकर वह उनके पास पहुँची और उनसे निवेदन किया, मैं आप से एकान्त मे बात करना चाहती हूँ। आचार्य महाराज ने कहा–ठीक है। वह महिला उनके साथ एकान्त मे गई और बडे साहस के साथ, निर्भय होकर सारी बात कह दी। आचार्य महाराज ने जब यह बात सुनी तो उनकी आत्मा शान्त हुई कि उनके शिष्य अपने चरित्र मे दृढ रहे। उनके सामने एक अनुकूल परीषह आया तो भी सयम से वे चलित नहीं हुए। आचार्य महाराज ने उस महिला से कहा कि तुमने अपराध जरूर किया है लेकिन अपने अपराध को स्वीकार करना बहुत बडी महानता है। वे बोले– कल सवत्सरी आ रही है। अत सवत्सरी के दिन तुम प्रवचन मे सबके सामने खडी होकर अपने द्वारा कृत पाप को अपनी जुबान द्वारा ही प्रकट करते हुये स्वीकार कर लेना। इससे तुम्हारे सारे पाप धुल जाएँगे। क्या तुम इस हेतु तैयार हो? वह महिला बोली–अगर मेरे कहने से सारे पाप धुल जाते हो तो मै ऐसा करने के लिए तैयार हूँ। आचार्य महाराज ने कहा–तब ठीक है। कल काली साडी पहनकर आना और यहाँ आकर अपनी बात कहना। इधर आचार्य महाराज ने सबसे कह दिया कि मेरे चेले को ढूँढना बन्द कर दीजिए। वह मिल गया है।

दूसरे दिन सवत्सरी थी। हॉल खचाखच भरा हुआ था। वह महिला उस हॉल मे आयी और सबके समक्ष खडी होकर स्पष्ट रूप से कहना प्रारभ किया कि वह साधु के रूप से आकृष्ट होकर उसे अन्दर ले गई और मेनगेट को बन्द कर दिया। साधु के समक्ष उसने कई प्रलोभन दिए कि वह उसे स्वीकार कर ससार के सुख को प्राप्त कर ले। पर वह साधु जरा भी विचलित नहीं हुआ। बहुत समझाने पर भी जब वे नहीं माने तो क्रोधित होकर मैंने लकडी की

जोरदार उनके मस्तक पर दे मारी। खून की धाराएँ बहने लगी और चोट गहरी लगने के कारण उन्होने देह को त्याग दिया। फिर लोकलज्जा से बचने के लिए मैने उन्हे घर के अन्दर ही गड्ढा खोदकर दफना दिया। लेकिन ऐसे भयकर पाप को करने के कारण मेरा मन बेचैन हो गया। मेरे को सभी वस्तुओ के प्रति रुचि घटने लगी। मेरी आत्मा मुझे बार-बार कोसती रही इसलिए मेरे मन मे यह विचार आया कि मुझे इस पाप का प्रायश्चित्त लेना चाहिए क्यो कि मैने बहुत बडा अपराध किया है। हॉल मे बैठे लोगो ने जब उसकी ये बाते सुनी तो उन्हे बहुत गुस्सा आया। उनका खून खौलने लगा। वे उसे धिक्कारने लगे। कोई कहता यह कलकिनी है, कोई कहता यह दुराचारिणी है। इस तरह से पूरे हॉल मे उस महिला की निदा होने लगी। कोई उसे गालिया देने लगा। कोई इस तरह से चीखने लगे कि इसे जूतो से मारो, इसे पत्थरो से मारो। निरन्तर निन्दा होते रहने से एक चमत्कार घटित हुआ। उस महिला की काली साडी धीरे-धीरे सफेद होने लगी। ऐसा लग रहा था कि मानो वह महिला सफेद साडी ही पहन कर आयी हो। पर अब उस साडी मे दो धब्बे अवशेष रह गये।

इस चमत्कार को देखकर वहॉ पर बैठे लोग आश्चर्यचकित हो गए और आचार्य महाराज से पूछा- इस चमत्कार का कारण क्या है? तब उन्होने कहा कि इस महिला ने बहुत बडा पाप करके भी उसकी आलोचना सबके सामने करके अपने-आपको शुद्ध बना लिया है। इस सभा मे दो व्यक्तियो को छोडकर सभी ने उसकी निन्दा की। जिसके कारण उसकी साडी मे सिर्फ दो धब्बे रह गए है। जब उन दो व्यक्तियो से उसकी निदा न करने का कारण पूछा गया तो उन्होने कहा कि व्यक्ति बडे-से-बडा पाप कर सकता है लेकिन सभा मे सबके सामने उसे स्वीकार कर लेना बहुत कठिन काम है। इसलिए यह तो बहुत पवित्र आत्मा है। हमारी हिम्मत नहीं कि हम इसकी निन्दा करे। तब आचार्य महाराज ने उस महिला को सकेत किया कि तुम अब अपने मुँह से "मिच्छामि दुक्कड" दो बार बोलो। उस महिला के ऐसा बोलते ही साडी एकदम सफेद हो गई। इस प्रकार उस महिला ने आलोचना के द्वारा अपनी आत्मशुद्धि कर ली।

इस प्रकार जीवन मे आलोचना का बहुत बडा महत्त्व है। यह जीवन को सुन्दर व पवित्र बनाने की एक सुन्दर कला है। भगवती सूत्र मे भगवान ने फरमाया है कि आलोचना करने वाला ही आराधक होता है। शुद्ध मन से आलोचना करने वाला तीन भव करके मोक्ष मे चला जाता है किन्तु इस उत्तम कला को अपनाना हर किसी सामान्य व्यक्ति के वश की बात नहीं है। अपने-आपका बारीकी से समीक्षण करके अपने दोषो को अपने ही मुँह से

कहना व प्रायश्चित्त लेकर शुद्धिकरण करना व पुन दोषो का सेवन नहीं करने की प्रतिज्ञा करना महापुरुषो का ही काम हे। वे ही मुक्ति मार्ग मे आने वाले बाधकरूप दोषो की आलोचना के माध्यम से शीघ्र ही पापो के भार से हल्के हो जाते है व अखड स्थान व अखड सुख को सम्प्राप्त कर लेते हे।



समता सदन

समता सर्वभूतेषु, संयमः शुभ भावना,
आर्तरौद्र-परित्यागस्ताद्धि सामायिकं व्रतम्।।

अर्थात् सब जीवो पर समता, समभाव रखना, पॉच इन्द्रियो का सयम नियत्रण करना। अन्तर्हृदय मे शुभ भावना रखना, आर्तरौद्र ध्यान का परित्याग करना व धर्म–ध्यान का चिन्तन करना सामायिक व्रत है। सामायिक का सीधा अर्थ है–समभाव की प्राप्ति होना। जैसे लोकगत सभी प्राणियो की आत्मा को अपनी आत्मा के समान ही देखना, सुख–दु ख मे समतोल अवस्था रखना। किसी भी जीव के प्रति राग–द्वेष के भाव नहीं आने देने व स्वभाव मे रमण करना ही समभाव है। इस प्रकार के समभाव की प्राप्ति ही शुद्ध सामायिक है। शुद्ध सामायिक करने के लिए द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव की शुद्धि होना आवश्यक है।

1. द्रव्य सामायिकः- सामायिक करने हेतु आसन, मुँहपत्ती, पूँजनी, रजोहरण, चोलपट्टा, चादर आदि जितने भी साधन आवश्यक है उनकी शुद्धि भी होना जरूरी है। वे साधन अल्पारभ से बने होने चाहिएँ। क्योकि सामायिक के सभी साधन जीवो की रक्षा हेतु होते है। अत महारभ से बना हुआ अतिसुन्दर, आकर्षक आसन नही होना चाहिए, जिसके प्रति मोह बना रहे या रगीन व रोएँदार आसन, जिनका प्रतिलेखन भी न हो सके, ऐसे आसन नहीं रखने चाहिएँ। मुखवस्त्रिका भी सफेद ही होनी चाहिए तथा 21 अगुल लम्बे व 16 अगुल चौडे कपडे से बनी हुई आठ पडत वाली होनी चाहिए तथा चोलपट्टा चादर भी सफेद रग के ही होने चाहिएँ। आजकल पुरुष पजामे व पेन्ट मे ही सामायिक कर लेते है। किन्तु इस प्रकार करने से द्रव्य शुद्धि पूर्ण नही होती। अत सामायिक मे ड्रेस का भी पूरा ध्यान रखना चाहिए। बहनो को भी सीधे–सादे वस्त्रो मे व गहनो से रहित या अल्पतम गहनो मे ही सामायिक करनी चाहिए।

2. क्षेत्र शुद्धिः- सामायिक करने के लिए व्यक्ति जहॉ बैठता है, वह क्षेत्र भी शुद्ध होना चाहिए। घर मे जिस कमरे मे, बरामदे मे पारिवारिक जनो का बार–बार आना–जाना हो या गृहस्थियो की बातो की आवाज आती हो जिससे मन मे चचलता पैदा हो सकती हो, ऐसे स्थान पर सामायिक नहीं

करनी चाहिए। गली मे, चबूतरे पर बैठकर भी सामायिक नहीं करनी चाहिए क्योकि गलियो मे लडके–लडकियो का कोलाहल भी होता रहता है, उनके खेल–कूद की आवाजे आती रहती हैं। स्त्री–पुरुषो का आवागमन भी होता रहता है जिससे इधर–उधर दृष्टि पडती रहती है। जिससे विचार विकृत भी हो सकते है। अत ऐसे स्थान पर भी सामायिक नहीं करनी चाहिए। अपितु जिस स्थान पर मन स्थिर रहकर आत्मभाव मे रमण कर सके व आत्म–चितन अच्छा बन सके, ऐसे स्थान पर सामायिक करनी चाहिए। यदि सयतिवर्ग का सयोग बैठ जावे तो बहुत अच्छा है क्योकि उनके ससर्ग मे बैठकर सामायिक की जाएगी तो उनके विवेकपूर्ण आचरण का प्रभाव भी आप पर पडेगा व ज्ञान की वृद्धि भी सहज ही मे हो सकेगी। अत सामायिक शान्त वातावरण मे या जैन स्थानक मे की जाए तो आत्मभाव मे रमणता अच्छी बन सकती है।

3. काल शुद्धि:- सामायिक करने का समय भी सही होना चाहिए। जिससे बीच–बीच मे कोई विघ्न पैदा न हो। सूर्योदय से पूर्व यदि सामायिक करने बैठ जाये तो उस शान्त समय मे प्रभु–भक्ति मे भी मन लग जाता है व आत्मभावो मे रमण भी अच्छा होता है। उसके बाद आप और भी सामायिक कर सकते है पर एक सामायिक तो सवेरे हो ही जानी चाहिए।

आजकल भाई–बहिन जब समय मिला तभी दोपहर मे, रात मे सामायिक करने बैठ जाते है। चौबीस घटे मे सामायिक भी एक करना और वह भी जिस–किसी समय कर लेने से मन स्थिर नहीं हो सकता है। अत साधना का समय भी सही होना चाहिए तथा काल का अवसर भी अर्थ होता है। अर्थात् अवसर देखकर ही सामायिक करनी चाहिए। घर मे यदि कोई बीमार हो और उस समय उसकी सेवा जरूरी हो तो उस सेवा के समय सामायिक करने नहीं बैठे। इसी प्रकार हर तरह से सामायिक का अवसर देखकर सामायिक करना चाहिए।

4 भाव शुद्धि:- मन, वचन, काया को स्थिर करते हुए आत्मा मे रमण करना। विभाव–भाव से हटकर स्वभाव मे आना। पुद्गलो के स्वरूप को जानकर उनसे ममता भाव हटाना, अपने–आपको देखने की क्रिया मे लगना भाव सामायिक है। आजकल श्रावक–श्राविका वर्ग शुद्ध सामायिक तक पहुँचने का प्रयास ही नहीं करते। उनका उद्देश्य मात्र इतना ही रह गया है कि– मुझे दिन मे एक सामायिक करना है। वह जैसे–तैसे कर लेते हैं। किन्तु सिर्फ आसन बिछाकर, मुहँपत्ती लगाकर बैठ जाना द्रव्य सामायिक ही है। ऐसा सामायिक तो कागज पर नोट की छाप मात्र है, जो नकली नोट ही होगा। वह नाम का नोट हो सकता है पर बाजार मे कामयाब नहीं होता है। अत भाव सामायिक करने का पूरा प्रयत्न करना चाहिए। आप पूर्ण रूप से भाव सामायिक नहीं कर सकते है, मन बहुत चचल है, एकाएक पूरा नहीं रोक सकते हैं किन्तु

सामायिक मे स्वाध्याय करके या ज्ञान–चर्चा करके जैसे–तैसे मन को स्थिर रखने की कोशिश करनी चाहिए। आपने बडी मुश्किल से तो सामायिक के लिए समय निकाला है, उस सामायिक मे बाते करके समय नही गँवाना चाहिए। अपितु सामायिक मे धार्मिक पुस्तको का पठनरूप स्वाध्याय करते रहना चाहिए। अगर आपके पास धार्मिक पुस्तके नही है तो आप सिर्फ माला ही फेरिये पर बाते करके अमूल्य समय को बेकार नही करना चाहिए। इस प्रकार की प्रवृत्ति भाव सामायिक की ओर प्रवृत्ति है। भगवान महावीर स्वामी ने 'चलमाणे चलिए' सूत्र फरमाया है अर्थात् परदेश जाने के लिए घर से स्टेशन पर गया हुआ व्यक्ति परदेश गया ऐसा कहलाता है क्योकि उसकी प्रवृत्ति परदेश के लिए चालू हो गयी है, उतना रास्ता उसका कम हो गया है। उसी प्रकार भाव सामायिक की ओर प्रवृत्ति यदि प्रारभ हो गयी तो वह व्यक्ति एक दिन भाव सामायिक कर ही लेगा। भाव सामायिक के लिए निरन्तर अभ्यास चालू रहने से एक दिन वह आता है कि पूर्ण रूप से भाव सामायिक मे आ जाते है।

आप भाव सामायिक नही कर पा रहे है तो इसका मतलब यह नही है कि आप सामायिक ही करना छोड दे। सामायिक का अभ्यास तो हमेशा करते ही रहना चाहिए। बच्चा स्कूल मे पढने जाता है तब प्रारभ मे स्लेट पर पैसिल से सिर्फ लाइने ही खेचता है। अक्षर नही बना पाता। फिर धीरे–धीरे अक्षर भी बनाता है तो टेढे–मेढे बनाता है किन्तु अभ्यास से एक दिन सुन्दर अक्षर लिखने लगता है। उसी प्रकार द्रव्य सामायिक करते–करते भी एक दिन भाव सामायिक मे प्रवेश कर जायेगे। दुर्बलतम व्यक्ति भी एक–एक कदम चलते–चलते एक दिन अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। द्रव्य सामायिक भी भाव सामायिकरूपी साध्य को प्राप्त करने हेतु ही है। साधक का ध्येय द्रव्य सामायिक को भाव सामायिक बनाने का होना चाहिए। जैसे घडी मे एक बार चाबी भर देते है तो 24 घटे चलती है। अगर वह 24 घटे काम नहीं करे तो लोग उस घडी को खिलौना ही समझ लेगे। वैसे ही एक सामायिक करने के बाद पूरे दिन समभाव मे ही रमण करना चाहिए। यानी व्यावहारिक जीवन मे भी समभाव उतरना चाहिए। परिवार के सभी सदस्यो के साथ समानता का व्यवहार होना चाहिए। ससार की सभी आत्माओ को अपनी आत्मा के समान समझना चाहिए। समाज मे विघटन हो, ऐसा कार्य न करके शान्ति का प्रसार हो, ऐसा कार्य किया जाए। दुकान पर भी न्याय–नीति से काम किया जाए, पडौसी के साथ भी व्यवहार अच्छा किया जाए तो वह भी भाव सामायिक के अन्तर्गत आता है।

आप यहाँ तो सामायिक करते है पर घर पर जाते ही क्रोध कर लेते है। वह सामायिक सच्ची सामायिक नहीं है। अत सामायिक का असर अपने

जीवन व्यवहार मे भी आना जरूरी है। सामायिक के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए एक स्थान पर कहा हे–

दिवसे दिवसे लक्ख, देह सुवण्णस्स खंडिय एगो,
एगो पुण सामाइयं, करेइ न पहुप्पए तस्स।।

अर्थात् एक आदमी प्रतिदिन लाख स्वर्ण मुद्राओ का दान करता है और दूसरा आदमी मात्र दो घडी की सामायिक करता हे, तो वह स्वर्ण मुद्राओ का दान करने वाला व्यक्ति सामायिक करने वाले की समानता प्राप्त नहीं कर सकता।

इस प्रकार सामायिक एक महत्त्वपूर्ण साधना है। जिससे आत्मा को वलवान बनाया जा सकता है, अन्धकारमय जीवन को प्रकाशित किया जा सकता है, बाहरी दुनिया से हटकर अन्तरग मे प्रवेश किया जा सकता है ओर अपने आप मे रमण करते हुए मोक्ष की ओर तीव्र गति से बढा जा सकता है। पूर्ण रूप से शुद्ध सामायिक करने का प्रतिफल मोक्ष हे।



उन्नति अवनति का आधार - संगत

सुखो हवे सप्पुरिसेन संगमो (विमान वत्थु 2/34/425)

अर्थात् सज्जन की सगति सुखकर होती है।

जीवन मे सगति का असर बहुत गहरा होता है। कोई भी व्यक्ति जन्म के साथ गुणो और दोषो को लेकर नही आता किन्तु उसे जैसा–जैसा वातावरण मिलता है, वैसा–वैसा वह बन जाता है। कसाई के घर पैदा होने वाला बालक उस परिवार की सगति मात्र से ही निर्दय, निष्ठुर व क्रूर बन जाता है तथा धर्मनिष्ठ श्रावक के घर मे उत्पन्न होने वाला बालक उस परिवार की सगत मात्र से ही दयालु, कोमलहृदयी, अहिसक बन जाता है। यह तो हुए पारिवारिक सगत से प्राप्त सहजिक सस्कार। किन्तु कभी–कभी ऐसा भी होता है कि माता–पिता धर्मनिष्ठ, सद्व्यवहारी, सरल सस्कारी होते है पर सतान उनसे विपरीत ही निकल जाती है। वह सतान असामाजिक तत्त्वो के हाथो मे पहुँचकर अपने वशानुगत सस्कारो से परे हो जाती है।

लखनऊ मे स्थित चिडियाघर मे कई लोगो ने ऑखो से देखा था कि एक मानवी बच्चा भेडियो के साथ मे भेडियो की तरह चारो हाथ–पॉवो से चलता था और उन्ही की तरह से भोजन करता था। देखने वाले सभी आश्चर्यचकित होकर सोचने लगते– यह क्या हो रहा है? इसके पीछे सगत का ही असर है। वह बच्चा बचपन मे ही माता–पिता से जगल मे बिछुड गया था। वह प्रारभ से ही भेडो के साथ रहा। उनकी सगत से वैसे ही चलने लगा। वैसे ही खाना–पीना आदि सारी क्रियाएँ करने लगा।

मानव हीन मनुष्यो की सगत से बुद्धिहीन बन जाता है, समान मनुष्यो की सगत से समान और उत्तम मनुष्यो की सगत से उत्तम बन जाता है।

अनेक महापुरुषो के विषय मे पढा व सुना जाता है कि जो व्यक्ति अपनी सफलता के बारे मे सोच भी नही सकते थे, परन्तु वे काफी उम्र बढ जाने के बाद भी महापुरुषो की अल्प सगत से ही जाग उठे व अपनी छिपी हुई योग्यताओ को निखार पर ले आये और उन्होने अपनी जिन्दगी मे काफी सफलताएँ प्राप्त कर ली। जैसे परदेशी राजा का जीवन महान् हिसक था। प्रतिदिन शिकार खेलते थे। नास्तिक मतावलम्बी थे। स्वर्ग–अपवर्ग, आत्मा–परमात्मा व धर्म–कर्म मे उनकी आस्था नहीं थी। उन्होने अपने जीवन

काल मे भयकर कर्मो का अर्जन कर लिया था, जो कि अनेक बार जन्म ले लेने के बावजूद भी मुश्किल से छूट सकते थे किन्तु मत्री के सहयोग से केशीश्रमण मुनि की सत्सग मे पहुँच गये। वहाँ पर मिली अल्प समय की सगत से भी पूरा जीवन रूपान्तरित हो गया था। वाल्मीकि ऋषि, जो कि अपने पूर्व जीवनकाल मे भयकर डाकू थे, किन्तु नारद मुनि की अल्पतम सगत से ही उनका जीवन आमूलचूल परिवर्तित हो गया और वे इतने निर्मल ज्ञानी बन गये थे कि राम के होने से पूर्व ही रामायण की रचना कर दी व आद्य कवि भी कहलाए। इस प्रकार सत्सग से मानव को अन्तरयात्रा करने का सहज ही मे अवसर प्राप्त हो जाता है।

किसी भी वस्तु को स्वच्छ बनाने के लिए किसी--न--किसी का सहारा लेना ही पडता है। जैसे वस्त्र के लिए साबुन, चासनी के लिए दूध, सोने के लिए अग्नि, मकान के लिये चूना, सीमेंट, लिपाई, पुताई, पानी आदि का सहारा लेना पडता हे। इसी प्रकार जीवन को शुद्ध बनाने के लिए सत्सग की परम आवश्यकता रहती है। कहा भी हे– **सतसंगत हे दुर्लभ भाई।**

बेइजी, ब्याणजी, साढुजी, सालाजी आदि का मिलना तो सुलभ हे किन्तु सत्सग का मिलना दुर्लभ है।

सत्सगत से क्या लाभ प्राप्त हैं? इस विषय मे भगवती सूत्र मे आया हे–

सवणे नाणे, विन्नाणे, पच्चक्खाणे य संजमे।
अण्णहे तवे चेव, वोदाणे अकिरिया सिद्धि।।

अर्थात् सत्सग का प्रथम फल श्रवण है। श्रवण से ज्ञान होता हे, ज्ञान से विज्ञान होता हे, विज्ञान से प्रत्याख्यान–त्याग, त्याग से सयम, सयम से अनाश्रव, अनाश्रव से तप, तप से कर्मक्षय और अक्रिय होकर सिद्धि प्राप्त की जाती है। इस प्रकार सत्सग से महान् फल की प्राप्ति होती हे। रामचरित उपाध्याय ने कहा हे–

केवल साधु संग के वल से, नीच नीचता को खोता है।
ज्यों हिल-मिलकर मलयाचल से, निम्ब वृक्ष चन्दन होता हे।

दीपक मे जैसे तेल भी है, वत्ती भी है किन्तु अग्नि के सयोग के बिना प्रकाश नहीं दे सकता। उसी प्रकार आत्मा मे ज्ञान रहा हुआ है किन्तु महापुरुषो की सगति के बिना विकसित नहीं हो सकता।

एक बार नारदजी विष्णु के पास गये और बोले–देव! मैं आपसे एक प्रश्न पूछने के लिए आया हूँ। मेरा प्रश्न यह है कि– सत्सगति से क्या लाभ होता है? विष्णुजी– तुम्हे इस प्रश्न का उत्तर चाहिए तो तुम नरक क्षेत्र मे अमुक नैरयिक जीव के पास जाओ, वहां से तुम्हे उत्तर मिलेगा। नारदजी विचार करने लगे– नारकी मे जाना पडेगा। खैर कोई बात नहीं उत्तर तो मुझे लेना ही है। नारदजी नरक क्षेत्र मे उसी नारकी जीव के पास पहुँच गये और उनसे

पूछने लगे कि सत्सगति का फल क्या होता है? जैसे ही नारदजी ने अपना प्रश्न पूरा किया कि वह नैरयिक समाप्त हो गया। नारदजी यह दृश्य देखकर बहुत दु खी हुए और सोचने लगे कि यह क्या हो गया? विष्णुजी ने मेरे साथ मजाक की है क्या? नारदजी नरक क्षेत्र से निकलकर पुन विष्णुजी के पास पहुँचे और कहने लगे कि जिस नैरयिक के पास मै आपके कथनानुसार मेरे प्रश्न का जवाब लेने पहुँचा था। वह तो मेरे प्रश्न पूछते ही समाप्त हो गया था। अब आप ही मेरे प्रश्न का उत्तर बता दीजिए।

विष्णुजी ने कहा– विध्याचल पर्वत पर एक तोता है। उससे यह बात पूछ लेना। नारदजी शीघ्रता से उस तोते के पास पहुँचे। तोता बैठा हुआ था। उससे नारदजी ने जैसे ही प्रश्न पूछा कि तोता खत्म हो गया। नारदजी परम दु खी हुये कि मेरे द्वारा प्रश्न पूछते ही नैरयिक की तरह से यह तोता भी समाप्त हो गया है। अब मै विष्णुजी के पास कभी नही जाऊँगा पर प्रश्न के उत्तर बिना चैन भी नहीं मिल रही थी अत पुन विष्णुजी के पास पहुँच गये और तोते के मरने की बात बताई। विष्णुजी मुस्कराने लगे और कहने लगे कि तुम अमुक स्थान पर रहे हुये अमुक गाय के बछडे के पास जाओ। उससे प्रश्न पूछ लेना। नारदजी अपने प्रश्न का उत्तर पाने की लगन से तुरत उस बछडे के पास पहुँच गये। वहाँ जाकर नारदजी ने बछडे के समक्ष भी वही प्रश्न दोहराया कि सत्सगति का क्या लाभ होता है? गाय का बछडा भी उस बात को सुनने के साथ ही समाप्त हो गया।

नारदजी यह स्थिति देखकर दु ख से भर गये और सोचने लगे– यह क्या हो रहा है? मै जिसके भी पास जा रहा हूँ, वह प्रश्न पूछता हूँ और वही प्राणी खत्म हो जाता है। अब तो मै विष्णुजी के पास जाऊँगा ही नही। किन्तु प्रश्न का उत्तर पाने की लगन भी पूरी लगी हुई है, अत वापस विष्णुजी के पास पहुँचे और कहने लगे– हे देव! आप मुझे इस प्रश्न का उत्तर लेने कही मत भेजना। मै जिसके भी पास जाता हूँ वही खत्म होता जा रहा है। अब आप ही मेरे प्रश्न का उत्तर बता दीजिए। विष्णुजी ने कहा– इस बार तुम अमुक राज्य के राजा के पास पहुँचो। उसके एक राजकुमार हुआ है, वह तुम्हारे प्रश्न का उत्तर अवश्य देगा। नारदजी कहने लगे– यह तो बहुत मुश्किल पडेगा। अब तक तो मेरे जाने से नारकी, पक्षी, पशु ही मरे है। अगर इस बार मेरे जाने से व मेरा प्रश्न सुनने से राजकुमार मर गया तो मेरी स्थिति क्या होगी? कृपया वहाँ जाने की आज्ञा आप मुझे मत दीजिए। विष्णुजी कहने लगे– नही, ऐसा नही होगा। इस बार तुम्हे राजकुमार से जरूर उत्तर मिल जाएगा।

नारदजी विष्णुजी के कहने से उस राजा के पास पहुँच गये। राजा नारदजी को देखते ही खडे हो गए और प्रणाम करते हुये कहने लगे कि

ऋषिवर! आज आपका आना बहुत अच्छा हुआ हे। आज रानी ने एक राजकुमार को जन्म दिया हे। नारद बोले –वह राजकुमार कहॉ हे? उसे बताओ। राजन् शीघ्रता से नारदजी को राजकुमार के पास ले गए ओर राजकुमार को नारदजीके दर्शन करवाए। राजकुमार नारदजी के दर्शन से अति प्रसन्न हो रहा हे। राजा–रानी राजकुमार की प्रसन्नता को देखकर बहुत खुश हो रहे हें। उसी समय नारदजी ने उस राजकुमार से वही प्रश्न पूछ लिया कि सत्सगति का क्या प्रतिफल होता है? राजकुमार को नारद मुनि के दर्शन से जातिस्मरण ज्ञान हो गया था। आज ही जन्मा राजकुमार नारद ऋषि के समक्ष बोलने लगा कि सत्सगति का फल तो स्पष्ट नजर आ रहा हे। नारदजी– वह केसे? राजकुमार– मे वही नारकी जीव हूँ जिसे आपने दर्शन दिये थे। आपकी अल्पतम दर्शन की सगति को पाकर ही मेरे नारकी के बधन टूट गए और मै वहॉ के कष्टो से बाहर निकलकर तोते के रूप मे पेदा हुआ। वहॉ भी आपके शुभ दर्शन हुए अत वह पक्षी की योनि भी समाप्त हुई और श्रेष्ठी के घर मे गाय के बछडे के रूप मे जन्म लिया। वहॉ भी आपके शुभ दर्शन प्राप्त हो गए थे। अत अतिशीघ्र ही तिर्यच गति से छुटकारा प्राप्त हो गया ओर यहा राजकुमार के रूप मे उत्पन्न हुआ हूँ। यहॉ भी मुझे मेरे पुण्योदय से आपके दर्शन हो गये, अत जातिस्मरण ज्ञान की प्राप्ति हो गई। इस प्रकार सत्सगति का लाभ महान् होता है।

बिंदियो का महत्त्व तभी होता है जब एका होता हे। एक के बिना कितनी भी बिंदियॉ लगाओ, उनका कोई महत्त्व नहीं होता हे। उसी प्रकार सत्सगति एक की सख्या के रूप मे हे। सत्सगति से मिली प्रेरणा से किये गये कार्य आत्मा का विकास करवाने वाले होते हे।

सत्सगति से ज्ञानप्राप्ति, बोद्धिक विकास व शिक्षा आदि की प्रगति होती ह।

व्यक्ति उदारहृदयी व्यक्ति के साथ रहता हे तो उदार बन जाता हे। कृपण के साथ रहता हे तो कृपण बन जाता है। सम्यक्त्व की सगत से अज्ञान भी ज्ञान बन जाता हे व मिथ्यात्व की सगति से ज्ञान भी अज्ञान बन जाता हे। अनगढ पत्थर भी मूर्तिकार की सगत से मूर्ति का रूप धारण करके पूज्य भाव को प्राप्त कर लेता हे। बगीचे मे बेठने से सुगध ही प्राप्त होती हे। अत जिसका बाह्य व आन्तरिक जीवन एक समान हो जिसमे "तू–मैं" का भाव नहीं हो ऐसे महापुरुषो की सगति मे जाना चाहिए। ऐसे महापुरुषो की सगत से मेरुपर्वत जितना पाप का कचरा क्षणभर मे नष्ट हो जाता हे। कहा भी जाता है कि वाणी ओर पानी का असर आए बिना नहीं रहता। जहॉ अच्छी श्रुतियो ललित शब्दावलियो ओर मनोहर सूक्तियॉ सुनाई पडती ह वहॉ हृदय मे प्रशस्त भाव अवश्य ही पदा होते हें अत धर्मस्थानको मे सत्सगत हेतु अवश्य जाना चाहिए।

अभयकुमार की सगत से कालू कसाई का बेटा सुलसकुमार परम्परा से चले आ रहे व्यापार को छोडकर एक सुश्रावक बन गया। कहा भी है–

गगन चढई रज पवन प्रसंगा,
कीचहि मीलाहि नीच जल संगा।

मिट्टी पवन की सगत से आकाश मे ऊपर चढ जाती है और पृथ्वी पर बिखरे हुए पानी मे मिलकर कीचड बन जाती है। भॅवरा फूल की सगत मे जाएगा तो सुगध से मर जाएगा व कॉटो की सगत मे जायेगा तो कॉटो से बिध जाएगा।

मथरा की सगत से कैकयी की बुद्धि पलटी जिससे राम को वनवास जाना पडा। इलायचीकुमार जब नटवी के नाटक को देखने गया तो वैसा वातावरण पाकर नटवी को पाने का इच्छुक बन गया। कहा भी है–

काजर की कोठरी में कैसो हू सयानो जाए।
एक रेख काजर की, लागे है पे लागे है।

काजल की कोठरी मे अगर आप चले गये तो आपके नही चाहने पर भी आपके कपडो पर कही–न–कही काजल का काला निशान जरूर लग जायेगा। ठीक उसी प्रकार आप कितना भी सॅभलकर चलने का प्रयास करते है पर दुर्जनो की सगत मे रहने से कुछ असर आए बिना नही रहता। यह मानव मन भी ऐसा ही होता है कि दुर्गुणो की ओर जल्दी आकर्षित हो जाता है। जब सूर्पनखा ने रावण के समक्ष राम और लक्ष्मण के गुण वर्णन किए तब रावण के हृदय मे उनके प्रति पूज्यबुद्धि उत्पन्न न हुई किन्तु जब सीता के रूप– लावण्य का वर्णन किया तो रावण का मन शीघ्र ही चचल हो गया। घासलेट की शीशी मे चार बूॅद इत्र डालने पर घासलेट इत्र के रूप मे परिवर्तित नहीं होता है किन्तु इत्र की शीशी मे दो बूॅद घासलेट की डालने पर घासलेट रूप ही हो जाता है। ठीक वैसे ही पतन जल्दी व उत्थान देरी से होता है।

आचाराग सूत्र मे आया है कि **अलं बालस्स संगेणं।** अर्थात् अज्ञानी जनो की सगत मत करो।

गरम लोहे पर पडने से जल की बूॅद का नाम भी नही रहता, वही कमल के पत्ते पर पडने से मोती–सी हो जाती है और वही स्वाति नक्षत्र के समय सीप मे पडने से मोती हो जाती है। अधम, मध्यम, उत्तम गुण प्राय ससर्ग से ही होते है। आप अगर अलौकिक का ससर्ग करेगे तो अलौकिक बन जाऍगे व लौकिक का ससर्ग करेगे तो लौकिक बन जाऍगे। वास्तव मे उन्नति व अवनति का आधार सगत ही है। देवता के चरणो मे पडी राख मनुष्यो के द्वारा सिर पर लगाई जाती है। जबकि अन्य राख बर्तन मॉजने के काम आती है। दूध मे शक्कर डालने पर दूध मीठा व नमक डालने पर दूध खारा हो जाता

है। सत्सग शक्कर के समान है व कुसगत नमक के समान है। जीवन मे सप्त कुव्यसनो का पनपना कुसगत का ही असर है।

व्यक्ति जैसी वाते पढता है, सुनता है अथवा देखता है, उन्हीं के अनुरूप उसका चारित्र भी वनता जाता हे। यहॉ तक कि वह वेसा ही समझा भी जाने लगता हे। अग्रेजी की एक वहुत पुरानी कहावत हे– A man is known by the company, which he keeps अर्थात् किसी व्यक्ति की पहचान उसकी सगति के द्वारा ही की जाती है। शरावी के साथ आप रहते हैं तो आप भी शरावी कहे जाएँगे। शराब की दुकान पर खडे होकर आप भले ही दूध पीवे किन्तु लोग यही समझेगे कि आप शराब पी रहे हैं और आप किसी धर्मनिष्ठ घर मे बैठकर शराव पी रहे है तो भी यह कोई भी नहीं सोच सकता कि आप शराव पी रहे हे। लोग यही सोचेगे कि आप दूध पी रहे है।

सामान्य विद्यार्थी भी यदि प्रतिभाशाली विद्यार्थी की सगत मे रहने लग जावे तो वह भी गभीरतापूर्वक अध्ययन करने लग जायेगा। किन्तु लापरवाह व उद्दण्ड छात्रो के साथ मे रहने वाला विद्यार्थी भी लापरवाह व उद्दण्ड वन जाएगा। अत हमे हमेशा महान् पुरुषो की सगत मे ही रहना चाहिये। जेसे रेल के डिब्बो मे पावर नहीं होता है। पावर तो इजन मे ही होता हे किन्तु जव डिब्बे की साकल इजन के साथ जोड दी जाती है तो डिब्बे भी निश्चित स्थान पर पहुँच जाते है अत आपको भी अपना सबध महापुरुषो के साथ ही जोडना है ताकि जीवन मे निरन्तर विकास होता रहे।



बिन आग जले जीवन

चउहिं ठाणेहि संते गुणे नासेज्जा-कोहेणं, पडिनिवेसेणं, अकयण्णुयाए, मिच्छत्ताभिणिवेसेणं।(स्थानाग सूत्र–4/4)

अर्थात् क्रोध, ईर्ष्या–डाह, अकृतज्ञता और मिथ्या आग्रह–इन चार दुर्गुणो के कारण मनुष्य के विद्यमान गुण भी नष्ट हो जाते है।

अनत काल से भवाटवी मे परिभ्रमण करते हुए जीवो को भवभ्रमण से मुक्त कराने के लिये प्रभु ने उद्घोषणा की है कि हे भव्य जीवो! जागो! अनादि काल से जीवात्मा मोह निद्रा मे सोया हुआ है। इस मोह के कारण ही क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या, राग–द्वेष आदि मे फॅसता हुआ परभाव मे घूम रहा है व भयकर कर्मो का बधन निरन्तर करता चला जा रहा है।

ईर्ष्या वह आग है जो स्वय को भी जलाती है व अन्य को भी जलाती है। आग का शस्त्र भयकर होता है। उसका परिणाम भी भयकर होता है। आग मे घर, दुकान व गॉव–के–गॉव होम स्वाहा हो जाते है, इसी के साथ निर्दोष प्राणी भी जल–भुनकर राख हो जाते है। ऐसे करुण परिणाम को देखकर मानव का दिल हिल जाता है किन्तु इससे भी भयकर परिणाम ईर्ष्या के होते है। अन्य शस्त्र तो जिस पर प्रक्षेप किये जाते है उसी को नुकसान पहुँचाते है किन्तु आग तो थोडी–सी सावधानी नही रखी तो आस–पास मे सर्वत्र व्याप्त हो जाती है जिस पर काबू पाना मुश्किल हो जाता है, उसी प्रकार ईर्ष्या की आग मे ईर्ष्या करने वाला इसान स्वय तो जलता ही है पर वह अन्य को भी जलाता है, उन्हे भी नुकसान पहुँचाता है।

एक व्यक्ति के द्वारा निरन्तर की गई भक्ति व उपासना से एक देवी प्रसन्न हो गई और उसने स्वय ने प्रकट होकर भक्त को एक शख प्रदान किया और कहा– तुम जो–कुछ भी चाहोगे, इस शख को बजाने से प्राप्त हो जायेगा। किन्तु इसके साथ एक बात महत्त्वपूर्ण है। वह यह है कि इस शख को बजाने से जितना तुम्हे मिलेगा उससे दुगुना तुम्हारे पडोसी को मिलेगा। भक्त मनोवाछित फल प्रदान करने वाले शख को प्राप्त कर बहुत ,खुश हुआ। उस खुशी मे देवी के द्वारा कही गई दूसरी बात पर ध्यान नही दे पाया। वह शख लेकर घर पर गया और शख बजाते हुए इच्छा प्रकट की कि मुझे सर्वसुविधासपन्न तीन मजिला मकान चाहिए। देखते–ही–देखते उसका मकान

देविक शक्ति से जेसा मागा, वेसा वन गया। वह व्यक्ति किसी काम से वाहर निकला तो उसकी नजर पडी कि पास मे पडोसी के दो मकान मेरे जेसे वन गये हैं। तव उसे देवी के द्वारा कही गई दूसरी वात का ध्यान आया। अरे! देवी ने यह तो अच्छा नहीं किया। उसने शख को घर के एक कोने मे पटक दिया। नहीं चाहिये मुझे इससे कुछ भी। वहुत दिन वीत गये। एक वार उस व्यक्ति को कुछ धन की आवश्यकता पडी अत उसने उस धन की चाह प्रकट करते हुये शख को वजाया। उसे अपनी चाह के अनुसार पर्याप्त धन मिल गया पर पडोसी को अनायास ही डवल मिल गया। पडोसी मकान, धन आदि पाकर वहुत खुश रह रहा है। वह सोच रहा हे– मेरी पुण्यवानी जवरदस्त है। किन्तु वह व्यक्ति ईर्ष्या से परेशान हो रहा हे। पडोसी के वढते सुख से व उसे प्राप्त सपत्ति से वह निरन्तर दु खी हो रहा है। वह दिन–रात पडोसी के विनाश का उपाय सोचता रहता है। स्वय को मकान व धन मिला है व जव चाहे, जितना चाहे उतना मिल सकता है। वह शख कल्पवृक्ष के रूप मे उसके पास है। इतना–कुछ होने पर भी वह परम दु खी हे। वह दु खी इसीलिए हे कि पडोसी को क्यो मिल रहा है? व्यक्ति को ईर्ष्या से सनी सोच ही उसे दु खी कर देती हे। वाहरी सुख–सामग्री का ठाठ हर तरह का प्राप्त होते हुए भी वह ईर्ष्या की उस आग मे दिन–रात जलता हुआ भयकर रूप से पीडित हो रहा हे और पडोसी के सुख को येन–केन–प्रकारेण समाप्त करने की सोच रहा है। एक दिन उसे कुछ उपाय सूझा और उसने शख वजाते हुये अपने घर के ऑगन मे चार कुओ की मॉग की। उसके घर के ऑगन मे चार कुऐं जल से भरे हुये तत्काल तेयार हो गये। उसी समय पडोसी के घर मे आठ कुऍं तैयार हो गये। फिर एक दिन उसने शख वजाते हुये मॉग की – मेरी एक ऑख फूट जाये। अव देखिये जिसके पास मे मनोवाछित फल प्राप्त करने का साधन शख है वह उससे ऑख फोडने की मॉग क्यो करेगा? पर दूसरा के सुख से दु खी होने वाला ओर क्या करेगा? आज इसान जितना अपने दु ख से दु खी नही है उतना दूसरो से सुख से अधिक दु खी हो रहा हैं।

उसकी अपनी चाह के अनुसार शख वजाते ही सभी पारिवारिक जनो की एक–एक ऑख फूट गई। उसकी एक ऑख फूट गई, वह कुरुप हो गया इसका दु ख उसे जरा भी नहीं हे किन्तु पडोसी के समस्त परिवार की दोना ऑखे फूट गई उसकी खुशी उसे अपार हे। पडोसी का सारा परिवार एकदम अधा हो गया। वे इधर–उधर घूमने लगे। चलते–चलते चौक की तरफ आ गये। पूरे चौक मे आठ कुऐं थे। पडोसी चलते–चलते कुएं मे गिर गया। इसी तरह उसके सारे परिवार वाले भी इधर–उधर आते–जाते कुऐं मे गिर गये। सारा परिवार ही समाप्त हो गया। यह देखकार वह ईर्ष्यालु व्यक्ति परम पसन्न हुआ ओर सतोष का अनुभव करने लगा।

ऐसी होती है ईर्ष्या की आग। जिसने पडोसी मनुष्यो तक की हत्या करवा दी। ऐसे भयकर कर्मो का उपार्जन करने वाला जीवन मे कभी शाति प्राप्त नही कर सकता।

ईर्ष्यालु व्यक्ति किसी का भी उत्कर्ष सहन नही कर सकता है। जैसे चुपचाप चलते हुए राहगीर को देखकर कुत्ता निष्कारण ही भौकने लगता है उसी प्रकार किसी भी पुण्यशाली व्यक्ति को देखकर ईर्ष्यालु जलने लगता है। धनवान को देखकर निर्धन जलता है। निरोगी को देखकर रोगी जलता है। रूपवान को देखकर कुरूपवान जलता है, त्यागी को देखकर भोगी जलता है। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। केसर और काजल मे बनती नही है।

जिस समय बरसात होती है उस समय सारी वनस्पतियॉ तो फलती–फूलती हुई नजर आती है। इसमे पानी का क्या दोष है। इसी प्रकार ईर्ष्यालु व्यक्ति सद्गुणवान–सज्जनो को देखकर ईर्ष्या की आग मे जलता रहता है और सूखता जाता है। ईर्ष्यालु व्यक्ति को तो भगवान की महिमा भी नही रुचती है। जैसे गौशालक ने तीर्थकर भगवान महावीर जैसे को भी नही छोडा और खूब निदाऍ की। झूठे आक्षेप लगाये। उसके मन मे ईर्ष्या की आग जल रही थी कि भगवान् इतने महान् क्यो है? वह प्रचार करने लगा–महावीर तीर्थकर नही, मै तीर्थकर हूॅ, मै केवली हूॅ। वास्तव मे जो व्यक्ति जितना बडा होता है, या जितना विकास करता है उसके ईर्ष्यालु भी उतने ही खडे हो जाते है। जैसे कोई व्यक्ति उदारता से दान करता है तो लोग ईर्ष्या से कहने लगते है–यह दान कर रहा है तो क्या हो गया, दो नबर का ही तो पैसा है। इसे तो नाम की भूख है, अत दान दे रहा है। आपका कहना किसी अपेक्षा से ठीक है पर अपने हाथ मे आई हुई सपत्ति का विसर्जन करना कितना मुश्किल है! आपका ध्यान उसके द्वारा दिये गये दानरूपी गुण की ओर न जाकर अवगुणो ओर जा रहा है। यह ईर्ष्या व्यक्ति को अवगुणप्रेक्षी बना देती है।

यह ईष्यालु प्रवृत्ति एक जगह ही नही सर्वत्र फैली हुई है। परिवार, समाज, राष्ट्र आदि सभी एक–दूसरे को ईर्ष्या की वृत्ति से गिराने मे लगे हुए है। एक भाई यदि अपनी पुण्यवानी व पुरुषार्थ से आगे बढ रहा है तो दूसरा भाई उसे जैसे–तैसे गिराने के प्रयास करने लगता है। पडोसी पडोसी को गिराने मे लगे रहते है। एक–दूसरे की शिकायत राज्य मे कर देते है ताकि छापा और पड जावे। गॉव का कसाई लाखो रुपये कमाता है, उस पर किसी का विचार नहीं होता कितु यदि अपने स्वधर्मी भाई को लाभ हो रहा हो तो ऑखे उसे देख नही सकतीं। जैसे मक्खी दूधपाक मे गिरकर बिना कारण ही प्राण खोती है और पवित्र वस्तु को अपवित्र बना देती है, उल्टी कराती है वैसे ही ईर्ष्यालु प्रकृति के प्राणी दूसरो के वैभव का अकारण ही नाश करने की प्रवृत्ति करते है।

एक ब्राह्मण पडित राजा को हमेशा कथा सुनाया करता था। राजा उसकी कथा को सुनकर प्रसन्न होकर स्वर्णमुद्राएँ इनाम देता। एक नाई उसी समय सम्राट की मालिश करने आता था। वह घटेभर मालिश करता तब एक पेसा मिलता था। नाई को पडित से ईर्ष्या हो गई कि मैं तो घटेभर शारीरिक परिश्रम करता हूँ तब भी मुझे एक पेसा मिलता है और ब्राह्मण सिर्फ कथा सुनाता है जिसमे शारीरिक परिश्रम भी इतना नहीं पडता तब भी स्वर्णमुद्राएँ उसे मिल जाती हैं। पर राजा के समक्ष कुछ बोल भी नहीं सकता।

एक बार नाई उस पडित की दाढी बनाने उसके घर पहुँचा। पडित दाढी बनाने का पैसा देने लगा तो नाई ने स्वर्णमुद्रा की माग की। ब्राह्मण ने कह दिया स्वर्णमुद्रा नहीं मिलेगी। चाहे पैसे डबल दे सकता हू। नाई उस समय तो कुछ बोला नहीं लेकिन मन मे गॉठ बॉध ली। ब्राह्मण का अहित चाहने लगा।

वह नाई दूसरे दिन सम्राट की मालिश करता हुआ बोला—राजन्! मैं पडित की दाढी बनाने गया तो वह पडित बोल रहा था कि राजा के शरीर से तो जबरदस्त बदबू आती है, अत मैं रूमाल मुँह पर लगा के ही कथा सुनाता हूँ।

राजा को यह बात अच्छी नही लगी। दूसरे दिन पडित को मुँह पर रूमाल लगाकर ही कथा सुनाते हुए देखा तो राजा को विश्वास हो गया कि जो नाई ने कहा वह ठीक ही है। राजा हमेशा खजाची से स्वर्णमोहर प्राप्त करने परची लिखता था। उसी प्रकार उस दिन भी लिखी किन्तु हमेशा से कुछ विपरीत ही परची मे लिखा था। पडित ने सहज भाव से हमेशा की तरह परची को हाथ मे लिया और खजाची के पास जाने लगा। रास्ते मे वही नाई मिला। उसने पडित से आज फिर कहा कि आज वाली परची मेरे को दे दो ना! मैं हमेशा आपका आभारी रहूँगा। मैं बहुत गरीब हूँ इस लिए कह रहा हूँ। पडित को उस नाई पर दया आ गई और वह परची उसे दे दी। नाई परची लेकर खजाची के पास गया। खजाची ने परची देखी और उस परची मे लिखे अनुसार उसकी व्यवस्था करके नाक काट ली गई। नाई बडा दुखी हुआ। जब पडित व राजा को मालूम हुआ कि नाई की नाक काटी गई ह तो पडित को बडा आश्चर्य हुआ। राजा को भी आश्चर्य हुआ कि ऐसा कैसे हो गया? पडित को पूछा। मालूम हुआ कि उसने परची मागी थी और एक दिन पहले भी वह स्वर्ण मोहर मॉग रहा था आदि। राजा ने यह भी पूछ लिया कि तुम कथा सुनाते समय मुँह के सामने कपडा क्यो रखते हो? तो पडितजी ने बताया कि शास्त्र पर मुंह से निकले हुये थूक के छींटे पड जाते हैं। खुले मुंह पढने से ज्ञान की आशातना होती हे अत मैं मुँह पर हमेशा ही कपडा रखता हूँ। राजा को अपना सही समाधान हो गया व समझ गये कि नाई ने ईर्ष्या से ऐसा जाल रचा है और इसका प्रतिफल इसे स्वत ही मिल गया है।

इस प्रकार ईर्ष्या करने वाला दूसरो का अहित कर सके या न कर सके पर अपना स्वय का अहित जरूर कर लेता है। बहुत बुरी है यह ईर्ष्या।

लुकमान ने कहा है– ईर्ष्या चारो ओर से दूसरो की कीर्ति के प्रकाश मण्डल से घिरी रहती है जिसके भीतर यह बिच्छू की तरह, जो ज्वाला से घिर गया हो, अपने को आप ही डक मारती हुई मर मिटती है।

वास्तव मे ईर्ष्या करने वालो के लिए ईर्ष्या की बला ही काफी है क्योकि दुश्मन तो कभी उसको छोड भी देवे किन्तु उसकी ईर्ष्या ही उसका सर्वनाश कर देगी।

ईर्ष्या व्यक्ति के जीवन मे इतने गहरे रूप से उतर चुकी है कि वह स्वय भी यह नही जान पाता कि मै ईर्ष्या कर रहा हूँ। इस ईर्ष्या ने साधक वर्ग को भी नही छोडा है। आज का साधक वर्ग एक–दूसरे की प्रशसा सुनने को तैयार नही है। जिसकी प्रशसा हो रही है उसमे कोई–न–कोई दुर्गुण निकालने की कोशिश करेगे। निदा, विकथा मे पड जाएँगे और अपनी साधना को भी ईर्ष्या की आग मे नष्ट कर देगे।

किन्तु यही ईर्ष्या उदात्त रूप मे प्रतिस्पर्धा का रूप ले ले तो वह अपने जीवन मे आगे भी बढ सकता है। जैसे विद्यार्थी विचार करे कि अमुक विद्यार्थी ही फर्स्ट आता है, ऐसा क्यो? इस बार मै इतनी मेहनत करू कि मै ही स्कूल मे फर्स्ट आऊॅ। ऐसा सोचकर बहुत ज्यादा मेहनत करने लग जावे तो यह ईर्ष्या आगे बढाने मे सहायक बन सकेगी।

गोपालकृष्ण गोखले के विद्यार्थी जीवन की एक घटना है, जब वे स्कूल मे पढते थे। एक दिन मास्टर ने जनरल नोलेज की परीक्षा लेने हेतु बोर्ड पर एक लाइन खीची और कहा कि इस लाइन को बिना मिटाये छोटी कर दो। सारे विद्यार्थी परेशान हो रहे थे, सोच रहे थे कि ऐसा कैसे हो सकता है? लाइन तो थोडी–बहुत बिना मिटाये छोटी हो ही नही सकती। तभी गोपाल कृष्ण विद्यार्थी खडा हुआ और ब्लेक बोर्ड के पास जाकर चोक से उस लाइन के पास उससे बडी लाइन और खीच दी। जिससे वह पूर्व वाली लाइन अपने आप से ही छोटी दिखने लग गई। मास्टर उस बच्चे की प्रतिभा से बहुत खुश हुआ। आज सर्वसाधारण की यही धारण रहती है कि आगे बढने वालो को ही मिटा दिया जाय या उसे नुकसान पहुँचाया जाय। उससे स्वय को भी कुछ भी लाभ नही होता है और न ही अन्य को लाभ होता है। लाभ उसी मे है कि जिससे ईर्ष्या की जाय उसको बिना मिटाये पूर्ण पुरुषार्थ के साथ उससे आगे बढ जाओ।

अगर कोई साधक ज्ञान, दर्शन, चारित्र, जप की अच्छी साधना कर रहा है तो आप उससे ईर्ष्या मत करो अपितु उससे आगे बढने की कोशिश करो। अपने–आपकी आत्मा को विशेष रूप से जाग्रत करके ज्ञान, दर्शन, चारित्र,

तप की आराधना मे अधिक से अधिक आगे बढ जावे। इससे आपकी आत्मा प्रसन्न रहेगी। दूसरो के अवगुणो को कहकर उसे गिराने से आपकी आत्मा अपने–आप मे कभी भी प्रसन्न नहीं रह सकती। अपनी स्वय की प्रसन्नता बनाये रखने के लिये ईर्ष्यारूपी अवगुण से दूर रहना जरूरी हे।

ईर्ष्या करने वाला हमेशा छोटा ही होता है क्योकि अपने से छोटे के प्रति या कम गुणवान, कम धनवान के प्रति कोई भी ईर्ष्या नहीं करता। ईर्ष्या उसी से की जाती है जो अपने से आगे बढ रहा है। अत यह निश्चित हे कि ईर्ष्या करने वाला व्यक्ति हमेशा छोटा ही होता है। वह जिससे ईर्ष्या करता है उसे निश्चित रूप से बडा मानता है। एक पौधे पर पुष्प अकेला है, दूसरे पौधे पर कॉटे बहुत है। उस अकेले फूल को वहुत सारे कॉटो से ईर्ष्या करने की जरूरत ही नहीं है। अगर अपना जीवन फूल की तरह से खिलता हुआ हे ओर वह उन छोटो से ईर्ष्या करता है तो मूर्ख हे।

ईर्ष्या करने वाला भारी कर्मो का बधन कर लेता हे। कभी–कभी तो ऐसे निकाचित बधन कर लेता है जिनसे बिना भोग किये छूट पाना महामुश्किल है। गजसुकुमाल व सोमिल दोनो मे निन्यानवे लाख भव पूर्व का वैर ईर्ष्या के कारण से चल रहा था।

उस समय सोमिल व गजसुकुमाल दोनो सौत के रूप मे थीं। एक के बेटा था, दूसरी के नहीं था, अत जिसके बेटा था उससे उसकी सोत ईर्ष्या करती थी। ईर्ष्या मे निरन्तर जलती रहती थी। उस जलन मे उस सौत के आत्मिक गुण नष्ट होते जा रहे थे। आखिर उसने उस बच्चे की हिसा करने का भी विचार कर लिया। उसके लिये वह मौका खोजने लगी। एक बार उस बच्चे के सिर मे फोडे–फुसी हो गये थे। कई तरह के उपचार करवाने पर भी वे ठीक नहीं हो रहे थे। उस सौत ने मौका देखकर अपनी सोत से कहा कि बहिन! इन फोडे–फुसियो को ठीक करने का उपचार मेरे को आता ह। वह उपचार सरल है, उससे एकदम् ठीक भी हो जाते हे किन्तु उसमे बच्चे को व अपने को दोनो को सहन करना होगा। उस बच्चे की मॉ ने कहा–बहिन तुम उपचार बताओ–मैं अवश्य करूँगी। आखिर उसने बताया कि एक बाजरी की गरम–गरम मोटी रोटी इसके सिर पर बॉध दो। रोटी गरम–गरम होने मे बच्चा बहुत रोयेगा पर तुम्हे वह सहन करना होगा पर बच्चे के फोडे जरूर ठीक हो जाऍगे। उस भोली बहिन ने अपनी सौत के कहे अनुसार बाजरी की गरम–गरम रोटी बच्चे के सिर पर बॉध दी। बच्चा बहुत रोया किन्तु मा ने उसके फोडे ठीक हो जाऍगे–इस शुभ भाव से बच्चे के रोने की परवाह नहीं की। आखिर वह बच्चा थोडी देर बाद ही समाप्त हो गया। उस ईर्ष्या जलन से भयकर कर्मो का बधन हुआ। जो अनेक जन्म–मरण करने पर [illegible]

नही हुए। अन्य कर्म फिर भी ढीले हो गये किन्तु इस ईर्ष्या से बॉधे गये कर्म तो गजसुकुमाल को भोगने ही पडे।

इस प्रकार ईर्ष्या के कटु परिणामो को जान करके ईर्ष्या कभी नहीं करनी चाहिए।



रुकिये! विवेक से काम लीजिए

विवेगो मोक्खो (आचाराग चूर्णि 1/71)

अर्थात् विवेक ही मोक्ष है।

विवेक ही एक ऐसा गुण है जो मानव की सभी प्राणियो से अलग पहचान करवाता है। ससार मे जितने भी पचेन्द्रिय प्राणी हैं उन सभी के पॉच इन्द्रियॉ होती हैं ओर उन इन्द्रियो की ग्राहक शक्ति भी लगभग बराबर होती हे व उनकी आवश्यकताएँ भी बराबर होती हे। फिर भी मनुष्य को उन सभी प्राणियो से उत्कृष्ट क्यो माना जाता हे? इस विषय मे सभी विद्वानो व सभी दर्शनो का एक ही मत है कि विवेक ही मनुष्य का सबसे बडा धन है। विवेक अन्तर्चक्षु है। प्रत्येक कार्य को करते समय मानव उन विवेक चक्षुओ का सदुपयोग करता रहे तो हर स्थान पर पुण्योपार्जन व कर्म निर्जरा कर सकता है। जैसे एक कपडा भी अपने से बडो को देना हे तो उसे विवेकपूर्वक धीरे–से हाथ मे दिया तो उसमे भी कर्म निर्जरा हो जाती है। अगर उसी कपडे को अविवेक से फेक कर देते हैं तो उस स्थान पर पाप कर्मो का बधन हो जाएगा व व्यावहारिक क्षेत्र मे असभ्यता भी प्रकट होगी। इससे सामने वाला अपना अपमान समझकर प्रतिक्रिया भी प्रकट कर देगा। इस प्रकार आपने काम भी किया किन्तु अविवेकपूर्ण किया तो आपका दिल शाति को प्राप्त नहीं कर सकता। अगर आपने उसी कार्य को विवेक के साथ किया तो दिल को अपूर्व शाति की प्राप्ति होगी। इसलिए सर्वप्रथम नवतत्त्व की जानकारी हर श्रावक–श्राविका को होनी ही चाहिये। किन्तु आज के श्रावक केसे होते हें?

चउदह चूक्या, बारह भूल्या, नव का न जाने नाम।
गॉव ढिंढोरो पीटीयो, श्रावक म्हारो नाम।।

नवतत्त्व, 12 व्रत, 14 गुणस्थान, जीव–अजीव की जानकारी के बिना श्रावक अपने श्रावकत्व का पालन कर ही नहीं सकता हे। आश्रव तत्त्व व सवर तत्त्व के 20–20 भेद करते हुए एक भेद यह भी बतलाया हे कि सुई कुशाग्र मात्र भी अयत्ना से लेवे व अयत्ना से रखे तो आश्रव। तथा सुई कुशाग्र मात्र भी यत्ना से लेवे व यत्ना से रखे तो सवर। अर्थात् छोटी से छोटी वस्तु को भी यत्नापूर्वक विवेकपूर्वक उठाके यथावस्थित स्थान पर रखो या विवेकपूर्वक जाग्रत अवस्था के साथ अन्य को दो। जैसे किसी को चाकू देना है तो आप अन्य के हाथ मे आगे से मत पकडाओ। शास्त्रो मे तो यहाँ तक

कहा है कि कैची, चाकू आदि शस्त्र कहलाने वाली वस्तुएँ दूसरो को हाथ मे मत पकडाओ व न दूसरो से अपने हाथ मे पकडो। नीचे रखकर दूसरो को देओ या दूसरो से लेओ।

भगवान ने साधक को सकेत दिया कि तुम्हे अपने कार्य से इधर–उधर गमनागमन भी करना है तो विवेकपूर्वक करना है। सामने साढे तीन हाथ भूमि देखकर छ काया के जीवो की रक्षापूर्वक चलना है। रात्रि मे या दिन मे भी जिस घर मे अधकार हो तो उस अँधेरे वाले स्थान को पूँजकर विवेकपूर्वक चलना है। मार्ग मे चलते हुए मनोज्ञ शब्दो को सुनकर, मनोज्ञ रूप को देखकर उन पर आसक्त न हो जावे या अमनोज्ञ, घृणात्मक शब्द, रूप आदि पर द्वेष भाव मन मे न लावे।

हे साधक! अगर तुम्हे बोलना है तो भी विवेकपूर्वक निरवद्य भाषा का ही प्रयोग करना है। कर्कशकारी, कठोरकारी, छेदकारी, भेदकारी, सावद्यकारी, क्लेशकारी, परपीडाकारी व मिश्र भाषा का प्रयोग न करे जिससे झगडा पैदा न हो। क्योकि प्राय देखा जाता है कि दुनिया मे जितने झगडे किसी वस्तु विशेष आदि के कारण नही होते उतने अविवेकपूर्ण भाषा का प्रयोग करने से होते है।

गोचरी जाते समय भी साधक को पूर्ण विवेक रखने हेतु भगवान् ने सकेत किया। गोचरी के लिये घर मे प्रविष्ट होकर के घर मे इधर–उधर नजर डालकर निरन्तर देखता न रहे और न ही किसी स्त्री–पुरुष विशेष को एक नजर से देखता रहे अपितु गोचरी करते समय बयालीस दोषो की ओर से पूरी तरह सजग रहकर एकाग्र भाव से गोचरी करे। साधक के जीवनोपयोगी वस्त्र, पात्र, पुस्तक आदि सभी वस्तुएँ विवेकपूर्वक ही उठावे व रखे। साधु के पात्र लकडी के व पतले होते है। अगर उन्हे अयत्नापूर्वक चाहे जैसे पटककर रखे तो पात्र के टूटने की पूरी सभावना रहेगी तथा जीवहिसा की भी सभावना रहेगी तथा उन सयमोपयोगी वस्तुओ पर ममताभाव भी न रखे।

साधक अवस्था मे निरर्थक वस्तुएँ, जो बाहर डालनी है, भगवान ने उनको भी विवेकपूर्वक परठने की आज्ञा दी है। उस हेतु भी कई नियम बताये हैं।

इस प्रकार विवेकपूर्वक प्रवृत्ति करने से कर्म निर्जरा व अविवेक के साथ प्रवृत्ति करने से पापकर्म बधन का प्रसग बन जाता है।

भगवान ने सयति वर्ग को हर समय विवेक से कार्य करने का बोला है उसी प्रकार श्रावक को भी अपने क्षेत्र मे रहते हुये पूर्ण विवेक के साथ हर कार्य को सपन्न करना चाहिए। ज्ञान के साथ विवेक की भी परम आवश्यकता होती है। एक घर मे ग्रेज्युएट नई दुल्हन का प्रवेश हुआ। उसने पढाई तो बहुत की थी पर विवेकहीन थी तथा गृहकार्य भी पूर्ण तौर पर अच्छी तरह से नहीं आता था। कुछ दिनो बाद बहू को सास ने आटा गूधने का कहा। बहू ने परात मे आटा निकाला और उसमे पानी डाला। आटा जल्दी से गोधा नहीं जा रहा

था अत उसने पानी और डाल दिया। जिससे आटा एकदम ढीला हो गया। रोटी बनाने लायक नहीं रहा। सयोगवश उस दिन डिब्बे मे से आटा समाप्त था। गेहूँ पिसाने के लिये नौकर चक्की पर गया हुआ था किन्तु किसी कारणवश वह भी समय पर नहीं पहुँच सका अत सास ने कहा कि तुम इसमे थोडा और पानी डाल दो ताकि चीलडे बना लेगे। वहू खुश हुई। उसने लोटाभर पानी आटे मे डाल दिया और घोलन करके सास को कहने लगी--अब ठीक है? सास ने कहा– रे वहू तुमने आटे को बहुत गीला कर दिया है। अब यह किसी काम का नहीं रहा है। तुम इसे बाहर डाल दो। वहू ने कहा ठीक हे, अभी डालके आती हूँ। उसने तुरत आटे की परात उठाई और जल्दी–जल्दी खिडकी के पास जाने लगी। सास ने पीछे से आवाज लगाई कि बहू थोडा ध्यान से आने–जाने वाले भले आदमी को देखकर डालना। वहू ने कहा– ठीक है। बहू खिडकी के पास जाकर देखने लगी कि कोई भला आदमी आवे तो उस पर डाल दूँ। उसी समय एक अपटूडेट व्यक्ति उधर से आ रहा था। वह जैसे ही खिडकी के नीचे आया तो उसने वह सारा आटे का गाढा पानी उस व्यक्ति पर डाल दिया। जेसे ही उसने पानी डाला ओर वह व्यक्ति जोर–जोर से गालियॉ बोलने लगा। सास का ध्यान जेसे ही उस व्यक्ति की आवाज की ओर आकर्षित हुआ, उसने खिडकी के पास जाकर खोज की कि आखिर मकान के बाहर कोन व्यक्ति बोल रहा है? जेसे ही उसने खिडकी से बाहर नजर डाली तो उसे पता चला कि वह व्यक्ति आटे के गाढे पानी से भीगा हुआ था। सास ने वहू से कहा कि वहू! तुमने यह क्या काम कर डाला? तब वह कहने लगी कि आपने ही तो कहा कि किसी भले आदमी को देखकर डालना। मैंने वैसा ही किया है। सास ने वहू के मुंह से ऐसा सुनकर सिर ठोक लिया और उस भाई से क्षमा मॉगकर उसे विदा किया।

वहू मे स्कूलीय ज्ञान तो था किन्तु विवेक की भारी कमी थी। [illegible] झगडे की स्थिति खडी हो गई। अत व्यावहारिक क्षेत्र मे भी हर कार्य विवेक की ऑख को खुली रखकर करना चाहिये। जसे आपके घर कोई मेहमान आये हे। आप और मेहमान भोजन करने हेतु पास–पास मे बैठे हैं। आपका नोकर दो थालियां लेकर आया। उनमे से एक थाली छोटी व एक [illegible] हे। ऐसे समय मे जो थाली बडी हे वह मेहमान को देना चाहिये [illegible] मेहमान उसे अपना सम्मान समझे व मेहमान की दृष्टि भी आपके [illegible] सम्मानजनक बनी रहे।

बच्चो को सस्कारित बनाने के लिए आपका हर कार्य [illegible] जागत रखने की जरूरत है। आप स्वय टी वी के सामने [illegible] सीरियल देख रहे हे व बच्चो को कहे कि तुम पढो [illegible]

बच्चे चाहे आपके डर से पढने हेतु बैठ जावे पर उनका ध्यान टी वी की ओर ही रहेगा। वे मनोयोगपूर्वक पढ ही नही पाएँगे तथा बच्चो के समक्ष कोई भी अश्लील बात या मजाक नही होनी चाहिये जिससे बच्चो के कदम गलत रास्ते पर बढ जावे। बच्चे किन दोस्तो के साथ रह रहे है? क्या कर रहे है? यह सब विवेक आप माता–पिताओ को रखना जरूरी है।

आज के इस लाईटिग युग मे रात्रि भोजन करने मे तो आप जरा भी सकोच नही करते है। 60–70 वर्ष की उम्र मे भी आराम से रात को भोजन कर लेते है। जबकि लाईट की रोशनी के रग के ही अनेक छोटे–छोटे कीटाणु उस लाईट के कारण पैदा हो जाते है और वे भोजन के साथ उदरस्थ हो जाते है पर आप उस ओर से अपने विवेकचक्षु बद करके रखते है तथा भोजन करके जूठन सहित थालियॉ रातभर ऐसे ही छोड देते है जिनमे कितने जीव गिर–गिर कर मर जाते है। इस विषय मे आपको पूरा विवेक रखना चाहिए और जूठे बर्तन बहुत देर तक खुल नही रखने चाहिएँ।

शराब पीते हुए, धूम्रपान करते हुए आप स्वय अपने आप से पूछिए कि यह मेरा कृत्य उचित है अथवा अनुचित? तो आपका विवेक स्वत ही मना कर देगा। किन्तु लोग अपने विवेक का प्रयोग ही नही करते। विवेक कही बाहर नहीं मिलता है, अपितु स्वय के भीतर मे ही विद्यमान है। कहा भी है–

मनसा निरीक्ष्य पवित्रं समाचरेत्।

अर्थात् मन के द्वारा निरीक्षण करके करने योग्य पवित्र कार्य करना चाहिए। अगर मन ज्ञान व विवेक से स्वस्थ है तो अवश्य ही सही जवाब मिलेगा किन्तु मन रोगी है तो जवाब सही नही मिलेगा।

आज के युग मे हवा ही ऐसी चल रही है कि लोग अन्तरग मे रही हुई विवेकरूपी सपत्ति का प्रयोग नही करते। इससे दुनिया मे बडा अनर्थ हो रहा है। जगह–जगह अत्याचार, लूट–खसोट, आगजनी, बलात्कार, अभक्ष्य सेवन आदि दुर्घटनाएँ अविवेक के कारण सुनी जाती है। दुनिया मे जितनी भी बुराइयॉ उत्पन्न होती है, उन सबका मूल यदि खोजा जाय तो अविवेक ही होगा। व्यक्ति का अविवेक उसके जीवन को भ्रष्ट कर देता है। परिवार का अविवेक परिवार को नष्ट कर देता है, समाज का अविवेक समाज को रसातल मे पहुँचा देता है और देश जब विवेक खो बैठता है तो वह अध पतन के गहरे गड्ढे मे गिर जाता है। अविवेक के वशीभूत होकर मानव अकृत्य ऑख मीच कर कर डालता है पर बाद मे उसे पश्चात्ताप की आग मे झुलसना पडता है, अत सच्चा विवेक उसी मे है कि हम सर्वोत्तम जानने लायक को जाने और सर्वोत्तम करने लायक को करे। किसी ने कहा भी है–

यद्यपि विवेक मन को स्वच्छन्द रूप से नहीं विचरने देता हे किन्तु उसे बुराई से बचाकर सन्मार्ग मे लगा देने वाला भी वही है।

आत्मिक अनत आनद को प्राप्त करने के लिये आत्मा व शरीर का विवेक करना भी जरूरी हे। आत्मा चैतन्य धर्म से युक्त हे। शरीर जड धर्म वाला हे। जलवार म्यान मे रहती अवश्य हे पर तलवार व म्यान दोनो एक नहीं हें अलग–अलग हें। उसी प्रकार आत्मा व शरीर अलग–अलग ही हें किन्तु विवेकचक्षु का प्रयोग नहीं करने वाले आत्मा व शरीर को एक ही मानने की वहुत वडी भूल कर रहे हे। हम विवेकचक्षु को खोलकर यदि शरीर को पराया समझ ले तो हमारा मोह शरीर के प्रति ज्यादा नहीं होगा ओर न ही परिवार के प्रति मोह रहेगा। अत विवेकचक्षुओ को खोलना जरूरी हे।

सत–सती वर्ग के सोये हुए विवेक को जगाने के लिए ही पीयूष प्रवचन की धारा प्रवाहित करते है। अगर वह सुप्त विवेक जग जाय तो निश्चित ही मानव अपनी आत्मा का, अपने घर का, समाज का व राष्ट्र का कल्याण करने मे सक्षम हो जाता हे किन्तु सवसे वडे दु ख की वात तो यह हे कि लोग धर्मस्थान पर तो कम आते है, जहॉ पर विवेक को जगाने के अवसर मिलते हे। अगर कभी सयोगवश चले भी गये तो इस कान से सुनकर उस कान से निकाल देते हे। किन्तु जहॉ पर विवेक को नष्ट करने वाली व गलत ज्ञान प्रदान करने वाली प्रवृत्तियॉ हो रही हो, ऐसे कार्यक्रमो मे अवश्य जाते हें व ऐसे पिक्चरो को अवश्य देखते हें और उस वातावरण मे अपना विवेक खोकर गलत कामो मे प्रवृत्त हो जाते हैं। अन्त मे अत्यत दु खी वनकर अपने भाग्य को कोसते रहते हे। जब कुछ समाधान नहीं हो पाता तव फिर धर्म की शरण मे आते हैं। जहॉ उन्हे वहुत पहले ही आना थ। तुलसीदासजी ने भी कहा हे–

विनु सत्संग विवेक न होइ।

अर्थात् विना सत–सन्निधि के विवेक जाग्रत नहीं होता हे।

मानव को यदि अपने जीवन सुधार की चाह हे तो एकमात्र अपने विवेकरूपी धन का सहारा लेना होगा। विवेक एक ऐसा दृढतम सहारा हे कि मानव जीवन मे सफलता दिला के ही रहता हे। विवेक अपने हृदयरूपी ऑगन मे वहने वाली गगा के समान हे। इसको हमे अवश्य पहचानना व लाभ उठाना चाहिये। कहा भी हे–

विवेक की शान जीते-जी ऐसे काम करने मे ह जिनकी मरते वक्त ख्वाहिश रहे।

वास्तव में विवेक ही अपूर्व आनद दिलाने वाला हे। यही दु ख से मुक्त होने की कुजी हे लेकिन इसे सही घुमाना नहीं आता ह। यही कारण ह कि ससार के लाखो–करोडो लोग दु खी के दु खी ही रह जाते हें। दु खमुक्त होना तो कही रहा अपितु दु ख को ओर वढा लते हे। अत विवेक का पूर्ण रूप से सदुपयोग करना चाहिये।



सहन कर, सिद्ध बन जायेगा

तितिक्खं परमं नच्चा। (सूत्रकृताग 1/8/26)

अर्थात् सहनशीलता को परम धर्म समझकर आचरण करो।

जीवन मे सिद्धि प्राप्त करने के लिए कष्टो को सहन करना जरूरी होता है।

जीवन के हर क्षेत्र मे सफलता प्राप्त करने हेतु मानव को सहनशील बनना जरूरी है।

महिलाओ को एक रोटी बनाने के लिये बहुत कष्ट सहन करना पडता है। जैसे गेहूँ पीसना, आटे को गोधना, अग्नि जलाना व एकाग्रता के साथ सही तरह से रोटी को सेकना आदि।

कुछ पैसा कमाने के लिए मानव को सुबह से शाम तक दुकान पर बैठकर तपना पडता है तब कही जाकर कुछ रुपया जेब मे आता है। बीज पृथ्वी के अक मे तपता है तब कहीं जाकर के अकुरित होता है। उसके बाद भी धूप, छाया, हवा आदि बाहर के वातावरण को सहन करता है। तब वह क्रमश, पल्लवित, पुष्पित होता हुआ फल प्रदान करने मे सक्षम बनता है।

जो विद्यार्थी, गरमी, सर्दी आदि सभी सहन करता हुआ, अपनी अनेक खेलने–कूदने, घूमने–फिरने आदि सुविधाओ को छोडता हुआ एकान्त मे बैठकर पढता है तभी वह अपनी पढाई मे पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकता है। कहा भी है– 'विद्यार्थी को सुख नही, सुख है तो विद्या नहीं।'

मानव जीवन मे भी कई उतार–चढाव आते रहते है। उन सभी को सहन कर लेने वाला ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। जो व्यक्ति कष्टो से घबराकर दूर भागता है, वह अपने जीवन मे कभी भी सफलता प्राप्त नही कर सकता। कष्ट सहन करने से ही सिद्धि प्राप्त होती है। दु ख के पीछे ही सुख छिपा रहता है। ठोकर खाकर ही व्यक्ति ठाकुर बनता है। साईकिल चलाना सीखने के लिये पहले कितनी ही बार गिरता–पडता है, घुटने फोडता है। उन सभी को सहन करने पर ही सफलता के साथ साईकिल चलाना सीख पाता है। उसी प्रकार जीवन मे आने वाले दु खो से नहीं घबराने वाला व्यक्ति अपने जीवन मे सुख को प्राप्त करता है।

जीवन मे आये हुए कष्टो को मिटाने का एक अमोघ उपाय है उन्हे सहन

कर लेना। अगर आपने उन्हे सहन नहीं किया ओर प्रतिक्रिया की तो मन मे कषाय अवश्य पेदा होगा। कषाय से द्वेष की भावनाएँ प्रवल वनेगी आर लम्वे समय से चले आ रहे स्नेहसूत्र एक झटके के साथ टूटते नजर आएँगे ओर जीवन दु खो से व्याप्त हो जाएगा। जो व्यक्ति सहिष्णु होता हे उसमे प्रतिक्रिया की भावना उत्पन्न ही नहीं होती अत वह कषायमुक्त भी रहता हे। ऐसे व्यक्ति का जीवन ससार के लिये एक आदर्श व अनुपम रूप हो जाता हे। उसका जीवन व्यवहार ससार को एक दिशा देने वाला वन जाता हे। ऐसा व्यक्ति कभी भी वातचीत मे राग–द्वेष से युक्त कटु भाषा का प्रयोग नहीं करता। उसके मुँह से हमेशा ललित व मधुर शब्द ही निकलते हें। वह प्राणी मात्र के प्रति हमेशा शुभ चिन्तन ही करता हे। भगवान् महावीर स्वामी ने गोशालक जैसे कुशिष्य को भी तेजोलेश्या के वार से आहत होने से वचाया।

भगवान महावीर स्वामी ने देश मे विचरण किया। वहाँ के रहने वाले साधुओ से अपरिचित होने से वे भगवान महावीर स्वामी को गालिया वकते कोई पत्थर व लाठी से मार देते, कोई पागल कुत्तो से कटवाते, कोई भगवान महावीर के शरीर का मास तक काट देते, कोई उन्हे उठाकर पटक देते। उन सब आये हुए कष्टो को भगवान् इस प्रकार सहन कर लेते मानो उनका शरीर से कोई सवध ही न हो।

इस प्रकार सब आगत कष्टो, उपसर्गो व परीषहो को समभाव के साथ सहन करने से ही वे कर्मो से मुक्त हो गये थे। गजसुकुमाल, खदक मुनि आदि महापुरुषो ने अपने समक्ष आये कष्टो को समभाव से सहन किया तभी तो उनकी मुक्ति उसी भव मे हो गयी।

जीवन मे आध्यात्मिक विकास के लिए भी कष्टसहिष्णु होना वहुत जरूरी है। एक सामायिक करने के लिए व नवकारसी, उपवास पौषध, तपस्या आदि करने के लिए सहनशील वनना ही पडता हे। आप महाराज के दर्शन करन के लिये पहुँचे। जिस गॉव मे महाराज हैं, सयोगवश उस गॉव मे वहॉ के सघ की तरफ से ठहरने की अच्छी सुविधा नहीं हे। ऐसी स्थिति मे आप वहॉ के सघ सदस्यो के समक्ष व महाराज के समक्ष वडवडाने तो नहीं लगते हो? सघ वालो को भला–वुरा तो नही कह देते हो? अगर आपने ऐसा किया तो कर्मनिर्जरा के स्थान पर कर्म वधन हो जायेगा। आप जिस लक्ष्य से आए हो वह लक्ष्य आपका धूमिल हो जाएगा। आत्मशाति समाप्त हो जाएगी। यदि आपने जैसी भी व्यवस्था मिली हे उसे समभाव से स्वीकार कर लिया तो उस सहनशीलता के कारण आपके कर्म ज्यादा मात्रा मे टूट जाएँगे। आपकी आत्मशाति भग नही होगी। इसी प्रकार आपको सयोगवश किसी सघ वाले ने भोजन–पानी के लिये नहीं पूछा तो आप उनकी निंदा मत कीजिये। सहन कर जाइये उसी मे आत्म सुख की प्राप्ति होगी।

साधक को भी साधना क्षेत्र मे सफलता प्राप्त करने अनुकूल–प्रतिकूल कष्टो को सहन करना जरूरी है। कहा भी है–

सीउसिणच्चाई से निग्गंथे।

अर्थात् जो शीत और उष्ण को सहन कर लेता है वही निर्ग्रन्थ है।

साधक जीवन मे सर्दी–गरमी, भूख–प्यास, डॉस–मच्छर आदि प्रतिकूल परीषह व प्रज्ञा–अज्ञान आदि अनुकूल परीषह उपस्थित होते रहते हैं, उन्हे समता भाव से सहन करे। मानव प्रतिकूल परीषह, भूख–प्यास तो फिर भी सहन कर सकता है पर अनुकूल परीषहो को सहन करना बहुत मुश्किल होता है। जैसे पहाड पर चढना फिर भी सरल है किन्तु पहाड से नीचे उतरने मे ज्यादा सावधानी की जरूरत पडती है। जैसे ज्यादा प्रज्ञा की प्राप्ति भी कभी–कभी परीषह बन जाती है। यह परीषह सबसे ज्यादा भयकर होता है। इससे जीवन मे मिथ्यात्व भी छा जाता है। साधक सोचने लगता है–साधु जीवन को पालते हुये कितने वर्ष हो गए है। साधु जीवन के साथ मे तपस्या, जप, तप आदि भी सब कुछ किए किन्तु कर्मो से अभी तक मुक्ति नही हुई है। अभी तक तो एक नवकार मत्र या एक मागलिक भी सिद्ध नहीं हुई है जिसे सुनाते ही सामने वाले का कल्याण हो जावे। शास्त्रो मे अनादि–अनत की बाते आती है, सो वह अनादि–अनत कैसे–क्या होता है? जीव मोक्ष मे शरीररहित ही जाता है। उठना–बैठना, घूमना–फिरना, खाना–पीना कुछ भी नहीं है। फिर क्या आनद है वहा पर जो इतनी साधना की जाय? ज्यादा ज्ञान प्राप्त करने से सभी साधु–साध्वी, श्रावक–श्राविका बहुत तग करते रहते है। वे सारे दिन प्रश्न पूछने आते हैं, उन्हे समाधान देने पडते है। शास्त्र पढाने पडते है। पूरे दिन मे थोडी देर भी शाति प्राप्त नही होती है। इससे तो जिसे कुछ भी नही आता है वह साधु ठीक है।

अल्पज्ञानी साधु सोचता है कि साधु जीवन मे ज्ञान की ही पूछ होती है। उसी की दुनिया मे जय–जयकार होती है। अज्ञानी को कोई नहीं पूछता है। अत मेरा सयम लेना तो बेकार ही रहा। मै सयम नहीं लेता तो अच्छा ही था। ऐसे विचार व्यक्ति को मिथ्यात्व की ओर धकेल देते हैं। इस प्रकार सहनशीलता के अभाव मे साधक श्रद्धाभाव से भी च्युत हो जाता है। अत आध्यात्मिक विकास हेतु सहनशीलता का होना परम आवश्यक है क्योकि सहिष्णु व्यक्ति ही मनोज्ञ वस्तु मे राग व अमनोज्ञ वस्तु मे द्वेष करना छोड सकता है। असहिष्णु पर तो मनोज्ञ–अमनोज्ञ, अनुकूलता–प्रतिकूलता का प्रभाव तुरंत पडता है और वे उस प्रवाह मे बह जाते है तथा राग–द्वेष के वशीभूत होकर भयकर कर्मो का बधन कर लेते हैं। सहिष्णु व्यक्ति के सामने सासारिक प्रपच काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अपना रग दिखाने मे समर्थ नहीं हो पाते क्योंकि वे उन्हे अपनी सही सोच व सम्यक् ज्ञानशक्ति के आधार पर अन्दर ही सहन

कर जाते हैं। अपने स्थान से वाहर वाजे वज रहे हैं, जुलूस निकल रहा है, नाच–गाने हो रहे हैं फिर भी साधक उन मनोज्ञ आवाजो से आकर्षित होकर देखने नहीं जाता। या रास्ते मे चलते हुये कहीं तमाशा हो रहा है तो देखने खडा नहीं हो जाता है। गोचरी के लिये गया हुआ टेलीविजन देखने खडा नहीं होता है। वह अपनी सहनशीलता के आधार पर अपने–आपको उधर आकर्षित होने से बचा लेता है। सहिष्णुता का दूसरा अर्थ मर्यादा भी होता है यानी सहिष्णु साधक अपनी मर्यादा का उल्लघन कभी नहीं करता है। वह अपने मन को वश मे रखता है। इच्छाओ को उठने नहीं देता है। साधक अपनी आतरिक क्षमता को वढाने के लिये लोच जेसे भयकर कष्ट को भी आराम से हॅसते–हॅसते सहन कर लेते हैं। ऐसा आत्मिक साधना मे निरन्तर रत रहने वाला साधक ही स्व–पर–कल्याण कर सकता है।

आज का मानव भूख–प्यास सहन कर सकता है पर गाली–गलोज या प्रतिकूल वचन–व्यवहार को सहन नहीं कर सकता है। नौकर को कुछ कहने हेतु भी मालिक को पहले वहुत विचार करना होता है क्योकि नोकर मे भी कुछ सहन करने की शक्ति नहीं होती है। वह तुरत नोकरी छोडने को तेयार हो जाता है। आज नौकर को मालिक की आवश्यकता नहीं है किन्तु मालिक को नौकर की आवश्यकता है अत मालिक को नौकर से डरना पडता है। आज पिता पुत्र को दो शब्द नहीं वोल सकता। पिता पुत्र को कुछ कहने से पूर्व दस बार विचार करेगे किन्तु कह कुछ भी नहीं पाएँगे। सास वहू को कुछ नहीं कह सकती। अगर कह देवे तो घर का स्वर्गमय वातावरण गदा होते देर नहीं लगे। घर के वातावरण को सही वनाए रखने के लिये घर के प्रत्येक सदस्य को सहिष्णु वनना वहुत जरूरी होता है क्योकि पारिवारिक जीवन मे सहनशीलता के विना सुख–शाति मिल ही नहीं सकती। सामूहिक परिवार सहनशीलता के आधार पर ही चलते हैं। घर मे जितने भी सदस्य होते हैं सभी की रुचिया अलग–अलग होती हैं। ऐसी स्थिति मे सामूहिक सुखमय जीवन जीने के लिये सहनशीलता अपनानी ही पडती है। तभी घर स्वर्गमय स्थिति मे निर्मित हो सकता है।

सत्रहवीं शताब्दी मे जापान के ओचो शान नामक मत्री थे। उनके परिवार मे लगभग एक हजार सदस्य थे। उनका वह वृहत्तम परिवार आपसी स्नेह व सौहार्द के लिये जापानभर मे प्रसिद्धि को प्राप्त था। सभी उस परिवार की प्रशसा करते थे। उस परिवार के लिये यह जनश्रुति प्रसिद्ध थी कि ओचो शान के घर का कुत्ता दूसरे कुत्ते की हड्डियाँ तक नहीं चूसता। सम्राट–सामन्तो के कानो तक भी उस परिवार के आपसी सौहार्द की यश गाथा पहुँच गई। इतने वडे परिवार मे इतना स्नेह कैसे रह सकता है? ऐसा तो सम्भव ही नहीं है। ऐसा होना व्यक्ति की सोच से ही वाहर है। राजा को एकाएक विश्वास

नही हो रहा था। राजन् स्वय ही उस परिवार की जॉच करने के लिये अचानक ही मत्री के घर पहुॅच गये। राजा को जैसे ही उस परिवार के सदस्यो ने देखा, वे सभी राजा का स्वागत करने के लिये जुट पडे और बडे सम्मान के साथ राजा को घर मे ओचो शान मत्री के पास ले आये। राजा घर मे प्रवेश करते हुए उस परिवार के सैकडो सदस्यो को देख रहा है किन्तु कहीं आपस मे टकराव नही है, सभी के चेहरे प्रफुल्लित है व स्नेह की रेखाओ से युक्त हैं। राजा बहुत आश्चर्यचकित हो रहा है। मत्री ओचो शान बहुत वृद्ध थे। उन्होने भी बैठे–बैठे राजा का उचित स्वागत किया। आपस मे वार्तालाप भी हुई। राजा की दृष्टि बात करते हुये भी निरन्तर पारिवारिक सदस्यो की ओर है। सभी मे अगाध स्नेह नजर आ रहा है। राजा ने मत्री से पूछा कि तुम्हारे घर मे एक हजार सदस्य है, सभी आपस मे बहुत प्रेम से रहते है, इसका क्या रहस्य है? क्या तुम्हारे पास इस हेतु कोई मत्र है। मत्री ने कहा–नही, मेरे पास कोई मत्र नही है। राजा ने कहा–मत्र बिना तो ऐसा हो ही नही सकता कि कभी घर मे लडाई हो ही नही और सभी जने सदा–सदा प्रेमभाव से ही रहे। सारे सदस्य गुणवान नही हो सकते। जरूर तुम्हारे पास कोई मत्र है। वह तुम मुझे भी लिखकरके दे दो। मत्री ने एक कागज और पेन हाथ मे उठाया और उस पर 108 बार लिख दिया–सहनशीलता। और वह कागज राजा के हाथो मे पकडा दिया। राजा ने उस मंत्र को पढा। मालूम हुआ कि एक "सहनशीनता" शब्द को ही 108 बार लिख रहा है। मत्री ने कहा–राजन्! मेरे परिवार के आपसी स्नेह का मूल मत्र 'सहनशीनता' ही है। इसी मत्र के कारण हम सभी एकता के सूत्र मे पिरोये हुए हैं व वर्तमान जीवन मे भी महान् स्वर्गोपम सुख का अनुभव करते हुये रह रहे है।

जापान का सम्राट मान गया कि वास्तव मे सहनशीलता कितना वडा गुण है। राजा उस परिवार के सदस्यो के व्यावहारिक जीवन से बहुत खुश हुआ और सहनशीलता के महान् गुण को लेकर पुन अपने राज्य मे लौटा।

इस प्रकार सामूहिक जीवन की सफलता का राज है–सहनशीलता। सहनशीलता का गुण जहॉ पर विकसित हो जाता है वहॉ पर छोटे–वडे का प्रश्न भी समाप्त हो जाता है। छोटे बडे का सहन करते हैं व वडे छोटे का सहन करते है, तभी प्रेम की स्थिति घर मे रह पाती है। घर मे तर्क नहीं चल सकता, प्रेम चलता है और उस मध्य मे ठंडा–गरम, मृदु–कटु, अनुकूलता–प्रतिकूलता सब कुछ सहन करना होता है।

आज के मानव की मानसिक दुर्बलता इतनी ज्यादा है कि वह कुछ भी सहन नहीं कर पाता और जरा–जरा–सी प्रतिकूलताओ मे अपना सन्तुलन खो बैठता है और अपने व्यक्ति को भी पराया समझते हुए किकर्तव्यविमूढ हो जाता है। कभी–कभी तो असहनशील व्यक्ति जरा–सी प्रतिकूलता के पीछे

आत्महत्या भी कर लेता है। कोई घर छोडकर निकल जाते हे फिर इधर–उधर धक्के खाते हुए जिन्दगीभर पश्चात्ताप करते रहते हे। कोई अपने–आपको भूलकर तलवार–चाकू मारने को तेयार हो जाते हे। एक व्यक्ति ने तो नमक कम होने मात्र से अपनी पत्नी का नाक काट खाया था। फिर भले जिन्दगी भर पश्चात्ताप की आग मे जलना पडे पर तत्कालीन प्रतिकूलता को सहन करना मुश्किल हो रहा हे। जिन्दगी मे अपने को नीचा न देखना पडे, निदा का पात्र न वनना पडे, दु खी न होना पडे– इस हेतु सहनशीलता के गुण को जीवन मे स्थान देना ही चाहिये।

सामाजिक जीवन मे तो सहनशीलता के बिना काम नहीं चल सकता क्योकि समाज मे पचास तरह के दिमाग होते हे। वहॉ यदि सुलझा व्यक्तित्व व सहनशीलता न रखी गई तो लडाइयॉ होते देर नहीं लगती। समाज मे कभी–कभी तो सार्वजनिक प्रसगो पर वातचीत करते हुए व्यक्ति छींटा–कशी पर उतर आते है और अपनी व्यक्तिगत लडाइयॉ समाज मे ले आते हैं ओर कभी–कभी तो गाली–गलोज, मार–पीट पर उतर जाते हें। इस प्रकार हर क्षेत्र मे सहनशीलता का आना परम आवश्यक हैं।

परिवार मे, समाज मे, राष्ट्र मे जितने भी झगडे होते हे, वे सभी असहनशीलता के कारण ही होते हे। अगर सहनशीलता को नहीं अपनाया तो निश्चित ही एक दिन अपन सव विखर जाएँगे। चाहे हमारी अस्मिता पारिवारिक हो, धार्मिक हो या राजनीतिक हो–सव मिट जाएगी।

वास्तव मे सहिष्णुता एक ऐसा गुण हे–वह अगर मनुष्य मे आ जावे तो उसे और गुणो की जरूरत ही नहीं है। सहनशील व्यक्ति मानव ही नहीं अपितु मानव के रूप मे साक्षात् देवता ही हे इसलिये हर व्यक्ति को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि वह जीवन के हर क्षेत्र मे पूर्ण रूप से सहनशील वने ओर जीवन का सुधार करके दुनिया के समक्ष आदर्श रूप मे अपने आपको प्रस्तुत करे व मोक्ष का अधिकारी बने।



न प्रश्न, न उत्तर

दंसण मूलो धम्मो (दर्शन पाहुड–2)

अर्थात् धर्म का मूल दर्शन–सम्यक् श्रद्धा है।

चैतन्य आत्मा अपनी इच्छानुसार अपने क्षेत्र मे विकास कर सकता है। अपने जीवन मे जैसा बनना चाहता है वैसा बन सकता है, जैसा करना चाहता है, वैसा कर सकता है। किन्तु आप जो भी बनना या करना चाहते हो उसके प्रति पूर्ण विश्वासी पहले होना जरूरी है। विश्वास के बिना उस क्षेत्र मे व्यक्ति के कदम बढ नही सकते। बुद्धिमान व्यक्ति बिना कारण के अपना एक कदम भी आगे नहीं बढाता है, अत अपने लक्ष्य के प्रति पूर्ण विश्वास, श्रद्धा होगी तभी क्रियान्विति भी सभव है।

खेत मे अनाज बोने से पूर्व किसान को पूर्ण विश्वास होता है कि मै जिन बीजो को मिट्टी मे डाल रहा हूँ, वे अमुक समय के बाद अवश्य अकुरित, पल्लवित, पुष्पित होगे ही। अविश्वास के साथ कुछ–कुछ दिनो के बाद बीज को निकाल–निकाल कर नहीं देखता है। अगर वो सशयात्मक स्थिति के साथ ऐसा करे तो वह बीज फल देने की स्थिति मे आएगा ही नहीं।

बहिने दूध को दही बनाने हेतु उस दूध मे जावन देती हैं। बहिनो को पूर्ण विश्वास होता है कि जावन देने पर दूध दहीरूप मे परिवर्तित होगा ही। वह बहिन दहीरूप मे परिवर्तित होने की अमुक समय–मर्यादा से पूर्व उस बर्तन को उठाके नही देखती कि दही जमा या नही? उसे तो पूर्ण विश्वास होता है। अत उतने समय के बाद ही वह उस बर्तन को हाथ लगाती है और दही उन्हे तैयार मिलता है।

इस प्रकार व्यावहारिक जीवन मे भी विश्वास की परम आवश्यकता है। दुकान मे लाखो रुपयो का सामान भरा है। रात्रि के समय एक ताले के विश्वास के आधार पर लाखो का सामान छोडकर घर पर चले आते हैं। अविश्वास के साथ सारा सामान साथ मे लेके घर पर नहीं आते। इस प्रकार आपको कही जाना है तो कई दिनो तक मुनीम के विश्वास पर दुकान छोडकर जाते हो। बिना जान–पहचान के व्यक्ति के साथ लाखो का लेन–देन एकमात्र विश्वास के आधार पर करते हो। बहिनो को कहीं प्रोग्राम विशेष मे जाना हो तो पूरा घर नौकर के भरोसे छोडकर चले जाते हो। शरीर मे रोग

आने पर आप डॉक्टर को दिखाते हो तथा डॉक्टर जो भी दवाई देते हैं उस पर आप पूर्ण विश्वास करके लेते हो।

कोर्ट मे न्यायाधीश पर विश्वास करके चलते हो, विद्यार्थी अपने गुरु पर पूर्ण विश्वास करके ही अध्ययन करता है। इस प्रकार जहॉ हर क्षेत्र मे विश्वास के आधार पर काम चलता है तो फिर आध्यात्मिक क्षेत्र तो बडा गभीर व दुरूह हे। उसमे अविश्वास होना ही नहीं चाहिए क्योकि आध्यात्मिक क्षेत्र के मालिक तीर्थकर देव है। वे केवलज्ञान व केवलदर्शन से युक्त होते हैं। वे साक्षात् अपने ज्ञान मे जैसा देखते हैं वेसी ही प्ररूपणा करते हें, अत उनके वचन पूर्ण सत्य–तथ्य को लिये हुये होते है, अत उनके राग–द्वेषरहित वचनो पर व उनके धर्म पर पूर्ण श्रद्धा रखनी ही चाहिये।

जमाली को भगवान के एक वचन पर शका हुई थी किन्तु उसके परिणामस्वरूप वह निम्न कोटि का किल्विषिक देव बना।

आत्मा मे अनत शक्ति होते हुए भी जिनवाणी पर दृढ श्रद्धा न होने से विषयो मे आसक्त होकर ससार मे परिभ्रमण कर रही है। चूहा एक रोटी के टुकडे के पीछे पिजरे मे कैद हो जाता हे। चूहे मे पिजरे को काटकर पिजरे से बाहर निकलने की शक्ति है किन्तु उसे चबाने हेतु मिर्ची के बीज चाहिये। मिर्ची के बीज खाने से चूहे के दॉत इतने पैने हो जाते हैं कि वे पिजरे के सरियो को दॉतो से कुतरकर–उन्हे तोडकर बाहर निकल आते हैं। पर मिर्ची के बीज उसे मिलने मुश्किल है, उसी प्रकार चैतन्य आत्मा मे बधन से मुक्त होने हेतु परम शक्ति विद्यमान है पर जिनवाणी का श्रद्धा के साथ वर्तन करने की आवश्यकता है। कहा भी हे– **श्रद्धा पाप प्रमोचिनी।** श्रद्धा भाव से पाप नष्ट हो जाते हैं। वह सयोग मिलना दुर्लभ होता है। इसीलिये तो भगवान ने श्रद्धा को परम दुर्लभ बताया हे।

आज का युग तर्कप्रधान युग है। वह हर वस्तु को तर्क की कसौटी पर उतारना चाहता है और जो वस्तु प्रत्यक्ष हो सके उसी पर श्रद्धा करना चाहता है। अप्रत्यक्ष विषय पर श्रद्धा नहीं करता। उनसे पूछा जाय कि तुमने अपने परदादा, लडदादा आदि पूर्वजो को देखा है क्या? अगर नहीं देखा हे तो आप उन पर विश्वास कैसे करते हो? आपके पिताजी अचानक कालधर्म को प्राप्त हो गए। पीछे बहियो मे जो भी लिखा है उस विश्वास के आधार पर लेन–देन व्यवहार करते हो या नहीं? जब आपको अपने पिता द्वारा बही मे लिखी बात पर इतना विश्वास है तो भगवान ने जो अपनी चर्मचक्षुओ से अप्रत्यक्ष स्वर्ग–अपवर्ग के विषय मे जो तथ्य उजागर किए हें उन पर पूर्णरूपेण विश्वास करके उस मार्ग पर अपने कदम बढाने चाहिएँ।

वीर पुरुषो को एक बार सत्य तथ्य का ज्ञान हो जाय तो फिर वे उस पर अचल श्रद्धावान हो जाते हें। वह निर्मल श्रद्धा पुन [illegible] जाती नहीं।

कदाचित् उसमे रूपान्तरण भी हो जाय पर स्थायी रूप से नहीं होता है। कुछ समय के बाद श्रद्धा तथावत् रूप से पुन प्राप्त हो जाती है। एक बार श्रद्धा के आने मात्र से ही जीवन का निस्तार हो जाता है। उसे मोक्ष का टिकिट मिल जाता है और वे अर्धपुद्गल परावर्तन के अन्दर–अन्दर मे मोक्ष मे चला ही जाता है।

भगवती सूत्र मे श्रद्धा के विषय मे कहा है कि– दर्शन इस भव मे भी होता है, परभव मे भी साथ जाता है और भव–भव मे भी साथ जाता है।

इस भव मे लिये गए व्रत, प्रत्याख्यान, त्याग आदि इसी जन्म तक सीमित रहते है। कोई भी व्यक्ति किसी भी विषय मे त्याग ग्रहण करता है वह जावज्जीव से ज्यादा समय का ग्रहण नही करता। उससे कम समय का भले ग्रहण कर ले पर जीवनपर्यन्त से आगे परभव हेतु त्याग ग्रहण नहीं करता और न ही वे लिये गए त्याग–प्रत्याख्यान, सयम आदि आपके साथ जाते हैं। मगर श्रद्धा के विषय मे ऐसी बात नही है। श्रद्धा तो जन्म–जन्मान्तर तक साथ जा सकती है। तप, त्याग, आदि साधनाएँ भी श्रद्धा होने पर ही सफल होते है, नही तो भगवान ने फरमाया है–

मासे मासे तु जो बालो, कुसग्गेणं तु भजए।
ण सो सुयक्खाय-धम्मस्स, कलं अग्घइ सोलसिं।।

अर्थात् जो अज्ञानी पुरुष मासखमण के पारणे मासखमण करे, पारणे के दिन कुशाग्र परिमाण जितना आहार करता है वह पुरुष तीर्थकर देव द्वारा परूपित चारित्र धर्म की सोलहवी कला के समान भी नही है।

अत जीवन मे हर क्रिया–काड से पूर्व श्रद्धा का होना जरूरी है। श्रद्धा के अभाव मे कितना भी ज्ञान प्राप्त कर लिया जाय पर भगवान के कथनानुसार वह ज्ञान अज्ञानरूप ही है। मगर श्रद्धा का प्राप्त होना वहुत कठिन है। मासखमण की तपस्या व उससे भी दीर्घ तपस्या मानव आसानी से कर सकता है। जिन्दगीभर के लिये हरी के त्याग, सचित्त वस्तु के त्याग, अब्रह्म के त्याग कर सकता है, यहाँ तक कि साधु का वेष भी आसानी से धारण कर सकता है पर जीवन मे विशुद्ध श्रद्धाभाव की प्राप्ति होना अति कठिन है।

श्रद्धा जीवन की रीढ है। रीढ की हड्डी के बिना शरीर की कीमत ही क्या है? इसी प्रकार श्रद्धा के बिना जीवन की कोई कीमत नहीं है। श्रद्धा से ही व्यक्ति व समाज का विकास व कल्याण सभव है।

अडिग श्रद्धाभाव से ही राजा श्रेणिक के समक्ष चेलना की विजय हुई।

राजा श्रेणिक धर्मपराङ्मुखी था। महारानी चेलना प्रियधर्मी थी। महारानी चेलना की हमेशा यही कोशिश रहती थी कि राजा श्रेणिक किसी भी तरह से धर्मानुरागी बन जाएँ। जबकि राजा श्रेणिक सोचता कि महारानी चेलना अभी से क्या धर्म–ध्यान करने लग गई है। इसे जैसे–तैसे धर्म से दूर करना

चाहिए। इस हेतु राजा श्रेणिक जेन साधु–साध्वी की महारानी के समक्ष कई बार बुराई किया करते। किन्तु चेलना शान्ति के साथ पुन राजा को समझाती रहती। महारानी चेलना को राजा की बातो से लग गया कि ये कभी भी सयती वर्ग को भ्रष्ट कर सकते हैं अत उसने चारो तरफ सूचना भेज दी कि जो साधु चार ज्ञान के धारक हो, व्रतपालन मे दृढ हो व हर तरह से समर्थ हो, वे ही राजगृह नगर मे पधारे। नहीं तो साधारण साधु महाराज श्रेणिक के कपट जाल मे भी फॅस सकते है, जिससे धर्म की अवहेलना होगी।

महारानी चेलना की सूचना सभी साधुओ के पास पहुॅच गई। उसके बाद वहॉ पर साधु–सतो का आना एकदम कम हो गया। एव बार एक सत महापुरुष विचरण करते हुये वहॉ पर पधारे। राजा श्रेणिक को पता चला कि जैन साधु यहॉ पर आए है। उन्हे भ्रष्ट करवाने के विचार से एक वेश्या को अपने पास बुलाया और कहा कि तुम्हे जैन साधु को भ्रष्ट करना हे। अगर तुम इस काम मे सफल हो गई तो तुम्हे मुॅह मॉगा इनाम दिया जायगा। वेश्या ने कहा यह तो मामूली काम हे। सूर्यास्त के बाद वह वेश्या सोलह शृगार सजकर व कामोत्तेजक वस्तुएं साथ मे लेकर जेन साधु के स्थान पर पहुची साधु की दृष्टि उस वेश्या पर पडी। उसे देखते ही साधु ने कहा–खबरदार! रात्रि के समय कोई भी महिला जेन स्थानक मे प्रवेश नहीं कर सकती। किन्तु उसी समय बाहर से दरवाजा बद कर दिया व ताला लगा दिया। वे सत समझ गये कि उपसर्ग आ गया है। सावधानी जरूरी है। यद्यपि मे अपने व्रत मे दृढ हूॅ किन्तु जब यह बाहर निकलेगी और कहेगी कि मै साधु को भ्रष्ट कर आई हूॅ, उस समय मेरी कोन सुनेगा? वेश्या सत को आकृष्ट करने के लिये जसे ही प्रयत्न करने हेतु कदम बढाती हे तभी जैन साधु ने लब्धि द्वारा विकराल रूप धारण किया। वेश्या उनके उस रूप को देखकर डर गई आर भयकर रूप से घबराई कितु बाहर जाने का रास्ता था नहीं। अत एक ॲधेरे कोने मे जाकर, कॉपती हुई–सी खडी हो गई ओर कहने लगी–महात्मन! मुझे क्षमा करो। आप दयालु ह–मुझे बचा दो। मे अपनी इच्छा से यहॉ पर नहीं आई हूॅ। मे तो राजा श्रेणिक क कहने से आई हूॅ।

उन जेन साधु ने वैकिय लब्धि द्वारा अपना वेश बदल [illegible]। [illegible] कारणवश वेश बदल लेने का विधान ह।

राजा श्रेणिक वेश्या को जेन स्थानक मे डलवा कर महारानी चेलना के पास पहुॅचा ओर कहने लगा–महारानी! तुम हमेशा अपने गुरु [illegible] करती हो किन्तु आज जो जेन साधु आये हैं उन्होने तो [illegible]

महारानी चेलना ने कहा–ऐसा मे नहीं मान सकती। [illegible] देख आया हूॅ। यह तो तुझे मानना ही पडेगा। चेलना [illegible] हे तो मे उन्हे गुरु नहीं मानती। मे तो शुद्ध साधु [illegible] गुरु [illegible]

मै इस बात को भी ऑखो से देखने पर ही मान सकती हूँ।

महाराजा श्रेणिक महारानी चेलना के साथ मे लेकर सवेरे साधु के स्थान पर पहुँचे। बाहर भीड खडी थी। जैसे ही ताला खोला और वेश्या पिजरे से छूटे पक्षी की तरह एकदम भागकर बाहर आई और सम्राट से कहने लगी– आप और कोई काम मुझे सौप देवे। मगर जैन साधु के पास जाने का काम आगे से मुझे मत बताना। इन महात्मा के तपस्तेज से आज तो मै भस्म ही हो जाती पर उन्ही की दया से बच भी पाई हूँ।

वेश्या के मुँह से इस बात को सुनकर महारानी तुरत सब–कुछ समझ गई। वह सम्राट से कहने लगी– यह वेश्या क्या कह रही है? आपने ही वेश्या को भेजा है? महाराजा ने बोला–वेश्या की बातो पर ध्यान नही देना चाहिए।

वेश्या के जाने के बाद श्रेणिक व चेलना उस स्थान मे साधु के पास गए तो वे तो भगवा वेश मे विराजमान थे। रानी ने कहा– ये तो मेरे गुरु नहीं है। सम्राट् उस दृश्य को देखकर मान गये कि जैन साधु महान् शक्तिशाली होते है। महारानी चेलना ने कहा–आप धर्म के प्रति इस तरह छल–कपट रखना छोड दो। महारानी की बात सम्राट् के गले उतर गई।

कालान्तर मे राजा श्रेणिक को अनाथी मुनि के ससर्ग से सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई और वे समकित मे इतने दृढ हो गये कि उनके लिये भगवान ने फरमाया कि श्रेणिक भविष्य मे पद्मनमि तीर्थकर बनेगे।

राजा श्रेणिक अनाथी मुनि व भगवान् महावीर के ससर्ग से इतने ज्यादा धर्म मे दृढ हो गये कि इन्द्र भी उनकी दृढ श्रद्धा की प्रशसा करने लग गया। एक देव श्रेणिक की परीक्षा लेने नीचे चला आया। राजा श्रेणिक घूमने के लिये बाहर जा रहे थे। उसी समय वह देव साधु के वेश मे मछली का जाल कधे पर लिये राजा के पास से निकला। राजा ने उससे कहा–यह क्या है? उस साधु ने कहा कि–महाराज! मै तो एक आपकी नजरो मे आ गया हूँ। भगवान् महावीर के सभी साधु ऐसे ही है। श्रेणिक ने कहा–ऐसा कभी नहीं हो सकता है। तुम अपनी गलती छिपाने के लिये दूसरो को बदनाम करना चाहते हो। ऐसा कहते हुये जैसे ही थोडा आगे बढे तो एक गर्भवती साध्वी दिखाई दी। राजा ने कहा–यह क्या? साध्वी कहने लगी मुझे क्या कहते हो? भगवान् महावीर की सभी साध्वियॉ दुराचारिणी है। श्रेणिक ने कहा–ऐसा है ही नहीं। तुम दुराचारिणी हो, अत सभी साध्वियो को कलकित करना चाहती हो।

इस प्रकार की धर्म–श्रद्धा से डिगा देने वाली घटनाओ को देखकर भी राजा श्रेणिक अशमात्र भी विचलित नहीं हुआ। देव आश्चर्यचकित हो गया और उसने अपना माया जाल समेटकर श्रेणिक को सही स्थिति से ज्ञापित करवाया।

हृदय मे धर्म के प्रति सच्ची श्रद्धा हो तो कोई भी उसे डिगा नहीं सकता।

भगवान् महावीर स्वामी पूर्ण श्रद्धा भाव के साथ दीक्षित हुए। अनार्य देश मे विचरण करते हुये लोगो ने पत्थर मारे, डडो से मारा, पागल कुत्तो से कटवाया, उठाकर नीचे पटका किन्तु उन सब उपसर्गो को भगवान् महावीर ने श्रद्धा भाव के साथ सहन कर लिया क्योकि उन्हे पूर्ण विश्वास था कि मुझे समताभावपूर्वक की गई साधना के माध्यम से साध्य की अवश्य प्राप्ति होगी।

आज छोटे–छोटे मत्र सिद्ध करने वाले लोग भी पूर्ण श्रद्धाभाव के साथ जप–तप करते हें तभी उन्हे सिद्धि प्राप्त होती है तो सिद्धस्वरूप को प्राप्त करने हेतु मानव मन मे वेजोड श्रद्धाभाव होना चाहिये। श्रद्धा से शक्ति प्राप्त होती है।

एक सेनापति अपनी सेना का सचालन कर रहा था। सेना मात्रा मे वहुत कम थी। सेनिको को सशय हो गया कि हम कम होने से जीत नही पायेगे। अत सेनापति सेनिको मे जीत की श्रद्धा जगाने हेतु सभी सेनिको को एक मन्दिर के पास ले गया और एक सिक्के को हाथ मे लेकर सभी से कहा कि भगवान् का नाम लेकर सिक्का उछाल रहा हूँ। अगर चित्त पडे तो अपन युद्ध मे जाएँगे और जीत अवश्य होगी। सेनापति ने चार–पॉच बार सिक्के को उछाला। हर वार चित्त ही पडा। यह देखकर सभी सेनिको मे जोश जागा ओर युद्ध मे कम सैनिक होते हुए भी जीत गये। वाद मे रहस्य वताया कि सिक्के के दोनो तरफ एक ही छाप थी। पर श्रद्धा से जीत गये। इस प्रकार श्रद्धा से असभव कार्य भी सभव हो जाते है। गीता मे कहा हे–

श्रद्धामयोऽयं पुरुष. यो यच्छ्रद स एव स.।

अर्थात् यह आत्मा श्रद्धा का ही पुतला है, जिसकी जेसी श्रद्धा हे वह वेसा ही वन जाता हे। सिक्खो के धर्म ग्रन्थ मे भी लिखा है–

निश्चित निश्चय नित चित जिनके।
वाहि गुरु सुखदायक तिनके।।

अर्थात् वे ही मानव सुख की प्राप्ति कर सकते हें जिनके हृदय श्रद्धा से परिपूर्ण होते हे।

वास्तव मे श्रद्धा ही पुरुषार्थ की जननी हे। जिसको जिस विषय मे श्रद्धा ही नही हे वह उस विषय मे पुरुषार्थ भी किस प्रकार कर पायेगा? यदि किसी ने विना विश्वास के शका–शका मे कार्य करना प्रारभ भी कर दिया तो उसमे विघ्न पैदा हो जाऍगे और वीच मे ही उस कार्य को छोडकर वैठ जायेगा। किन्तु व्यक्ति मे अपने लक्ष्य के पति पूर्ण श्रद्धा हे तो वह पुरुषार्थ भी पूर्ण मनोयोगपूर्वक करेगा ओर सफलता भी अवश्य प्राप्त करेगा। श्रद्धापूर्वक प्रारम्भ किये गए कार्य मे विपत्तियाँ कभी भी रोडा नहीं अटका सकतीं। कदाचित विपत्ति आ भी गई तो भी श्रद्धाशील अपने दृढ सकल्प के साथ निरन्तर आगे बढता ही रहता है। वह कभी भी मध्य मे धैर्य को नहीं खोता हे तथा मन मे कहीं भी सशय को नहीं आने देता हे। आखिर मे सफलता प्राप्त कर ही लेता है।

एक बार दो दोस्त धन कमाने हेतु परदेश जाने के लिए घर से विदा रास्ते मे चलते हुये जगल मे रात हो जाने से एक महात्मा की झोपडी मे व्यतीत करने पहुँचे। महात्मा ने उनसे बातचीत की व परेदश जाने का क पूछा। उन दोनो ने धनप्राप्ति हेतु परेदश मे जाने का कारण बताया। महात्मा ने कहा कि अगर तुम्हे यही धन प्राप्त हो जाय तो? दोनो शीघ्र बोल उठे–तो फिर हम परदेश जाएँगे ही नही। महात्मा ने कहा–यहाँ ए गुफा है, उसके अत मे बहुत धन है। मै तुम्हे दो टॉर्च दूँगा। उनके प्रकाश सीधे–सीधे जाने पर गुफा के अत मे धन प्राप्त हो जाएगा। किन्तु शर्त यह कि टॉर्च मे जो बेटरियाँ डाली गई है, उनमे इतना ही प्रकाश करने की शक्ति है कि वे सीधे–सीधे तुम्हे गुफा के अत तक ले जाकर पुन अपने स्थान प ला सकती है। किन्तु आडे–टेढे–तिरछे उस टॉर्च द्वारा देखने पर टॉर्च क प्रकाश बीच मे ही खत्म हो जायेगा और तुम बीच मे ही मारे जाओगे।

दो मे से एक भाई ने तो महात्मा की बात पर पूर्ण श्रद्धा के साथ विश्वास कर लिया और टॉर्च लेकर उसके प्रकाश मे गुफा के अत तक पहुँच गया और धन प्राप्त कर सकुशल लौट आया। किन्तु दूसरे भाई ने मन मे विचार किया कि आडे–टेढे–तिरछे मार्ग मे भी टॉर्च के प्रकाश से देखना चाहिये कि कही यहाँ भी तो हीरे, पन्ने, माणिक, मोती नही है? इस भाई ने अपनी टॉर्च का प्रकाश इधर–उधर देखने से बीच मे खत्म कर लिया और गुफा के अत तक नही पहुँच सका, बीच मे ही कालकवलित हो गया। जबकि दूसरे भाई ने महात्मा के वचनो पर पूर्ण श्रद्धाभाव रखा जिससे उसे धन की भी प्राप्ति हो गई और वह सकुशल अपने स्थान पर लौट आया।

दृढ श्रद्धालु कामदेव श्रावक देव द्वारा उपसर्ग दिये जाने पर भी अपने पथ से किचित मात्र भी विचलित नही हुए थे।

किन्तु आज कहाँ है ऐसा श्रद्धाभाव? आज तो जरा–जरा–सी धन, पुत्र आदि की समस्या के पीछे न जाने कितने ही देवी–देवताओ के पीछे भागते रहते है और अपने धर्म को बेचने भी तैयार हो जाते है।

वास्तव मे श्रद्धा के बिना परम शाति कभी भी प्राप्त नही हो सकती। श्रद्धावान व्यक्ति का भवभ्रमण सीमित हो जाता है। इससे वढकर श्रद्धा का और क्या महान् लाभ हो सकता है, किन्तु वह श्रद्धा सम्यक् होनी चाहिये।

श्रद्धा वह अक्षय तत्त्व है,
जिस का नहीं कोई प्रश्न उत्तर।
सव धर्म श्रेष्ठ होवे है मगर,
'जिन धर्म' के वरावर नहीं कोई स्तर।।

